शिक्षा के दार्शनिक एव समाजशास्त्रीय आधार

Philosophical and Sociological Bases of Education

MAED101

इकाई सं०	इकाई का नाम	पृष्ठ सं०
1.	दर्शन: भारतीय एवं पश्चिमी परिपेक्ष्य में अर्थ (Philosophy : Its Meaning in Indian and Western Perspectives)	1-15
2.	शिक्षा और दर्शन में संबंध, शिक्षा दर्शन का अर्थ, सरोकार व क्षेत्र (The Relationship Between Philosophy and Education, Meaning of Education Philosophy, Concerns and Scope)	16-27
3.	शिक्षक के लिए शिक्षा-दर्शन की उपादेयता एवं आधुनिक शिक्षा प्रणाली में इसका महत्व (Relevance of Educational Philosophy for a Teacher and Its Significance for the System of Modern Education)	28-40
4.	वेदान्त दर्शन (Vedanta)	41-60
5.	उपनिषद (Upanishad)	61-82
6.	सांख्य दर्शन (Sankhya)	83-98
7.	योग (Yoga)	99-118
8.	श्रीमद्भागवद्गीता (ShriMad Bhagwadgeeta)	119-132
9.	प्रकृतिवाद (Naturalism)	133-149
10.	आदर्शवाद (Idealism)	150-167
11.	प्रयोजनवाद (Pragmatism)	168-188
12.	अस्तित्ववाद (Existentialism)	189-204
13.	महात्मा गाँधी (Mahatma Gandhi)	205-222
14.	रवीन्द्रनाथ टैगोर (Rabindranath Tagore)	223-240
15.	श्री अरविन्द (Sri Aurobindo)	241-255
16.	स्वामी विवेकानन्द (Swami Vivekananda.	256-274

17.	रूसो (Rousseau)	275-292
18.	प्लेटो (Plato)	293-310
19.	जॉन डीवी (John Dewey)	311-328
20.	ज्याँ पाल सार्त्र (Jean Paul Sartre)	329-343
21.	समाजशास्त्र का अर्थ, शिक्षा और समाज मे आपसी सम्बन्ध, शैक्षिक समाजशास्त्रर का अर्थ, प्रकृति और क्षेत्र (Sociology – Its Meaning, Relationship between Education and Society, Educational Sociology - Meaning nature and Scope)	344-358
22.	शिक्षा और समाज, शिक्षा एक सामाजिक व्यवस्था, सामाजिक उन्नति और सुधार (Education and Society, Education as a Social System ,Role of social progress and modification)	359-377
23.	सामाजिक परिवर्तन के मुख्य प्रभावकारी कारक (Major Factor affecting the Process of Social Change)	378-395
24.	शैक्षिक समानता के अवसर व शिक्षा में उत्कृष्टता सम्बन्धी मुद्दे, गुणात्मक, परिमाणात्मक व समता सम्बन्धी शैक्षिक पहलू (Issues of Equality of Educational Opportunity and Excellence in Education, Quality, Quantity and Equity related aspects of Education)	396-414
25.	शिक्षा और लोकतंत्र, शिक्षा के संवैधानिक प्रावधान, राष्ट्रीयता और शिक्षा, उदारीकरण, निजीकरण और भूमण्डलीकरण, व सूचना और संचार तकनीक के युग में शिक्षा (Education and Democracy, Constitutional Provisions for Education, Nationalism and Education, Education in the Era of Liberalization, Privatization and Globalization (LPG) & Information and Communication Technology)	415-427
26.	राष्ट्रीय ज्ञान आयोग एवं उच्च और मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा हेतु सुझाव (National Knowledge Commission and Suggestions for Higher & Open and Distance Education)	428-441

इकाई 01: दर्शन- भारतीय एवं पश्चिमी परिपेक्ष्य में अर्थ

(PHILOSOPHY : ITS MEANING IN INDIAN AND WESTERN PERSPECTIVES)

1.1 प्रस्तावना (INTRODUCTION
1.2 उद्देश्य (OBJECTIVES)
भाग-एक **(PART- I)**
1.3 भारतीय दर्शन (INDIAN PHILOSOPHY)
  1.3.1 पश्चिमी परिवेश में दर्शन का अर्थ (MEANING OF PHILOSOPHY IN WESTERN PERSPECTIVES)
  1.3.2 दर्शन की परिभाषाएं (DEFFINITIONS OF PHILOSOPHY)
  अपनी उन्नति जानिए CHECK YOUR PROGRESS)
भाग-दो **(PART- II)**
1.4 दर्शन के क्षेत्र/अंग (SCOPE AND PARTS OF PHILOSOPHY)
  अपनी उन्नति जानिए (CHECK YOUR PROGRESS)
भाग-तीन **(PART- III)**
1.5 दर्शन के कार्य (FUNCTIONS OF PHILOSOPHY)
  अपनी उन्नति जानिए (CHECK YOUR PROGRESS)
1.6 सारांश (SUMMARY)
1.7 शब्दावली (GLOSSARY)
1.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (ANSWERS OF PRACTICE QUESTIONS)
1.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची ((REFERENCES)
1.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री (ESSAY TYPE QUESTIONS
1.11 निबन्धात्मक प्रश्न (ESSAY TYPE QUESTIONS)

1.1 प्रस्तावना (INTRODUCTION)

मनुष्य का वास्तविक स्वरूप क्या है ? विश्व में उसकी स्थिति क्या है ? किस सत्ता से प्रेरित होकर सारा संसार नियमानुसार कार्य करने में रत है ? विश्व के सृजन तथा संहार के पीछे कौन-सी शक्ति अपने ऐश्वर्य का परिचय दे रही है? क्यों प्रकृति अपने नियमों का उल्लंघन कभी नहीं करती है? इस वसुन्धरा के प्राणियों में क्यों सुख है? क्यों दुःख है? इनके सुख-दुःख में इतनी विषमता क्यों है? क्या दुःख की इस स्थिति एवं विषमता को पार करने का कोई उपाय भी है? क्या पाप है? क्या पुण्य है? उत्तम समाज की कौन-सी ऐसी व्यवस्था हो सकती है जो मनुष्य के लिए श्रेयस्कर हो? मनुष्य के वास्तविक कल्याण का क्या साधन है? ये सभी ऐसे प्रश्न हैं, जिनके उत्तर को मानवता अनादि काल से संपूर्ण विश्व में किसी न किसी प्रकार से खोजती आई है और इस अन्वेषण के फलस्वरूप जिस साहित्य की रचना हुई है, उसे दर्शन शास्त्र कहा जाता है।

कौटिल्य के शब्दों में - ''दर्शनशास्त्र सभी विद्याओं का दीपक है, वह सभी कर्मो को सिद्ध करने का साधन है, वह सभी धर्मों का अधिष्ठान है।''

अतः दर्शन प्रेम की उच्चतम सीमा है। इसमें सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड एवं मानव जीवन के वास्तविक स्वरूप, सृष्टि-सृष्टा, आत्मा-परमात्मा, जीव-जगत, ज्ञान-अज्ञान, ज्ञान प्राप्त करने के साधन तथा मनुष्य के करणीय तथा अकरणीय कर्मो का तार्किक विवेचन किया जाता है। इस दृष्टि से दर्शन जीवन का आवश्यक पक्ष है। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन का कोई न कोई दर्शन अवश्य होता है। चाहे उसके संबंध में व्यक्ति सचेतन हो अथवा न हो। इस प्रकार सभी व्यक्ति अपने जीवन दर्शन के अनुरूप तथा संसार के विषय में अपनी धारणा के अनुरूप जीवन व्यतीत करते हैं।

1.2 उद्देश्य (OBJECTIVES)

1. दर्शन का अर्थ भारतीय परिपेक्ष्य में समझ सकेंगे।
2. दर्शन का अर्थ पश्चिमी परिपेक्ष्य में समझ सकेंगे।
3. भारतीय व पाश्चात्य दार्शनिकों की परिभाषा का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
4. दर्शन के विभिन्न भागों- तत्व मीमांसा, ज्ञान मीमांसा, आलोचनावाद, मूल्य मीमांसा को समझ सकेंगे।
5. दर्शन के कार्यो को समझ सकेंगे।

भाग-एक (PART- I)

1.3 भारतीय दर्शन (INDIAN PHILOSOPHY)

इतिहास इस बात का साक्षी है कि भारत ही नहीं, अपितु समस्त संसार के प्राचीनतम ग्रन्थ ‘वेद’ ही हैं। भारतीय दर्शन का स्रोत वेद है। वेद कोई दार्शनिक ग्रन्थ नहीं है, वरन् दर्शनों के आधारभूत ग्रन्थ हैं। वेदों ने बाद के भारतीय दर्शनों पर अत्यधिक प्रभाव डाला, जिन्हें आज हम ‘षड्दर्शन’ कहते हैं- वे सभी वेदों को मानने वाले हैं। कुछ दर्शन वेदों को नहीं मानते। ऐसे दर्शन तीन हैं- चार्वाक, बौद्ध तथा जैन । इस दृष्टि से भी वेदों का महत्व है। अर्थात् भारत में जो चिन्तन हुआ, वह या तो वेदों के समर्थन के लिए या फिर खण्डन के लिए। वस्तुतः पहले ‘नास्तिक’ शब्द वेदनिन्दक के लिए ही प्रयुक्त होता था, बाद में इसका अर्थ ‘अनीश्वरवादी’ हो गया। ‘नास्तिक’ शब्द के पहले अर्थ में केवल चार्वाक, बौद्ध तथा जैन दर्शन ‘नास्तिक’ हैं और दूसरे अर्थ में मीमांसा और सांख्य भी आते हैं, क्योंकि ये भी ईश्वर को नहीं मानते। एक अन्य अर्थ के अनुसार- ‘नास्तिक उसे कहते हैं, जो परलोक में विश्वास नहीं करता है।’ इस अर्थ में षड्दर्शन तथा जैन एवं बौद्ध दर्शन भी आस्तिक दर्शन हो जाते हैं और केवल चार्वाक दर्शन आस्तिक है।

‘वेद’ वास्तव में एक ही है और उसी से चार वेद बन गये हैं, जैसा कि सनत्सुजात के निम्नलिखित कथन से विदित होता है-

‘‘एकस्य वेदास्याज्ञानाद् वेदास्ते बहवः कृताः।’’

अर्थात्-अज्ञानवश एक ही वेद के अनेक वेद कर दिये गये हैं।

स्थूल दृष्टि से वेद को ‘कर्म-काण्ड’ एवं ‘ज्ञान काण्ड’ में विभक्त किया गया है। ‘कर्म-काण्ड’ में उपासनाओं का तथा ‘ज्ञान-काण्ड’ में आध्यात्मिक तत्व का विवेचन है। देवताओं की स्तुतियों में अनेक मंत्र हैं। ऋग्वेद के दशम् मण्डल के 121वें सूक्त में हिरण्यगर्भ की स्तुति की गई है। इस सूक्त से आध्यात्मिक चिन्तन का अच्छा परिचय प्राप्त होता है।

श्रीमद्भगवद्गीता नीतिशास्त्र का विश्वविख्यात ग्रन्थ है। इसमें भगवान कृष्ण ने अर्जुन को उपदेश दिया है। गीता का मुख्य सन्देश ‘निष्काम कर्म’ है। अर्थात् बिना फल की इच्छा किये हुए कर्म करना चाहिए। आत्मा अजर-अमर है। न तो इसको कोई मार सकता है और न ही यह किसी को मार सकता है। गीता में ज्ञान, भक्ति एवं कर्म-तीनों मार्गो की महिमा बताई गई है। किन्तु निष्काम कर्म को सुगम एवं उत्तम साधन के रूप में स्वीकार किया गया है। लक्ष्य के रूप में ‘मुक्ति’ ही स्वीकार्य है।

चार्वाक दर्शन भौतिकवादी दर्शन है। इसके अनुसार जड़-जगत सत्य है और यह वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी- इन चार भौतिक तत्वों से बना है। चेतना की उत्पत्ति भौतिक तत्वों से ही है। आत्मा

शरीरर को ही कहा जाता है। शरीरर के नष्ट होने पर चैतन्य जो भौतिक तत्वों का विशेष है, नष्ट हो जाता है। मृत्यु के बाद कुछ नहीं बचता। परलोक, वेद, ईश्वर आदि को यह दर्शन स्वीकार नहीं करता। इसके अनुसार जब तक जियें सुख से जियें का सिद्धान्त सर्वोत्तम सिद्धान्त है।

जैन दर्शन के अनुसार प्रत्यक्ष के अतिरिक्त अनुमान एवं शब्द भी प्रमाण हैं। भौतिक जगत को जैन दार्शनिक भी चार्वाक की भांति वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी-इन्हीं चार तत्वों के मिश्रण से निर्मित मानते हैं। जैन दार्शनिकों के अनुसार चैतन्य की उत्पत्ति जड़-पदार्थो से नहीं हो सकती। जैन दर्शन के अनुसार जितने सजीव शरीरर हैं, उतने ही चैतन्य जीव हैं। प्रत्येक जीव में अनन्त सुख पाने की क्षमता है। मोक्ष-प्राप्ति सर्वथा संभव है। सांसारिक बंधन से छुटकारा पाने के लिए सम्यक दर्शन, सम्यक ज्ञान और सम्यक चरित्र, तीन उपाय बताये गये हैं।

बौद्ध दर्शन - जगत के सभी प्राणियों में एवं सभी दशाओं में दुःख वर्तमान है और इस दुःख का कारण है- क्योंकि कोई भी भौतिक-आध्यात्मिक वस्तु अकारण नहीं है। संसार की सभी वस्तुएं परिवर्तनशील हैं। मरण का कारण जन्म है। जन्म का कारण तृष्णा है और तृष्णा का कारण अज्ञान है। दुःखों के कारण यदि नष्ट हो जायें तो दुःख का भी अन्त हो जायेगा। चौथा सत्य ‘दुःख-निवृत्ति’ के उपाय के रूप में है।

1.3.1 दर्शन का अर्थ

(i) पश्चिमी परिवेश में दर्शन का अर्थ

दर्शन शब्द संस्कृत के ‘दृश’ धातु में ‘ल्यूट’ प्रत्यय लगाकर बनाया गया है। जिसका अर्थ है- ‘देखना’। इसका अंग्रेजी शब्द Philosophy है, जिसकी उत्पत्ति दो यूनानी शब्दों से हुई है:- philo जिसका अर्थ है Love और Sophia जिसका अर्थ है व of wisdom इस प्रकार philosophy का अर्थ है- Love of Wisdom (ज्ञान से प्रेम)।

(ii) भारतीय परिवेश में दर्शन का अर्थ

‘दर्शन’ पद की व्युत्पत्ति दो अर्थ है। पहले, ‘दुश्यते अनेन इति दर्शनम्’। इस व्युत्पत्ति के अनुसार संस्कृत में ‘दर्शन’ का अर्थ होता है-‘जिसके द्वारा देखा जाये।’ ‘दर्शन’ शब्द से वे सभी पद्धतियां अपेक्षित हैं, जिनके द्वारा परमार्थ का ज्ञान होता है। ‘देखा जाये’ इस पद का अर्थ यों तो ‘ज्ञान प्राप्त किया जाये’ यह भी हो सकता है, फिर भी इस संबंध में यह ध्यान रखना उचित है कि ज्ञान प्राप्त करने के अनेक साधन हैं। जैसे-प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द आदि। लेकिन इन सभी में सबसे प्रसिद्ध और प्रमुख साधन है-प्रत्यक्ष। प्रत्यक्ष के भी इन्द्रिय-भेद से पांच प्रकार होते हैं, लेकिन इन सभी में जो ज्ञान चक्षु-इन्द्रिय से प्राप्त होता है-जिसे चाक्षुष प्रत्यक्ष कहते हैं-उसकी प्रामाणिकता सर्वोपरि है। शब्द भी एक प्रकार का प्रत्यक्ष है, जिसको आप्त (विश्वसनीय) पुरूषों ने अपनी अविचलित बुद्धि और शुद्ध

अंतःकरण से प्राप्त करके लौकिक जनों के उत्थान हेतु गुरू-शिष्य परम्परा से प्रसारित किया है। प्रायः चार्वाक को छोड़कर जितने भी भारतीय दार्शनिक हैं वे सभी आप्त (विश्वसनीय) वाक्यों की श्रेष्ठ प्रमाणिकता में विश्वास करते हैं। वेद में आस्था रखने वाले शास्त्रकार तो ऐसा मानते ही हैं, किन्तु जैनों एवं बौद्धों के भी अपने-अपने आप्त-वचन अथवा आगम हैं, जिन्हें वे प्रमाण-स्वरूप मानते हैं। इन सबसे प्रत्यक्ष को सर्वोपरि प्रमाण मानने की बात सिद्ध होती है।

दूसरे 'दृश्यते इति दर्शनम्' जो देखा, समझा जाये वह दर्शन है। इस व्युत्पत्ति के अनुसार प्रामाणिक विषय-ज्ञान दर्शन है। इस प्रकार 'दर्शन' के अर्थ में दोनों व्युत्पत्तिमूलक अर्थ शामिल हैं। संक्षेप में, 'दर्शन' शब्द से भारतीय शास्त्रकारों का तत्वसाक्षात्कार अभीष्ट है। दर्शनशास्त्र में प्रायः उसी साक्षात्कार की कल्पना की जाती है, जिसकी तार्किक विवेचना भी हो सके। दर्शन शास्त्र का इतिहास ही आप्त पुरूषों द्वारा प्रदर्शित तत्व की युक्तिसंगत विवेचना है। इसके वास्तविक अर्थ को तर्क की कसौटी पर कस कर लाने का एक क्रमबद्ध प्रयास है। इस सबसे यह ज्ञात होता है कि दर्शन का अर्थ केवल अन्र्तज्ञान ही नहीं अपितु वे समस्त विचारधारायें हैं जो अंर्तज्ञान से उद्भूत होती हुई भी युक्तियों के आधार पर प्रमाणित की जाती हैं। भारतीय विद्वानों के दर्शन का यही अर्थ अभिमत है।

दर्शन शास्त्र सत्ता संबंधी ज्ञान कराकर मनुष्य का परम कल्याण करता है। यह परम कल्याण ही दर्शन का लक्ष्य है। अब प्रश्न है कि इस परम कल्याण का क्या स्वरूप है ? यद्यपि इस प्रश्न का उत्तर देने में भारतीय दर्शन के आचार्यो में मतभेद हैं, तथापि इन सबमें एक समानता है, जो न केवल वेदपथगामी दार्शनिक सम्प्रदायों की विशेषता है वरन् जैन और बौद्ध-सरीखे अवैदिक सम्प्रदाय दो दार्शनिक विचारकों की भी आधारभूत मान्यता है।

संसार के विषयों से उत्पन्न होने वाले जितने भी सुख हैं, उनमें दुःख किसी न किसी रूप में छिपा रहता है। इसी दुःख की ज्वाला से तप्त होकर दार्शनिकों ने उसकी निवृत्ति के उपायों की खोज की है। जैनों के अर्हतत्व, बौद्धों के निर्माण, नैयायिकों की आत्यन्तिक दुःख निवृत्ति तथा वेदान्तियों के मोक्ष में दुःख के नाश की कल्पना अन्तर्निहित है। इस प्रकार दुःख का समूल नाश ही भारतीय दर्शन का परम लक्ष्य रहा है। भारतीय दर्शनकारों ने इसी लक्ष्य के साधनभूत अन्यान्य दर्शनों की रचना करके तथा उन्हें अधिकारभेद से मनुष्य की परमार्थसिद्धि में उपयोगी बताकर मनुष्य को परमपद प्राप्त करने का प्रयत्न किया है।

1.3.2 दर्शन की परिभाषाएं (DEFINITIONS OF PHILOSOPHY)

दर्शन क्या है तथा दर्शन के बिना व्यक्ति का जीवन सहज तरीके से नहीं चल सकता, ये बातें दर्शन के अर्थ तत्व से स्पष्ट हो जाती हैं। ''मनुष्य अपने जीवन तथा संसार के विषय में अपनी-अपनी धारणाओं के अनुसार जीवन व्यतीत करता है। यह बात अधिक से अधिक विचारहीन मनुष्य के विषय में भी सत्य है, बिना दर्शन के जीवन व्यतीत करना असंभव है।'' - हक्सले

(क) पाश्चात्य दार्शनिकों द्वारा दी गई परिभाषाएं:-

1. ‘‘दर्शन ऐसा विज्ञान है, जो चरम तत्व के यथार्थ स्वरूप की जांच करता है।’’ - अरस्तू

("Philosophy is the science which investigates the nature of being as it is in itself." - (Aristotle)

2. ‘‘पदार्थो के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान ही दर्शन है।’’ – प्लेटो

("Philosophy aims at the knowledge of the eternal nature of things." - Plato)

3. ‘‘ज्ञान का विज्ञान ही दर्शन है।’’ – फिक्टे

("Philosophy is the science of knowledge." - Fichte)

4. ‘‘दर्शन विज्ञानों का विज्ञान है।’’ - कामटे

("Philosophy is the science of Science." - Comte)

5. ‘‘दर्शनशास्त्र विश्वव्यापी विज्ञान तथा सभी विज्ञानों के संकलन का नाम है।’’ – स्पेन्सर

("Philosophy is the synthesis of the science and universal science." - Spencer)

(ख) भारतीय दार्शनिकों एवं शैक्षिक चिन्तकों द्वारा दी गई परिभाषाएं:-

1. ‘‘दर्शन एक ऐसा दीपक है, जो सभी विधाओं को प्रकाशित करता है।’’

कौटिल्य के अनुसार-‘‘आन्वीक्षिकी विद्या’’ ही दर्शन है।

दर्शन‘‘प्रदीपः सर्व विद्यानानुपायः सर्वकर्मणाम्।

आश्रमः सर्वधर्माणम् शश्वदान्वीक्षिकीमता।।’’ - अर्थशास्त्र, कौटिल्य

2. ‘‘दर्शन एक ठोस सिद्धान्त है, न कि अनुमान या कल्पना, इसे व्यवहार में लाकर व्यक्ति निर्धारित लक्ष्य या मार्ग प्रशस्त कर लेता है।’’ - डॉ. बलदेव उपाध्याय

3. ‘‘दर्शन के द्वारा प्रत्यक्षीकरण होता है। अर्थात् चाहे जितना ही सूक्ष्म क्यों न हो उसे दर्शन (दिव्य चक्षुओं) से अनुकूल किया जा सकता है।’’ - डॉ. उमेश मिश्र

4. ''यथार्थता के स्वरूप का तार्किक विवेचन ही दर्शन है।'' - डॉ. राधाकृष्णन

5. ''दर्शन एक प्रयोग है जिसमें मानव व्यक्तित्व एवं सत्य उसकी विषय वस्तु होती है और उसको जानने के लिए हम प्रमाण एकत्रित करते हैं।'' - महात्मा गांधी

अपनी उन्नति जानिए (CHECK YOUR PROGRESS)

प्र. 1 भारतीय दर्शन का स्रोत क्या है ?

प्र. 2 तीन ऐसे दर्शनों के नाम बताईये जो वेदों को नहीं मानते।

प्र. 3 वेदों के बाद भारतीय दर्शन पर सर्वाधिक प्रभाव किसने डाला है ?

प्र. 4 नास्तिक से आप क्या समझते हैं ?

प्र. 5 ''अज्ञानवश एक ही वेद के अनेक वेद कर दिये गये हैं।'' यह कथन किसका है ?

भाग-दो (PART- II)

1.4 दर्शन के क्षेत्र/अंग (SCOPE AND PARTS OF PHILOSOPHY)

दर्शन शास्त्र का विषय क्षेत्र बहुत व्यापक है। यह एक ऐसा अध्ययन है, जिसमें अनुकूल सत्य या प्रत्यक्ष अनुभव, लोक-परलोक और आध्यात्म का ज्ञान प्राप्त किया जाता है। यह ज्ञान, विज्ञान और कला सभी कुछ है। प्राचीन दर्शन में तो साहित्य, कला, धर्म, इतिहास, विज्ञान आदि सभी विषय इसके अंतर्गत आते हैं। दर्शन को निम्न तीन प्रमुख अंगों में विभाजित किया गया है।

1. तत्व मीमांसा (Metaphysics)

2. ज्ञान मीमांसा (Epistemology)

3. मूल्य मीमांसा (Axiology)

तत्व मीमांसा **(Metaphysics)**:- तत्व मीमांसा जिसे हम अंग्रेजी में Metaphysics कहते हैं, यह दो शब्दों का मिश्रण है:- Metaphysic मेटा (Meta) अर्थात (परे Beyond), फिजिक्स (Physics) अर्थात (प्रकृति Nature)।

इस प्रकार तत्व मीमांसा या Metaphysics का अभिप्राय हुआ प्रकृति के परे (What is real) । तत्व मीमांसा सदैव ही इस प्रश्न के प्रत्युत्तर की खोज में लगा रहता है कि इस संसार में वास्तविकता

क्या है अर्थात् तत्व मीमांसा दर्शन शास्त्र की वह शाखा है जो वास्तविकता की प्रकृति की खोज करती है और साथ ही यह इस बात की खोज करती है कि वास्तविकता किन-किन तत्वों का परिणाम है अथवा उसमें कौन-कौन से तत्व समाजित होते हैं। इस वास्तविकता की खोज के लिए तत्व मीमांसा प्रकृति, ईश्वर, मनुष्य, विश्व, शक्ति, ऊर्जा आदि से संबंधित तत्वों की वास्तविकता की खोज करने का प्रयास करती है। तत्व मीमांसा के अंतर्गत ईश्वर के संबंध में विभिन्न विद्वानों ने इस प्रकार मत को विभाजित किया है:-

1. आस्तिकवाद (Theism),

2. नास्तिकवाद (Atheism),

3. बहुवाद (Poly-Theism),

4. एकवाद (Oneism),

5. द्वैतवाद (Dualism),

6. विश्वद्वेतवाद (Pantheism),

7. ईश्वरवाद (Deism)

2. ज्ञान मीमांसा (Epistemology):- इसे अंग्रेजी में **(Epistemology)** कहते हैं जो दो शब्दों से मिलकर बना है:

Epistemology (एपिसटीम Episteme) (ज्ञान Knowledge) + लॉजी (Logy) (विज्ञान Science)

इस प्रकार ज्ञान मीमांसा, ज्ञान का विज्ञान (Science of Knowledge) है। यह इस प्रश्न की प्रतिउत्तर की खोज करता है कि संसार में सत्य क्या है? (What is True)। इसके अंतर्गत ज्ञान की प्रकृति, सीमाएं, विशेषताएं व उनका प्रादुर्भाव आदि का अध्ययन किया जाता है। इसमें ज्ञान के विभिन्न पहलुओं के संबंध में अध्ययन कर सत्य की खोज का प्रयास किया जाता है। ज्ञान की उत्पत्ति के संबंध में इसमें तीन विद्धान्तों का उदय हुआ है -

1. बुद्धिवाद **(Relationalism)**. इसके प्रवर्तक डेकॉर्ट Descartes) थे। इस विचारधारा के अनुयायियों का मानना है कि ज्ञान-प्राप्ति का एकमात्र साधन बुद्धि है। यथार्थ ज्ञान सार्वभौमिक व अनिवार्य होता है और इसकी खोज बुद्धि द्वारा ही संभव है।

2. अनुभववाद **(Empiricism)** . इसके प्रवर्तक जॉन लॉक (John Lock) थे। इनका कहना है कि ज्ञान प्राप्ति का एकमात्र साधन अनुभव है। जन्म के समय बालक का मस्तिष्क कोरे कागज के समान होता है। इसमें बुद्धि का कोई स्थान नहीं है। अनुभव प्राप्त करने के दो साधन हैं:-

अ. संवेदना (Sensation

ब. विचार प्रत्यावर्तन (Reflection)

3. आलोचनावाद **(Critical Theory)**. उपरोक्त दोनों की आलोचना के फलस्वरूप प्रसिद्ध दार्शनिक काण्ट ने इसका प्रतिपादन किया। उन्होंने कहा कि बुद्धिवाद व अनुभववाद स्वयं में अपूर्ण हैं। इन दोनों के द्वारा स्वीकार किये गये तथ्य तो सही हैं परन्तु दोनों के द्वारा अस्वीकार किये गये तथ्य गलत हैं। हम न तो बुद्धि की सहायता से ज्ञान की व्याख्या कर सकते हैं और न ही अनुभव की सहायता से। हमें इन दोनों के सहयोग की आवश्यकता है। इन दोनों विचारधाराओं का समन्वय करते हुए काण्ट ने ज्ञान के दो पक्ष बताए हैं:-

अ. ज्ञान की विषय वस्तु (Subject-matter of Knowledge)

ब. ज्ञान का रूप (Form of Knowledge)

ज्ञान की विषय-वस्तु को हम सिर्फ अनुभव के द्वारा ही प्राप्त कर सकते हैं व ज्ञान के रूप की यथार्थता हम बुद्धि के द्वारा ही परख सकते हैं।

3. मूल्य मीमांसा **(Axiology)**:- मूल्य मीमांसा जिसे अंग्रेजी में Axiology कहते हैं, दो शब्दों का मिश्रण है:-

Axiology / एक्सिऑस (Axios) (मूल्य Value) + लॉजी (Logy) (विज्ञान Science)

मूल्य मीमांसा के अंतर्गत जीवन के बौद्धिक, नैतिक, सौन्दर्यपरक व आध्यात्मिक मूल्यों की चर्चा की जाती है। इसमें इस प्रश्न के प्रत्युत्तर की खोज की जाती है कि इस संसार में अच्छा क्या है।

मूल्य विषयगत होते हैं। इनकी व्याख्या नहीं की जा सकती है वरन् इनकी अनुभूति की जा सकती है। मूल्य दो प्रकार के होते हैं:- 1. आंतरिक मूल्य (Intrinsic Value) 2. बाह्य मूल्य (Extrinsic Value)। यही मूल्य हमारी विभिन्न प्रकार की गतिविधियों का निर्धारण व मूल्यांकन करते हैं।

मूल्य शास्त्र को मुख्यतः तीन भागों में विभक्त किया जाता है:-

1. तर्क शास्त्र

2. नीति शास्त्र

3. सौन्दर्य शास्त्र

1. तर्क शास्त्र - इसके अंतर्गत दर्शन का युक्तिपूर्ण एवं तर्कपूर्ण विवेचन किया जाता है। तर्क शास्त्र के अंतर्गत आगमन-निगमन विधियां अध्ययन के लिए प्रयुक्त की जाती हैं। इसके अंतर्गत चिंतन, कल्पना, तर्क की पद्धति इत्यादि के बारे में विचार किया जाता है। दर्शन की अध्ययन पद्धति का तर्कशास्त्र एक महत्वपूर्ण अंग है।

2. नीति शास्त्र - इसके अंतर्गत मानव के आचरण की विवेचना की जाती है। साथ ही उन लक्षणों को भी विचारोपरांत निश्चित किया जाता है जो मनुष्य के कर्म-अकर्म, शुभ-अशुभ, पाप-पुण्य और भद्रता-अभद्रता के अनुसार आचरण को आधार प्रदान करते हैं कि मनुष्य का आचरण क्या हो? और उसे कैसा आचरण करना चाहिए?

3. सौन्दर्य शास्त्र - इसके अंतर्गत सौन्दर्य, सौन्दर्य अनुभूति, सौन्दर्य के लक्षण एवं मापदण्ड क्या हैं इत्यादि प्रश्नों से संबंधित समस्याओं का गहन विवेचन किया जाता है।

अपनी उन्नति जानिए (CHECK YOUR PROGRESS)

प्र. 1 ऋग्वेद के दशम् मण्डल के कौन से सूक्त में हिरण्यगर्भ की स्तुति की गई है ?

प्र. 2 गीता का मुख्य संदेश क्या है ?

प्र. 3 गीता में किन तीन मार्गो की महिमा बताई गई है ?

प्र. 4 ‘‘मृत्यु के बाद कुछ नहीं बचता, केवल प्रत्यक्ष ही प्रमाण है।’’ यह कथन किसका है ?

प्र. 5 जैन दर्शन किन चार तत्वों के मिश्रण से भौतिक जगत को मानते हैं ?

भाग-तीन (PART- III)

1.5 दर्शन के कार्य (FUNCTIONS OF PHILOSOPHY)

दर्शन न के कार्यो पर दृष्टिपात करने पर हमें निम्नलिखित कार्य महत्वपूर्ण प्रतीत होते हैं:-

1. दर्शन व्यक्ति की जिज्ञासा की तृप्ति करके ज्ञान प्राप्त करने में सहायता प्रदान करता है।

2. यह ध्यान को केन्द्रित करने में व्यक्ति की सहायता करता है। सांसारिक इच्छाएं एवं इन्द्रियजन्य कामनाएं संयम प्राणायाम, धारणा द्वारा चित्तवष्त्तियों का निरोध करना संभव है और इस कार्य में दर्शन सहायता करता है।

3. यह शब्दों और अर्थो का विष्लेशण करके कार्य की सही दिशा निष्चित करता है।

4. यह वास्तविक सत्य की खोज करने का प्रयत्न करता है। विभिन्न विज्ञानों द्वारा प्राप्त सत्यों में अन्तर्विरोधों को यह दूर करता है।

5. यह मानव-जीवन के आदि-अंत पर विचार करके जीवन को सोद्देश्य बनाता है।

6. जीव, जगत्, सत्, चित्, आनन्द, आत्मन्, परमात्मन्, मनस् आदि से संम्बद्ध प्रश्नो का हल ढूंढने का यह प्रयत्न करता है।

7. जीवन की विभिन्नताओं और विसंगतियों को सामंजस्य में लाने का यह प्रयास करता है।

8. यह तथ्यों का मात्र संग्रह न करके उनमें व्याप्त संबंधों को देखता है और प्रत्येक अनुभवगम्य वस्तु की आत्मा को देखने का प्रयास करता है।

अपनी उन्नति जानिए (CHECK YOUR PROGRESS)

प्र. 1 ‘‘पदार्थो के यथार्थ स्वरूप् का ज्ञान ही दर्शन है।’’ यह परिभाषा किसकी है ?

प्र. 2 ‘‘ज्ञान का विज्ञान ही दर्शन हैं।’’ यह परिभाषा किसकी है ?

प्र. 3 ‘‘यथार्थता के स्वरूप् का तार्किक विवेचन ही दर्शन है।’’ यह परिभाषा किसकी है ?

प्र. 4 मूल्य शास्त्र को मुख्यतः कितने भागों में विभाजित किया जाता है ? उनके नाम लिखिए।

प्र. 5 सूत्र काल को दूसरे किस नाम से जाना जाता है ?

1.6 सारांश (SUMMARY)

दर्शन जीवन के प्रति दृष्टिकोण है। दर्शन का अर्थ है ‘दृश्यते अनेन इति दर्शनम्’ अर्थात् जिसके द्वारा देखा जाय। भारतीय ऋषियों ने जीवन, जगत्, सत्य एवं मूल्य को देखने का प्रयास किया है। उन्होंने चिन्तन, मनन एवं निदिध्यासन द्वारा कुछ निष्कर्ष निकाले हैं। इन निष्कर्षो को भिन्न-भिन्न दृष्टाओं ने भिन्न-भिन्न रीति से बताया है। अत्यन्त प्राचीन काल में वेदों के रूप में दार्शनिक विचारधारा का प्रारम्भ हुआ।

ऐतिहासिक दृष्टि से वैदिक युग भारतीय दर्शन का प्राचीनतम युग है। उस काल में प्राकृतिक साधनों की प्रचुरता एवं अल्प जनसंख्या के कारण भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति का कार्य सरल था। अतः तपोवनों में महान् आध्यात्मिक संस्कृति का उदय हो सका। ऋग्वेद हमें यह संदेश देता है कि भौतिक वातावरण से दूर रहकर और अन्तर्मुखी प्रकृति अपनाने से ही परम शान्ति मिल सकती है।

अथर्ववेद लौकिक सामग्री से भरा हुआ है और सामवेद में संगीत प्रमुख तत्व है। यजुर्वेद में कर्मकाण्ड की प्रधानता है। वैदिक साहित्य मूलरूपेण ऋग्वेद का विकसित रूप है और परवर्ती संहिताओं, ब्राह्मणों, आरण्यकों एवं उपनिषदों का काल उत्तर वैदिक काल के रूप में जाना जाता है। समग्र वैदिक वांड.मय परस्पर सम्बद्ध होते हुए भी वर्ण्यवस्तु में भिन्न होता गया है। पूर्व वैदिक काल की अपेक्षा उत्तर वैदिक काल में ब्रह्म की खोज एवं आत्म तत्व का अन्वेषण प्रमुख लक्ष्य था।

उपनिषदों के पश्चात् ब्राह्मण साहित्य का एक प्रमुख भाग सूत्र रूप में मिलता है। इसीलिए इस काल को सूत्रकाल कहा जा सकता है।

सूत्रकाल को शास्त्रीय युग भी कहा जा सकता है, क्योंकि इस काल में विभिन्न शास्त्रीय साहित्यों का निर्माण हुआ और उनके दर्शनों का उदय हुआ, जिसमें षड्दर्शनों की परम्परा विशेष रूप से उल्लेखनीय है। षड्दर्शनों में सांख्य योग, न्याय, वैशेषिक, पूर्व मीमांसा और उत्तर मीमांसा है।

सांख्य दर्शन जिस सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है, योग उसी का व्यावहारिक रूप प्रस्तुत करता है। अतः सांख्य योग दर्शन साथ-साथ चलते हैं। सांख्य का अर्थ है सम्यक् ख्याति का यथार्थ ज्ञान। कपिल की यह धारणा है कि प्रकृति और पुरूष दो स्वाधीन सत्ताएं हैं, जिनमें संयोग की क्षमता है और इसी संयोग से प्रकृति के गुणों का सामंजस्य टूटता है और सृष्टि का निर्माण होता है।

जैमिनि द्वारा प्रस्तुत पूर्व मीमांसा दर्शन पूर्णरूपेण वेदाश्रित है। यह धर्म एवं नीति-परायण अधिक है। ईश्वर को स्वीकार करते हुए भी पूर्व मीमांसक बहुदेववादी हैं। स्वर्ग, नरक, कर्म, नियम, पुनर्जन्म, आत्म की नित्यता, अनेक देवों की सत्ता में इनका विश्वास है। उत्तर मीमांसा को वेदान्त भी कहते हैं और यह वेदों के अंतिम भाग उपनिषदों पर आधारित हैं। इसमें बहुदेववाद का विरोध है। वेदान्त अनुयायियों की एक लम्बी श्रृंखला है जिसमें शंकर, रामानुज, मध्य, निम्बार्क, वल्लभ आदि प्रमुख हैं। वादरायण द्वारा प्रस्तुत ब्रह्मसूत्र पर ही मूल रूप से वेदान्त आधारित है। 'सर्व खलु इदं ब्रह्म' समग्र वेदान्त दर्शन का निचोड़ है। सृष्टि के मूल में एक अखण्ड, अनन्त, अनादि चेतन शक्ति है और समस्त सृष्टि उसी का आभास (शंकर) या परिणाम (रामानुज) हैं वेदान्त दर्शन पूर्णतः अध्यात्मवादी है।

1.7 शब्दावली (Glossary)

1. बुद्धिवाद **(Relationalism)**. ज्ञान-प्राप्ति का एकमात्र साधन बुद्धि है। यथार्थ ज्ञान सार्वभौमिक व अनिवार्य होता है और इसकी खोज बुद्धि द्वारा ही संभव है।

2. अनुभववाद **(Empiricism)**. ज्ञान प्राप्ति का एकमात्र साधन अनुभव है। जन्म के समय बालक का मस्तिष्क कोरे कागज के समान होता है। इसमें बुद्धि का कोई स्थान नहीं है।

3. आलोचनावाद **(Critical Theory)**. प्रसिद्ध दार्शनिक काण्ट ने इसका प्रतिपादन किया। हम न तो बुद्धि की सहायता से ज्ञान की व्याख्या कर सकते हैं और न ही अनुभव की सहायता से। हमें इन दोनों के सहयोग की आवश्यकता है।

1.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (ANSWERS OF PRACTICE QUESTIONS)

भाग-एक (PART- I)

उ. 1 भारतीय दर्शन का स्रोत वेद है।

उ. 2 चार्वाक, बौद्ध तथा जैन दर्शन वेदों को नहीं मानते।

उ. 3 षड्दर्शन।

.उ. 4 नास्तिक से हमारा अभिप्राय जो परलोक में विश्वास नहीं करता।

उ. 5 सनत्सुजात के अनुसार।

भाग-दो **(PART-II)**

उ. 1 दशम मण्डल के 121वें सूक्त में।

उ. 2 निष्काम कर्म है।

उ. 3 गीता में ज्ञान, भक्ति और कर्म तीन मार्ग की महिमा बताई गई है।

उ. 4 यह कथन चार्वाक दर्शन का है।

उ. 5 वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी-चार तत्व, जैन दर्शन।

भाग-तीन **(PART-III)**

उ. 1 प्लेटो की।

उ. 2 फिस्टो की।

उ. 3 डॉ. राधाकृष्णन की।

उ. 4 मूल्य शास्त्र को तीन भागों में- 1. तर्क शास्त्र, 2. नीति शास्त्र एवं 3. सौन्दर्य शास्त्र

उ. 5 सूत्रकाल को दूसरे शास्त्रीय नाम से भी जाना जाता है।

1.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची (References)

1. पाण्डे, (डॉ) रा. श. *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*. आगरा: अग्रवाल प्रकाशन.

2. सक्सेना, (डॉ) सरोज. *शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार*. आगरा: साहित्य प्रकाशन.

3. मित्तल, एम.एल. (2008). *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*. मेरठ: इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस.

4. शर्मा, रा. ना. व शर्मा, रा. कु. (2006). *शैक्षिक समाजशास्त्र*. नई दिल्ली: एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स.

5. सलैक्स, (डॉ) शी. मै. (2008). *शिक्षक के सामाजिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्षय*. नई दिल्ली: रजत प्रकाशन.

6. गुप्त, रा. बा. (1996). *भारतीय शिक्षा शास्त्र*. आगरा: रतन प्रकाशन मंदिर.

1.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री (USEFUL BOOKS)

1. पाण्डे, (डॉ) रा. श. *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*. आगरा: अग्रवाल प्रकाशन.

2. सक्सेना, (डॉ) स. *शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार*. आगरा: साहित्य प्रकाशन.

3. मित्तल, एम.एल. (2008). *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*. मेरठ: इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस.

4. शर्मा, रा. ना. व शर्मा, रा. कु. (2006). *शैक्षिक समाजशास्त्र*. नई दिल्ली: एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स.

डिस्ट्रीब्यूटर्स।

5. सलैक्स, (डॉ) शी. मै. (2008). *शिक्षा के सामाजिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्षय*. नई दिल्ली: रजत प्रकाशन.

6. गुप्त, रा. बा. (1996). *भारतीय शिक्षा शास्त्र*. आगरा: रतन प्रकाशन मंदिर.

1.11 निबन्धात्मक प्रश्न (ESSAY TYPE QUESTIONS)

प्र. 1. दर्शन का अर्थ बताईये तथा दर्शन की प्रकृति की विस्तार से व्याख्या कीजिए।

प्र. 2. दर्शन की परिभाषाएं लिखिए तथा दर्शन की उपयोगिता लिखिए।

प्र. 3. दर्शन की आवश्यकता तथा क्षेत्र का विस्तृत वर्णन कीजिए।

प्र. 4. दर्शन क्या है ? इसके क्या उद्देश्य होने चाहिए ?

प्र. 5. भारतीय दर्शन की प्रमुख विशेषताएं लिखिए।

प्र. 6. शिक्षा दर्शन का क्षेत्र बताते हुए दर्शन की आवश्यकता की विवेचना कीजिए।

प्र. 7. मैसलो के सिद्धान्त की पदक्रमानुसार व्याख्या कीजिए।

प्र. 8. सीखना से आप क्या समझते हैं? सीखने के लिए किन परिस्थितियों का होना आावश्यक होता है?

इकाई - 02 शिक्षा और दर्शन में संबंध, शिक्षा दर्शन का अर्थ, सरोकार व क्षेत्र (THE RELATIONSHIP BETWEEN PHILOSOPHY AND EDUCATION, MEANING OF EDUCATION PHILOSOPHY, CONCERNS AND SCOPE)

2.1 प्रस्तावना (INTRODUCTION)
2.2 उद्देश्य (OBJECTIVES)
भाग-एक (PART- I)
2.3 शिक्षा और दर्शन के मध्य संबंध (RELATIONSHIP BETWEEN PHILOSOPHY AND EDUCATION)
अपनी उन्नति जानिए (Check your Progress)
भाग-दो (PART- II)
2.4 शिक्षा दर्शन का अर्थ (MEANING OF EDUCATION PHILOSOPHY)
2.4.1 शिक्षा दर्शन की परिभाषाएं (DEFFINITIONS OF EDUCATION PHILOSOPHY)
अपनी उन्नति जानिए (Check your progress)
भाग-तीन (PART- III)
2.5 शिक्षा दर्शन का सरोकार व क्षेत्र (CONCERNS AND SCOPE OF EDUCATION PHILOSOPHY) अपनी उन्नति जानिए (Check your progress)
2.6 सारांश (Summary)
2.7 शब्दावली (Glossary)
2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (ANSWERS OF PRACTICE QUESTIONS)
2.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची (References)
2.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री (USEFUL BOOKS)
2.11 निबन्धात्मक प्रश्न (ESSAY TYPE QUESTIONS)

2.1 प्रस्तावना (INTRODUCTION)

शिक्षा और दर्शन में घनिष्ठ संबंध है, क्योंकि शिक्षा के निश्चित उद्देश्य होते हैं और उद्देश्य दर्शन की सहायता से विकसित किये जाते हैं। अतः शिक्षा और दर्शन का आपसी संबंध उद्देश्यों के संदर्भ में स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। लेकिन शिक्षा और दर्शन की प्रक्रिया में अंतर है। दर्शन का कार्य निहित सत्य पर प्रकाश डालता है। इस निहित सत्य को जान लेने पर व्यक्ति समस्या को हल कर लेता है। लेकिन शिक्षा ही व्यक्ति को वह क्षमता प्रदान करती है जिसके द्वारा वह समस्या में निहित सत्य का ज्ञान प्राप्त करता है। दूसरे शब्दों में, बिना सम्यक् शिक्षा के व्यक्ति दर्शन को नहीं समझ पाता। उदाहरण के लिए हम किसी अनपढ़ आदमी को लें। अनपढ़ आदमी का एक जीवन दर्शन हो सकता है, लेकिन उस दर्शन का आधार क्या है, उद्देश्य क्या है, इन सब बातों को वह अनपढ़ मनुष्य समझ तथा समझा नहीं पाता। इस प्रकार हम देखते हैं कि दर्शन में विचारों की प्रधानता है और शिक्षा में कार्य-प्रणाली की। यदि दर्शन साध्य है तो शिक्षा साधन।

दर्शन में ऐसी समस्याओं पर प्रकाश डाला जाता है, जो जीवन का आधार हैं। उदाहरण के लिए, प्रश्न किया जा सकता है कि व्यक्ति क्या है? वह पश्चिमी विचारधारा के अनुसार मर्कट का विकसित स्वरूप है अथवा भारतीय दर्शन के अनुसार दैविक है। प्रत्येक समाज का अपना दर्शन होता है, क्योंकि कोई दो समाज एक से नहीं हैं और इस प्रकार सामाजिक जीवन की भिन्नता के कारण अनेक प्रकार के दर्शन भी पाये जाते हैं। जैसा कि ऊपर बताया गया, भारतीय विचारधारा सामान्य रूप से व्यक्ति में ईश्वर का अंश मानती है। दूसरे शब्दों में, मनुष्य की आत्मा परमात्मा का अंश है। इस प्रकार मनुष्य दैविक है न कि जैविक।

2.2 उद्देश्य (OBJECTIVES)

1. शिक्षा और दर्शन के मध्य संबंधों को समझ सकेंगे।
2. शिक्षा दर्शन का अर्थ व परिभाषाओं को जान सकेंगे।
3. शिक्षा दर्शन के सरोकार व क्षेत्र को समझ सकेंगे।
4. शिक्षा दर्शन को विस्तृत रूप से समझ सकेंगे।
5. शिक्षा दर्शन के ज्ञान का अपने जीवन में उपयोग कर सकेंगे।

2.3 शिक्षा और दर्शन के मध्य संबंध (RELATION BETWEEN EDUCATION & PHILOSOPHY)

शिक्षा और दर्शन अन्योन्याश्रित हैं:- शिक्षा और दर्शन दोनों ही एक-दूसरे पर निर्भर हैं। दर्शन शिक्षा को प्रभावित करता है और शिक्षा दार्शनिक दृष्टिकोणों पर नियंत्रण रखती है तथा उसकी कमियों को दूर करती है। दर्शन और शिक्षा दोनों का ही जीवन से घनिष्ठ संबंध है। जीवन को उन्नता बनाने के लिए दोनों की आवश्यकता है। शिक्षा के प्रत्येक क्षेत्र में दर्शन अपना योगदान देता है और शिक्षा दर्शन के सिद्धान्तों को व्यावहारिक रूप देती है, वरना वे कल्पना मात्र ही रह जाते हैं।

फिकटे:- ''दर्शन की सहायता के बिना शिक्षा के उद्देश्य कभी भी पूर्ण रूप से स्पष्ट नहीं हो सकते हैं।''

1. शैक्षिक सिद्धान्त: दार्शनिक विचारों के व्यावहारिक प्रयोग:- प्रत्येक जीवन दर्शन का एक निश्चित विश्वास पर आधारित होता है। यदि विश्वास जीवन के लिए उपयोगी है, तो उसका शैक्षिक महत्व अवश्य होना चाहिए। अतः दर्शन को शिक्षा से अलग नहीं किया जा सकता। वस्तुतः दोनों में घनिष्ठ संबंध है।

2. दर्शन और शिक्षा-एक दूसरे के दो पहलू:- हार्न के अनुसार शिक्षा के सब तथ्यों को एक साथ रखने से दो बातों का ज्ञान होता है:-

i. शिक्षा वैश्विक प्रक्रिया है।
ii. शिक्षा, सामयिक प्रक्रिया है। ये ऐसी प्रक्रियायें इसलिए हैं, क्योंकि ये व्यक्ति को अपने-जीवन काल को विश्व और समय के अनुसार पूर्ण बनाने का प्रयास करती हैं।

3. शिक्षा के उद्देश्यों पर दर्शन का प्रभाव:- दार्शनिक व्यक्ति के जीवन का लक्ष्य निर्धारित करते हैं और शिक्षक उस लक्ष्य तक पहुंचने की क्षमता प्रदान करते हैं। प्राचीन शिक्षा, मध्यकालीन शिक्षा और शिक्षक उस लक्ष्य तक पहुंचने की क्षमता प्रदान करते हैं। प्राचीन शिक्षा, मध्यकालीन शिक्षा और वर्तमान शिक्षा के स्वरूप पर दृष्टिपात करने से यह बात और अधिक साफ हो जाती है।

4. शिक्षा के पाठ्यक्रम पर दर्शन का प्रभाव:- पाठ्यक्रम में उन्हीं विषयों को स्थान दिया जाता है जो उन विचारधाराओं के पोषक हों, उन आदर्शो की प्राप्ति, तथा उन आकांक्षाओं और आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक हों। उदाहरण के लिए भारत में प्राचीन काल में आदर्शवाद और धार्मिक विचारधारा को प्रधानता प्राप्त थी और उसके अनुसार शिक्षा का उद्देश्य आध्यात्मिक उन्नति करना

था, इस उद्देश्य को ध्यान में रखकर पाठ्यक्रम में वेद, उपनिषद आदि धर्मग्रन्थों को प्रमुख स्थान दिया गया था।

5. शिक्षण विधियों पर दर्शन का प्रभाव:- शिक्षण विधियों ही वह माध्यम हैं जिनके द्वारा छात्र और विषय सामग्री के बीच संबंध स्थापित होता है। इसके परिणाम स्वरूप ही छात्रों में उचित दृष्टिकोण का निर्माण होता है और शिक्षा प्रभावकारी होती है। दर्शन, तर्क एवं आलोचना करके शिक्षा विधियों के गुणों, दोषों की खोजबीन करता है और अपना सुझाव प्रस्तुत करता है एवं जीवन लक्ष्य के अनुकूल नूतन शिक्षण विधियों का प्रतिपादन करता है। जैसे-किंडरगार्टेन डाल्टन, मान्टेसरी, प्रोजेक्ट विधियों आदि।

6. शिक्षक पर दर्शन का प्रभाव:- शिक्षा के अनेक अंगों पर उद्देश्य, पाठ्यक्रम, शिक्षण विधियों, अनुशासन आदि द्वारा दर्शन का बहुत प्रभाव पड़ता है और इनका संचालक शिक्षक ही होता है। अतः उनमें निहित दार्शनिक विचारधाराओं का प्रभाव शिक्षक पर भी पड़ता है। उनके अन्तर्निहित दर्शन को समझे बिना शिक्षक उनका समुचित लाभ नहीं उठा सकता और न ही शिक्षा को प्रभावशाली बना सकता है। इस प्रकार शिक्षण कार्य में दर्शन का अत्यधिक प्रभाव होता है। शिक्षण कार्य में दर्शन शिक्षक को बहुत सहयोग प्रदान करता है।

7. पाठ्यक्रम-पुस्तकों पर दर्शन का प्रभाव:- पुस्तकों का चयन करते समय अथवा पाठ्य-पुस्तकों की रचना करते समय हमें यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि उनमें जीवन के आदर्शो, भावनाओं और दार्शनिक विचारधाराओं को प्रधानता दी गई हो। पाठ्य-पुस्तकों के चुनाव एवं रचनाओं में आदर्शो तथा सिद्धान्तों की उतनी ही आवश्यकता है, जितनी पाठ्यक्रम के निर्धारण में। अतः पाठ्य वस्तु के चुनाव में और पाठ्य पुस्तकों की रचना में समकालीन विचारों एवं आदर्शो को आधार बनाया जाता है।

अपनी उन्नति जानिए (Check your progress)

प्र. 1 ''दर्शन की सहायता के बिना शिक्षा के उद्देश्य कभी भी पूर्ण रूप से स्पष्ट नहीं हो सकते।'' यह परिभाषा किसकी है।

प्र. 2 ''शिक्षा दर्शन का क्रियात्मक पहलू है। यह दार्शनिक विश्वास का सक्रिय पहलू तथा जीवन के आदर्शो को वास्तविक रूप देने का क्रियात्मक साधन है।'' यह परिभाषा किसकी है।

प्र. 3 ''जो शिक्षक दर्शन की उपेक्षा करते हैं, उन्हें अपने कार्य को प्रभावहीन बना डालने के रूप में इस उपेक्षा का दण्ड भुगतना पड़ता है।'' यह कथन किसका है -

(I) महात्मा गांधी (II) आर.आर. रस्क (III) आचार्य बिनोवा भावे (IV) जेन्टाइल

प्र. 4 ‘‘दर्शन और शिक्षा को एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।’’ किसने कहा है -

(I) डी.वी. (II) फिस्टे (III) एडम्स (IV) रॉस

भाग-दो (PART- II)

2.4 शिक्षा दर्शन का अर्थ (MEANING OF EDUCATION PHILOSOPHY)

प्राचीन काल में किसी भी प्रकार के चिन्तन को दर्शन कहा जाता था, परन्तु जैसे-जैसे ज्ञान के क्षेत्र में विकास हुआ, वैसे-वैसे हमने उसे अलग-अलग अनुशासनों (विषयों) में विभाजित करना प्रारम्भ किया। जैसे-मानव शास्त्र, धर्मशास्त्र, चिकित्सा शास्त्र आदि। ज्ञान की उस शाखा को जिसमें अंतिम सत्य (Ultimate Reality) की खोज की जाती है, उसे दर्शन शास्त्र कहा जाता है।

सर जॉन एडम्स (Sir John Adams) का मत है- ‘‘शिक्षा, दर्शन का क्रियात्मक पहलू है। यह दार्शनिक विश्वास का सक्रिय पहलू तथा जीवन के आदर्शो को वास्तविक रूप देने का क्रियात्मक साधन है।’’ सामान्यतः शिक्षा वह प्रभाव है, जो किसी प्रबल विश्वास से युक्त व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति पर इस ध्येय से डाला जाता है कि दूसरा व्यक्ति भी उसी विश्वास को ग्रहण कर ले। एडम्स ने शिक्षा-विषयक के अनेक विश्लेषण में अधोलिखित बातें रखी हैं:-

यह प्रक्रिया केवल चेतनशील (Conscious) ही नहीं, वरन् आयोजित (Deliberate) भी है। शिक्षक या गुरू के मन में स्पष्ट रूप से यह आशय होता है कि वह शिष्य के विकास को सुधारे।

1.शिक्षा एक द्विमुखी प्रक्रिया है, जिसमें एक व्यक्तित्व दूसरे व्यक्तित्व के विकास में सुधार करने के लिए उस पर प्रभाव डालता है।

2.शिक्षा के विकास को सुधारने के दो साधन हैं:

(क) शिक्षक के व्यक्तित्व का शिष्य के व्यक्तित्व पर सीधा प्रभाव डालना

(ख) ज्ञान के विभिन्न रूपों का प्रयोग।

शिष्य के स्वभाव में सुधार किस दिशा में होना चाहिए ? सच्ची शिक्षा कौन सी है ? शिक्षक को किन मूल्यों (Values) की दिशा में प्रभाव डालना चाहिए ? आदि मूलभूत प्रश्नों का कोई सर्वमान्य उत्तर नहीं है, क्योंकि शिक्षा संबंधी प्रश्न जीवन के आदर्शो से जुड़े हुए हैं। जब तक ये आदर्श पृथक्-पृथक् हैं, तब तक शिक्षा के इन मूलभूत प्रश्नों का उत्तर भी पृथक्-पृथक् होगा। अतः हम कह सकते हैं कि शिक्षा, दर्शन पर आधारित है और दार्शनिक सिद्धान्तों को व्यावहारिक रूप प्रदान करती है। यहां

यह बात ध्यान देने योग्य है कि जो व्यक्ति वस्तुतः दार्शनिक है, वह स्वभावतः शिक्षाशास्त्री भी बन जाता है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि महान दार्शनिक महान शिक्षाशास्त्री भी हुए हैं।

डेन्डरसन के विचार में:- ''शिक्षा-दर्शन, शिक्षा की समस्याओं के अध्ययन में दर्शन का प्रयोग है।''

शिक्षा दर्शन क्या है ? शिक्षा-दर्शन के अर्थ को स्पष्ट करते हुए कर्निघम (Cunningham) ने लिखा है:- '' प्रथम, दर्शन 'सभी वस्तुओं का विज्ञान है', इस प्रकार शिक्षा-दर्शन, शिक्षा की समस्याओं को अपने सभी मुख्य पक्षों में देखता है। द्वितीय, दर्शन सभी वस्तुओं को 'अंतिम तर्को एवं कारणों के माध्यम से' जानने का विज्ञान है। इसलिए भी, शिक्षा-दर्शन शिक्षा के क्षेत्र में गहनतर समस्याओं का समग्र रूप में अध्ययन करता है और शिक्षा-विज्ञान के लिए उन समस्याओं को अध्ययन के लिए छोड़ देता है, जो तात्कालिक हैं तथा जिनका वैज्ञानिक विधि से सरलतापूर्वक अध्ययन किया जा सकता है, उदाहरणार्थ-छात्र-योग्यता के मापन की समस्या।''

2.4.1 दर्शन की परिभाषाएं (DEFFINITIONS OF PHILOSOPHY)

दर्शन की निम्नलिखित परिभाषाएं हैं:-

(1) ''दर्शन अनुभव के विषय में निष्कर्षो का समूह न होकर मूल रूप से अनुभव के प्रति एक दृष्टिकोण या पद्धति है।'' -ब्राइटमैन

(2) ''निष्कर्षो की विशिष्ट अन्तर्वस्तु नहीं बल्कि उन पर पहुंचने की प्रेरणा और विधि ही उन्हें दार्शनिक कहलाने योग्य बनाती है।'' -बेरेट

(3) ''यदि मुझे अपने उत्तर को एक पंक्ति तक सीमित करना है तो मुझे यह कहना चाहिए कि दर्शन समीक्षा का एक सामान्य सिद्धान्त है।'' -डुकासे

(4) ''विज्ञान के समान दर्शन में भी व्यवस्थित चिन्तन के परिणामस्वरूप पहुंचे हुए सिद्धान्त और अन्र्तदृष्टि होते हैं।'' -लेटन

(5) ''दर्शन प्रत्येक वस्तु से संबंधित है, वह एक सार्वभौम विज्ञान है।'' -हरबर्ट स्पेन्सर

(6) ''दर्शन का कार्य ज्ञान के विभिन्न साधनों द्वारा उपलब्ध सामग्री को, कुछ भी न छोड़ते हुए व्यवस्थित करना और उनको एक सत्य, एक सर्वोच्च, सार्वभौम सद्वस्तु से समुचित संबंध में रखना है।'' -श्री अरविन्द

(7) ''हमारा विषय 'विज्ञानों का संकलन' जैसे कि ज्ञान का सिद्धान्त, तर्कशास्त्र, सृष्टिशास्त्र, नीतिशास्त्र और सौन्दर्यशास्त्र, तथा साथ ही एक समुचित सर्वेक्षण भी है।'' -सैलर्स

दर्शन की उपरोक्त परिभाषाओं से ज्ञात होता है हि जहां कुछ दार्शनिकों ने समीक्षात्मक दर्शन को ही दर्शन माना है, वहीं दूसरी ओर कुछ दार्शनिक केवल समन्वयात्मक दर्शन को ही एकमात्र दर्शन मानते हैं। वास्तव में ये दोनों ही मत एकांगी हैं। क्योंकि दर्शन का कार्य समीक्षात्मक के साथ-साथ समन्वयात्मक भी है।

अपनी उन्नति जानिए (CHECK YOUR PROGRESS)

प्र. 1 ‘‘दर्शन शिक्षा का सामान्य सिद्धान्त ही है।’ यह कथन किसका है ?

A . रसेल B. डी.वी. C. रूसो D. सुकरात

प्र. 2 सर जॉन एडम्स कहा करते थे:-

(A) शिक्षा दर्शन का गत्यात्मक पक्ष है

(B) शिक्षा और दर्शन का कोई संबंध नहीं है

प्र. 3 ‘‘शिक्षा एक द्विध्रुवीय प्रक्रिया के रूप में है।’’ यह कथन है -

(A) रायवर्न (B) एडिसन (C) जॉन एडम (D) काण्ट

प्र. 4 ‘‘शिक्षा एक त्रिध्रुवीय प्रक्रिया के रूप में है।’’ यह कथन है -

(A) रायवर्न (B) एडिसन (C) जॉन एडम (D) काण्ट

प्र. 5 भारत का संविधान कब लागू हुआ -

भाग-तीन (PART- III)

2.5 शिक्षा दर्शन के सरोकार व क्षेत्र (CONCERNS AND SCOPE OF EDUCATION PHILOSOPHY)

शिक्षा-दर्शन शिक्षा के सभी पहलुओं पर विचार करता है। शिक्षा का क्या उद्देश्य हो ? उस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए क्या पाठ्यक्रम बनाया जाए तथा उद्देश्य की प्राप्ति के लिए पढ़ाने की विधि क्या हो ? इन सब बातों पर शिक्षा-दर्शन में विचार होता है। प्रारम्भ में ज्ञान को विभिन्न शाखाओं में नहीं बांटा गया था। उस समय ज्ञान की सभी शाखाएं दर्शन ही थीं। थेल्स पश्चिमी-दर्शन का जन्मदाता था, किन्तु उसने वैज्ञानिक पद्धति अपनाई थी। अरस्तू उच्चकोटि का दार्शनिक था, किन्तु वह विज्ञान का जन्मदाता माना जाता है। गणित ने सबसे पहले अपने को दर्शन से पृथक कर लिया। गणित में निश्चितता रहती है। इसके प्रश्न भी निश्चित होते हैं और उत्तर भी। जो भी विद्या विज्ञान बनने की ओर

उन्मुख होती है, सर्वप्रथम वह गणित का आश्रय लेती है और गणित किसका आश्रय लेता है ? गणित दर्शन की मनन पद्धति पर आधारित है। दार्शनिक और गणित की पद्धति एक-सी होती है। अन्तर इतना ही है कि गणित कुछ स्वयं सिद्धियां मानकर चलता है, जिनको प्रमाणित करने की उसे आवश्यकता नहीं होती, दर्शन ऐसी किसी स्वयं-सिद्धि को स्वीकार नहीं करता। गणित में हम यह मान लेते हैं कि कुछ धारणाएं स्वयं-सिद्ध हैं।

शिक्षण-विधियों के क्षेत्र में विज्ञान तो योगदान देता ही है, शिक्षा-दर्शन का योगदान भी कम नहीं है। शिक्षण-विधि गणित का कोई सूत्र नहीं है, जिससे कह दिया जाए इस पग के बाद यह पग उठाया जायेगा। यह तो शैक्षिक उद्देश्य, पाठ्यक्रम एवं शिक्षार्थी से प्रभावित होगा, इसीलिए शिक्षण-विधि को भी शिक्षा-दर्शन का क्षेत्र बनाया जाता है।

पाठ्यक्रम का निर्धारण भी शिक्षा-दर्शन का क्षेत्र है। दार्शनिक किसी भी ज्ञान को अनादर की दृष्टि से नहीं देखता। प्लेटो ने तो दार्शनिक की परिभाषा ही यह बताई है कि जो व्यक्ति प्रत्येक प्रकार के ज्ञान में रूचि रखता है और सदा सीखने के लिए उत्सुक रहता है, किन्तु कभी भी सीखने से संतुष्ट नहीं होता, उसे दार्शनिक कहा जा सकता है। हम आजकल बौद्धिक विकास पर अधिक बल दे रहे हैं।

आज शिक्षा-दर्शन का क्षेत्र बहुत विस्तृत हो गया है। इसके अंतर्गत शिक्षा संबंधी समस्त तत्वों एवं समस्याओं जैसे-शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यक्रम, शिक्षण विधियां, शिक्षक, शिक्षालय संगठन और अनुशासन आदि का अध्ययन करते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं है जो शिक्षा से अनछुआ रह गया है।

1. शिक्षा की प्रक्रिया में सर्वप्रथम जो बात हमारे सामने आती है, वह है शिक्षा के उद्देश्यों का निर्धारण करना। अतः शिक्षा-दर्शन शिक्षा के उद्देश्यों का निर्धारण करते समय अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

2. केवल पाठ्यक्रम को बना लेने मात्र से ही कार्य का अन्त नहीं हो जाता। पाठ्यक्रम का कार्यान्वयन करना और उसे सफल बनाना भी आवश्यक होता है। पाठ्यक्रम को संचालित करने वाला शिक्षक होता है और इसकी सफलता शिक्षण-विधियों पर ध्यान देकर उपयोगी शिक्षण-विधि के प्रयोग में सहायता देता है।

3. शिक्षा-दर्शन सामाजिक प्रगति और सांस्कृतिक उपलब्धियों आदि के क्षेत्र में भी गहन अध्ययन और विचार करता है और उसी के अनुरूप शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यक्रम एवं शिक्षण विधियां आदि निर्धारित करता है।

4. शिक्षा-दर्शन का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण क्षेत्र विद्यालय संगठन एवं अनुशासन आदि की समस्या का अध्ययन करना है। विद्यालय में अनुशासन का स्वरूप क्या हो अथवा अनुशासनहीनता को किस प्रकार दूर किया जाए आदि विषयों का अध्ययन शिक्षा-दर्शन में ही किया जाता है।

अपनी उन्नति जानिए (CHECK YOUR PROGRESS)

प्र. 1 रिक्त स्थान की पूर्ति करें:-

शिक्षा दर्शन, दशर्न शास्त्र और ....दोनों विषयों का संयुक्त रूप है।

प्र. 2 रिक्त स्थान की पूर्ति करें:-

शिक्षा दर्शन प्रयोगों पर आधारित नहीं अपितु................शास्त्र है।

प्र. 3 रिक्त स्थान की पूर्ति करें:-

शिक्षा दर्शन को अन्तर अनुशासन की क्षेणी में रखा गया है, क्योंकि यह शिक्षा की समस्याओं का हल..........से ढूंढता है।

प्र. 4 ‘‘यदि मुझे अपने उत्तर को एक पंक्ति तक सीमित करना है तो मुझे यह कहना चाहिए कि दर्शन समीक्षा का एक सामान्य सिद्धान्त है।’’ यह कथन किसका है ?

प्र. 5 जो भी विधा विज्ञान बनने की ओर उन्मुख होती है, सर्वप्रथम वह गणित का आश्रय लेती है। गणित किस पर आधारित है ?

2.6 सारांश (SUMMARY)

शिक्षा-दर्शन के क्षेत्र और मुख्य समस्याओं के उपर्युक्त विवेचन से शिक्षा दर्शन का महत्व स्पष्ट होता है। शिक्षा-दर्शन हमें शिक्षा के लक्ष्यों से परिचित कराता है और इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के साधनों की भी समीक्षा करता है। आधुनिक काल में जबकि यह भली प्रकार अनुभव किया जा सकता है कि किसी भी राष्ट्र की उन्नति के लिए उसके बालक-बालिकाओं का समुचित विकास आवश्यक है, शिक्षा-दर्शन की अत्यधिक आवश्यकता है, अन्यथा शिक्षा की प्रक्रिया में मूलभूत गलतियां होने की संभावना है। कुछ लोग यह कह सकते हैं कि प्रत्येक शिक्षक स्वभावतया ही अपना विशिष्ट शिक्षा-दर्शन रखता है और इस सामान्य ज्ञान के अतिरिक्त उसे किसी शिक्षा-दर्शन की आवश्यकता नहीं है।

शैक्षिक समस्याओं को दार्शनिक विधि से सुलझाने का प्रयास शिक्षा-दर्शन है। दार्शनिक विधि शिक्षा-दर्शन की ही विशेषता है। यह विधि दो प्रकार से कार्य करती है, एक तो समन्वयात्मक और दूसरी समीक्षात्मक। समन्वयात्मक रूप में यह विभिन्न विज्ञानों के द्वारा मिले तथ्यों और दार्शनिक

मूल्यों के समन्वय से एक पूर्ण रूप उपस्थित करती है, जिसके प्रकाश में किसी भी समस्या के विभिन्न पहलुओं को आसानी से समझा जा सकता है। समीक्षात्मक रूप में शिक्षा-दर्शन शिक्षा की प्रक्रिया में प्रयोग किये जाने वाले विभिन्न प्रत्ययों, प्रणालियों इत्यादि की समीक्षा करता है। अस्तु, जो दर्शन स्वभावतया प्रत्येक शिक्षक के मस्तिष्क में विकसित हो जाता है, वह सच्चा शिक्षा-दर्शन नहीं है, क्योंकि वह समन्वयात्मक और समीक्षात्मक नहीं होता। शिक्षा-दर्शन में दार्शनिक विवेचन के लिए विषय-सामग्री, सामान्य ज्ञान, विज्ञान, कला, धर्म और आध्यात्मिक अनुभवों से मिलती है। शिक्षा-दार्शनिक इन सबको एक समन्वित पूर्ण के रूप में देखता है। ठोस शिक्षा-दर्शन मनोवैज्ञानिक और समाजशास्त्रीय तथ्यों पर आधारित होता है। उसमें पाठ्यक्रम को निश्चित करने से पूर्व यह पता लगाया जाता है कि किसी बालक को क्या सिखाया जा सकता है।

2.7 शब्दावली (Glossary)

दार्शनिक विधि .दार्शनिक विधि शिक्षा-दर्शन की एक विशेषता है। यह विधि दो प्रकार से कार्य करती है, एक तो समन्वयात्मक और दूसरी समीक्षात्मक।

ठोस शिक्षा-दर्शन. ठोस शिक्षा-दर्शन मनोवैज्ञानिक और समाजशास्त्रीय तथ्यों पर आधारित होता है। उसमें पाठ्यक्रम को निश्चित करने से पूर्व यह पता लगाया जाता है कि किसी बालक को क्या सिखाया जा सकता है।

2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (ANSWERS OF PRACTICE QUESTIONS)

भाग-एक (PART- I)

उ. 1 यह परिभाषा फिक्टे की है।

उ. 2 यह परिभाषा जॉन एडम्स की है।

उ. 3 आर.आर. रस्क

उ. 4 रॉस

भाग-दो (PART-II)

उ. 1 (B) डी.वी.

उ. 2 (A) शिक्षा-दर्शन का गत्यात्मक पक्ष है

उ. 3 (C) जॉन एडम

उ. 4 (A) रायवर्न

उ. 5 भारत का संविधान 26 जनवरी 1950 को लागू हुआ था

भाग-तीन (PART-III)

उ. 1 शिक्षाशास्त्र

उ. 2 तर्क प्रधान

उ. 3 दार्शनिक दृष्टिकोण

उ. 4 डुकासे

उ. 5 गणित दर्शन की मनन पद्धति पर आधारित है

2.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची (References)

1. पाण्डे, (डॉ) रा. श. *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*. आगरा: अग्रवाल प्रकाशन.

2. सक्सेना, (डॉ) सरोज. *शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार*. आगरा: साहित्य प्रकाशन.

3. मित्तल, एम.एल. (2008). *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*. मेरठ: इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस.

4. शर्मा, रा. ना. व शर्मा, रा. कु. (2006). *शैक्षिक समाजशास्त्र*. नई दिल्ली: एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स.

5. सलैक्स, (डॉ) शी. मै. (2008). *शिक्षक के सामाजिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्षय*. नई दिल्ली: रजत प्रकाशन.

6. गुप्त, रा. बा. (1996). *भारतीय शिक्षा शास्त्र*. आगरा: रतन प्रकाशन मंदिर.

सिंह, (डॉ.) वी. प्र. (1999) *प्रतिनिधि राजनीतिक विचारक*. दिल्ली: नवप्रभात प्रिंटिंग प्रेस।

2.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री (USEFUL BOOKS)

1. पाण्डे, (डॉ) रा. श. *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*. आगरा: अग्रवाल प्रकाशन.

2. सक्सेना, (डॉ) सरोज. *शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार*. आगरा: साहित्य प्रकाशन.

3. मित्तल, एम.एल. (2008). *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*. मेरठ: इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस.

4. शर्मा, रा. ना. व शर्मा, रा. कु. (2006). *शैक्षिक समाजशास्त्र*. नई दिल्ली: एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स.

5. सलैक्स, (डॉ) शी. मै. (2008). *शिक्षक के सामाजिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्षय*. नई दिल्ली: रजत प्रकाशन.

6. गुप्त, रा. बा. (1996). *भारतीय शिक्षा शास्त्र*. आगरा: रतन प्रकाशन मंदिर.

सिंह, (डॉ.) वी. प्र. (1999). *प्रतिनिधि राजनीतिक विचारक*. दिल्ली: नवप्रभात प्रिंटिंग प्रेस।

2.11 निबन्धात्मक प्रश्न (ESSAY TYPE QUESTIONS)

प्र. 1. दर्शन की प्रमुख तीन शाखाओं का वर्णन कीजिए।

प्र. 2. वर्तमान समय में भारतीय समाज में शिक्षा-दर्शन की भूमिका पर संक्षित टिप्पणी लिखिए।

प्र. 3. शिक्षा-दर्शन के स्वरूप की समीक्षा कीजिए।

प्र. 4. शिक्षा-दर्शन का क्षेत्र क्या है ? स्पष्ट वर्णन कीजिए।

प्र. 5. शिक्षा-दर्शन की आवश्यकता की विवेचना कीजिए।

प्र. 6. शिक्षा-दर्शन क्या है ? उसका क्षेत्र और प्रकृति बतलाईये|

इकाई – 3: शिक्षक के लिए शिक्षा-दर्शन की उपादेयता एवं आधुनिक शिक्षा प्रणाली में इसका महत्व (Relevance of Educational Philosophy for Teacher and Its Significance for the System of Modern Education)

3.1 प्रस्तावना (INTRODUCTION)
3.2 उद्देश्य (OBJECTIVES)
भाग-एक (PART- I)
3.3 शिक्षक के लिए शिक्षा दर्शन की उपादेयता
अपनी उन्नति जानिए (CHECK YOUR PROGRESS)
भाग-दो (PART- II)
3.4 आधुनिक शिक्षा प्रणाली में शिक्षा दर्शन का महत्व
अपनी उन्नति जानिए (CHECK YOUR PROGRESS)
भाग-तीन (PART-III)
3.5 आधुनिक काल में शिक्षा दर्शन की आवश्यकता
अपनी उन्नति जानिए (CHECK YOUR PROGRESS)
3.6 सारांश (SUMMARY)
3.7 शब्दावली VOCABULARY)
3.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (ANSWERS OF PRACTICE QUESTIONS)
3.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची (REFERENCES)
3.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री (REFERENCES)
3.11 निबन्धात्मक प्रश्न (ESSAY TYPE QUESTIONS)

3.1 प्रस्तावना (INTRODUCTION)

प्रत्येक शिक्षक की यह कामना होती है कि वह अपने कार्य में सफलता प्राप्त करे। कार्य में सफलता, कार्य के स्वरूप पर निर्भर रहती है। शिक्षक अपने कार्य में तभी सफल होता है, जब वह

शिक्षण के स्वरूप को ठीक से पहचाने। शिक्षण का स्वरूप शिक्षा-दर्शन निश्चित करता है। अतः शिक्षक के लिए आवश्यक हो जाता है कि वह शिक्षा-दर्शन से परिचय प्राप्त करे।

साधारणतः प्रत्येक शिक्षक किसी एक विषय का अध्यापन करता है और विशिष्ट विषय का व्याख्याता, प्रवक्ता, प्राध्यापक आदि कहने में वह गर्व का अनुभव करता है। गर्व की अपेक्षा यह चिन्ता का विषय है कि अध्यापक को जीवन का शिक्षक होना चाहिए, न कि किसी विषय का। किसी विषय का पण्डित यदि जीवन की समस्याओं से अपरिचित है तो वह विषय का सच्चा ज्ञाता भी नहीं कहा जा सकता, शिक्षक तो दूर की बात है। शिक्षक का शिक्षकत्व इसी में है कि वह बालक के सम्पूर्ण जीवन के रहस्यों से परिचित हों और जीवन के सन्दर्भ में अपने विषय को सम्पूर्ण ज्ञान की एक शाखा के रूप में ही पढाये। तभी वह सफल शिक्षक हो सकता है, अन्यथा नहीं। जीवन के रहस्यों से एवं अनुभव की एकता से परिचय शिक्षा-दर्शन के अध्ययन से प्राप्त होता है। इसीलिए तो हरबर्ट स्पेन्सर ने कहा है कि ''सच्चा दार्शनिक ही सच्ची शिक्षा को व्यावहारिक बना सकता है।''

शिक्षक का कार्य केवल सैद्धान्तिक समस्याओं एवं उनके समाधान से परिचित होना ही नहीं है, वरन् व्यावहारिक समस्याओं का जानना भी आवश्यक है। शिक्षा-दर्शन व्यावहारिक समस्याओं एवं उनके समाधानों से परिचित कराता है। कुछ शास्त्र केवल तथ्यों का विश्लेषण करते हैं और वे वर्णनात्मक होते हैं। समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र आदि ऐसे ही विज्ञान हैं। किन्तु शिक्षाशास्त्र केवल वर्णनात्मक नहीं है। इसमें मूल्य या महत्व का प्रश्न बड़ा ही महत्वपूर्ण है। अतः यह एक आदर्शात्मक शास्त्र है। शिक्षा-दर्शन में शिक्षा के इसी रूप की व्याख्या की जाती है। अतः शिक्षक को इसका ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है।

सैद्धान्तिक विषयों में सिद्धान्तों की व्याख्या की जाती है। व्यावहारिक विषयों में आदर्श की स्थापना एवं उस आदर्श को प्राप्त करने के लिए साधनों एवं प्रयत्नों का भी वर्णन होता है। 'शिक्षा' पूर्णतः सैद्धान्तिक विषय नहीं है। शिक्षा का इतिहास शतशः सैद्धान्तिक है किन्तु शिक्षा-दर्शन ऐसा नहीं है। इसीलिए एडलर महोदय शिक्षा की समस्याओं को व्यावहारिक समस्या बताते हैं। शिक्षक को सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक दोनों प्रकार की समस्याओं एवं उनके समाधान से परिचित होना चाहिए। शिक्षा सिद्धान्तों का जनक शिक्षा-दर्शन ही है। शिक्षक के लिए शिक्षा-सिद्धान्तों का जानना आवश्यक है। अतः उसे शिक्षा-दर्शन की जानकारी अवश्य होनी चाहिए।

एक अच्छा शिक्षक अपनी शिक्षण विधि में परिस्थिति के अनुसार परिवर्तन करता रहता है। कोई भी पद्धति प्रत्येक परिस्थिति के उपयुक्त नहीं हो सकती। यदि ऐसा होता है तो विभिन्न शिक्षण-विधियों का निर्माण न होता। शिक्षण विधियों में परिवर्तन लाने में दर्शन बड़ा सहायक होता है। उद्देश्य के अनुसार विधि में परिवर्तन हो जाता है। शिक्षा-दर्शन से यदि शिक्षक परिचित है तो वह शिक्षण-पद्धति में अभीष्ट परिवर्तन करने में समर्थ हो जाता है। किसी एक शिक्षण-पद्धति का अन्ध भक्त बनना ठीक नहीं है।

बहुत से शिक्षक शिक्षा-समस्याओं से अनभिज्ञ रहते हैं। वे सोचते हैं- ''जैसा चल रहा है, वैसा ही ठीक है।'' परन्तु शिक्षा में समय के प्रवाह के साथ-साथ कुछ दोष आ जाते हैं। प्रत्येक प्रक्रिया में गुण-दोष रहते ही हैं। शिक्षा पर देश और काल का प्रभाव पड़ता है। कभी-कभी शिक्षा में परम्परागत प्रणाली ही बहुत दिनों तक चलती रहती है। इससे अनेक दोष उत्पन्न हो जाते हैं। शिक्षक को वर्तमान शिक्षा के गुण-दोषों से परिचित होना भी आवश्यक है। गुण-दोष का विवेचन करना शिक्षा-दर्शन का कार्य है, अतः शिक्षक के लिए इसका ज्ञान आवश्यक है।

3.2 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप-

1-शिक्षा और दर्शन का अर्थ समझ सकेंगे।

2-शिक्षक के लिए शिक्षा दर्शन की उपादेयता को समझ सकेंगे।

3-आधुनिक शिक्षा प्राणली में शिक्षा का महत्व समझ सकेंगे।

4-आधुनिक काल में शिक्षा दर्शन की आवश्यकता को समझ सकेंगे।

5-शिक्षा और दर्शन के बारे में विस्तार से समझ सकेंगे।

भाग-एक (PART-I)

3.3 शिक्षक के लिए शिक्षा दर्शन की उपादेयता -

जॉन डीवी के अनुसार, ''शिक्षा-दर्शन बने बनाये विचारों को व्यवहार की एक व्यवस्था पर लागू करना नहीं है, जिसमें पूर्णतया भिन्न उद्गम और प्रयोजन होते हैं। वह तो समकालीन सामाजिक जीवन की समस्याओं के विषय में सही मानसिक और नैतिक अभिवृत्तियों के निर्माण की समस्याओं से सम्बन्धित है। दर्शन की सबसे अधिक व्यापक परिभाषा जो दी जा सकती है, यह है "कि वह अधिकतम सामान्य रूप में शिक्षा का सिद्धान्त है।'' इस प्रकार शिक्षक शिक्षा-दर्शन से शिक्षण सिद्धान्त प्राप्त करता है। शिक्षण प्रणालियों का भी शिक्षक के शिक्षा-दर्शन से घनिष्ठ सम्बन्ध है।

स्पेंन्सर के अनुसार ''केवल एक सच्चा दार्शनिक ही शिक्षा को व्यावहारिक रूप दे सकता है। वह विद्यार्थियों से कैसे व्यवहार करता है और उन्हें अपनी बात कैसे समझाता है, यह इस बात पर निर्भर करता है कि शिक्षार्थी उसके लिए क्या है।''

विभिन्न दार्शनिक व्यवस्थाओं में मानव प्रकृति की भिन्न-भिन्न व्यवस्था की गई है। अस्तु, शिक्षक का शिक्षा-दर्शन शिक्षण प्रणाली के प्रति उसकी अभिवृत्ति निर्धारित करता है। यह ठीक है कि दर्शन

शिक्षक के विषय के ज्ञान की जगह नहीं ले सकता, किन्तु फिर भी वह शिक्षक के लिए नितान्त आवश्यक है। बर्ट्रेंड रसल के शब्दों में-''दर्शन शास्त्र का अध्ययन प्रश्नों के सुनिश्चित उत्तर प्राप्त करने के लिए नहीं किया जाना चाहिए, बल्कि स्वयं प्रश्नों के लिए किया जाना चाहिए। क्योंकि ये प्रश्न संभावनाओं की हमारी अवधारणा को व्यापक बनाते हैं। हमारी बौद्धिक कल्पना को समृद्ध करते हैं और हठवादी सुनिश्चितता को कम करते हैं, जो कि कल्पना के विरूद्ध मस्तिष्क को बन्द कर देती है, बल्कि सर्वोपरि क्योंकि विश्व की महानता जिस पर दर्शन विचार करता है मस्तिष्क को भी महान और विश्व से एकीकरण के योग्य बना देती है जो कि उसके सर्वोच्च शुभ का निर्माण करता है।''

शिक्षक के लिए शिक्षा दर्शन का सबसे बड़ा योगदान शिक्षा के लक्ष्यों और आदर्शो को लेकर है। शिक्षा दर्शन के बिना अध्यापन के कार्य में शिक्षक का कोई प्रयोजन नहीं होगा। चाहे हम वर्तमान शिक्षा में विज्ञान के योगदान की कितनी भी प्रशंसा क्यों न करें, यह कार्य विज्ञान के द्वारा संभव नहीं है। वास्तव में वर्तमान विज्ञान केवल साधन देता है जबकि साध्य दर्शन शास्त्र से मिलते हैं।

शिक्षा दर्शन शिक्षा के पाठ्यक्रम को निर्धारित करने में शिक्षक की सहायता करता है। दार्शनिक की व्याख्या करते हुए प्लेटो ने कहा था- ''वह जो कि प्रत्येक प्रकार के ज्ञान में रूचि रखता है और जो कि सीखने के लिए जिज्ञासु हैं और कभी भी संतुष्ट नहीं है, उसे ही दार्शनिक कहना न्यायोचित है।'' दर्शनशास्त्र शिक्षा की परिस्थिति को संपूर्ण रूप में देखता है। उसका दृष्टिकोण सर्वांग है। वह संपूर्ण रूप में देखता है।'' अस्तु, वह सब प्रकार की एकांगिता का सही उपचार है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली में एकांगिता की समस्या की आलोचना करते हुए ए.एम. श्लेजिंगर ने ठीक कहा है- ''हमें अनिवार्य रूप से एक समृद्ध भावात्मक जीवन की आवश्यकता है, जिसमें व्यक्ति और समुदाय में वास्तविक संबंधों की प्रतिछाया हो।''

वर्तमान काल में विश्व में पूर्व और पश्चिम के दो भिन्न दृष्टिकोण दिखलाई पड़ते हैं। ये दो भिन्न सांस्कृतिक दृष्टिकोण, दो भिन्न जीवन दर्शन उपस्थित करते हैं। मानव जाति ने विभिन्न देशकाल में मानव के लिए उपयुक्त जीवन की खोज में अनेक प्रयोग किये हैं। आधुनिक मनुष्य को चाहिए कि वह विभिन्न संस्कृतियों की बुद्धिमताओं का समन्वय करे। आदर्श शिक्षक को पूर्व और पश्चिम, दर्शन और विज्ञान का समन्वय करना चाहिए। प्रौद्योगिकी से भाराक्रान्त जटिल आधुनिक सभ्यता से मानव के बर्बरता की ओर लौट जाने का खतरा उत्पन्न हो गया है। आज मनुष्य को आणविक युग और उद्योगवाद से उत्पन्न समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। सब कहीं अव्यवस्था और हताशा दिखलाई पड़ती है। सब ओर से समस्याओं के सुलझाव उपस्थित किये जाते हैं। विज्ञान और अन्तर्राष्ट्रीय कानून असहाय दिखलाई पड़ते हैं। ऐसे समय में विचारशील व्यक्ति, धर्म, नैतिकता और आध्यात्मिकता की ओर देख रहे हैं। जैसा कि हाइनीमैन ने कहा है- '' हमारे सामने जो विकल्प है, वह इस प्रकार है: या तो मस्तिष्क की शक्ति समाप्त हो, मानव का पतन हो, उसकी बौद्धिक और आध्यात्मिक क्रिया में गिरावट आये जो कि अधिकाधिक यंत्रवत हो रही हैं और अंत में अत्यधिक

केन्द्रीयकृत नियंत्रण वाले नये तानाशाही प्रशासन की दासता की स्थापना हो, अथवा एक आध्यात्मिक क्रान्ति हो, मानव इस तथ्य की ओर जागे कि अंत में वह असीम आध्यात्मिक शक्तियों वाला एक आध्यात्मिक प्राणी है और अपनी स्वतंत्रता की रक्षा करने और तथाकथित विज्ञान और प्रौद्योगिकी की प्रगति को एक जनतंत्रीय व्यवस्था में नैतिक और आध्यात्मिक लक्ष्य के अधीन करने का कठोर निर्णय करे।''

अस्तु, शिक्षक के लिए सबसे बड़ी आवश्यकता उसका शिक्षा दर्शन है। सांस्कृतिक अथवा किसी भी अन्य प्रकार की एकांगिता का एकमात्र उपचार दार्शनिक दृष्टिकोण है। यह दार्शनिक दृष्टिकोण उसके सर्वांग रूप में श्री अरविन्द के इन शब्दों में उपस्थित किया गया है-''हृदय और मस्तिष्क सार्वभौम देवता हैं और न तो हृदय के बिना मस्तिष्क और न मस्तिष्क के बिना हृदय मानव आदर्श हो सकता है।''

दर्शन शास्त्र की उपादयेता न केवल आदर्शो, लक्ष्यों और पाठ्यक्रम को निर्धारित करने में है बल्कि शिक्षा के व्यवहार के नित्य प्रति के कार्यक्रम में हैं। एडलर के शब्दों में- ''इस प्रकार हम यह देखना शुरू करते हैं कि न केवल शिक्षा दर्शन का विशिष्ट क्षेत्र, प्रश्नों का उत्तर देते हुए विज्ञान द्वारा अनुत्तरीय है बल्कि शिक्षा दर्शन की आवश्यकता है क्योंकि उसके बिना मौलिक व्यवहारिक सिद्धान्तों का निश्चित निर्णय संभव नहीं है जो कि शैक्षिक व्यवहार के नित्य प्रति की नीतियों के अंतर्गत होता है।''

के.एल. श्रीमाली के शब्दों में-''इस प्रकार न केवल शिक्षक को एक शिक्षा-दर्शन रखना चाहिए, उसे अपने विद्यार्थियों में एक जीवन दर्शन विकसित करने के लिए भी तैयार होना चाहिए।' शिक्षक शिक्षार्थियों को जानकारी और ज्ञान प्रदान करता है, किन्तु उसकी व्यक्तिगत छाप उसके जीवन दर्शन के रूप में ही पड़ती है। महान शिक्षकों ने संसार को जानकारी नहीं बल्कि जीवन दर्शन प्रदान किये हैं।

अपनी उन्नति जानिए (CHECK YOUR PROGRESS)

प्र. 1''वास्तविक शिक्षा का संचालन वास्तविक दार्शनिक ही कर सकता है'' यह कथन किसका है ?

प्र. 2''दर्शन की सहायता के बिना शिक्षा के उद्देश्य कभी भी पूर्ण रूप से स्पष्ट नहीं हो सकते हैं।'' यह कथन किसका है?

प्र. 3''हृदय और मस्तिष्क सार्वभौम देवता हैं, न तो हृदय के बिना मस्तिष्क और न मस्तिष्क के बिना हृदय मानव आदर्श हो सकता है।'' यह कथन किसका है?

प्र. 4''जिस प्रकार शिक्षा दर्शन पर आधारित है, उसी प्रकार दर्शन शिक्षा पर आधारित है।'' यह कथन किसका है?

प्र. 5 ‘‘किसी भी मनुष्य के बारे में सबसे अधिक व्यावहारिक और सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात विश्व का उसका दृष्टिकोण, उसका दर्शन है।’’ यह कथन किसका है?

भाग-दो (PART-II)

3.2 आधुनिक शिक्षा प्रणाली में शिक्षा दर्शन का महत्व -

‘शिक्षा-दर्शन’ में ‘शिक्षा’ और ‘दर्शन’ दो शब्द मिले हुए हैं, ये दोनों शब्द मानव के जीवन से घनिष्ठ संबंध रखते हैं। ये दोनों अंग एक सिक्के के दो पहलू माने जाते हैं। दर्शन जीवन का विचारात्मक (सैद्धान्तिक) पक्ष है, जबकि शिक्षा क्रियात्मक (व्यावहारिक) पक्ष है। दर्शन जीवन के आदर्शो और मूल्यों को निर्धारित करता है और शिक्षा इन आदर्शो तथा मूल्यों को क्रियात्मक स्वरूप प्रदान करती है। ‘शिक्षा-दर्शन’ शिक्षा की समस्याओं का हल निकालता है। ‘शिक्षा-दर्शन’ को दर्शन की एक शाखा के रूप में भी जाना जाता है। यह शिक्षा संबंधी विषयों का दार्शनिक दृष्टिकोण से अध्ययन करती है। कुछ विद्वानों के अनुसार ‘शिक्षा-दर्शन’ शिक्षा का ही एक अंग है। आधुनिक विचारक ‘शिक्षा-दर्शन’ को किसी विषय की शाखा के रूप में स्वीकार न करके उसे एक स्वतंत्र विषय मानते हैं। ‘शिक्षा-दर्शन’ का महत्व शिक्षक के लिए निम्नलिखित कारणों से है:-

1. शिक्षा संबंधी समस्याओं का हल: ‘शिक्षा-दर्शन’ शिक्षा के क्षेत्र की गहनतर समस्याओं का समग्र रूप से अध्ययन करता है और शिक्षा विज्ञान के लिए उन समस्याओं को अध्ययन हेतु छोड़ देता है, जो तात्कालिक एवं जिनका वैज्ञानिक विधि से सरलतापूर्वक अध्ययन किया जा सकता है।

2. शिक्षा का पथ-प्रदर्शन: ‘शिक्षा-दर्शन’ का कार्य शुद्ध दर्शन द्वारा प्रतिपादित सत्यों एवं सिद्धान्तों को शैक्षिक प्रक्रिया के संचालन में प्रयुक्त करना है। यह दार्शनिक सत्य एवं शिष्य के जीवन एवं आचरण के संबंध में चेतना क्षेत्र में लाने का प्रयास करता है और उनके संबंध को तर्कपूर्ण एवं नियोजित तथा अधिक तात्कालिक एवं प्रभावशाली बनाता है और शिक्षक को बहुमुखी संबधों की स्थापना में पथ-प्रदर्शन करने का प्रयास करता है।

3. शिक्षा प्रक्रिया की स्पष्टता: ‘शिक्षा-दर्शन’ शिक्षा प्रक्रिया को स्पष्टता प्रदान करता है। लगभग सभी शिक्षाशास्त्री इस बात से सहमत हैं कि शिक्षा के दार्शनिक आधारों को समझे बिना शिक्षक अंधकारमय मार्ग पर चलता है। दर्शन द्वारा ही शिक्षा प्रक्रिया में सत्यता, स्पष्टता और उपयोगिता का समावेश होता है।

4. शैक्षणिक प्रश्न जीवन दर्शन से संबंधित: वास्तव में प्रत्येक शैक्षणिक प्रश्न जीवन दर्शन से संबंधित है। इन प्रश्नों को समझने के लिए व्यक्तियों के जीवन-दर्शन को समझना आवश्यक है। इस कार्य से दर्शन हमारी सहायता करता है। दर्शन का मुख्य विषय ही जीवन है। दार्शनिक शैक्षिक समस्याओं पर प्रकाश डालते हैं। इसीलिए उच्चकोटि के दार्शनिक उच्चकोटि शिक्षाशास्त्री हुए हैं। दार्शनिकों के

दृष्टिकोण उनकी शैक्षिक विचारधाराओं से प्रकट होते हैं। वे शैक्षणिक प्रश्नों को अपनी दार्शनिक विचारधाराओं द्वारा हल करते हैं। स्पेन्सर के अनुसार-''वास्तविक शिक्षा का संचालन वास्तविक दार्शनिक ही कर सकता है।''

5. शिक्षा में प्रयोग के लिए अवसर: 'शिक्षा दर्शन' के अध्ययन की आवश्यकता इसलिए भी है कि शिक्षा-शास्त्र का अध्ययन तभी पूरा होता है जब 'शिक्षा-दर्शन' का अध्ययन किया जाता है। 'शिक्षा-दर्शन' के अध्ययन से शिक्षक शिक्षा की प्रक्रिया को पूर्णतया सफल और उपयोगी बना सकता है। 'शिक्षा-दर्शन' शिक्षा के क्षेत्र में प्रयोग के लिए अवसर प्रदान करता है। दर्शन शिक्षा के प्रयोगों के लिए पथ-प्रदर्शक का कार्य भी करता है, जैसा कि बटलर ने कहा है- ''दैनिक शिक्षा के प्रयोगों के लिए पथ-प्रदर्शक हैं। शिक्षा अनुसंधान के क्षेत्र के रूप में दार्शनिक निर्णय हेतु निश्चित सामग्री का आधार रूप में प्रदान करती है।''

6. शिक्षा और दर्शन अन्योन्याश्रित हैं: दर्शन और शिक्षा दोनों ही एक-दूसरे पर निर्भर हैं। दर्शन शिक्षा को प्रभावितकरता है और शिक्षा दार्शनिक दृष्टिकोणों पर नियंत्रण रखती है तथा उसकी त्रुटियों को दूर करती है। दर्शन और शिक्षा दोनों का ही जीवन से घनिष्ठ संबंध है। जीवन को उन्नतिशील बनाने के लिए दोनों की आवश्यकता हैं शिक्षा के प्रत्येक क्षेत्र में दर्शन अपना योगदान देता है और 'शिक्षा-दर्शन' के सिद्धान्तों को व्यावहारिक रूप देती है अन्यथा वे कल्पना मात्र ही रह जाते। फिफ्टे के अनुसार-

''दर्शन की सहायता के बिना शिक्षा के उद्देश्य कभी भी पूर्ण रूप से स्पष्ट नहीं हो सकते हैं।''

7. शिक्षा के उद्देश्यों का निर्धारण: शिक्षक को शिक्षा के उद्देश्य निर्धारित करने में दर्शन सहायता करता है। दर्शन जीवन के उद्देश्यों को निर्धारित करता है और जीवन के उद्देश्यों के अनुरूप ही शिक्षा के उद्देश्यों का निर्धारण होता है। अतः जिस प्रकार का हमारे जीवन का दृष्टिकोण होगा उसी प्रकार के शैक्षिक उद्देश्य निर्धारित किये जायेंगे। उदाहरण के लिए प्राचीन भारत में जीवन का लक्ष्य ईश्वर को प्राप्त करना था। इसीलिए शिक्षा का उद्देश्य आध्यात्मिक विकास करना था। इसी तथ्य की पुष्टि जॉन ड्यूबी ने की है- ''दर्शन शिक्षा के साध्यों को निर्धारित करने से संबंधित है।''

8. शिक्षा के सिद्धान्त, उद्देश्य, पाठ्यक्रम, छात्र, प्रकाशक आदि के आधार पर बनाये जाते हैं। इन सिद्धान्तों की सम्यक जानकारी होना अध्यापक के लिए आवश्यक है। अन्यथा वह सफल नहीं हो सकता।

9. शिक्षण विधियों का निर्माण: शैक्षिक उद्देश्यों और पाठ्यक्रम का निर्माण हो जाने के बाद शिक्षण-विधियों के निर्माण की आवश्यकता होती है। शिक्षण-विधियों का निर्माण करने में 'शिक्षा-दर्शन'' का अध्ययन आवश्यक होता है। शिक्षण विधियों का निर्माण दार्शनिक विचारों के अनुसार ही किया जाता है।

10. अनुशासन स्थापित करना: शिक्षक को कक्षा में अनुशासन स्थापित करने में 'शिक्षा-दर्शन' का ज्ञान सहायता करता है। दार्शनिक विचारधाराओं के अनुरूप ही अनुशासन के रूप पाये जाते हैं। उदाहरण के लिए आदर्शवादी-दमनात्मक तथा प्रभावात्मक, प्रकृतिवादी-मुक्त्यात्मक और प्रयोजनवादी-सामाजिक अनुशासन के समर्थक हैं।

अपनी उन्नति जानिए (CHECK YOUR PROGRESS)

प्र. 1 चार प्रमुख दार्शनिकों के नाम लिखो।

प्र. 2 ''दर्शन और शिक्षा एक सिक्के के दो पक्ष हैं।'' यह कथन सत्य है अथवा असत्य ?

प्र. 3 ''दर्शन की सहायता के बिना शिक्षा की प्रक्रिया सही मार्ग पर नहीं बढ़ सकती है।'' यह सत्य है अथवा असत्य ?

प्र. 4 '''दार्शनिक विचारों का व्यावहारिक रूप शिक्षा है।'' यह सत्य है अथवा असत्य ?

प्र. 5 ''शिक्षा और दर्शन दोनों में विरोधाभास है।'' यह सत्य है अथवा असत्य ?

भाग-तीन (PART-III)

3.3 आधुनिक काल में शिक्षा दर्शन की आवश्यकता -

सभी आधुनिक शिक्षा-शास्त्री यह मानते हैं कि शिक्षक को न केवल विभिन्न प्रकार के विषयों का ज्ञान होना चाहिए बल्कि उसका एक अपना शिक्षा दर्शन भी होना चाहिए, जिसके बिना वह उन समस्याओं को कुशलतापूर्वक नहीं सुलझा सकता जो नित्य प्रति के शिक्षक जीवन में उसके सामने आती हैं। जर्मन दार्शनिक फिख्टे ने ठीक ही कहा था कि शिक्षा की कला दर्शन के बिना कभी भी पूर्णतया स्पष्ट नहीं हो सकती। अस्तु, इन दोनों में अन्तर्क्रिया आवश्यक है और इनमें से कोई भी दूसरे के बिना अपूर्ण और अपर्याप्त है। कुछ लोग विज्ञान की उपलब्धियों से इस कदर प्रभावित हैं कि वे शिक्षा के क्षेत्र में विज्ञान को दर्शन से ऊंची जगह देते हैं। मनोवैज्ञानिकों की राय है कि शिक्षा को मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित होना चाहिए। दूसरी ओर सामाजिक तथ्यों के महत्व से परिचित समाजशास्त्री यह सुझाव देते हैं कि शिक्षा के क्षेत्र में उनका प्रभाव अधिक होना चाहिए। किन्तु ये लोग यह भूल जाते हैं कि शिक्षा के लक्ष्यों, पाठ्यक्रम, शिक्षण प्रणाली, अनुशासन इत्यादि से संबंधित अनेक प्रश्न ऐसे हैं, जिनका उत्तर मनोवैज्ञानिक और समाजशास्त्री नहीं दे सकते।

शिक्षा दर्शन की आवश्यकता के कुछ बिन्दु निम्नलिखित हैं:-

1. शिक्षा के उद्देश्यों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए: शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति का सर्वांगीण विकास करना है। किन्तु इसके लिए व्यक्ति को जीवन-लक्ष्य का ज्ञान होना बेहद आवश्यक है। व्यक्ति के जीवन के अंतिम लक्ष्यों का निर्धारण दर्शन के द्वारा होता है और व्यक्ति के इन लक्ष्यों की प्राप्ति शिक्षा के द्वारा ही संभव है।

2. शैक्षिक समस्याओं के समाधान की दृष्टि से आवश्यकता: शैक्षिक समस्याओं का समाधान व्यक्ति शिक्षा-दर्शन की सहायता से ही कर सकता है। जो शिक्षक एक अच्छा दार्शनिक होगा वही सच्चे अर्थो में एक शिक्षक हो सकता है। एक अच्छे शिक्षक में अच्छे विचार होंगे और उसका आदर्श अपनाने योग्य होगा।

3. अनुशासन के दृष्टिकोण से आवश्यकता: अनुशासन की समस्याओं का समाधान तब तक संभव नहीं होता जब तक कि बालक तथा समाज के जीवन दर्शन का ज्ञान न हो। यही कारण है कि विभिन्न कालों में जिस दार्शनिक विचारधारा को मान्यता प्रदान की गई उसी के अनुसार अनुशासन का स्वरूप भी रहा।

4. शिक्षा के पाठ्यक्रम का ज्ञान प्राप्त करने के लिए

5. शिक्षण विधियों का ज्ञान प्राप्ति हेतु

6. अध्यापक को आदर्शवान बनने में सहायता करने के लिए

अपनी उन्नति जानिए (CHECK YOUR PROGRESS)

प्र. 1 कहानियां प्रायः असत्य पर आधारित होती हैं:-

(A) महात्मा गांधी (B) प्लेटो (C) मेडम माण्टेसरी (D) आचार्य विनोबा भावे

प्र. 2 किसने कहानियों को उपयोगी बताया है:-

(A) महात्मा गांधी (B) प्लेटो (C) मेडम माण्टेसरी (D) आचार्य विनोबा भावे

प्र. 3 ''दर्शन शिक्षा का सामान्य सिद्धान्त है।'' यह कथन है:-

(A) एडम्स (B) जॉन डी.वी. (C) फिक्टे (D) डेकार्ट

प्र. 4 ''प्रत्येक मनुष्य जन्मजात दार्शनिक होता है।'' यह कथन है:-

(A) एडम्स (B) जॉन डी.वी. (C) फिक्टे (D) शोपेनहार

प्र. 5 ''दर्शन शिक्षा के साध्यों को निर्धारित करने से संबंधित है।'' यह कथन है:-

(A) जॉन ड्यूवी (B) एडम्स (C) डेकार्ट (D) शोपेनहार

3.6 सारांश (SUMMARY)

शिक्षक को शिक्षा के क्षेत्र में कुछ ऐसी समस्याओं को सुलझाना पड़ता है, जिनका सुलझाव विश्व की उसकी अवधारणा के आधार पर ही हो सकता है। प्रत्येक व्यवहार और प्रक्रिया का अपना सिद्धान्त होता है। अस्तु, शैक्षिक व्यवहार के भी अपने सिद्धान्त होने चाहिए। समस्त शैक्षिक व्यवहार के अंतर्गत यह सिद्धान्त शिक्षा-दर्शन से प्राप्त होता है। शिक्षा-दर्शन के माध्यम से ही हम पाठ्यक्रमों, पाठ्यपुस्तकों, शिक्षण प्रणालियों, मूल्यांकन की पद्धतियों और कसौटियों तथा अनुशासन बनाये रखने की प्रविधियों को निश्चित करते हैं। अस्तु, शिक्षक को शिक्षा दर्शन का अध्ययन करना चाहिए।

जी.डी.एच.कोल ने कहा है, ''जो शिक्षा व्यवस्था स्थापित करने का हम प्रयास करते हैं, उसे उस समाज के प्रकार पर आधारित होना चाहिए, जिसमें कि हम रहना चाहते हैं, नर-नारियों के उन गुणों पर जिनको कि हम सर्वोच्च मूल्य देते हैं, और हमारे उन अनुमानों पर आधारित होना चाहिए जो कि हम उच्चतर बौद्धिक और सौन्दर्यात्मक सामर्थ्यो से विभूषित लोगों तथा साधारण लोगों के विषय में बनाते हैं।'' शिक्षा दर्शन सैद्धान्तिक है किन्तु प्रत्येक सिद्धान्त का लक्ष्य व्यवहार का निर्देशन करना होता है। जान डीवी के शब्दों में, ''जब कभी दर्शन शास्त्र को गंभीरतापूर्वक लिया गया है, सदैव यह मान लिया गया है कि वह एक ऐसा ज्ञान प्राप्त करना है जो कि जीवनव के आचारण को प्रभावित करेगा।''

शिक्षा के क्षेत्र में सबसे अधिक मौलिक प्रश्न उसके लक्ष्य को लेकर उठाये गये हैं। इन प्रश्नों से मानव की प्रकृति और उसके संशोधन और परिवर्तन की संभावनाएं लगी हुई हैं। मानव की प्रकृति का विश्व में उसके स्थान से घनिष्ठ संबंध है। अस्तु, शिक्षा के लक्ष्य का प्रश्न विश्व की प्रकृति के लक्ष्य से जुड़ा हुआ है। यह किसी भी समाज में प्रचलित संस्कृति की अवधारणा से भी घनिष्ठ रूप से संबंधित है। इससे दर्शन और शिक्षा में घनिष्ठ संबंध स्थापित होता है। ब्लेंशार्ड और अन्य के शब्दों में, ''विश्वविद्यालयों में दर्शन शास्त्र का कार्य वास्तव में वही है जो किसी समाज के सांस्कृतिक विकास में उसका कार्य है। अर्थात् समुदाय की बौद्धिक अन्तरात्मा बनाना।'' शिक्षा पशु और मानव प्रकृति में अंतर पर आधारित है। साधारण रूप से उसका लक्ष्य मानव के विशिष्ट लक्षणों का विकास करना है।

राबर्ट रस्क के शब्दों में, ''वे शक्तियां और उनके उत्पाद जो कि मनुष्य की विशेषताएं हैं और उसे अन्य पशुओं से भिन्न ठहराती हैं वे विधायक विज्ञानों के क्षेत्र से परे हैं जैसे कि जैवकीय और

मनोवैज्ञानिक के क्षेत्र से परे हैं। वे ऐसी समस्याएं उठाती हैं जिनको सुलझाने की आशा केवल दर्शन शास्त्र से की जा सकती है और इसलिए शिक्षा शास्त्र का एक मात्र आधार दार्शनिक होता है।''

शिक्षा का लक्ष्य ज्ञान प्रदान करना है। ज्ञान के लिए विश्वगत दृष्टिकोण और विभिन्न प्रकार की सूचनाओं तथा अनुभवों का समन्वय आवश्यक है। यह एक दार्शनिक क्रिया है, जिसके बिना कोई भी शिक्षा संभव नहीं है। अस्तु, शिक्षा के दार्शनिक आधार की आवश्यकता दर्शनशास्त्र की एक शाखा ज्ञानशास्त्र में आरम्भ होती है।

3.7 शब्दावली (Glossary)

व्यावहारिक विषय:- व्यावहारिक विषयों में आदर्श की स्थापना एवं उस आदर्श को प्राप्त करने के लिए साधनों एवं प्रयत्नों का भी वर्णन होता है।

शिक्षा-दर्शन :- 'शिक्षा दर्शन' को दर्शन की एक शाखा के रूप में भी जाना जाता है। यह शिक्षा संबंधी विषयों का दार्शनिक दृष्टिकोण से अध्ययन करती है। कुछ विद्वानों के अनुसार 'शिक्षा-दर्शन' शिक्षा का ही एक अंग है।

3.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (ANSWERS OF PRACTICE QUESTIONS)

भाग-एक (PART- I)

उ. 1 हरबर्ट स्पेन्सर

उ. 2 फिक्टे

उ. 3 श्री अरविन्द

उ. 4 जी.ई. पार्टिज

उ. 5 चेस्टर्टन

भाग-दो (PART-II)

उ. 1 सुकरात, प्लेटो, अरस्तू, स्वामी दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द, महर्षि अरविन्द

उ. 2 रॉस

उ. 3 सत्य

उ. 4 सत्य

उ. 5 असत्य

भाग-तीन (PART-III)

उ. 1 प्लेटो

उ. 2 मेडम माण्टेसरी

उ. 3 जॉन डी.बी.

उ. 4 शोपेनहार

उ. 5 शोपेनहार

3.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची (References)

1. पाण्डे, (डॉ) रा. श. *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*. आगरा: अग्रवाल प्रकाशन.

2. सक्सेना, (डॉ) सरोज. *शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार*. आगरा: साहित्य प्रकाशन.

3. मित्तल, एम.एल. (2008). *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*. मेरठ: इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस.

4. शर्मा, रा. ना. व शर्मा, रा. कु. (2006). *शैक्षिक समाजशास्त्र*. नई दिल्ली: एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स.

5. सलैक्स, (डॉ) शी. मै. (2008). *शिक्षक के सामाजिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्षय*. नई दिल्ली: रजत प्रकाशन.

6. गुप्त, रा. बा. (1996). *भारतीय शिक्षा शास्त्र*. आगरा: रतन प्रकाशन मंदिर.

3.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री (USEFUL BOOKS)

1. पाण्डे, (डॉ) रा. श. *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*. आगरा: अग्रवाल प्रकाशन.

2. सक्सेना, (डॉ) सरोज. *शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार*. आगरा: साहित्य प्रकाशन.

3. मित्तल, एम.एल. (2008). *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*. मेरठ: इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस.

4. शर्मा, रा. ना. व शर्मा, रा. कु. (2006). *शैक्षिक समाजशास्त्र*. नई दिल्ली: एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स.

5. सलैक्स, (डॉ) शी. मै. (2008). *शिक्षक के सामाजिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्षय*. नई दिल्ली: रजत प्रकाशन.

3.11 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Types Questions)

प्र. 1. शिक्षा-दर्शन क्या है ? उसका क्षेत्र और प्रकृति बतलाईये।

प्र. 2. शिक्षा-दर्शन का शिक्षक के लिए क्या उपयोग है ? विस्तृत व्याख्या कीजिए।

प्र. 3. शिक्षा-दर्शन के महत्व का विवेचन कीजिए।

प्र. 4. कहा जाता है कि ‘‘शिक्षा-दर्शन का गत्यात्मक अंश’’ अथवा ‘‘दार्शनिक सिद्धान्तों का क्रियात्मक रूप है।’’ इस कथन की अच्छी तरह व्याख्या कीजिए।

प्र. 5. एक अध्यापक को शिक्षा दर्शन को पढ़ना चाहिए। क्या शिक्षा मनोविज्ञान पर्याप्त नहीं है ?

प्र. 6. एक अध्यापक को शिक्षा दर्शन पढ़ाना चाहिए। क्या शिक्षा मनोविज्ञान पर्याप्त नहीं है ? व्याख्या कीजिए।

इकाई - 4 वेदान्त दर्शन (Vedanta)

4.1 प्रस्तावना (Introduction)

4.2 उद्देश्य (Objectives)

4.3 वेदान्त दर्शन (Vedantic Philosophy)

  4.3.1 वेदान्त का शब्दिक अर्थ –

अपनी उन्नति जानिए (Check your Progress)

4.4 वेदान्त के सात शीर्षक

  4.4.1 वेदान्त के अनुसार शिक्षा

अपनी उन्नति जानिए (Check your Progress)

4.5 शिक्षण विधियाँ

  4.5.1 शिक्षक एवं वेदान्त

  4.5.2 बालक एवं वेदान्त

  4.5.3 अनुशासन एवं वेदान्त

अपनी उन्नति जानिए (Check your Progress)

4.6 वेदान्तीय शिक्षा की समालोचना (Criticism of Vedantic Education)

4.7 कठिन शब्द (Difficult Words)

4.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer of Practice Question)

4.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (References)

4.10 उपयोगी सहायक ग्रन्थ (Useful Books)

4.11 दीर्घ उत्तर वाले प्रश्न (Long Answer Type Question)

4.1 प्रस्तावना (Introduction)

भारत में विकसित अनेकों दर्शनों में वेदान्त दर्शन ही सबसे महत्वपूर्ण दर्शन कहा गया है वेदान्त दर्शन का आधार उपनिषद ही कहे गए हैं। अतः पहले वेन्दात 'वेदों का अन्तिम भाग' शब्द का प्रयोग उपनिषद के लिए होता था। चूँकि उपनिषद् अनेक है अतः उनके विचारों में समन्जस्य लाने के उद्देश्य से वेदान्त दर्शन रचा गया। बादरायण ने 'ब्रंह्म सूत्र' की रचना की। ब्रह्मसूत्र में सिद्धात की व्याख्या है। इसी ब्रह्म से विकसित वेदान्त दर्शन को ''शारीरिक सूत्र'' 'शारीरिक मीसांसा' व 'उत्तर मीमांसा' भी कहा जाता है।

बदरायण का ब्रहमसूत्र चार आध्यायों में बँटा है। पहले अध्याय में ब्रह्म विषयक विचार हैं। दूसरे अध्याय में साधना से सम्बन्धित सूत्र है व चौथे अध्याय में मुक्ति के फलों के संबंध में चर्चा की गई है। यह चारों अध्याय अत्यन्त संक्षिप्त व दुर्बोध थे अतः इन्हें समझने के लिए अनेकों भाष्यकारों ने ब्रह्मसूत्र पर अपने अलग-अलग भाष्य लिखे। फलस्वरूप विभिन्न सम्प्रदाय पनपने लगे कुछ मुख्य सम्प्रदाय निम्न लिखित हैः-

शंकर का अदैतवाद (Non Dualism)

रामानुज का विशिष्टा द्वैतवाद (Qualified Monoism)

मध्वाचार्य का द्वैतवाद (Dualism)

निम्बकाचार्य का द्वैता द्वैतवाद (Dualism Cum Non-Dualism)

वेदान्त दर्शन की प्रमुख विषय वस्तु'जीव' और 'ब्रह्म' है। दोंनो के सम्बन्धों को विभिन्न प्रकार से प्रस्तुत किया गया है। शंकर के मतानुसार जीव व ब्रह्म दो नहीं है वे वस्तुतः अद्वैत है। इसी कारण अद्वैतवाद कहा गया। रामानुज के अनुसार एक ही ब्रह्म में जीव तथा अचेतन प्रकृति विशेषण रूप में है। फलस्वरूप उनका दर्शन विशिष्टा द्वैतवाद कहा गया। मध्वाचार्य 'जीव' तथ ब्रह्म को दो मानते है। अतः इनके मत को द्वैतवाद कहा गया। इसी प्रकार निम्बार्क के अनुसार किसी दृष्टि से जीव और ब्रह्म दो हैं व किसी दृष्टि से दो नहीं है अतः इनका दर्शन द्वैताद्वैत दर्शन कहा गया। कुछ भी हो सभी सम्प्रदायों में 'शंकर' के 'अद्वैतवाद' की गणना भारत के श्रेष्ठतम दर्शनों में की जाती है।

4.2 उद्देश्य (Objectives)

1. इस अध्याय को पढ़कर आप वेदान्त दर्शन की पृष्ठभूमि, स्वरूप, अर्थ और परिभाषा को समझ सकेंगे।

2. आप ब्रह्म तत्व एवं माया का स्वरूप व सम्बन्ध जान सकेंगे।

3. आत्मा की प्रकृति, गुण व अवस्थाओं से परिचित हो सकेगे।

4. जीव व आत्मा के सम्बन्ध व भेद को समझ सकेंगे।

5. आप ज्ञान व कर्म की दार्शनिकता को समझ सकेंगे।

6. आप वेदान्त के अनुसार शिक्षा का पाठ्यक्रम, शिक्षण विधियों को समझकर, आध्यात्मिकता के विकास के प्रति जागरूक हो सकेंगे।

4.3 वेदान्त दर्शन (Vedantic Philosophy)

शंकर के अद्वैत वेदान्त में मूल सिद्धान्त निम्न श्लोक से स्पष्ट हो जाता हैः-

‘‘ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या, जीवौ ब्रहमैव नाडपरः’’

अर्थात ब्रह्म सत्य है, जगत मिथ्या है, जीव ब्रह्म ही है तथा जीव और ब्रह्म में कोई भेद नही है। अद्वैत दर्शन में अधिकारी शिष्य जब गुरू के पास जाता है तो वह उपेक्षित होकर सात प्रश्न पूछता हैः- हे गुरूदेव! बन्ध क्या है? यह बन्ध कैसे आया, इसकी प्रतिष्ठा भी है! इसकी स्थिति कैसी है! इस बन्धन से छुटकारा कैसे मिल सकता है? परमात्मा किसे कहते है? उसका विवेक कैसा होता है आदि इस आधार पर शंकराचार्य के तात्विक विचारों को सात भागों ब्रह्म, माया, अविघा, आत्मा, विक्षेपशक्ति, अध्यासवाद, सृष्टि प्रक्रिया आदि के अतंर्गत स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

पाल Diason के अनुसार ‘‘शंकराचार्य सातवी, आठवी शताब्दी के मध्य, केरल राज्य के मालाबार तट पर स्थित कालदी (Kalei) नामक स्थान नम्बदरी ब्राह्मण कुल में हुआ था, इनके पिता शिवगुरू, यजुर्वेदी ब्राह्मण थे। आठ वर्ष की अल्पायु में इन्होंने सन्यास ग्रहण कर लिया और नर्मदा नदी के तट पर निवास करने लगे। वहां प्रसिद्ध गोविन्द ऋषि के शिष्य बन गए। कुछ समय वहां रहकर काशी और फिर ब्रद्रीकाश्रम गये। पुनः काशी में आकार 12 वर्ष की अल्पायु में ब्रह्म सूत्र पर अपना भाष्य लिखा। उसके बाद गीता और फिर 10 उपनिषदों पर आपने भाष्य लिखे।

अष्ठवर्शे चतुर्वेदी द्वादशे सर्व शास्त्र वित्। षोडशे कृतवान् भाष्य, द्वात्रिशे मुनिरभ्यगात्

इन्होने किसी नए दर्शन के संस्थापक होने का दावा नहीं किया। पर उपनिषदों की व्याख्या की और अद्वैतवाद का शक्तिशाली समर्थन किया। डॉ0 दास गुप्ता के अनुसार, ‘‘उन्होंने सर्वत्र अन्य धार्मिक सम्प्रदायों के नेताओं से शास्त्रार्थ कर उन्हें पराजित किया और वेदान्त दर्शन को स्थापित किया। इनके द्वारा स्थापित चार मठ हिन्दु धर्म के आधार स्तभ्म हैं। यह मठ-I मैसूर में श्रीनगर, काठियावाड़ में द्वारिका , उड़ीसा में पुरी और हिमालय की प्रर्वत श्रृखलाओं में ब्रद्रीनम में स्थित हैं।

30 वर्ष की आयु में 820 ई0 में इन महान आचार्य, चिन्तक व सन्यासी ने 32 वर्ष की अल्पायु में ही केदारनाथ में अपने नश्वर शरीरर का त्याग कर दिया। व अमरत्व को प्राप्त हुए।

4.3.1 वेदान्त का शब्दिक अर्थ –

शंकराचार्य रचित वेदान्त जिसका शब्दिक अर्थ वेदों का अन्तिम भाग है, यह उपनिषदों पर आधारित है। इसे उत्तर मीमांसा भी कहते हैं। यह वेदों की टीका के नाम से भी जाने जाते हैं। वेद शब्द 'विद्' धातु के निश्पन्न 'ज्ञान' का पर्यायवाची है। 'अन्त' से अभिप्राय 'मोक्ष' है। यह वेदों के ज्ञान का विमोचन ही है। भारत में संसार के ज्ञान का अन्त मोक्ष कहा गया है। मोक्ष प्राप्ति का साधन ब्रह्म ज्ञान है। वेदान्त इस प्रकार से 'ब्रह्म' या 'ईश्वर' जो सभी के अन्त में पाया जाने वाला एक मात्र तत्व है, का ज्ञान है। यह वह ज्ञान है जिसके बाहर कुछ अन्य जानने को जी नहीं करता है-जिस ज्ञान से इस देह का सर्वदा के लिए अन्त हो जाए' शायद इसी वेदान्त को 'ब्रह्म सूत्र' के अतंर्गत रखा जाता है।

वेदान्त का स्वरूप ज्ञान पर आधारित है। इस ज्ञान का मुख्य विषय ब्रह्म ज्ञान है। इसे उत्तर मीसांसा भी कहा गया है। जहां पूर्व मीसांसा में धर्म-जिज्ञासा है वहीं उत्तर मीसांसा या वेदान्त में ब्रह्म-जिज्ञासा है दोनों का लक्ष्य एक ही हैः- अन्तर केवल इतना है कि पूर्व मीसांसा धर्म पर आधारित है। और उत्तर मीसांसा ज्ञान पर आधारित है। इस ब्रह्म ज्ञान जिसे ब्रह्म सूत्र के नाम से भी जाना जाता है इसका चार अध्याय और सौलह पाद के अतंर्गत वर्णन किया है, इसके अतंर्गत ब्रह्म के स्वरूप का विस्वृत वर्णन किया गया है। इस अध्याय में इतना विस्तार किया जाना अनावश्यक समझते हुए शंकराचार्य के भावों को सात मुख्य शीर्षकों के अतंर्गत संक्षेप में परिचय दिया जा रहा है। शंकर के शब्दों में :- ''वेदान्त वाक्य कुसुम ग्रन्थनार्थतत्ववाद ब्रह्म सूत्राणाम्।'' अर्थात 'वेदान्त, वाक्यरूपी कुसुमों का ग्रन्थन कर सर्वोत्तम ब्रह्मसूत्र रूप मनोहर माला का निर्माण किया गया है।

अपनी उन्नति जानिए (Check Your Progress)

प्रश्न 1 वेदान्त दर्शन की प्रमुख विषय क्या है?

प्रश्न 2 बदरायण का ब्रहमसूत्र कितने आध्यायों में बँटा है?

प्रश्न 3 द्वैताद्वैतवाद के प्रतिपादक हैं-

रामानुजाचार्य, शंकराचार्य, माध्याचार्य, निम्बकाचार्य

प्रश्न 4 वेदान्त दर्शन का प्रमुख विषय हैं-

जीव, जीव और ब्रह्म, बह्म, मन

4.4 वेदान्त के सात शीर्षक

सातों शीर्षक क्रमशः ब्रह्मविचार, माया, अविद्या, आत्मा, जीव विचार, मोक्ष, ज्ञान और कर्म हैं।

ब्रह्म विचारः- वेदान्त के अनुसार 'ब्रह्म'ही एक सत्य है। ब्रह्म को ही जगत का उपादान और निमित्त बतलाया है। ब्रह्म ही जगत की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय का कर्ता है। अर्थात वही सृष्टि का कर्ता, धर्ता व हर्ता है। इसे ईश्वर, परमात्मा, आत्मा, पुरूपोत्तम, भगवान सभी नामों से जाना जाता है। ब्रह्म सगुण, निर्गुण, साकार व निराकार है, परन्तु परम सत्य के रूप में है। वह सारे संसार व प्रकृतियाँ प्रकृतियाँ में व्याप्त है। उसके दो प्रकार हैं- परा व अपरा। यह दोनों प्रकृतियाँ इसकी अपनी शक्तियाँ है इसलिए अभिन्न है। इन दोनों प्रकृतियाँ के सहारे वह स्वयं सृष्टि की रचना करता है और प्रलय काल में यही शक्तियाँ उसी में विलीन हो जाती है।

उपनिषदों के समान ब्रह्म का स्वरूप सत् चित-आनन्द बतलाया गया है। संस्कृति में 'ब्रह्म' शब्द 'वृह' धातु से निष्पन्न होता है जिसका अर्थ है 'बढ़ना' या वृद्धि को प्राप्त होना। वृद्धि को प्राप्त करने वाला 'महान' कहा जाता है। अतः शंकर के अनुसार ब्रह्म निरतिशय, भूमाख्य आदि है। क्योंकि वह सबसे महान है इसीलिए उसे ब्रह्म की संज्ञा दी गई है और इसी लिए उसे अद्वितीय कहा गया है। ब्रह्म सर्वोच्च सत्ता है, देश व काले से परे है, वह कोई द्रव्य नहीं फिर भी सम्पूर्ण जगत का अधिष्ठाता है। वह सर्वत्र व्याप्त है पर कहीं दिखलाई नहीं पड़ता। वह स्वतः सिद्ध है। इसकी सत्ता के लिए किसी प्रमाण की आवश्यकता नही।

माया निरूपण

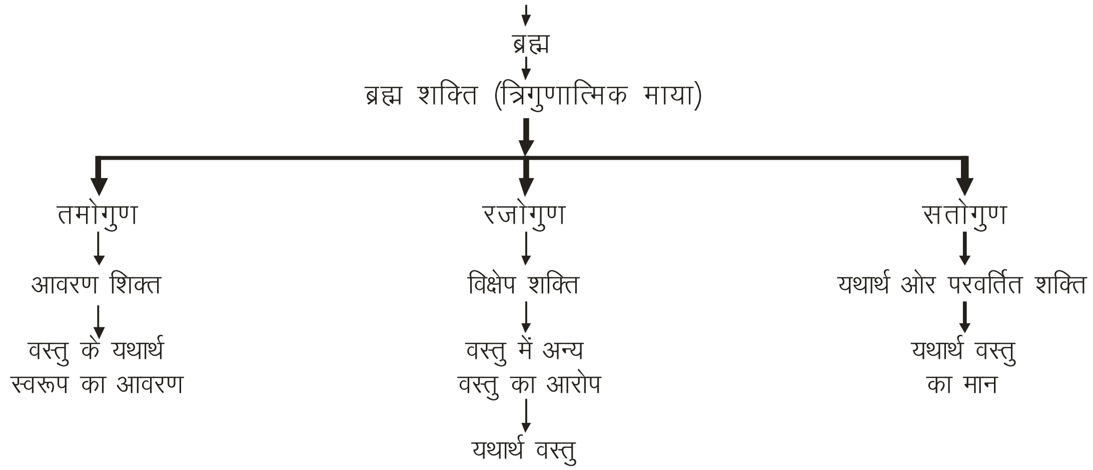
ब्रह्म
ब्रह्म शक्ति (त्रिगुणात्मिक माया)
तमोगुण
आवरण शिक्त
वस्तु के यथार्थ स्वरूप का आवरण
रजोगुण
विक्षेप शक्ति
वस्तु में अन्य वस्तु का आरोप
यथार्थ वस्तु
सतोगुण
यथार्थ ओर परवर्तित शक्ति
यथार्थ वस्तु का मान

* * *

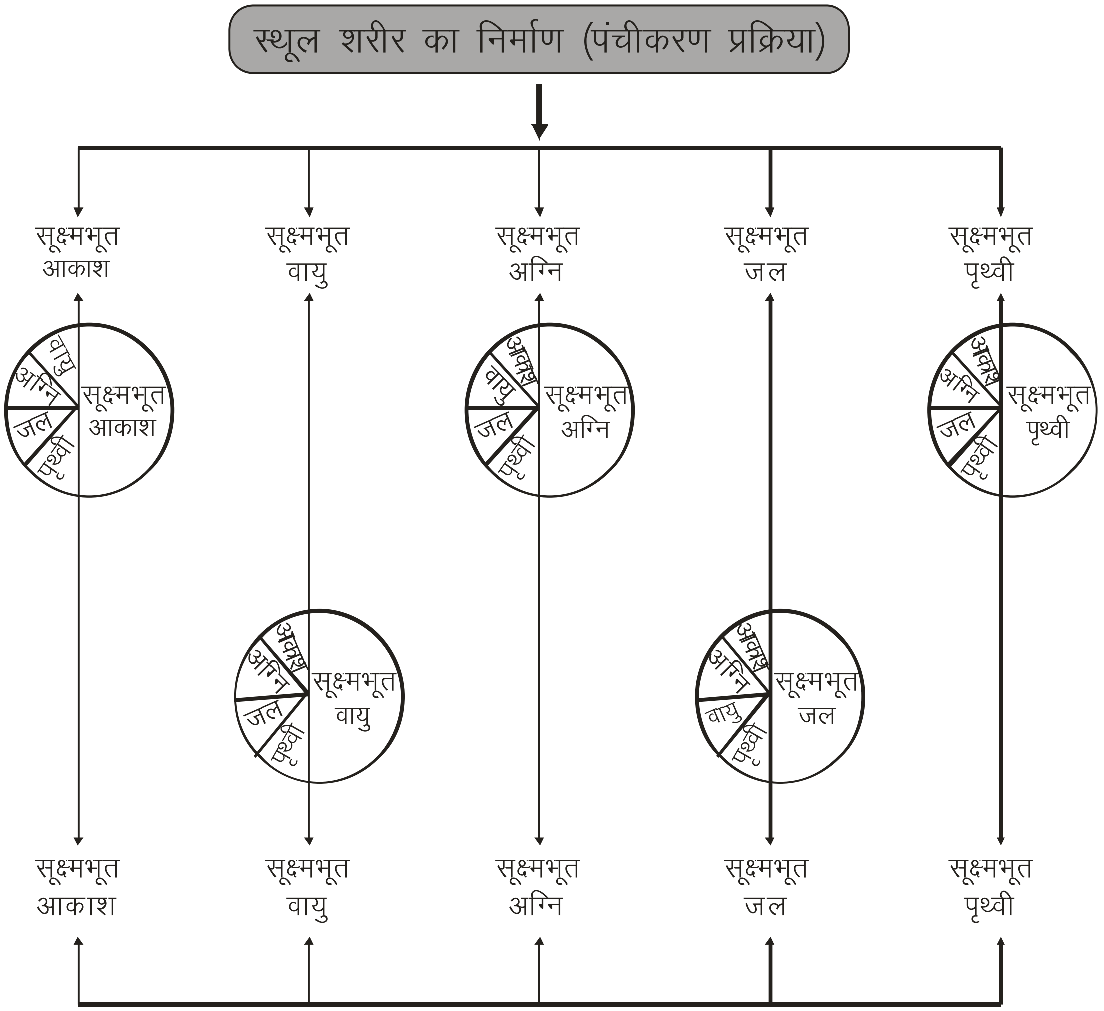
स्थूल शरीर का निर्माण (पंचीकरण प्रक्रिया)
सूक्ष्मभूत आकाश
सूक्ष्मभूत वायु
सूक्ष्मभूत अग्नि
सूक्ष्मभूत जल
सूक्ष्मभूत पृथ्वी
वायु
अग्नि
जल
पृथ्वी
सूक्ष्मभूत आकाश
आकाश
वायु
जल
पृथ्वी
सूक्ष्मभूत अग्नि
आकाश
अग्नि
जल
पृथ्वी
सूक्ष्मभूत पृथ्वी
आकाश
अग्नि
जल
पृथ्वी
सूक्ष्मभूत वायु
आकाश
अग्नि
वायु
पृथ्वी
सूक्ष्मभूत जल
सूक्ष्मभूत आकाश
सूक्ष्मभूत वायु
सूक्ष्मभूत अग्नि
सूक्ष्मभूत जल
सूक्ष्मभूत पृथ्वी

पंजीकृत स्थूल भूतों संयोग

चार प्रकार के स्थूल शरीर

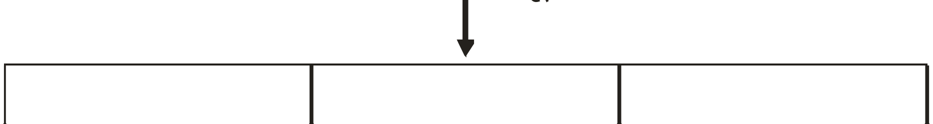

2. मायाः

शंकर ने माया तथा अविद्या को समानार्थी माना है परन्तु बाद के दार्शनिकों न दोनों में अन्तर माना है। शंकराचार्य के अनुसार 'माया' ईश्वर में आश्रित होने वाली महासुप्ति रूपिणी शक्ति है जिसमें अपने स्वरूप को न पहचानने वाले संसारी जीव सोते रहते हैं। माया ईश्वर बीजशक्ति का नाम है। मायारहित होने पर ईश्वर में प्रवृति नहीं होती है जिससे जगत की सृष्टि वह नहीं करता है। अतः वह (माया) अविद्यात्मक बीज शक्ति अव्यक्त कही जाती है और सृष्टि की रचना का कारण कही जाती है।

माया न तो सत (Sat) है और न असत (Asat) है। दोनों से अलग माया का एक विलक्षण रूप होने के कारण शंकर उसे अनिर्वचनीय कहते हैं। 'सत्' उसे कहते हैं जो सदैव एक ही प्रकार का हो, किसी भी ज्ञान द्वारा उसका विरोध न हो। इस दृष्टि से माया सत् नहीं है क्योंकि 'ब्रह्म' का ज्ञान असंगत या बाधित हो जाता है। ब्रह्मज्ञानी को तो माया का ज्ञान होता ही नहीं। होता भी है तो वह असत्य ही भासता है। अज्ञानी ही माया के जाल में फँसा रहता है। दूसरी ओर देखा जाए तो जब अन्य किसी ज्ञानद्वारा पूर्व वस्तु या पदार्थ बाधित हो जाता है और उसकी प्रतीति नहीं होती, परन्तु माया की प्रतीति अवश्यभ्भावी है। अतः व्यक्ति के ज्ञान के अनुसार माया के सत् तथा असत् दोनों ही रूप हैं। शंकर के अनुसार, '' माया, ईश्वर की अव्यक्त शक्ति है जिसकी उत्पत्ति का पता नहीं चलता है। वह तीनों गुणों सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण से युक्त अविद्या रूपिणी है। उसका पता उसके कार्यों से चलता है। वही इस जगत को उत्पन्न करती है।''

संक्षेप में शंकराचार्य के अनुसार माया, संसार प्रपंच की बीजभूत, ईश्वर की शक्ति है। इसके निम्नलिखित लक्षण हैः-

(क) माया एक स्वतन्त्र तत्व नहीं, ईश्वर की शक्ति है।

(ख) माया संख्या की प्रकृति के समान त्रिगुणात्मिका है, परन्तु प्रकृति के समान सत् नही है।

(ग) माया की दो शक्तियाँ हैः आवरण व विक्षेप। आवरण शक्ति द्वारा माया एक अद्वैत रूपी ब्रह्म के यथार्थ स्वरूप को आच्छादित कर देती है तथा विक्षेप शक्ति द्वारा नाना रूपात्मक जगत को उत्पन्न करती है

(ङ़) माया व्यावहारिक दृष्टि से सत् है पर पारमार्थिक दृष्टि से असत् है।

(च) माया का आश्रय व विषय दोनों बह्म है पर ब्रह्म माया से प्रभावित नहीं होता जैसे किसी जादूगर से संसार प्रभावित होता है, जादूगर नहीं।

3. अविद्याः माया को अविद्या का रूप ही माना गया हैः परन्तु माया व अविद्या में भेद हैः-

अविद्या, विद्या का अभाव है अतः अविद्या अभावात्मक है।

अविद्या-जीव की उपाधि है जबकि माया ईश्वर की उपाधि है।

अविद्या जीव की शक्ति है जबकि माया ईश्वर की शक्ति है।

विद्या में तमोगुण की प्रधानता है जबकि माया में सत्वगुण की प्रधानता है।

काम, क्रोध, राग, द्वेश, लोभ-मोह, छल दम्भ आदि अविद्या के शस्त्र है। इन शस्त्रों के द्वारा माया मानव जीवन को सत्य प्रिय से हटा कर असत्य-अप्रिय अहित की ओर ले जाती है।

अतः शंकर के अद्वैत वेदान्त के अनुसार माया व अविद्या समानार्थक शब्द है परन्तु बाद के वेदान्तियों ने इनमें भेद बताया है। अविद्या या माया का कार्य जगत प्रपंच को उत्पन्न करना है। यह रज्जु-सर्प, भृग-मरीचिका, माया निर्मित हस्ती, द्विचन्द्र दर्शन इन्द्रजाल आदि के समान है।

4. आत्माः आत्मतत्व या ब्रह्मतत्व, अद्वैत वेदान्त का परम तत्व माना गया है। आत्मा या ब्रह्म, अदैत आत्मा या ब्रह्म दोनों में किसी प्रकार का भेद नहीं है। आत्मा-अजर, अमर, अमृत और अभय है। यह जड़ जगत से नितान्त भिन्न चेतन तंत्व है। आत्मा का अचेतन से सम्बन्ध तो मात्र भ्रम या अध्यास है। जैसे हम रस्सी को सांप व सीपी को रजत समझ बैठते हैं, उसी प्रकार अध्यास (माया) के कारण हम मन, बुद्धि या अंहकार आदि को चेतन आत्मा समझ बैठते हैं।

आत्मा तो सर्वथा असांसारिक, आध्यात्मिक, विभु व्यापक, अजन्मा, अविकारी, नित्य ज्योति स्वरूप, शाश्वत तत्व है। वह कार्य तथा कर्म बन्धन से सर्वथा मुक्त है। कर्ता, भोक्ता आदि तो सांसारिक जीव का रूप है, आध्यात्मिक आत्मा का नहीं। यह जन्म तथा मृत्यु से परे है इसलिए नित्य व निर्विकारी तत्व माना गया है। शंकर ने आत्मा को अप्रमेय अर्थात प्रमाण से परे माना है।

5. जीव विचारः जीव क्या है- अद्वैत वेदान्त के अनुसार जीव, अज्ञान या अविद्या की सृष्टि है। अर्थात जीव ही अज्ञान का आश्रय है। अज्ञान के कारण ही जीव प्रति शरीरर का स्वामी मालूम पड़ता है। संसार में जीव अनेक हैं। इस दृष्टि कोण से जीव भी अनेक हो जाता है। शरीरर के साथ सम्बन्ध होने के कारण, शरीरर व इन्द्रियों द्वारा किये गये कर्मों का कर्ता जीव ही माना जाता है। इसी प्रकार सुख दुःख का भोक्ता भी जीव ही है। शरीरर व संसार से सम्बद्ध होने के कारण यह सभी धर्म जीव में उत्पन्न होते है। वैसे तो यह जीव आत्मा है पर व्यवहार में यह कर्ता, भोक्ता व ज्ञाता है। इस तथ्य से स्पष्ट होता है कि जीव भी ईश्वर के समान सांसारिक है। दोनों की सत्ता व्यावहारिक दृष्टि से है। पारमार्थिक दृष्टि से न जीव है और न ईश्वर। केवल एक अद्वैत आत्मा या ब्रह्म है। इस दृष्टि से जीव व

आत्मा में भेद नहीं है। अज्ञान के कारण है असांसारिक आत्मा सांसारिक जीव प्रतीत होता है। और माया के कारण पर ब्रह्म(निर्गुण ब्रह्म) अपर ब्रह्म (सगुण ईश्वर) ब्रह्म प्रतीत होता है।

जीव व आत्मा में भेद:- दोनों में व्यावहारिक दृष्टि से भेद है। पारमार्थिक दृष्टि से दोनों अभेद हैं।

(क) जीव अनित्य, सावयव, सोपाधि, सान्त और अविच्छिन्न है।

आत्मा नित्य, निरतवयव, निरूपाधि, अनन्त और अविच्छिन्न है।

(ख) जीव, मन, बुद्धि, अंहकार के कारण प्रति शरीरर में निवास करता है। शरीरर होने के कारण अनेक हैं। आत्मा मन, बुद्धि, अंहकार से परे है। एक है, ब्रह्म है, विभु है। अशरीरर होने के कारण एक है।

(ग) सांसारिक होने के कारण जीव कर्ता, भोक्ता व ज्ञाता है

असांसारिक आत्मा इन धर्मों से परे है।

(घ) जीव सांसारिक है। सुख दुःख का भोग करने के कारण भोक्ता है। आत्मा असांसारिक है, कर्म, अकर्म, सुख-दुःख व भौतिक विषयों से कोई सम्बन्ध नहीं।

आत्मा शुद्ध ज्ञान स्वरूप है। प्रकाशवान है, अज्ञान से परे है। बन्धन से मुक्त है शुद्ध चैतन्य रूप है। अज्ञान के कारण ही सब दुःख, बन्धन या क्लेश है। ज्ञान का उदय होते ही संसार का अन्धकार दूर हो जाता है, अज्ञान समाप्त हो जाता है और तन जीव और आत्मा का भेद समाप्त हो जाता है और यह पता चल जाता है कि यह आत्मा व जीव का भेद तो अज्ञान के कारण ही था।

मोक्ष:- वेदान्त के साथ-साथ अन्य सभी आस्तिक दर्शनों में मोक्ष को ही परम पुरूषार्थ कहा गया है। मोक्ष को कई नामों जैसे-कैवल्य, अपवर्ग, मुक्ति, मोक्ष से जाना गया है। सब का एक ही तात्पर्य है-जन्म-मरण के बन्धन का विनाश। जन्म को दुःख का मूल कहा गया है। अतः जन्म और पुनर्जन्म का अभाव ही सुख है। और सच्चा सुख वास्तव में दुःख का अभाव ही है। दुःख के अभाव में मनुष्य सच्चे सुख और शान्ति का लाभ प्राप्त करता है। इस कारण मोक्ष को परम लाभ भी कहा गया है। जिसे मोक्ष मिल गया उसके लिय अन्य कुछ पाना शेष नहीं रह जाता।

मोक्ष क्या है? परम लाभ क्या है? आचार्य शंकर के अनुसार-आत्मा की अपने रूप में अवस्थि ही मोक्ष है। परन्तु अज्ञान के कारण या अविद्या के कारण नित्य, शुद्ध व चैतन्य आत्मा का अनित्य, अशुद्ध व सांसारिक शरीरर से सम्बन्ध हो जाता है। ज्ञान होने पर जब आत्मा को अपने यथार्थ स्वरूप का ज्ञान होता है तो संसार और शरीरर साधना तो रहते है, पर साध्य नहीं। यही आत्मा की निजि

स्वरूप में अवस्थि है। यही मोक्ष है। अतः अद्वैत वेदान्त में आत्मा के सच्चिदानन्द स्वरूप का लाभ ही मोक्ष माना गया है। दूसरे शब्दों में मोक्ष ज्ञान-साध्य है। मोक्ष-अज्ञान निवृति है।

7. ज्ञान और कर्म: अज्ञान का क्षय होने पर ज्ञान प्राप्त होता है जो मोक्ष का साधन है। शंकर के अनुसार कर्म अनित्य फल का साधक है अतः इससे नित्य मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती यह भी मान्य है कि जीव कर्म से बन्धन में रहता है और ज्ञान से मुक्त हो जाता है। व्रत,दान, यज्ञ, सत्य, आश्रम और अन्य कर्म सभी स्वर्ग के हेतु हैं परन्तु अनित्य हैं। ज्ञान नित्य और शान्तिकारक तथा परमार्थरूप है। यज्ञों के द्वारा मनुष्य देवत्व प्राप्त कर सकता है, तपस्या से ब्रह्मलोक पाता है, दान से तरह-तरह के भोग को प्राप्त करता है और ज्ञान से मोक्ष-पद को पाता है। धर्म की रस्सी से मनुष्य उत्तर की ओर उठ जाता है और पापरज्जु से अघोगति को प्राप्त होता है परन्तु जो इन दोनो को ज्ञान रूपी खड्ग से काट देता है वह देहाभिमान से रहित होकर शान्ति को प्राप्त करता है। वेदान्त में ज्ञान को विद्या तथा कर्म को अविद्या रूप से कहा गया है। अज्ञानी कर्म से ही चित शुद्ध होता है, पहले शरीरर शुद्ध होता है, फिर चित। चिन्त शुद्धि से विशुद्ध ज्ञान या आत्म ज्ञान होता है। अतः चित को निर्मल एवं शरीरर को पापरहित करने के लिए कर्म आवश्यक है। ज्ञान से पूर्व कर्म आवश्यक है। आत्मज्ञान तो अन्तिम सोपान है।

4.4.1 वेदान्त के अनुसार शिक्षा :-

वेदान्त केवल दर्शन नहीं है। यह एक सम्पूर्ण या आदर्श मानव बनने के लिए पथ प्रदर्शिका प्रदान करता है। इसका ज्ञान व्यक्ति को यह निर्देश देता है कि वह क्या सीखे और उसे कैसे उसे सीखे। जो भी व्यक्ति वेदान्त दर्शन के अनुसार शिक्षा ग्रहण करता है व उसके अनुसार क्रिया कलाप करता है उसे हम आदर्श शिक्षित व्यक्ति कह सकते हैं।

वेदान्त सम्प्रदाय की मान्यता है कि मानव अपने वर्तमान के कर्म तथा पूर्व के कर्मों से नियन्त्रित रहता है। धर्म ही केवल मानव को ब्रह्माण्ड में संपोषित रखता है। अविद्या उसे माया के जाल में बाँध देती है। अविद्या तथा माया का जाल ही मानव के दुःख व वेदना का कारण है। मनुष्य ज्ञान द्वारा विराग की भावना को अपना कर, दुःख व वेदना से स्वयं को बचा सकता है।

शिक्षा के उद्देश्य: वेदान्त दर्शन के अनुसार शिक्षा का एक मात्र उद्देश्य-बालक को अज्ञान से दूर करके, सत्य ज्ञान की प्रतीति कराना है। इस ज्ञान से वह विद्या तथा अविद्या में भेद करने में समर्थ हो सकता है। वह सत्य तथा असत्य के भेद को समझ सकता है। वह अपने में निहित अनन्त शक्ति या आत्मा को पहचान सकता है। वह अविद्या को दूर करके पूर्णता या मुक्ति या ब्रह्म को पा सकता है। वह ब्रह्म व आत्मा की अभिन्नता को समझ सकता है।

वेदान्त के अनुसार सच्ची शिक्षा का उद्देश्य- व्यक्तियों को केवल सही कार्य करना सिखाना नहीं है, वरन् सही वस्तुओं से प्रसन्नता प्राप्त करना है। व्यक्ति को न केवल उद्यमशील होना है वरन् उद्यम के प्रति प्रेम होना है। सच्ची शिक्षा व्यक्ति को स्वतन्त्रता प्रदान करती है और वह उस समय आरभ्म होती है जबकि व्यक्ति सब सांसारिक प्रलोभनों से विमुख हो जाता है तथा अपना ध्यान अपने अन्तर में निहित शाश्वत की ओर लगाने लगता है। इस दशा में वह मूल ज्ञान का स्त्रोत बन जाता है। तब वहाँ से नवीन धारणाओं का झरना बहने लगता है।

- शिक्षा का उद्देश्य परा अपरा विद्या को प्राप्त करना है। परा विद्या द्वारा हम अपने को पहचानने में समर्थ हो सकते हैं। ब्रह्मज्ञानी हो सकते हैं साथ ही मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं आत्मा ब्रह्म, परमात्मा, ईश्वर का ज्ञान ही परा विद्या है। अपरा विद्या द्वारा भौतिक संसार का अध्ययन कर सुखी व सम्पन्न जीवन जीने के लिए प्रयत्नशील बन सकते हैं। डॉ0 दास गुप्ता का कहना है, ‘‘-वेदान्त का अध्ययन, अधिक आयु के वही व्यक्ति कर सकते थे, जिनकी जीवन के सामान्य सुखों में कोई रूचि नहीं और जो पूर्ण मुक्ति के अभिलाषी थे।’’ इसी आधार पर शंकराचार्य ने ब्रह्मज्ञान के जिज्ञासु अथवा अधिकारी में चार गुणों का होना अनिवार्य बताया हैः-

1. नित्यानित्य वस्तु विवेकः- जिज्ञासु नित्य व अनित्य(अपरा व परा) वस्तुओं के बीच विवेक पूर्ण भेद कर सके।

2. विरक्तिः- ज्ञान प्राप्ति के बाद भोगों का त्याग आवश्यक है। इस गुण के अतंर्गत लोक परलोक में भोगों के त्याग की अपेक्षा की जाती है।

3. संयमः- इस गुण के ग्राही में छः प्रकार के संयमों की अपेक्षा की जाती है यह संयम हैः-शम, दम, उत्तरति, तितिक्षा, समाधान और ज्ञान तथा ज्ञानियों के प्रति श्रद्धा। इनमें शम से अभिप्राय-मन का संयम, दम-इन्द्रिय पर नियन्त्रण, उत्तरति का अर्थ-यज्ञादि विहित कर्मों का त्याग समाधान तथा ज्ञान के गुणों से युक्त होना है।

4. शिक्षा का एक उद्देश्य है- कर्म और उपासना द्वारा ज्ञान प्राप्त करना। कर्म-सीधे से कर्म, ज्ञान की उत्पत्ति में सहायक नहीं है वरन् उसकी प्राप्ति में सहयोग देता है अतः जीवन पर्यन्त कर्म करते रहना चाहिए । उपासना भी ज्ञान का साधन है। यह शास्त्रों के वचनों का भक्तिपूर्ण सतत् अध्ययन है।

4.4.2 शिक्षा का पाठ्यक्रमः-

स्वामी शंकराचार्य के अनुसार ब्रह्म-सत्य व जगत-मिथ्या है। जबकि स्वामी रामानुजाचार्य ने जगत को मिथ्या न कहकर ईश्वर की लीला माना है। शंकराचार्य ने एक ब्रह्म के स्थान पर चित्र-अचित्र और ईश्वर तीन तत्व बताये हैं और तीनों प्रकार की सत्ता भी बताई हैः

प्रतिभाशिकी सत्ता, व्यावहारिकी सत्ता व पारमार्थिकी सत्ता। उनके अनुसार शिक्षा का पाठ्यक्रम ऐसा होना चाहिए जिसमें तीनों प्रकार की सत्ताओं से सम्बन्धित विषयों का समावेश हो। यद्यपि शंकराचार्य ज्ञान के अतिरिक्त और किसी ज्ञान को ग्राह्य नहीं समझते हैं, तथापि वे जगत सम्बन्धी ज्ञान को व्यावहारिक दृष्टि से सत्य मानते हैं। पाठ्यक्रम के अंतर्गत तीनों सत्ताओं के विषय में दार्शनिक विचार निम्न प्रकार हैः-

1. प्रतिभाषिकी सत्ताः- इसका अभिप्राय पारलौकिक सत्ता से है जो प्रतीत में सत्य मालूम पड़ती है परन्तु बाद में उसका विरोध हो जाता है। और प्रकाश के आने पर वास्तविकता से अवगत हो जाते हैं तथा पूर्व का ज्ञान बाधित हो जाता है। इस ज्ञान के अंतर्गत कल्पना, भ्रम, स्वप्न आदि में प्रकट होने वाले अनुभव आते है। इस सत्ता का ज्ञान प्राप्त करने हेतु धर्म व अर्थ के पुरूषार्थ आवश्यक होते हैं। तथा ब्रह्म रूचि वाले आत्मिक विषय इस सत्ता के अंतर्गत अध्ययन किये जाते हैं।

2. व्यावहारिकी सत्ताः- इसका अभिप्राय उस सत्ता से है जो पदार्थ या वस्तु संसार की व्यवहार-दशा में सत्य प्रतीत होती है। यह व्यवहार रूप से दिखाई देने वाले पदार्थो में निहित होती है। परन्तु इन पदार्थों की सत्यता ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति पर नष्ट हो जाती है उससे पूर्व नहीं। इस सत्ता का ज्ञान प्राप्त करने के लिए धर्म, अर्थ, काम, पुरूषार्थ आवश्यक होते हैं और व्यावहारिक ज्ञान के विषय, निश्चित ज्ञान के विषय तथा बाह्य रूचि वाले विषय इस सत्ता के अंतर्गत अध्ययन किये जाते हैं।

3. पारमार्थिकी सत्ताः- यह सत्ता वास्तविक सत्ता है। ऐसी सत्ता विकास में बाधक नहीं होती यह लौकिक सत्ता भी कहलाई जा सकती है। भौतिक जगत में उपस्थित सांसारिक ज्ञान पाने हेतु अर्थ एवं काम के पुरूषार्थ इस सत्ता की प्राप्ति में सहायक होते हैं।

अतः वेदान्त की दृष्टि से पाठ्यक्रम में आत्मिक और व्यावहारिक विषयों का समावेश होना चाहिए। यदि पाठ्यक्रम रूचि और संस्कारों के अनुरूप बनाया जाए, तो भी उसमें पारमार्थिक व व्यावहारिक विषयों का समावेश होना चाहिए। इसका कारण यह है कि यदि कुछ बालक बाह्य रूचि वाले होते हैं तो कुछ आन्तरिक रूचि वाले होते हैं अतः वाह्य रूचि वालें के लिए व्यावहारिक विषय और आन्तरिक रूचि वालों के लिए पारमार्थिक विषयों की आवश्यकता है। इस प्रकार समस्त विषय वस्तु को विभिन्न आत्मिक व व्यावहारिक विषयों के अध्ययन द्वारा छात्र परा व अपरा अर्थात पारलौकिक व लौकिक जगत का ज्ञान प्राप्त करते थे। पाठ्यक्रम, विभिन्न ज्ञान, अनुभवों व क्रियाओं से युक्त था। संस्कारों से अभिवृद्धित था आध्यात्मिक पाठ्यचर्या, ब्रह्मचर्या से सम्बन्धित थी व लौकिक पाठ्यक्रम जगत या ईश्वर की लीला अभिव्यक्ति से सम्बन्ध रखती थी।

अपनी उन्नति जानिए Check Your Progress

प्रश्न 1 उपनिषदों के समान ब्रह्म का स्वरूप क्या बतलाया गया है?

प्रश्न 2 मोक्ष प्राप्ति का साधन क्या है ?

प्रश्न 3 वेदान्त आधारित है-

उपनिषदों पर, कथाओं पर, मान्यताओं पर, उपदेशों पर|

प्रश्न 4 वेदान्त का मुख्य विषय है

ज्ञान, कर्म, भक्ति, धर्म, वस्तु‘जीव’ और ‘ब्रह्म’

4.5 शिक्षण विधियाँ -

ज्ञान को छात्रों तक पहुँचाने के लिए विभिन्न शिक्षण विधियों का प्रयोग किया जाता रहा है। शंकराचार्य ने ज्ञान प्राप्ति की क्रिया का वर्णन ‘विवेक चूड़ामणि’ में किया है। जिसमें शिष्य में चार गुणों का होना आवश्यक बतलाया है। नित्यानित्य वस्तु विवेक, विरक्ति, संयम, कर्म व उपासना-इन चारों गुणों से युक्त होकर ही शिष्य वेदान्त-श्रवण का अधिकारी बन सकता है। पूछे गए प्रश्नों के उत्तर देने के लिए गुरू छात्र को ब्रह्म स्वरूप का यथार्थ ज्ञान कराने के लिए अध्यारोप विधि तथा अपवाद विधि का प्रयोग करता है।

अध्यारोप विधिः- इस विधि के अंतर्गत गुरू छात्र को जगत के भीतर से ब्रह्म के तत्व का अभ्यास कराता है। वह शिष्य को यह तथ्य बताता है कि-आत्मा ही शरीरर है, आत्मा ही मन है। आत्मा ही बुद्धि है, आत्मा ही समस्त पदार्थ है।

अपवाद विधिः- इस विधि में युक्ति के आधार पर यह सिद्ध किया जाता है कि आत्मा न तो शरीरर है, न मन है, न बुद्धि है। वह इन सबसे भिन्न है। इस प्रकार अपवाद विधि में आरोपित धर्म, गुणों या विषमताओं को धीरे-धीरे हटाया जाता है फिर हटाते-हटाते जो शेष रह जाता है, वही आत्मा का सच्चा स्वरूप या वास्तविक स्वरूप रह जाता है। यह दोनों विधियाँ एक दूसरे की पूरक हैं। गुरू इससे छात्र को ब्रह्म का यथार्थ ज्ञान कराता है। आज भी इसे बीजगणित की समस्याओं को हल करने लिए प्रयोग किया जाता है।

इन शिक्षण विधियों के अतिरिक्त कुछ अन्य शिक्षण विधियाँ भी प्रयोग में लायी जाती रही हैं जैसेः उपासना विधि, स्मरण विधि, स्वाध्याय विधि, उपदेश विधि, इन्द्रिय-प्रयोग विधि, नवधा भक्ति, सूत्र विधि इत्यादि।

उपासना विधिः- इस विधि में उप+आसन अर्थात शिष्य को गुरू के सानिध्य में निकट बैठ कर ज्ञानार्जन करना होता है। गुरू भी शिष्य की पात्रता को सुनिश्चित करके ज्ञान की गूढ़ बाते छात्र को प्रदान करता है जिन्हे शिष्य ज्यों की ज्यों ग्रहण कर लेता है।

स्मरण विधि:- ज्ञान के गूढ़ श्लोक, सूत्र आदि बार-बार दोहराये जाने से शिष्य उसे रट लेता है व व्यवहार में दोहराते रहने से स्वतः ही ग्रहण कर लेता है। निश्चित समय भर, निश्चित मात्रा में एवं निश्चित क्रम में प्रदान करने से शिष्यों की स्मरण शक्ति विकसित हो जाती है।

स्वाध्याय विधि:- प्रायः गुरू की अनुपस्थिति में एवं दूरस्थ स्थानों पर स्वाध्याय विधि ही व्यक्ति के स्वभाव को नियन्त्रित करती है। वेदान्तवादी इस विधि को अत्यन्त महत्वपूर्ण मानते हैं क्योंकि यही विधि अद्वैत दर्शन का सार है। व्यक्ति स्वयं ही स्वाध्याय द्वारा समस्त ज्ञान को पाने में सक्षम है। भाषा का ज्ञान होने पर केवल स्वाध्याय से ही व्यक्ति आत्मोत्थान कर सकता है।

उपदेश या व्याख्यान विधि:- वेदान्त में शिष्यों को प्रेरित करने हेतु व्याख्यान प्रणाली एक प्रभावशाली उपकरण माना गया है। इससे ज्ञान के कठिन प्रकरण एवं बिन्दु भली प्रकार स्पष्ट हो जाते हैं। विषय सरल बनाने हेतु रूचि पूर्ण व्याख्यान दिए जाने चाहिए। इसमें केवल श्रवणेन्द्रिय का ही प्रयोग होने से प्राप्त ज्ञान शीघ्र ही विस्मृति न हो जाए, इसलिए प्रायः द्रश्य उपकरणों के माध्यम से दिए गये व्याख्यान या उपदेश अब अधिक प्रचलन में लाये जाने लगे हैं। तर्क द्वारा उपदेश विधि आजकल बहु प्रचलित है।

इन्द्रिय-प्रयोग विधि:- यह विधि आधुनिक प्रयोगशाला विधि के समान है, इस विधि द्वारा छात्रों को अधिक से अधिक कार्य करते हुए अनुभवों द्वारा ज्ञान को प्राप्त करना होता है। गुरू के निर्देश में शिष्य दैनिक जीवन के सभी कार्यों को, इस दृष्टिकोण से करता है ताकि उसे प्राप्त ज्ञान सुदृढ़ व स्थायी रूप से ग्रहण करने के अवसर मिल सकें।

नवधा भक्ति विधि:- माया को दूर रखने एवं ब्रह्म ज्ञान को प्राप्त करने के लिए रामानुजाचार्य एवं वल्लमाचार्य ने नवधा भक्ति प्रणाली पर जोर दिया है। जिसमें नौ प्रकारों में से कोई भी विधि अपनी पात्रता के आधार पर किसी भी विधि से ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। प्रत्येक में रूचि व समर्पण के भाव होने से ज्ञानी बन जाने में कोई सन्देह नही रह जाता।

> श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवनम्।
>
> अर्चन, वन्दन, दास्यं, सख्यं, आत्मनिवेदनम्

इस श्लोक में क्रमशः शुकदेव, मीरा, नारद, हनुमान, शबरी, गरूड़, तुलसी, गोपियाँ एवं अजुर्न द्वारा की गई नौ प्रकार की भक्ति का वर्णन है जो आत्माज्ञानी को ब्रह्मज्ञान प्रदान करने में सहायक हुई हैं।

सूत्र विधि:-वृहत ज्ञान को प्रायः कुछ सूत्रों के रूप में सरलता से ग्रहण कर लिया जाता है। जब विस्तार से स्मरण कर पाना कठिन हो जाता है तो ज्ञान को स्मरण करने के लिए कुछ सूत्रों (formula) व चिह्नों का प्रयोग करना सूत्र विधि के अंतर्गत आता है। सन्धि, समास, अंलकार आदि

के व्याकरण सूत्र, दार्शनिक सूत्र‘तत्वमसि’, अहं ब्रह्मस्मि आदि से ज्ञान के वृहद स्वरूप को जान लिया जाता है। श्वेताश्वर उपनिष्द में इनके अनेको उदाहरण हैं।

लाक्षणिक विधिः- यह लक्षणों पर आधारित है। कई ज्ञान के प्रत्यय पहेलियों द्वारा आसानी से ग्रहण कर लिये जाते हैं। प्राचीन कथन अतिरोचक ढंग से कई प्रत्ययों को स्पष्ट करते हैं। जैसे आकाश का प्रत्यय यह कहकर सुन्दरता से स्पष्ट हो जाता हैः-

‘‘एक थाल मोतियों से भरा, सब के सिर पर औंधा धरा।’’

इसी प्रकार‘सत्ता’ को दर्शाने हेतु; एक पहिया लक्षण दर्शाता है जिसके टायर में तीन गुण व 16 अर्रे शासक के 16 गुणों को दर्शाता है। इसी का रूप आज हम अशोक चक्र के 24 अर्रे जो 24 घण्टे की निरन्तर गति विधियाँ दर्शाते हैं। इस प्रकार वेदान्त में लक्षणों द्वारा अनेकों प्रत्ययों को स्पष्ट करने की अवधारणा प्रचलित थी।

4.5.1 शिक्षक एवं वेदान्तः-

शंकराचार्य के अद्वैत वेदान्त के अनुसार शिष्यों को ब्रह्मज्ञान प्रदान करने के लिए शिक्षक ब्रह्मज्ञानी होना चाहिए। संसार में बहुत ही कम शिक्षक इस स्तर तक उठ सके हैं। शिष्यों को ब्रह्मज्ञान प्रदान करने के लिए ब्रह्मज्ञानी होने के साथ-साथ उसे शिक्षक धर्म का ज्ञाता भी होना चाहिए। अतः व्यावहारिक दृष्टि से ऐसे शिक्षकों की आवश्यकता होती है जो ज्ञान दान के साथ-साथ बालक के व्यक्तित्व का भी आदर करे और स्वयं भी अध्ययन-अध्यापन में रत रहे। शिक्षक ही बालक को अज्ञान के अन्धकार से ज्ञान के प्रकाश की ओर ले जाने वाला होता है। इसीलिए उसे अत्यन्त आदर व सम्मान दिया जाता है। शिक्षक विद्यार्थी से प्रेम करता है और साथ-साथ उसके आचरण व व्यवहार पर नियन्त्रण भी रखता है। पिता समान उसकी रक्षा भी करता है।

4.5.2 बालक एवं वेदान्तः-

अद्वैत वेदान्त के अनुसार प्रत्येक बालक अनन्त ज्ञान के भंडार हैं। तथा उनमें जो शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक विभिन्नताएँ दिखाई देती है वे उनके कर्म जनित फलों की परिणाम हैं। यह विभिन्नताएँ उनके बाह्य लक्षण है न कि उनके स्वरूप लक्षण। स्वरूप लक्षण की दृष्टि से वे सब समान है। सब विभिन्नताएं मिथ्या हैं वे आत्मिक रूप से समान हैं। फिर भी जब तक वे सब व्यावहारिक जगत में निवास करते हैं, तब तक जगत व उनका शरीरर सत्य कहा जाएगा और यदि उन्हें सत्य रूप में स्वीकार किया जाता हैं तो फिर इनके व्यक्तित्व के निम्न पक्षों पर ध्यान देना आवश्यक होगाः-

1. बालक का नाम रूप शरीरर।
2. बालक का आत्मिक अंग

3. भौतिक व सामाजिक वातावरण

जिसके द्वारा बालक शरीरर व मन प्रभावित होता है। विद्यार्थी के लिए लगन व श्रम आवश्यक है। उसे विद्यार्जन के साथ चरित्र विकास करना आवश्यक है। बुद्धि का उचित विकास बिना चारित्रिक विकास के सम्भव नहीं है। इसके लिए गुरू सेवा द्वारा गुणों का विकास होना अनिवार्य है। विद्यार्थी को इन्द्रिय-संयम, ब्रह्मचर्य एवं विद्यार्जन के लक्ष्यों को प्राप्त करना चाहिए। विद्या से तात्पर्य-छात्र को ब्रह्मज्ञान प्राप्त करना है। ज्ञान की वेदान्त में ''तीसरी आँख'' कहा गया है। यह उसे सब कार्यो के करने की सूझ देता है।

4.5.3 अनुशासन एवं वेदान्तः-

वेदान्तिक अनुशासन में आत्मसंयम अनिवार्य है। आत्मसंयम में इन्द्रियों, मन, बुद्धि पर नियन्त्रण किया जाता है।

शंकराचार्य योगाभ्यास द्वारा इन्द्रियों को नियन्त्रित करने पर बल देते हैं। शिष्य योगाभ्यास के माध्यम से एकाग्रचित होकर ज्ञान प्राप्ति करने में समर्थ होगा। साथ ही व नैतिक जीवन के लिए संयम, दान, त्याग, तपस्या आदि के निर्वाह पर बल देते हैं। इन्द्रियों को अन्य विषयों से खींचकर ज्ञानार्जन के लिए केन्द्रित किया जाता है। यह भी दमनात्मक सिद्धान्त व अनुशासन का एक स्वरूप है। वेदान्त दर्शन में सत्यम्-ज्ञानम्-आनन्दम् को जीवन के लक्ष्य के रूप में स्वीकार किया जाता है। अर्थात सत्य का ज्ञान प्राप्त करके आनन्द की अनुभूति होती है। सत्यं-शिवं-सुन्दंर की प्राप्ति इसे ही कहते हैं। शिक्षक द्वारा अनुशासन से आनन्द की अनुभूति कराना प्रभावात्मक अनुशासन द्वारा सम्भव हो सकता है।

अपनी उन्नति जानिए Check your Progress

प्रश्न 1 शंकराचार्य योगाभ्यास द्वारा किसको को नियन्त्रित करने पर बल देते हैं।

प्रह्न 2 ज्ञान को वेदान्त में ''तीसरी आँख'' क्यो कहा गया है?

प्रह्न 3 ब्रह्म सत्य व जगत मिथ्या यह कथन किसका है?

दयानन्द, शंकराचार्य, से रामानुजाचार्य, स्वामी रामकृष्ण परमहंस

4.6 वेदान्तीय शिक्षा की समालोचना (Criticism of Vedantic Education)

शंकराचार्य की अद्वैत विचार धारा जो वेदान्तीय शिक्षा का आधार है वह यह दर्शाती है कि ब्रह्म व ईश्वर में कोई भेद नहीं, जीव व ब्रह्म में कोई भेद नहीं है, जीव ब्रह्म ही है, ब्रह्म सत्य है, जगत मिथ्या

है। आज के भौतिकतावादी संसार में यह आदर्शवादी सत्य मानव व्यवहार के प्रति सत्यता नहीं दर्शांता। आज प्रयोजन वादी विचार धारा मनुष्य को आर्थिक एवं भौतिक विकास के प्रति प्रोत्साहित कर रही है। इसके विपरीत वेदान्तीय दृष्टिकोण जो ब्रह्म ज्ञान के लिए, मोक्ष प्राप्ति के लिए प्रेरणा है, आज के संदर्भ में तर्क संगत नहीं प्रतीत होता।

दार्शनिक तर्क के आधार पर प्रत्यक्ष तथ्यों को ही वास्तविक ज्ञान माना जाता है। ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्राप्त ज्ञान ही तथ्यात्मक, वास्तविक, प्रत्यक्ष ज्ञान सर्वमान्य है किन्तु शंकर का अमूर्त, परा ज्ञान, ब्रह्म ज्ञान ही पूर्ण है। यह ज्ञानाधारित विचार धारा जनसाधारण की समझ से बाहर है। अतः यह विचार धारा समाज के एक विशिष्ट वर्ग तक ही सीमित रह गयी।

वेदान्तीय शिक्षा का महत्व - वेदान्तीय ज्ञान सातवीं शताब्दी में जन्मा ज्ञान है जो शंकराचार्य, रामानुजाचार्य मध्वाचार्य, निम्बकाचार्य के ब्रह्म विचारों पर आधारित है। इस ज्ञान का महत्व निम्न बिन्दुओं के आधार पर समझा जा सकता है।

1. यह शिक्षा ज्ञान के सभी पक्षों से सम्बन्धित है। इसमें आत्मा, ब्रह्म,जीव को समानता का स्तर दिया गया है।

2. मानव जीवन को पंचतत्व से (आकाश, वायु, अग्नि, जल एवं पृथ्वी) विकसित जीव माना गया है जो अपना क्रमिक विकास करते हुए चरम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति का प्रयास करता रहता है।

3. पाँचों तत्वों में से प्रत्येक तत्व की अधिकता व न्यूनता के आधार पर तीनों गुणों का विकास होता है जिसके आधार पर सतोगुण, रजोगुण व तमोगुण की प्रकृतियाँ विकसित होती हैं। यही वृत्तियाँ जगत मिथ्या, सत्य-मिथ्या व जगत सत्य की विचार धारा दर्शाती हैं इसी के आधार पर मनुष्य अपना व्यवहार सुनिचित करता हैं।

4. वेदान्त दर्शन जिसका आधार वेद तथा उपनिषद् हैं, केवल सैद्धान्तिक दर्शन नहीं है। यह एक सम्पूर्ण एवं आदर्श मानव बनने के लिए पथ प्रदर्शिका प्रदान करता है। यह पथ प्रदर्शिका व्यक्ति को यह निर्देश देती है कि वह क्या सीखे व कैसे उसे सीखे। एक व्यक्ति जो उन निर्देशों का पालन करता है उसे आदर्श शिक्षित मानव कह सकते हैं। अतः वेदान्त दर्शन मानव निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

5. वेदान्त दर्शन इस बात पर बल देता है कि संसार में प्रत्येक वस्तु आत्मा है। इस मान्यता के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति नाम व रूप को त्याग कर आत्मानुभूति प्राप्त करने की चेष्टा करता है। इस प्रकार जाति पाँति की रूढ़िवादिता से ऊपर उठ जाता है। सबसे समानता का व्यवहार करता है। परस्पर भेद-भाव मिट जाने से ईर्ष्या, द्वेष व मन मुटाव की भावना

6.शिक्षक का पथ प्रदर्शक एवं परामर्श दाता का स्परूप एक आदर्श अभिभावक की भूमिका भी निभाता है जो बालक के उचित विकास के लिए सकारात्मक भूमिका का कार्य करता है।

अतः मनुष्य का प्रयास होना चाहिए कि वह बुद्धि, विवेक की देख रेख में कार्य करें। वृत्ति या मन का बुद्धि के संक्रमण पथ से गुजरते हुए विवेक में रूपान्तरण होने से आत्म प्रकाश होगा। इससे वृत्ति की पाश्विकता एवं बुद्धि की मानवीयता, विवेक की दिव्यता में रूपान्तरित हो सकेगी। तभी ''तमसो-मा-ज्योतिर्गमय'' अर्थात वृत्ति की सुप्तावस्था से निकलकर विवेक के प्रकाश की ओर अग्रसर हो सकेंगे। आचार्य श्रीराम शर्मा के अनुसार इस आत्मिक प्रकाश को प्राप्त करने के लिए मानव को ईमानदारी , समझदारी, जिम्मेदारी एवं बहादुरी के गुणों का विकास करना होगा, जिनके बल पर हम विश्व के अनमोल प्राणी बन कर संसार में आदर्श जीवन जी कर मोक्ष को प्राप्त कर सकेगें। यही वेदान्ती शिक्षा का मुख्य उद्देश्य है।

4.7 कठिन शब्द (Difficult Words)

वेदान्त दर्शन- वेदान्त दर्शन की प्रमुख विषय वस्तु'जीव' और 'ब्रह्म' है। दोंनो के सम्बन्धों को विभिन्न प्रकार से प्रस्तुत किया गया है। शंकर के मतानुसार जीव व ब्रह्म दो नहीं है वे वस्तुतः अद्वैत है।

स्मरण विधिः- ज्ञान के गूढ़ श्लोक, सूत्र आदि बार-बार दोहराये जाने से शिष्य उसे रट लेता है व व्यवहार में दोहराते रहने से स्वतः ही ग्रहण कर लेता है। निश्चित समय भर, निश्चित मात्रा में एवं निश्चित क्रम में प्रदान करने से शिष्यों की स्मरण शक्ति विकसित हो जाती है।

4.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer of Practice Questions)

भाग एक

उत्तर 1 वेदान्त दर्शन की प्रमुख विषय वस्तु'जीव' और 'ब्रह्म' है।

उत्तर 2 बदरायण का ब्रहमसूत्र चार आध्यायों में बँटा है।

उत्तर 3 रामानुजाचार्य

उत्तर 4 बह्म

भाग दो

उत्तर 1 उपनिषदों के समान ब्रह्म का स्वरूप सत् चित-आनन्द बतलाया गया है।

उत्तर 2 मोक्ष प्राप्ति का साधन ब्रह्म ज्ञान है।

उत्तर 3 उपनिषदों पर |

उत्तर 4 वस्तु‘जीव’ और ‘ब्रह्म’

भाग तीन

उत्तर 1 शंकराचार्य योगाभ्यास द्वारा इन्द्रियों को नियन्त्रित करने पर बल देते हैं।

उत्तर 2 ज्ञान की वेदान्त में ‘‘तीसरी आँख’’ कहा गया है। यह उसे सब कार्यो के करने की सूझ देता।

उत्तर 3 शंकर के अद्वैत वेदान्त

4.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (References)

1. पाण्डे, (डॉ) रा. श. *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*. आगरा: अग्रवाल प्रकाशन.

2. सक्सेना, (डॉ) सरोज. *शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार*. आगरा: साहित्य प्रकाशन.

3. मित्तल, एम.एल. (2008). *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*. मेरठ: इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस.

4. शर्मा, रा. ना. व शर्मा, रा. कु. (2006). *शैक्षिक समाजशास्त्र*. नई दिल्ली: एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स.

5. सलैक्स, (डॉ) शी. मै. (2008). *शिक्षक के सामाजिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्षय*. नई दिल्ली: रजत प्रकाशन.

4.10 उपयोगी सहायक ग्रन्थ (Useful Books)

1. पाण्डे, (डॉ) रा. श. *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*. आगरा: अग्रवाल प्रकाशन.

2. सक्सेना, (डॉ) सरोज. *शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार*. आगरा: साहित्य प्रकाशन.

3. मित्तल, एम.एल. (2008). *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*. मेरठ: इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस.

4. शर्मा, रा. ना. व शर्मा, रा. कु. (2006). *शैक्षिक समाजशास्त्र*. नई दिल्ली: एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स.

5. सलैक्स, (डॉ) शी. मै. (2008). *शिक्षक के सामाजिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्षय*. नई दिल्ली: रजत प्रकाशन.

6. गुप्त, रा. बा. (1996). *भारतीय शिक्षा शास्त्र*. आगरा: रतन प्रकाशन मंदिर.

4.11 दीर्घ उत्तर वाले प्रश्न (Long Answer Type Questions)

प्रश्न 1. अद्वैत वेन्दान्त के स्वरूप को स्पष्ट कीजिए, अद्वैत, द्वैत और विशिष्टाद्वैत का अन्तर समझाइए।

प्रश्न 2. विशिष्टाद्वैत से आप क्या समझते है ? वेदान्त दर्शन के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य बताइएँ।

प्रश्न 3. वेदान्त के सिद्धांत क्या हैं ? अध्ययन-अध्यापन में उनकी क्या उपयोगिता है?

प्रश्न4. वेदान्त दर्शन की शिक्षा से बालक के जीवन में कौन सी विशेषताएँ विकसित हो सकेंगी?

प्रश्न 5 वेदान्त के अनुसार शिक्षण की विधियाँ बताइए।

इकाई- 5: उपनिषद (Upanishad)

5.1 प्रस्तावनाः-
5.2 उद्देश्यः-
5.3 उपनिषदों का उदभव एवं विकासः-
  5.3.1 उपनिषदों के अनुसार शिक्षा का अर्थ-
  5.3.2 उपनिषदों के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य –
  5.3.3 उपनिषदों की विषय वस्तुः-
  5.3.4 उपनिषद् (वेदान्त) के अनुसार पाठ्क्रमः-
अपनी उन्नति जानिए Check Your Progress
5.4 उपनिषदों के अनुसार शिक्षण विधियॉं-
  5.4.1 अधिगम प्रक्रिया (The Learning Processes)-
  5.4.2 शिक्षक की भूमिका (Role of Teacher)-
  5.4.3 विद्यार्थी (Student)-
5.5 उपनिषदीय शिक्षा में अनुशासन प्रणाली (Concept go discipline in Upanishad Education)-
  5.5.1 वेद और उपनिषद् में अन्तरः-
  5.5.2 उपनिषदों में परलोक का ज्ञान-
  5.5.3 उपनिषदों के शैक्षिक दृष्टिकोण-
  5.5.4 उपनिषदीय शिक्षा की आलोचना (Criticism of Up Upanishad Education)-
5.6 सांराश (Summary) –
5.7 शब्दावली (Vocavolary)
5.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर Answer of Practice Question
5.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची Reference Books
5.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री (Useful Books)

5.1 प्रस्तावना

विश्व साहित्य की प्राचीनतम रचना वेद है। वेद भारतीय दर्शन की निधि है। डॉ. राधाकृष्णनन के अनुसार ‘वेद मानव मन से प्रादुर्भूत ऐसे नितान्त आदिकालीन प्रमाणिक ग्रन्थ हैं, जिन्हें हम अपनी निधि समझते हैं।’ इन्हीं वेदों के चार अंग है, जिन्हें हम क्रमशः संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक व उपनिषद् कहते हैं। ‘संहिता’ में मंत्र है जो पद्य मे हैं व देवताओं की स्तुतियॉं व्यक्त करते हैं। ‘ब्राह्मण’ में यज्ञ की विधियॉं वर्णित है, जो गद्य में व्यक्त है। तत्पश्चात् ‘आरण्यक’ हैं इनमें वन में निवास करने वालों के लिए उपासनाए है। आरण्यक के बाद शुद्ध दार्शनिक विचारों को उपनिषदों में व्यक्त किया गया है। उपनिषद दर्शन से भरपूर हैं, व इन्हे ‘ज्ञानकाण्ड’ भी कहा जाता है। कहीं-कहीं इन्हें वेदान्त भी कहा गया है क्योंकि ये वेद के अन्तिम अंग है।

उपनिषद शब्द उप+नि+सद् धातुओं से मिलकर बना है, जिसका अर्थ हैः ‘गुरू के पास शिष्य का बैठना’ चूँकि गुरू के पास गूढ़ ज्ञान को गुप्त रूप से वन में ही सिखाया जाता था, इसलिए इनका नाम आरण्यक भी है। यह गूढ़ज्ञान ब्रह्म या आत्मा का गूढ़ ज्ञान है। इसीलिए उपनिषद वस्तुतः अध्यात्म विद्या के मानसरोवर माने जाते रहे है।

5.2 उद्देश्यः-

1. इस अध्याय को पढ़कर आप वेदों व उपनिषदों के संबंध से अवगत हो सकेंगे।
2. उपनिषदों के उद्भव, विकास एवं प्रमुख उपनिषदों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
3. जीव जगत व ब्रह्म की स्थिति समझ सकेंगे।
4. उपनिषदों में वर्णित तत्व ज्ञान को समझ सकेंगे।
5. शिक्षा के संदर्भ में आत्मबोध, आत्मज्ञान, आत्मनिर्माण, आत्मविकास व आत्मसाक्षात्कार की अनुभूति कर सकेंगे।
6. उपनिषदों की विषेषताओं व उपयोगिताओं से परिचित हो सकेंगे।
7. उपनिषदों में प्रतिपादित शैक्षिक दृष्टिकोण, शिक्षण-प्रणाली के विभिन्न अंग तथा शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया से अवगत हो सकेंगे।

5.3 उपनिषदों का उदभव एवं विकासः-

वेदों के काल से बौद्ध तथा जैन काल (1600 ई.पू. से 600 ई.पू.) तक का मध्य काल उपनिषदों की रचना का काल है। आरम्भिक दस उपनिषदों को प्रामाणिक एवं प्राचीन उपनिषद् बताया गया है। ये हैं - ईष, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरैय, छान्दोग्य, वृहदारण्यक आदि। इसके अतिरिक्त कौशीतकि, श्वेताश्वर, मैत्रायणी भी तीन प्राचीन उपनिषद् माने गये हैं। इस प्रकार प्रमुख 13 उपनिषद है। अन्य उपनिषद् जिनकी संख्या कुल मिलाकर अब 108 है, इनका संबंध वेद से न होकर तंत्र से है। प्रसिद्ध जर्मन विद्वान डायसन ने उपनिषदों के विकास क्रम को ध्यान में रखकर इन्हें चार भागों में बॉटा है-

1. प्राचीन गद्य उपनिषद- जिनमें वृह्दारण्यक, छान्दोग्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, कौशीतकि व केन उपनिषद आते हैं।

2. प्राचीन पद्य उपनिषद्- इसमें कठोपनिषद्, ईश, श्वेताश्वर, महानारायण उपनिषद सम्मिलित है।,

3. बाद के पद्य उपनिषद्- प्रश्न, मैत्रायणी और माण्डूक्य उपनिषद सम्मिलित हैं।

4. अथर्वद्य उपनिषद्- सामान्य उपनिषद्, योग उपनिषद्, सांख्य-वेदान्त उपनिषद्, शैव उपनिषद्, वैष्णव उपनिषद् एवं शाक्त उपनिषद् सम्मिलित हैं।

वैसे उपनिषद् वाक्य महाकोष में 232 उपनिषदों की संख्या बताई गई है, परन्तु इन सबकी केवल नामावली दी है, विस्तृत विवरण नहीं दिया गया है। अभी तक 108 प्रामाणिक उपनिषदों की सूची उपलब्ध है। विभिन्न उपनिषदों के पाश्चात्य विचारकों ने समय-समय पर प्रेरणा प्राप्त की है। शोपनहावर (Schopenhour) ने उपनिषद की महत्ता के बारे में कहा है, ^^ In the whole world, there is no study so beneficial and so elevating as that of the upnishad. It has been the solace of my life, it will be the seduce of my death ** अर्थात् समस्त संसार में उपनिषदों के समान अन्य कोई अध्ययन इतने सुन्दर व स्वोत्थान करने वाले नहीं हैं। यह मेरे जीवन में सान्तवना प्रदान करते रहे हैं, यही मेरी मृत्यु में भी सान्तवना देगें। भारतीय मनीषियों महात्मा गॉधी, रवीन्द्रनाथ टैगोर, अरविन्द, विवेकानन्द, राधाकृष्णन्, लोकमान्य तिलक आदि ने उपनिषदों से ही प्रेरणा ली है। विभिन्न उपनिषद अपने विभिन्न रूपों में ज्ञान के भण्डार हैं, जो अध्यात्मवादी दर्शन के सागर हैं। इन्हीं के आधार पर कई रूपों में अध्यात्मवादी धारा प्रवाहित होती रही है व होती रहेगी और वर्तमान व भविषय के मानव जीवन को प्रभावित करती रहेगी।

सन् 1640 में दाराशिकोह ने उपनिषदों की महिमा को सुनकर काशी से पण्डितों को बुलवाया और उनकी सहायता से 50 उपनिषदों का फारसी में अनुवाद किया। अकबर के समय में भी कुछ उपनिषदों का अनुवाद हुआ था। फारसी भाषा के अतिरिक्त लैटिन भाषा में एक्वेटिल ड्यूप्रेम

(Equetil Duperrom) द्वारा पुनः अनुवाद हुआ जो OUPNEKHAT नाम से प्रकाशित हुआ। सन् 1944 में बर्लिन में इनके महत्व को स्वीकारा गया। इन्हें मानव चेतना का सर्वोच्च फल बताया है। वेदज्ञ मैक्समूलर(Maxmuller) ने एक स्थान पर लिखा है कि यदि शोपनहावर के इन शब्दों के लिए किसी समर्थक की आवश्कता हो तो मैं अपने जीवनभर के अध्ययन के आधार पर प्रसन्नता पूर्वक अपना समर्थन दूगा। मैक्समुलर की पुस्तक में लिखा है ‘‘ मृत्यु के भय से बचने, मृत्यु के लिए पूरी शक्ति से तैयारी करने और सत्य को जानने के इच्छुक जिज्ञासु के लिए उपनिषदों के अतिरिक्त और कोई श्रेष्ट मार्ग मेरी दृष्टि में नहीं है।’’

5.3.1 उपनिषदों के अनुसार शिक्षा का अर्थ-

उपनिषद् में शिक्षा का अर्थ ‘विद्या’ के रूप में लिया गया है। विद्या को आत्मानुभूति का साधन माना गया है। (विद्या अमृतमष्नुते) आत्मानुभूति के साधन- ज्ञान, कर्म व योग है। अतः वास्तविक शिक्षा हमें ज्ञान प्राप्त करने, कर्म करने व ईष योग के लिए प्रशिक्षित करती है व आनन्दानुभूति प्राप्त करने के योग्य बनाती है।

5.3.2 उपनिषदों के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य -

विभिन्न उपनिषद् में शिक्षा के उद्देश्यों का अलग-अलग ढंग से वर्णन किया गया हैं-

1. शिक्षा का पहला उद्देश्य भौतिक जीवन की प्राप्ति है। माना गया है कि शिक्षा से असत्य का नाश होता है और आनन्द की प्राप्ति होती है। आनन्द ब्रह्म या आत्मा का शाश्वत रूप है। आनन्द का प्रथम और निम्नतम लक्ष्य ‘अन्नमय’ है, अर्थात् जीवन के भौतिक पक्ष की प्राप्ति आनन्द का प्रारम्भिक लक्षण है।

2. शिक्षा की प्राप्ति स्वस्थ शरीरर के निर्माण से संबंधित है। स्वस्थ शरीरर में प्राण ही वह शक्ति है, जिसके द्वारा वनस्पति तथा प्राणी जगत श्वास लेता है। यह प्राणमय स्वरूप है।

3. शिक्षा का उद्देश्य बालक का मानसिक विकास करना है। मानव जाति अन्य जीवों से उच्च मानी गई है, क्योंकि उसमें ‘मनस’ है। वह चिन्तन/विचार कर सकती है। यह शिक्षा का मनोमय रूप है।

4. चौथा उद्देश्य बालक में अच्छाई-बुराई में अन्तर करने की समझ पैदा करना है, अर्थात् बुद्धि का सही प्रयोग कर सकना है। यह विज्ञानमय रूप कहा गया है।

5. शिक्षा का पॉचवा उद्देश्य आत्मानुभूति है, अर्थात् आत्मा या आनन्द का सर्वोच्य स्थान हैं। यह वह स्तर है, जहॉ व्यक्ति को ज्ञाता, ज्ञेय तथा ज्ञान में समस्त भेदों का अन्तर समाप्त हो जाता है। यह छात्र की आत्मा का अन्तिम स्वरूप ‘आनन्दमय’ है। मोक्ष प्राप्ति ही शिक्षा का पूर्ण उद्देश्य है (सा विद्या या विमुक्तये)।

इन उद्देश्यों के अनुसार उपनिषदीय शिक्षा का छात्र एक ऐसा व्यक्ति है, जिसे जीवन पर्यन्त ज्ञान प्राप्त करने की जिज्ञासा है। वह ज्ञान प्राप्ति हेतु एक उपयुक्त गुरू की खोज में रहता है। ज्ञान प्राप्ति के लिए कोई आयु सीमा नहीं है। जीवन के किसी भी स्तर पर ज्ञान प्राप्त करने की लालसा उत्पन्न हो सकती है। ज्ञान प्राप्ति का समय नियत नहीं है, हालाँकि कुछ शिष्य वास्तविक ज्ञान प्राप्ति या आनन्दानुभूति कम प्रयासों से तथा कम समय में कर लेते हैं, जबकि कुछ अन्य विद्यार्थी सतत् प्रयासों द्वारा अधिक अवधि में प्राप्त करते हैं।

5.3.3 उपनिषदों की विषय वस्तुः-

ब्रह्म विचार: उपनिषदों के अनुसार ब्रह्म ही वह परम सत्ता या तत्व है जिससे विश्व की उत्पत्ति होती है व अन्त में विश्व ब्रह्म में विलीन हो जाता है। ब्रह्म के दो रूप उपनिषदों में वर्णित है- परब्रह्म और अपरब्रह्म। परब्रह्म अमूर्त है जबकि अपरब्रह्म मूर्त है। परब्रह्म निर्गुण है, स्थिर है, जबकि अपरब्रह्म सगुण व अस्थिर है। परब्रह्म की व्याख्या 'नेति-नेति' कहकर की गई है, जबकि अपरब्रह्म की व्याख्या 'इति-इति कहकर की गई है। फिर भी देखा जाए तो दोनों ही ब्रह्म के दो पक्ष है। ब्रह्म नित्य व शाश्वत है। वह काल के अधीन नहीं है। ब्रह्म की विशेषताओं से परे है। अर्थात् वह विश्व में व्याप्त भी है और विश्व से परे भी है। वह उत्तर, पूर्व, पश्चिम, दक्षिण किसी भी दिशा में सीमित नहीं है। वह दिक् से परे होने पर भी दिक् का आधार है।

ब्रह्म को ज्ञान का अनन्त आधार कहा गया है। ब्रह्म ज्ञान का विषय नहीं है पर सभी उपनिषदों का लक्ष्य है। ब्रह्मज्ञान के बिना कोई भी ज्ञान संभव नहीं। हालाँकि ब्रह्म को निर्गुण कहा गया है पर ब्रह्म गुणों से शून्य नहीं है। ब्रह्म के तीन स्वरूप लक्षण बतलाए गए हैं। विशुद्ध सत्, विशुद्ध चित् और विशुद्ध आनन्द। परन्तु यह सत्-चित्-आनन्द व्यावहारिक जगत के सम्-चित्-आनन्द से परे है। अतः स्वभावतः ब्रह्म को 'सच्चिदानन्द' कहा गया है। जीव और आत्मा: आत्मा उपनिषदों के अनुसार परम तत्व है। आत्मा और ब्रह्म अभिन्न है। शंकराचार्य ने भी आत्मा व ब्रह्म को एक माना है। 'तत्वमसि' (वही तू है) व 'अहं ब्रह्मास्मि' (मैं ब्रह्म हूँ) कह कर सम्बोधित किया गया है। आत्मा मूल चैतन्य है, वह ज्ञाता नहीं, ज्ञेय है। आत्मा जरा से मुक्त है, रोग व मृत्यु से मुक्त है, पाप, शोक, भूख, प्यास से मुक्त है। प्रजापति से प्रेरणा पाकर, देवताओं के प्रतिनिधि इन्द्र तथा दानवों के प्रतिनिधि विरोचन बत्तीस वर्ष की कठिन तपस्या के बाद जब प्रजापति के पास आए तो प्रजापति ने उपदेश देते हुए कहा कि 'जल मे झॉकने पर या दर्पण में देखने पर जो पुरूष दिखाई देता है, वही आत्मा है' तो प्रजापति ने अन्त में शंका निवारण हेतु उपदेश दिया 'वास्तविक आत्मा आत्म चैतन्य, साक्षी, स्व प्रकाश है। यह स्वतः सिद्ध है। वह प्रकाशों का प्रकाश है।'

उपनिषदों के अनुसार जीव और आत्मा में भेद है। जीव वैयक्तिक आत्मा और आत्मा परमात्मा है। जीव और आत्मा एक ही शरीरर में अन्धकार व प्रकाश में निवास करते हैं। जीव कर्मफल भोगता है, सुख-दुःख अनुभव करता है।। अज्ञान के फलस्वरूप उसे दुःख व बंधन का सामना करना पड़ता है।

आत्मा ज्ञानी हैं, कर्म और पाप पुण्य से परे है। आत्मा का ज्ञान हो जाने से जीव दुःख और बंधन से छूट जाता है। उपनिषदों में जीवात्मा के स्वरूप पर भी प्रकाश डाला गया है, वह शरीरर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि से अलग तथा परे है। उसका पुनर्जन्म होता है। पुनर्जन्म कर्मों के अनुसार नियमित होता है। जीवात्मा की चार अवस्थाए भी उपनिषदों में वर्णित हैं- जागृत, स्वप्न, सुशुप्ति व तुरीयावस्था। जागृत अवस्था में जीवात्मा विश्व कहलाता है। वह बाह्य इन्द्रियों द्वारा सांसारिक विषयों का भोग करता है। सुशुप्ति अवस्था में जीवात्मा प्रज्ञा कहलाता है, जो शुद्ध चित्त के रूप में विद्यमान रहता है। आन्तरिक वस्तुओं को नहीं देखता, तुरीयावस्था में जीवत्मा को आत्मा कहा जाता है। वह शुद्ध चैतन्य है व यही ब्रह्म है। माण्डूक्य उपनिषद् में इन अवस्थाओं का विस्तार से उल्लेख हुआ है।

जीव के पॉच कोषों का वर्णन तैत्तिरीय उपनिषद् में किया गया है-

अन्नमयकोष- स्थूल शरीरर को व्यक्त करता है व अन्न पर आश्रित रहता है।

प्राणमयकोष- अन्नमय कोष के अन्दर है। यह प्राण पर आश्रित है व शरीरर को गति देने वाली शक्ति है।

मनोमयकोष- प्राणमयकोष के अन्दर है। मन पर निर्भर है और इसमें स्वार्थमय इच्छाए इच्छाऐ है।

विज्ञानमयकोष- मनोमयकोष के अन्दर है। बुद्धि पर आश्रित है। इसमें ज्ञाता व ज्ञेय के भेद का ज्ञान है।

आनन्दमयकोष- विज्ञानमय कोष के भीतर है, यह ज्ञाता व ज्ञेय के भेद से शून्य चैतन्य है। आनन्द का निवास है।

आनन्दमयकोष ही आत्मा का वास्तविक स्वरूप है इसी कारण से आत्मा को सच्चिदानन्द भी कहा गया है। आत्मा शुद्ध सत्, चित् और आनन्द का सम्मिश्रण है। कठोपनिषद् में आत्मा की व्याख्या के लिए एक सुन्दर रूपक का प्रयोग हुआ है। इसमें रथ की तुलना मानव शरीरर से की है, इन्द्रियों की घोड़े से, मन की तुलना लगाम से, सारथी की बुद्धि से, रथ के स्वामी की जो रथ में बैठा है की तुलना आत्मा से की गई है।

बंधन और मोक्ष - उपनिषदों में मोक्ष को जीवन का परम लक्ष्य माना गया है। बंधन का कारण अविद्या है। अविद्या के कारण अहंकार उत्पन्न होता है। यह अहंकार ही जीव को बंधन ग्रस्त कर देता है तथा बंधन की अवस्था में जीव ब्रह्म, आत्मा व जगत के वास्तविक स्वरूप से अज्ञान रहता है। इस बंधन को उपनिषद् में 'ग्रंथि' भी कहा गया है।

मोक्ष के लिए विद्या आवश्यक है। विद्या से ही अहंकार से छुटकारा मिलता है। विद्या के विकास के लिए नैतिक अनुशासन आवश्यक है। इसके लिए सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रहमचर्य, अपरिग्रह आवश्यक है। जीव का ब्रह्म से एक हो जाना ही मोक्ष है। जिस प्रकार नदी समुद्र में मिलकर एक हो

जाती है, उसी प्रकार जीव ब्रह्म में मिलकर एक हो जाता है। यह आनन्दमय अवस्था है। ब्रह्म आनन्दमय है।

मोक्ष प्राप्ति का साधन विद्या ही है। विद्या प्राप्ति के लिए ज्ञान आवश्यक है। उपनिषदों में ज्ञान प्राप्ति के तीन चरण है- श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन।

श्रवण (Hearing)- उपनिषदों के सिद्धान्तों को गुरू के आश्रम में जाकर सुनना पहली सीढ़ी है।

मनन (Meditation)- दूसरी सीढ़ी के अन्तर्गत गुरू के आदर्शों और विचारों पर चिन्तन व मनन करना आता है।

निदिध्यासन (Practice)- यह ध्यान का पर्याय है। इसमें प्राप्त ज्ञान को योगाभ्यास द्वारा पुष्ट बनाने की दिशा में प्रयत्नशील बने रहना। इस प्रकार बंधन ग्रस्त आत्मा की प्रार्थना यही रहती है- यह मुझे असत् से सत् की ओर ले चलो, अन्धकार से प्रकाश की ओर ले चलो, मृत्यु से अमरता की ओर ले चलों। यथा असतो मा सद्गमय, तम सो मां ज्योतिर्गमय मृत्योर्मा अमृतमगमय।

धर्मः-उपनिषदों में धर्म को दो प्रकार से वर्णित किया गया हैः बहिर्मुखी धर्म जो प्रवृति, लक्षण, धर्म व अन्तर्मुखी धर्म जो निवृत्ति लक्षण धर्म के रूप में देखा जा सकता है। वेदों के काल में जब कर्मकाण्ड की प्रधानता थी तो बहिर्मुखी व प्रवृतिमूलक धर्म प्रचलित था, परन्तु उपनिषद काल में अर्थात् लगभग 900 ईस्वी पूर्व से 600 ईस्वी पूर्व के मध्य अन्तर्मुखी या निवृत्ति लक्षण अथवा ज्ञानकाण्ड के रूप में धर्म का अभ्यास किया जाता रहा है। सारांश में वैदिक काल में देवी-देवताओं की पूजा-अर्चना व उपनिषद् काल में धार्मिक परंपरा आत्मतत्व के ज्ञान की ओर अग्रसर होती गयी।

उपनिषद् कर्मकाण्ड को निष्फल मानते है। मुण्डकोपनिषद् में बताया गया है कि जीवन सागर की लहरों में अस्थिर नौका से समान है, जो हमें डुबोकर रसातल तक भी पहुचा सकती है, अथवा ज्ञान के आलोक में सूर्य द्वार से आत्म लोक पहुचते है। उपनिषदों में यज्ञ परक बहिर्मुखी धर्म की निन्दा की गई है तथा अन्तर्मुखी आत्मज्ञान की प्रशंसा की गई है।

मोक्ष - उपनिषदों में मोक्ष को परंम पुरूषार्थ माना गया है। मोक्ष ही बंधन का विनाश है। अमरत्व के लिए उपनिषदों मे दो व्याख्याए मिलती है- तादात्म्य व सामीप्य। तादात्म्य में ब्रह्म से तद्रूप हो जाना ही मोक्ष है। जिस प्रकार नदी अपनी सत्ता समुद्र मे खो देती है। उसी प्रकार जीव भी नाम रूप विहीन होकर ब्रह्म से तद्रूप हो जाता है। सामीप्य में भक्त भगवान के साथ सुख भोग करता है। परमात्मा का सामिप्य ही मोक्ष है।

भक्ति और उपासनाः- मनुष्य जब विशुद्धचित्त होकर ध्यान करता है तो वह निश्छल आत्मतत्व का साक्षात्कार करता है। छान्दोग्योपनिषद के अनुसार अमरत्व का लाभ केवल उपासना से ही संभव है। उपासना में भक्त उपास्य देव के लोक में पहुचकर उस लोक का सुख प्राप्त करता है। अतः ज्ञान व

भक्ति दोनों को मोक्ष का साधन बताया है व दोनों का विवरण उपनिषदों में मिलता है। श्वेताश्वत्र उपनिषद् में आध्यात्मिक रहस्य के ज्ञान के लिए गुरू व ईश्वर में पूर्ण भक्ति का होना बतलाया गया है। आध्यात्मिक ज्ञान भक्ति के बिना संभव नहीं है। अतः जब शिष्य में भक्ति हो तभी उसे अध्यात्म का ज्ञान दिया जाना चाहिए।

मायाः- उपनिषदों में माया का वर्णन प्रचुर मात्रा में है पर माया का परिचय काफी अव्यवस्थित ढंग से प्राप्त होता है। ऋग्वेद में माया को रहस्यात्मिक शक्ति माना है। इस शक्ति द्वारा जगत् का रक्षण एवं संवर्धन होता है। यह माया शक्ति आकाश में स्थित है। सूर्य इसी शक्ति के सहारे चलता है। श्वेताश्वर उपनिषद् में ईश्वर को मायावी जादू के रूप में वर्णित किया गया है। इसी में जीवन के माया बंधन का भी उल्लेख है। छान्दोग्य उपनिषद् में माया की तुलना अमृत से की गई है। असत्य के माया-जाल में पड़कर हम सत्य आत्मा को नहीं पहचान पाते। आत्मा वस्तुतः हमारे हृदय मे है जो आत्मा के निकट पहुचता है, वह इस जगत से मुक्त हो जाता है, फिर भी मायावाद का सुव्यवस्थित दार्शनिक सिद्धान्त उपनिषद् में नहीं मिलता।

5.3.4 उपनिषदं (वेदान्त) के अनुसार पाठ्क्रमः-

अधिकतर उपनिषद् ने सम्पूर्ण ज्ञान को दो भागों में विभक्त किया है-1. अपरा विद्या- जो सांसारिक ज्ञान, शारीरिक ज्ञान व ज्ञानेन्द्रियों द्वारा अर्जित ज्ञान अपरा विद्या के अन्तर्गत आता है। 2. परा विद्या- आत्मा से संबधित ज्ञान, आत्मन् (Self) से संबंधित ज्ञान, ब्रह्मज्ञान सार तत्व ज्ञान सब कुछ परा विद्या के क्षेत्र में आता है।

उपनिषदों में पाठ्यक्रम की मुख्य पाठ्यवस्तु आत्म विषय व आत्मानुभूति है। अतः परा ज्ञान पर अधिक बल दिया गया है। इस का यह अर्थ नहीं है कि अपरा विद्या को नकारा गया है, अपितु तैतिर्योपनिषद में तो इस बात पर बल दिया गया है कि परा विद्या के माध्यम से परा को जानो किन्तु यदि अपरा को ही सार जानोगे तो आत्मिक उन्नति अवरोधित हो जाएगी। नीचे दिए गए त्रिकोण में प्रथम चार कोष,अन्तिम पॉचवे कोष की प्राप्ति हेतु साधन का कार्य करते हैं। अतः व्यक्ति को अन्नमय कोष (जीविकोपार्जन) की प्राप्ति के साथ-साथ उच्च स्तरों की प्राप्ति क्रमषः स्वतः ही सुगमता पूर्वक करनी चाहिए।

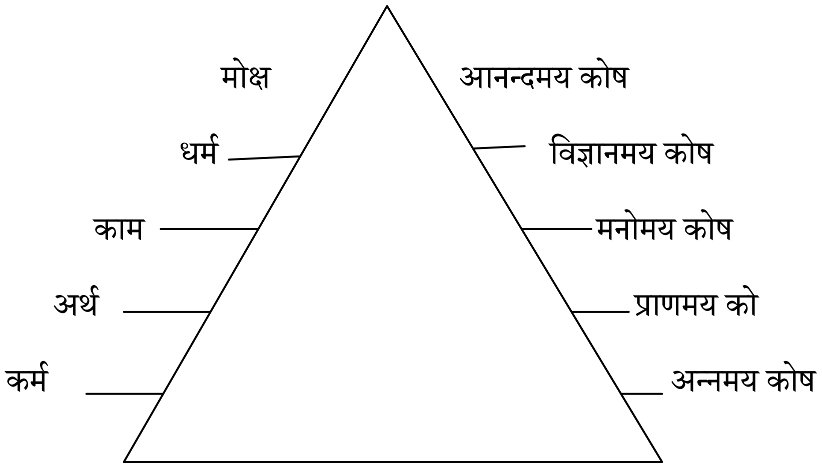

आनन्दमय कोष- आत्मानुभूति आवश्यकताए (दार्शनिकता का विकास, शब्दों मे अवर्णनीय, ज्ञानेन्द्रियों से परे ज्ञान ही वास्तविक सत्य है)।

विज्ञानमय कोष- वैज्ञानिक आवश्यकताए (प्रेयस व श्रेयस में अन्तर की योग्यता, इच्छित व इच्छा योग्य में अन्तर का ज्ञान ही वास्तविक ज्ञान है)।

मनोमय कोष- बौद्धिक अवश्यकताए (मानसिक ज्ञान-सोचना, स्मरण, प्रत्यास्मरण, कल्पना ही वास्तविक सत्य है)।

जैविक आवश्यकताए- शारीरिक स्वास्थ्य- जीव संस्थानों का विकास ही वास्तविक सत्य है।

प्राथमिक आवश्यकताएँ - भूख, प्यास, काम आदि निम्न स्तर की पाश्विक आवश्यकताए ही वास्तविक सत्य है।

पंच कोषों में वर्णित चार पुरूषार्थ (अर्थ,काम,धर्म,मोक्ष) ही यदि देखा जाए तो चार वर्णाश्रमों-ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, सन्यास के अनुरूप है। इन्हें व परा, अपरा ज्ञान को सभी को उपनिषद्ओं के पाठ्यक्रम में आधार रूप से माना गया है। शिक्षा के आरम्भिक वर्षों में छात्र को शारीरिक सुरक्षा व बाह्य जगत का ज्ञान देना ही अपरा ज्ञान का समरूप है। तत्पश्चात् जीवन विज्ञान व मानव शास्त्र आदि विषयों का ज्ञान जो परा विद्या कें अन्तर्गत आता है, इससे छात्र को आत्मविद्या प्राप्त होती है। यह आत्मज्ञान पाठ्यक्रम का अन्तिम चरण माना गया है। इसी क्रम के अनुरूप गणित, भौतिकी, रसायनशास्त्र, तकनीकी, जीवविज्ञान, मानवशास्त्र, खेलकूद, नीतिशास्त्र आदि समन्वित किये जाते हैं। इन विषयों का क्रम विस्तृत रूप में निम्न तालिका में दर्शाया जा सकता है-

ज्ञान का स्वरूप	उद्देश्य	पुरूषार्थ	पाठ्यक्रम विषय वस्तु	पाठ्यक्रम विषय
अपरा	अन्नमय कोष	काम/अर्थ	भौतिक संसार का अध्ययन, जीविका के लिए अर्थ उत्पत्ति के साधनों का ज्ञान	गणित, भौतिकी, रसायनशास्त्र, खगोलशास्त्र, मेकेनिक्स, व्यावसायिक शिक्षा, व्याकरणज्ञान, शब्द विद्या आदि
परा	प्राणमय कोष	काम+अर्थ+धर्म	जीव जगत का अध्ययन, स्वस्थ एवं सुखी जीवन	जीव विज्ञान-वनस्पति विज्ञान, जन्तु विज्ञान, स्वास्थ्य विज्ञान, शरीरर विज्ञान, गणित, अर्थशास्त्र, खेलकूद, नीतिशास्त्र, चिकित्सा, आयुर्वेद
अपरा व परा के मध्य की स्थिति	मनोमय कोष	काम+अर्थ+धर्म	ज्ञानात्मक एवं बौद्धिक पाठ्यक्रम	गणित, समाजशास्त्र, इतिहास, नागरिक शास्त्र, व्यक्तिगत संबंध, भाषा विज्ञान।
अपरा व परा के मध्य की स्थिति	विज्ञानमय कोष आनन्दमय कोष	धर्म/मोक्ष	आत्मोत्थान जनित पाठ्यक्रम आत्मा की अनुभूति से सम्बधित विद्या व पाठ्यक्रम	कला, साहित्य, तर्क, धर्म, दर्शनशास्त्र, नीतिशास्त्र

इस प्रकार पाठ्यक्रम की विषय वस्तु को विभिन्न विषयों के अध्ययन द्वारा छात्र परा और अपरा ज्ञान को प्राप्त करते थे। विभिन्न कोषों के विकास द्वारा पुरूषार्थों को प्राप्त करते थे।

अपनी उन्नति जानिए (Check Your Progress)

प्रश्न1 विश्व साहित्य की प्राचीनतम रचना क्या है?

प्रश्न2 ब्राह्मण' में किसकी विधियॉ वर्णित है?

5.4 उपनिषदों के अनुसार शिक्षण विधियॉ-

औपनिषदिक विचारकों ने शिष्यों को ज्ञान देने की विभिन्न प्रकार की शिक्षण विधियॉ बताई है किन्तु इन सभी विधियों में स्वतः खोज विधि (Self discovery method) मुख्य है। प्राचीन विचारकों का मत था कि ज्ञान मनुष्य को उसके अपने प्रयासों से ही प्राप्त होता है। दूसरों द्वारा दिया गया ज्ञान केवल मौखिक स्तर का ही होता है और इसे पूर्णतः ग्रहण या प्राप्त नहीं किया जा सकता है। उपनिषद् ज्ञान के भण्डार हैं। एक जिज्ञासु शिष्य प्रश्न पूछता है और सद्गुरू उसके प्रश्नों के उत्तर देता है, उसकी समस्याओं का समाधान करता है और उसके लिए वह अनेक युक्तियो का प्रयोग करता है। उपनिषद्य शिक्षा में जिन उपकरणों या स्त्रोतों का वर्णन किया है, उनका आधार पूर्णतया मनोवैज्ञानिक है। कुछ भी हो, शिक्षक तो केवल छात्र को मार्ग प्रदर्शन मात्र कर सकता है। उपयुक्त पात्र के रूप में ग्रहण तो छात्र को स्वयं ही करना होगा।

विभिन्न शिक्षण विधियॉ जो शिक्षण अधिगम हेतु बनाई गई है, कुछ निम्न प्रकार है-

1- लाक्षणिक विधि (The Riddle of Allegorical Method) - यह विधि लक्षणों से संबंधित है। अधिगम के कई प्रत्यय पहेलियों द्वारा आसानी से समझे व ग्रहण किये जा सकते हैं। जैसे आकाश का प्रत्यय एक थाल मोतियों से भरा, सबके सिर पर औंधा धरा। इसी प्रकार 'सत्ता' (lAuthority) का प्रत्यय समझाने हेतु एक बड़े पहिये जिसके टायर में तीन गुण है व जिसके सोलह अर्रे हैं, कर्तव्य दर्शाते हैं। इसी प्रकार अशोक चक्र जीवन को दर्शाता है, जिसे 24 अर्रे 24 घण्टे की निरन्तर गतिविधियॉ दर्शाते हैं। इस प्रकार लक्षणों द्वारा अनेकों प्रत्ययों को स्पष्ट किया जाता था।

2- सूत्र प्रणाली (Formula Method)- जब ज्ञान का स्वरूप अधिक विकसित एवं विस्तृत हो जाता है इतने विस्तार से स्मरण कर पाना कठिन हो जाता है, ऐसे ज्ञान को स्मरण करने के लिए सूत्रों (Formula), चिन्हों (Telli) का प्रयोग आवश्यक हो जाता है। विज्ञान व गणित में सूत्रों का प्रयोग इसका अच्छा उदाहरण है। फूलों से सूत्र, दर्शन के सूत्र- तत्वमसि वह जो तुम हो आदि सूत्र के सामान्य उदाहरण है। यह उदाहरण श्वेताष्वर उपनिषद् में दर्शाया है।

3- शाब्दिक विधि (The Rule Method)- शब्दों का मूल अर्थ व मौलिक रूप एवं शब्द में अन्तर्निहित भाव, शाब्दिक विधि के अंतर्गत आते हैं, किसी भी अप्रत्यक्ष प्रत्यय का वर्णन, उस प्रत्यय के शाब्दिक अर्थों के गहन अध्ययन से किया जा सकता है। उदाहरणार्थ वृह्दारण्यक उपनिषद् में 'पुरूष' शब्द का शाब्दिक रूप 'पुरिष्य' से लिया गया है, जिसका अर्थ 'वह एक' से संबंधित है, जो एक किले के समान दिल में निवास करता है। इसी प्रकार अनेक शब्दों को शाब्दिक विधि द्वारा समझा जा सकता है।

4- कहानी (कथा) विधि (Etymological Method)- प्राचीनकाल से ही नैतिक शिक्षा देने हेतु कथा-कहानियों का प्रयोग होता रहा है। देखा गया है कि सीधी-सादी नपी-तुली भाषा में दिये गये उपदेश्य प्रायः प्रभावहीन ही होते हैं, यहीं यह भी देखा गया है कि उपनिषद यदि कथा रूप में वर्णित किया जाता है, तो प्रभावकारी होता है। उदाहरणतया कठोपनिषद में मानव संवेगों को प्रायः इन्द्र व राक्षसों के मध्य युद्ध द्वारा कथा रूप में वर्णित किया गया है। आजकल की पुस्तक 'पंचतत्र' इसी कथा प्रणाली विधि का प्रयोग है, जिसमें पशु-पक्षियों एवं जानवरों पर आधारित कहानियों से शिक्षा दी गई है।

5- रूपक आलंकारिक विधि (The Story Method)- कुछ अप्रत्यक्ष प्रत्यय जो तर्क-वितर्क द्वारा स्पष्ट नहीं होते। उन्हें सरलता से उपयुक्त उपमा आदि के प्रयोग से समझाया जा सकता है। उदाहरणतया याज्ञवल्क्य उपनिषद् में व्यक्ति विशेष की आत्मा एवं सार्वभौमिक आत्म का प्रत्यय स्पष्ट करने हेतु क्रमशः नदी व सागर से तुलना की गई है। इसमें नदी को व्यक्ति से व सागर को ईश्वरीय आत्म से स्पष्ट किया गया है।

6- वाद-विवाद विधि (Discussion Method)- इस विधि का उपनिषद् में अत्याधिक वर्णन हुआ है। इस विधि में छात्र व शिक्षक इकट्ठे बैठकर किसी समस्या पर विचार विमर्श करते है व किसी उपयुक्त व सर्व स्वीकृत उत्तर पर पहुच जाते है। आधुनिक प्रजातान्त्रिक शिक्षा प्रणाली में वाद-विवाद विधि का अत्यधिक प्रयोग किया जाता है व इस विधि को सर्वाधिक प्रसिद्धि मिल रही है। यह विधि समस्या समाधान की एक तार्किक एवं विश्लेशणात्मक विधि मानी जाती है।

7- संश्लेषण विणि (Synthetic Method)- यह वाद-विवाद विधि की पूरक विधि है। वाद विवाद द्वारा प्राप्त विषयों को संश्लेशित कर एक सामान्य निष्कर्ष या संक्षेपकर निचोड़ प्राप्त किया जाता है।

8- व्याख्यान विधि (Lecture Method)- उपनिषद्में छात्रों को अभिप्रेरित करने हेतु व्याख्यानों को एक प्रभावकारी विधि माना गया है। व्याख्यानों द्वारा प्रायः कठिन प्रत्ययों और बिन्दुओं को स्पष्ट करने में सहायता मिलती है। कठिन व्याख्या भी व्याख्यानों द्वारा आसानी से समझाई जा सकती है।

9- अतिरिक्त विधि (Adhoc Method)- कभी कभी कोई उत्सुक छात्र ज्ञान प्राप्ति हेतु स्वतः प्रयास करते हैं वहॉ शिक्षक केवल निर्दशन का कार्य करते हैं, किन्तु ज्ञान प्राप्ति के विभिन्न स्तरों के कारण कुछ छात्रों को पाठ्य वस्तु के लम्बे विवरण देने पड़ते हैं, जबकि कुछ छात्र शीघ्रता से समझ लेते हैं, वे केवल संक्षेप में या सूत्र रूप में ही समझ लेते हैं, इसी प्रकार कुछ छात्र सुदृढ़ रूप में तथा कुछ अर्थ रूप में तथा कुछ कठिन या गहन रूप में पाने में सक्षम हो जाते है।

10- तारतम्य प्रणाली (Sequential Method)- इस विधि में पाठ्य वस्तु को प्रश्नों की एक लड़ी या क्रम के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। एक प्रश्न का उत्तर दूसरे प्रश्न के रूप में आगे आता है व एक तारतम्य रूप में प्रश्न हल किये जाते हैं। यही क्रम चलता रहता है व सीखने वाला समस्या के अन्तिम चरण पर जा पहुचता है। आजकल वैज्ञानिक व दार्शनिक विषयों में इसी विधि का प्रयोग फिर से होने लगा है। अभिक्रमित अधिगम व इसकी रेखीय प्रणाली प्राचीनकाल की तारतम्य विधि के समान ही है।

5.4.1 अधिगम प्रक्रिया (The Learning Process)-

उपनिषद्य शिक्षा व्यवस्था के गुरूकुलों से प्रायः सभी परिचित है, पर उस समय कुछ ऐसे ग्राम होते थे, जहॉ केवल पण्डित ही रहते थे। इन स्थानों को अग्राहारा कहते थे। यहॉ के पण्डितों को सारे ग्राम की आय मिलती थी ताकि वे बिना किसी अवरोध के अध्ययन-अध्यापन मे लगे रहे। यहॉ योग्य ब्राह्मण विद्यार्थियों को निःशुल्क शिक्षा दी जाती थी। यह स्थान ग्राम से बाहर अकेले स्थान पर होते थे अग्रहारा मे सैंकड़ो विद्यार्थी ज्ञान प्राप्त करने के लिए आते थे। कर्नाटक काडियोर अग्राहारा और मैसूर का सर्वजनापुरा अग्रहारा दो प्रसिद्ध स्थान विद्याप्राप्ति हेतु निश्चित व प्रसिद्ध थे।

इन अग्राहारा में अधिगम प्रक्रिया तीन सोपानों में विभक्त होती थी। यह सोपान व अवस्थाए भी कहलाते है- श्रवण, मनन व निद्धिध्यासन।

श्रवण- श्रवण द्वारा समस्त सूचना को सुनकर व पढ़कर एकत्र किया जात है, जिसे एक प्रकार से अदा प्रक्रिया या इनपुट (Input) सोपान का सम्प्रेषण है।

मनन (Contemplation)- इस सोपान मे वाद-विवादों द्वारा सन्देहों व भ्रान्तियों को दूर किया जाता है। यह वाद-विवाद विभिन्न विषयों पर छात्र-छात्र अथवा छात्र-शिक्षक के मध्य होते है, इसमें सूचनाओं को गहनता से विष्लेशण किया जाता है। यह ‘प्रक्रिया’ या ‘प्रोसेस’ (Process) सोपान कहलाता है।

निद्धिध्यासन (Meditation)- इस तीसरे सोपान के अंतर्गत समस्त सन्देहों को एकदम स्पष्ट किया जाता है। प्रत्यय स्पष्ट हो जाने पर, प्राप्त ज्ञान को, समस्याओं के हल करने में प्रयोग किया जाता है। इस सोपान के अंतर्गत ज्ञान छात्रों द्वारा अवशोशित (Imtibe) कर लिया जाता है, जिसके

फलस्वरूप छात्र में व उसके व्यक्तित्व में व्यावहारिक परिवर्तन परिलक्षित होने लगते हैं। इसे आजकल की 'प्रदा' या आउटपुट (Output) सोपान माना जाएगा।

5.4.2 शिक्षक की भूमिका (Role of Teacher)-

उपनिषद्य दर्शन में शिक्षक का बहुत महत्व है। उससे आशा की जाती है कि वह विद्यार्थी को अच्छा व्यवहार सिखायेगा जो कि धर्म का मूल मंत्र है, इसलिए शिक्षक का अत्यन्त योग्य होना आवश्यक है। शिक्षक ही विद्यार्थी को अज्ञान के अन्धकार से ज्ञान के प्रकाश की ओर ले जाने वाला होता है। इसलिए उसका अत्यन्त आदर किया जाता है। ज्ञान के लिए शिक्षक का होना अनिवार्य है। कठोपनिशद के अनुसार 'न नरेणावरेण प्रोक्त एश सुविज्ञेयो बहुधा चिनयमानः' अर्थात् शिक्षक तथा विद्यार्थी का संबंध पिता एवं पुत्र की भॉति होता है। शिक्षक विद्यार्थी से प्रेम करता है। वह उसके आचरण पर नियंत्रण भी रखता है। उसकी बीमारी में उसकी सेवा भी करता है।

शिक्षकों से अपेक्षा:-उपनिषद् में शिक्षकों को कहा गया है कि 'सदा सत्य बोलो, अपना कर्तव्य करों। सीखने-सिखाने की उपेक्षा न करो। शिक्षा प्राप्ति के पश्चात् वैवाहिक जीवन व्यतीत करो, सत्यता, सद्व्यवहार, व्यक्तिगत सद्भावना व सम्पन्नता को नकारो मत। अपने माता-पिता, गुरूजन व अतिथि गणों के प्रति सत्कार भावना रखो। मेरे चरित्र में जो अनुकरणीय है उसे प्राप्त करो किन्तु मुझमें जो बुराई या अनैच्छिक है, उसका बहिष्कार करो। ज्ञानियों का सदा आदर करो। जब कभी भी तुम अनिश्चित या सन्देह में हो कि किसी परिस्थिति में कैसा व्यवहार किया जाए तो उस दशा में महान शिक्षक जनों का अनुसरण करो। उपनिषद में छात्र शिक्षक सम्बंध एक सूत्र द्वारा मार्ग दर्शन का कार्य करता है-

ऊँ सहना भवतु - एक दूसरे की रक्षा करें।

ऊँ सहनो भुनक्तु - अर्जित ज्ञानोपलब्धियों तथा सिद्धियों का मिलजुल कर उपयोग करें।

ऊँ सा विद्विषावहै - हम एक दूसरे से ईर्ष्या न करें।

ऊँ सह वीर्य करवावै - एक दूसरे की शक्ति में वृद्धि करें।

ऊँ तेजस्वीनाम अधीतोमस्तु - हम दोनों का तेज साथ-साथ बढ़े।

5.4.3 विद्यार्थी (Student)-

विद्यार्थी के लिए उपनिषद् में आचरण की विधियॉ स्पष्ट रूप से दी गई है। सर्वप्रथम यह आवश्यक माना गया है कि विद्यार्थी में सीखने की लगन हो, बिना लगन वाला विद्यार्थी कुछ नहीं सीख सकता। विद्यार्थी का शिक्षण के द्वारा चरित्र का उत्थान करना आवश्यक है। शिक्षा का मुख्य उद्देश्य चरित्र निर्माण है। बुद्धि का उचित विकास बिना चरित्र के विकास के संभव नहीं है। इसलिए विद्यार्थियों से

आशा की जाती है कि वे ज्ञानार्जन के साथ-साथ चरित्र का विकास भी करते रहें। अपने गुरू की सेवा उनमें अच्छे गुणों का विकास होना अनिवार्य समझा जाता है। विद्यार्थी को इन्द्रिय संयम द्वारा उचित कर्तव्यों का पालन करते रहना चाहिए व ब्रह्मचर्य व्रत का पालन कर विद्यार्जन को अपना परम लक्ष्य मानना चाहिए। 'विद्या' से तात्पर्य छात्र को ज्ञान, विज्ञान, सीखना, शिक्षा तथा दर्शन इत्यादि है। ज्ञान को हमारे दार्शनिक 'मनुष्य की तीसरी ऑख' कहते हैं, जो उसे अपने सब कार्यों में सूझ देता है। व्यक्ति को किस प्रकार कार्य करना है, इसकी विद्या देता है।

अपनी उन्नति जानिए

प्रश्न 3 औपनिषदिक विचारकों मे शिष्यों को ज्ञान देने की शिक्षण विधियों में कौन सी मुख्य है ।

प्रश्न4 ब्रह्म के दो रूप जो उपनिषदों में वर्णित है उनके नाम लिखो।

5.5 उपनिषदीय शिक्षा में अनुशासन प्रणाली

उपनिषद्य शिक्षा प्रणाली में स्वअनुशासन पर सर्वाधिक बल दिया गया है। इसकें अन्तर्गत अनुशासन के तीन अंग या भाग होते हैं-

1. प्रथम अंग के अन्तर्गत छात्र में ज्ञान प्राप्त करने की तीव्र इच्छा का होना है। यह छात्र में आन्तरिक अभिप्रेरक की अपेक्षा करता है। इससे छात्र में रूचि का विकास होगा। रूचि जागृत होने से अनुशासन की समस्या स्वतः हल हो जाती है।

2. स्वतः अभिप्रेरण के बाद आत्म प्रत्यय Self Concept) को विकसित करना आता है। अर्थात् छात्र को यह बिल्कुल स्पष्ट हो जाना चाहिए कि वह क्या बनना या सीखना चाहता है।

3. आत्म प्रत्यय निर्माण के पश्चात छात्र को आत्म संयमी Self restrained एवं आत्म निर्देशित Self Directed होना चाहिए। इसका अभ्यास करने हेतु छात्र को समाज द्वारा स्वीकृत नैतिक सिद्धान्तों का पालन करना पड़ता है। इसी को धर्म कहा गया है। यदि इस धर्म का पालन में कहीं सन्देह या द्वन्द्व आ जाए तो पात्र को समाज के महान व्यक्तियों के उदाहरणों से शिक्षा लेकर अग्रसरण करना चाहिए।

स्वअनुशासन के साथ-साथ प्रभावात्मक अनुशासन (Impressionistic discipline) को भी स्वीकारा गया है। अर्थात् छात्र को गुरू को आदर्श मानकर उसके अनुसार ही व्यवहार व आचरण करना चाहिए। उसकी आज्ञा को शिरोधार्य कर अपना पथ प्रदर्शन करना चाहिए।

5.5.1 वेद और उपनिषद् में अन्तरः-

उपनिषद् वेद का अन्तिम भाग है, पर दोनों की विषय वस्तु भिन्न है। वेद के पूर्व भाग में देवी-देवताओं की पूजा-प्रार्थना आदि का वर्णन है व उन यज्ञों का वर्णन है, जिनके द्वारा लौकीक जीवन आनन्दमय बनाया जा सकता है, परन्तु उननिषदों में आत्मज्ञान का वर्णन है, जिससे आत्मानन्द की प्राप्ति होती है और भवबंधन का विनाश होता है। अतः जन्म-मरण से छुटकारा पाकर आत्मानन्द की प्राप्ति ही उपनिषदों की विषयवस्तु है।

वेदों में केवल कर्मकाण्ड व यज्ञ विधान का विवरण है, जबकि उपनिषदों में यज्ञ की मान्यताओं का विरोध है। वैदिक यज्ञ का चरम साध्य स्वर्ग है परन्तु स्वर्ग में अपने संचित पुण्य भोगकर मनुष्य को पुनः संसार में आना पड़ता है। इसके विपरीत उपनिषदों ने मोक्ष प्राप्ति को चरम साध्य स्वीकारा है। छान्दोग्य उपनिषद् में बहिर्यज्ञ की अपेक्षा अन्तर्यज्ञ को अधिक महत्वपूर्ण माना है। ऐसा कहा जाता है कि अन्तर्यज्ञ को करने वाला सभी पापों से मुक्त हो जाता है।

वेदों के ऋषिगण बहुदेववादी हैं, वे प्रकृति के विभिन्न रूपों की उपासना की बात करते हैं, परन्तु उपनिषदों के ऋषिगण आत्मा को केन्द्र मानते है, वे ईश्वर को आत्मा में देखते हैं। अतः वैदिक धर्म बहिर्मुखी (Extrovert) है, जबकि उपनिषदों का धर्म अन्तर्मुखी (Introvert) है। वेद के ऋषि सांसारिक भोगों व एश्वर्यों के प्रति जागरूक हैं इसके विपरीत उपनिषदों में निराशावादी प्रवृति की झलक है।

5.5.2 उपनिषदों में परलोक का ज्ञान-

मृत्यु के पश्चात् जीव के परलोक गमन का वर्णन उपनिषद् में अत्यन्त रोचक ढंग से किया गया है। मृत्यु होने पर जीव का सम्बंध संसार से समाप्त हो जाता है, वह परलोक का नागरिक बन जाता है। परलोक में वह कैसे निवास करता है? कहॉ जाता है? व कैसे पुनः संसार में वापस आ जाता है। इन सब प्रश्नों के उत्तर उपनिषद् में वर्णित गतियों से स्पष्ट हो जाता है। पहली देवयान की गति, दूसरी पितृयान की गति एवं तीसरी तृतीय गति। यह तीनां गतियॉ मानव के भावी जीवन से संबंधित होती है।

देवयान- जो लोग उपनिषद् के अनुसार अध्यात्म विद्या का अभ्यास करते हैं, वे मृत्यु के बाद चिता की अग्नि में प्रवेश करते हैं। वहॉ से वे दिन में, दिन से शुक्ल पक्ष से उत्तरायण के षडमासों में, षडमासों से संवत्सर में, संवत्सर से सूर्य में, सूर्य से चन्द्रमा में, चन्द्रमा से बिजली में प्रवेश करते हैं। बिजली के लोक में उसकी एक देव पुरुष से भेंट होती है जो उसे ब्रह्म लोक में ले जाता है। वहॉ वह तब तक रहता है, जब तक सगुण ईश्वर, निर्गुण ब्रह्म में लीन नहीं हो जाता। वह मनुष्य मृत्युलोक में वापस नहीं आता, पर जब ब्रह्म का पुनः आविर्भाव होता है तो जीव भी क्रमशः मृत्युलोक में चला आता है। यह आवागमन मोक्ष के पहले तक चलता है।

पितृयान- यज्ञ, दान, पूजा, प्रार्थना करने वाले मनुष्य मृत्यु के बाद चिता की अग्नि में प्रवेश करते हैं। परन्तु इस अग्नि में प्रवेश करने से पहले वे घूम में प्रवेश करते हैं, घूम से रात, रात से कृष्ण पक्ष मे, कृष्ण पक्ष से दक्षिणायन के षडमासों में, षडमासों से पितृलोक को चले जाते हैं। पितृलोक से आकाश और आकाश से चन्द्रलोक में प्रवेश करते हैं, जहॉं वे अन्न हो जाते है। अन्न को देवतागण खाते हैं। अपने पुण्य समाप्त होने तक वे वही रहते हैं, व पुनः उसी मार्ग से धरती पर लौट आते है, और कर्मानुसार शुभ और अशुभ योनियों में उत्पन्न हो जाते हैं।

तृतीय गति - दोनों मार्गों से भिन्न एक तृतीय मार्ग है जो निम्न वर्ग के जीव जैसे कीट पतंग आदि के लिये है। यह जीव सदा मरते तथा जीते रहते हैं। इनका क्रम कभी नहीं टूटता। अतः आवागमन का यह क्रम अनवरत गति से चलता रहता है, परन्तु मोक्ष इसका अंत है। मनुष्य अध्यात्म विद्या को पाकर, निष्काम भाव से कर्म करके दैहिक, दैविक व भौतिक तापों का अंत कर सकता है। सकाम कर्म करने वाले स्वर्णिम सुख का भोग करते हैं, परन्तु निम्न स्तरीय जीव आवागमन को भोगते हैं।

भारतीय दर्शन में वेदों का ज्ञान दुर्लभ व अप्राप्य होने के कारण उपनिषद् ही हमारे दर्शन के बीज रूप है। उपनिषद् को प्रायः वेदान्त भी कह दिया जाता है, क्योंकि यह वेद के अन्तिम भाग ‘ज्ञानकाण्ड’ या ‘आरण्यक’ कहलाते हैं। यह कर्मकाण्ड से सर्वथा भिन्न है। ज्ञानकाण्ड के इस विषय पर विभिन्न आचार्यों व ऋषियों ने भाष्य लिखकर अपने-अपने मत व्यक्त किये है। उपनिषदो पर भाष्य लिखने के साथ-साथ उनके मत भी प्रामाणिक भाष्यों के रूप में स्वीकारे जाते रहे हैं। कुछ भाष्यकार निम्न प्रकार है-

श्री शंकराचार्य	-अद्वैतवाद
रामानुजाचार्य	-विशिष्टाद्वैतवाद
वल्लभाचार्य	-शुद्धाद्वैतवाद
श्रीमाध्वाचार्य	-द्वैतवाद
श्रीनिम्बकाचार्य	-द्वैताद्वैतवाद आदि।

इन भाष्यकारों की टीकाओं के ज्ञान से मनुष्य अपने स्वयं का ज्ञान प्राप्त कर, आत्म निर्माण के पथ पर अग्रसर हो सकता है। उपनिषद् के ज्ञान की शिक्षा से व्यक्ति न केवल आत्म विकास कर सकता है, अपितु आत्म साक्षात्कार की अनुभूति करने में सक्षम हो सकता है। वह मोक्ष प्राप्ति के पथ पर अग्रसर होने की विद्या प्राप्त कर स्वयं को आनन्दमय कोष मं विचरण करने के योग्य बना सकता है। संक्षेप में एक सार्थक जीवन जीने की कला में निपुण हो सकता है। अतः उपनिषद् के शैक्षिक दृष्टिकोण का ज्ञान भी व्यक्ति के लिए आवश्यक है।

5.5.3 उपनिषदों के शैक्षिक दृष्टिकोण-

उपनिषद् के शैक्षिक दृष्टिकोण को समझने हेतु सर्वप्रथम पूर्व में वर्णित तत्व मीमांसा, ज्ञान मीमांसा एवं आचार मीमांसा के आधार पर मूल सिद्धान्तों की समीक्षा का पुनरावलोकन निम्न रूप में सामने आता है-

1. ब्रह्म की अपरोक्ष अनुभूति वाणी द्वारा न होकर, इन्द्रिय ज्ञान से परे, परम ज्योतियों की भी ज्योति है, जिसके द्वारा संसार के सभी जाज्वल्यमान पदार्थ सूर्य, चन्द्र, तारे प्रकाशमान है।

2. जीव अनन्त ज्ञान व शक्ति का स्त्रोत है। पंचकोष, षट्चक्र, तीन शरीरर, पंचमहाभूत से सुशोभित है।

3. आत्मतत्व की अनुभूति के लिए निम्नलिखित प्रथम चार कोषों का विकास आवश्यक है। अन्नमय कोष स्वस्थ हो, प्राणमय कोष क्रियाशील हो, मनोमय कोष (मन) वश में हो तथा विज्ञानमय कोष (बुद्धि) विकसित हो तो आनन्दमय कोष (आत्मतत्व) की अनुभूति होना स्वाभाविक है।

4. ब्रह्म और आत्मा एक है। उपनिषद् में सर्वाधिक व्याख्या आत्मतत्व की ही है। कुछ उपनिषद् में आत्मा, ब्रह्म, सत्य और आनन्द को एक ही अर्थ में लिया गया है। कुछ आत्मा और ब्रह्म को एक मानते है। कुछ आत्मा को ब्रह्म का अंश मानते है। कुछ आत्मा को भोक्ता मानते हैं व ब्रह्म सृष्टा व दृष्टा कुछ भी हो आत्मा नित्य, सर्वज्ञ व सर्वशक्तिमान है व ब्रह्म रूप में प्रतिष्ठित है।

5. सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ईश्वर द्वारा निर्मित है। मूर्त व अमूर्त रूप में देवताओं की शक्तियॉ ब्रह्म पर ही निर्भर है।

6. आत्मानुभूति के निमित्त ज्ञान, कर्म, योग, साधना आवश्यक है।

7. मानव जीवन का अन्तिम उद्देश्य आत्मानुभूति है। इससे दुःखों से निवृति व आनन्द की अनुभूति होती है।

8. ब्रह्म सर्वव्यापी है। पृथ्वी, अंतरिक्ष व आकाश तीनों लोको को तीन देवता अग्नि, वायु व सूर्य में बॉट दिया है।

9. प्रथम चार कोषों के लिए अन्तिम कोष का प्रकाश आवश्यक माना है। परन्तु साथ-साथ यह भी माना है कि प्रथम चार कोषों का विकास तब तक नहीं होता जब तक अन्तिम कोष आनन्दमय कोष के प्रकाश से प्रकाशित नहीं होते।

आज की भाषा में पहले मनुष्य को अपने आत्मतत्व में विश्वास होना चाहिए, जिज्ञासा होनी चाहिए, फिर आदर्श आचरण द्वारा अपने प्रथम चार कोषों (शरीरर, प्राण, मन, बुद्धि) का विकास करना चाहिए। ऐसा करने से मनुष्य आत्मानुभूति कर सकता है।

5.5.4 उपनिषदीय शिक्षा की आलोचना (Sriticism of Upnishadic Education)-

उपनिषदीय शिक्षा की यह विचारधारा कि संसार मिथ्या है, माया है, शिक्षा का लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति है, संसार से छुटकारा दिलाना है, यदि अनेक व्यक्तियों में अपने वर्तमान जीवन के प्रति उदासीनता को प्रोत्साहित करता है, वह अपने वर्तमान को सुधारने की प्रेरणा को समाप्त ही कर देता है।

ब्राह्मणों को ही शिक्षा पाने का अधिकार था। इस तथ्य के आधार पर ब्राह्मण शब्द के अनुचित अर्थ को लेकर जातिवाद को बढ़ावा मिलने लगा तथा वर्ण व्यवस्था को स्थायित्व मिलने लगा। फलस्वरूप उचित पात्रों के चयन पर बंधन लगने लगे।

मनुष्यों की समस्याओं व प्रश्नों के हल वेद आधारित ही समझे जाने लगे थे। इसका प्रभाव यह हुआ कि जो कुछ वेदों का अर्थ व व्याख्या धूर्त पण्डितों ने कर दी वही समाज में मान्य होने लगा अतएव समाज कुछ पाखण्डियों का दास हो गया। विशेषकर जब वेदों का अध्ययन कुछ ब्राह्मण वर्ग में ही सीमित हो गया था जब ऐसी मान्यता और तेजी से पनपने लगी।

अपनी उन्नति जानिए Check Your Progress

प्रश्न5 उपनिषद्य शिक्षा प्रणाली में किस अनुशासन पर सर्वाधिक बल दिया गया है?

प्रश्न6 आचरण द्वारा अपने प्रथम चार किन कोषों का विकास करना चाहिए?

5.6 सांराश (Summary) –

उपनिषद्य शिक्षा का संबंध किसी इतिहास के अनुबंधित/विशेष समय की सीमा से नहीं है। यह शिक्षा तो सार्वभौमिक शिक्षा के रूप में है, जो आगे आने वाले समय में भी प्रयोग की जायेगी क्योंकि -

1. इस शिक्षा के समस्त पहलुओं का संबंध आत्मा/आत्मन् अथवा स्वयं से संबंधित है।

2. यह शिक्षा मानव जीवन के विभिन्न सोपानों को पंच कोषो के अन्तर्गत वर्णित करती है। अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय व आनन्दमय कोषों को वर्णन व विकास, मानव जीवन के क्रमित विकास के साथ चरम लक्ष्य की प्राप्ति में सहायक है।

3. उपनिषद्य शिक्षा व्यवस्था आज के संदर्भ में शिक्षा के उद्देश्यों का उपयुक्त वर्गीकरण करती है, आज भी हमें जीविकोपार्जन, उत्तम स्वास्थ्य, बौद्धिकता, ज्ञान, तत्वज्ञान एवं नैतिकता के विभिन्न पहलूओं के संदर्भ में शिक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त कर सफल जीवन जीना है। उपनिषदीय शिक्षा इन उद्देश्यों को प्राप्त करने में सहायक है।

4. शिक्षा के पाठ्यक्रम में विषय वस्तु में परा-अपरा का ज्ञान व उनसे संबंधित पुरूषार्थ एवं विषयों का ज्ञान, छात्र को न केवल विकसित करते हैं, अपितु उसे चेतन, आत्मोव्रत आत्मन् के प्रति उन्नत रूप प्राप्त करने में सहायक हैं, जो आज के युग में भी आत्म शांति से भरपूर जीवन जीने की प्रेरणा देता है।

5. पाठ्यक्रम की विषय वस्तु को छात्र के लिए बोधगम्य बनाने हेतु जो विधियॉ उपनिषद्में वर्णित हैं, उनका वहीं व विकसित स्वरूप आज भी शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया को सरल व प्रभावशाली बनाने में सफल सिद्ध हो रहा है। व्याख्या विधि, सूत्र प्रणाली, संश्लेषण, वाद-विवाद, कहानी विधि व तारतम्य प्रणाली आदि के साथ स्वतः शिक्षण या स्वतः अन्वेषणविधि आज की प्रगतिशील शिक्षण संस्थाओं का नारा है।

6. उपनिषद् शिक्षा में प्रयोग की गई अधिगम प्रणालियॉ भी छात्रों की रूचियों, योग्यताओं एवं अभिरूचियों के अनुरुप थी। वे छात्रों के सर्वांगीण विकास में सहायक थी।

7. अनुशासन का सकारात्मक दृष्टिकोण छात्रों को स्वअनुशासन के प्रति प्रेरित करता था। यह छात्रों के आत्म प्रत्यय के विकास में सहायता देता है। दण्ड का प्रयोग कभी-कभी करने से छात्रों में बदले की भावना एवं विरोधी अभिवृत्ति पनपने नहीं पाती थी।

8. छात्र-शिक्षक सम्बंध भी उपनिषदीय शिक्षा के अनुसार आदर्श उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। शिक्षक एक पथ प्रदर्शक, मित्र एवं परामर्शदाता होने के साथ-साथ एक आदर्श अभिभावक की भूमिका भी निभाते हैं, जो छात्र के उचित विकास के लिए अन्यन्त उपयोगी सिद्ध होता है।

9. अग्रहारा में शिक्षण-अधिगम व्यवस्था, शिक्षण व अधिगम हेतु आदर्श वातावरण प्रस्तुत करते हैं। यह आजकल के विश्वविद्यालयों की भूमिका निभाते हैं। जहॉ छात्र अपने जीवन लक्ष्यों की प्राप्ति करते हैं और एक सफल जीवन व्यतीत करते हैं।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि वैदिक/उपनिषद् शिक्षा/वैदान्तिक शिक्षा, छात्र-शिक्षक संबंधों को आदर्शरूप मे प्रस्तुत करती है। छात्रों को वाद-विवाद करने व प्रश्न पूछने की पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान करती है। इस शिक्षा में शैक्षिक उद्देश्य, पाठ्यक्रम, शिक्षण विधियॉं, ज्ञान के प्रकार आदि सभी एक दूसरे से संबंधित हैं। यह शिक्षा छात्रों में आत्म प्रत्यय का विकास करती है।

5.7 शब्दावली (Glossary)

अन्नमयकोष- स्थूल शरीरर को व्यक्त करता है व अन्न पर आश्रित रहता है।

प्राणमयकोष- अन्नमय कोष के अन्दर है। यह प्राण पर आश्रित है व शरीरर को गति देने वाली शक्ति है।

मनोमयकोष- प्राणमयकोष के अन्दर है। मन पर निर्भर है और इसमें स्वार्थमय इच्छाए है।

विज्ञानमयकोष- मनोमयकोष के अन्दर है। बुद्धि पर आश्रित है। इसमें ज्ञाता व ज्ञेय के भेद का ज्ञान है।

आनन्दमयकोष- विज्ञानमय कोष के भीतर है, यह ज्ञाता व ज्ञेय के भेद से शून्य चैतन्य है। आनन्द का निवास है।

5.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer of Practice Questions)

उत्तर1 विश्व साहित्य की प्राचीनतम रचना वेद है।

उत्तर 2 ब्राह्मण' में यज्ञ की विधियॉं वर्णित है।

उत्तर3 औपनिषदिक विचारकों ने शिष्यों को ज्ञान देने की विभिन्न प्रकार की शिक्षण में स्वतः खोज विधि (Self discovery method) मुख्य है।

उत्तर4 ब्रह्म के दो रूप उपनिषदों में वर्णित है- परब्रह्म और अपरब्रह्म ।

उत्तर5 उपनिषद्य शिक्षा प्रणाली में स्वअनुशासन पर सर्वाधिक बल दिया गया है।

उत्तर6 आचरण द्वारा अपने प्रथम चार कोषों (शरीरर, प्राण, मन, बुद्धि) का विकास करना चाहिए।

5.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (References)

1. पाण्डे, (डॉ) रा. श. *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*. आगरा: अग्रवाल प्रकाशन.

2. सक्सेना, (डॉ) सरोज. *शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार*. आगरा: साहित्य प्रकाशन.

3. मित्तल, एम.एल. (2008). *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*. मेरठ: इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस.

4. शर्मा, रा. ना. व शर्मा, रा. कु. (2006). *शैक्षिक समाजशास्त्र*. नई दिल्ली: एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स.

5.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री (USEFUL BOOKS)

1. पाण्डे, (डॉ) रा. श. *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*. आगरा: अग्रवाल प्रकाशन.

2. सक्सेना, (डॉ) सरोज. *शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार*. आगरा: साहित्य प्रकाशन.

3. मित्तल, एम.एल. (2008). *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*. मेरठ: इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस.

4. शर्मा, रा. ना. व शर्मा, रा. कु. (2006). *शैक्षिक समाजशास्त्र*. नई दिल्ली: एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स.

5.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. उपनिषदों की पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालिए? उपनिषदों के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य बताइए?

2. उपनिषदों की प्रमुख विषय वस्तु क्या है? वेद एवं उपनिषद का संबंध बताइए?

3. प्रमुख उपनिषदों के नाम बताते हुए? यह बताइए कि आपको को कौन सा उपनिषद सर्वाधिक प्रभावित कर सका? और क्यों?

4. उपनिषदों के अनुसार अधिगम प्रक्रिया क्या थी? उपनिषदों में वर्णित शिक्षणविधियों का उल्लेख कीजिए?

5. तै-त्तरीय उपनिषद में दिये हुए जीव के पांच काशों का वर्णन कीजिए?

6. शंकराचार्य का अद्वैत तथा माध्वाचार्य का द्वैतवाद से किस तरह भिन्न है?

7. विशिष्टाद्वैतवाद से आप क्या समझते हैं, यह द्वैतवाद से किस तरह भिन्न है?

8. उपनिषदों में वर्णित शिक्षक की भूमिका का उल्लेख कीजिए|

इकाई - 6 - सांख्य दर्शन Sankhya

6.1 सांख्य दर्शन: एक परिचय-
6.2 उद्देश्य:-
भाग एक -
6.3 सांख्य और दर्शन का अर्थ-
  6.3.1 सांख्य दर्शन के आचार्य और उनके ग्रन्थ-
  6.3.2 सांख्य दर्शन और शिक्षा-
  6.3.3 साध्य उद्देश्य
अपनी उन्नति जानिए Check Your Progress
भाग दो -
6.4 सांख्य दर्शन की तत्व मीमांसा-
  6.4.1 सांख्य दर्शन की ज्ञान मीमांसा-
  6.4.2 सांख्य में प्रमाण विचार-
  6.4.3 सांख्य दर्शन की आचार मीमांसा
अपनी उन्नति जानिए
भाग तीन
6.5 सांख्य दर्शन के मूल सिद्धान्त-
  6.5.1 शिक्षा की पाठ्यचर्या-
  6.5.2 शिक्षण विधियॉं-
  6.5.3 सांख्य दर्शन की महत्ता और प्रतिपाद्य-
6.6 शिक्षा दर्शन के रूप में सांख्य दर्शन का मूल्यॉंकन-
6.7 शब्दावली
6.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
6.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
6.10 उपयोगी सहायक ग्रन्थ
6.11 दीर्घ उत्तर वाले प्रश्न

6.1 सांख्य दर्शन: एक परिचय

वेद मूलक षड्दर्शनों में सांख्य दर्शन सबसे प्राचीन माना जाता है। इसके प्रणेता महर्षि कपिल है, जो सिद्धों में अग्रगम्य माने जाते हैं। गीता मे भगवान कृष्ण अपनी विभूतियों का वर्णन करते हुए कहते है- सिद्धानां कपिलों मुनिः। अर्थात् सिद्धों में मै कपिल मुनि हूँ । श्रीमद् भागवत में कपिल को विष्णु का पॉचवा अवतार निरूपित किया गया है। महर्षि कपिल प्रणीत सांख्य दर्शन पर हम गहन दृष्टिपात करें, इससे पूर्व आइये सांख्य और दर्शन शब्दों के अर्थों पर विचार करें-

6.2 उद्देश्य

1. इस अध्याय को पढ़कर आप सांख्य दर्शन की पृष्ठभूमि समझ सकेंगे।

2. सांख्य दर्शन के आचार्य और उनके द्वारा प्रतिपाद्य विषय की जानकारी प्राप्त कर सकेगे।

3. सांख्य दर्शन के मूल सिद्धान्तों को समझ सकेंगे।

4. मानव जीवन और उसका उद्देश्य गहराई से समझा जा सकेगा।

5. सांख्य दर्शन और शिक्षा के पारस्परिक संबंध को समझ सकेंगे।

6. सांख्य दर्शन के अनुसार यथास्थान शिक्षण विधि के प्रयोग का कौशल विकसित हो सकेगा।

भाग एक -

6.3 सांख्य और दर्शन शब्दो के अर्थ-

सांख्य - सांख्य शब्द संस्कृत के क्षम् उपसर्ग पर्वक चक्षिड धातु से निष्पन्न है। चक्षिड. को ख्या आदेश होने की स्थिति में 'संख्या' शब्द बनता है। इस प्रकार संख्या के आधार पर निर्मित 'सांख्य' शब्द का अर्थ है, सम्यक विचार करने वाला दर्शन या शास्त्र। सम्यक विचार किसका? प्रकृति के तत्वों का। प्रकृति के तत्वों की गणना करके उनकी संख्या बताना भी सांख्य दर्शन का उद्देश्य है। इसी मन्तव्य को प्रदर्शित करता यह श्लोक द्रष्टव्य है-

> संख्यां प्रकुर्वते चैव प्रकृतिं च प्रचक्षते।
>
> तत्त्वानि च चतुर्विंशत्तेन सांख्यं प्रकीर्तितम्।।

अर्थात् इसमें तत्त्वों की संख्या (गणना) की जाती है और प्रकृति की व्याख्या की जाती है, इसीलिए इसे सांख्य कहा गया है।

दर्शन - 'दर्शन' शब्द दृशिर प्रेक्षणे धातु से ल्युट प्रत्यय करने से निष्पन्न होता है। प्रेक्षण शब्द का अर्थ है प्रकृष्ट रूप से देखना अर्थात् अन्तचक्षुओं द्वारा देखना या मनन करके सोप पत्तिक निष्कर्ष निकालना, न कि सरसरी नजर से केवल बाह्य-हल्की दृष्टि से देखना। इस प्रकार प्रकृष्ट ईक्षण (भली प्रकार देखना) के साधन और फल दोनों का नाम ही दर्शन हैं इसीलिए ऐसे तात्त्विक सिद्धान्तों के संकलन ग्रन्थों का भी दर्शन रखा गया हैं जैसे- सांख्य दर्शन, वेदान्त दर्शन, न्याय दर्शन आदि।

6.3.1 सांख्य दर्शन के आचार्य और उनके ग्रन्थ-

1 महर्षि कपिल- जैसा कि पूर्व में बताया जा चुका है, कि महर्षि कपिल सांख्य के प्रथम आचार्य हैं, किन्तु उनके द्वारा रचित ग्रन्थ अब उपलब्ध नहीं होते। उन्होंने सांख्य के रहस्यों को सूत्र रूप में प्रतिपादित किया था।

2. आसुरि- कपिल के साक्षात् शिष्य आसुरि थे, जिन्होंने सांख्य सिद्धान्तों की व्याख्या की, किन्तु इनकी भी कोई रचना उपलब्ध नहीं होती।

3. पंचशिख- आसुरि के प्रथम शिष्य पंचशिख थे, इन्होंने सांख्य दर्शन पर एक सूत्र ग्रन्थ लिखा था, वह भी अनुपलब्ध है, किन्तु इनके नाम से कुछ सूत्र सम्प्राप्त होते हैं

4. विन्ध्यवास- विन्ध्यवास या विन्ध्यवासी सांख्य के ख्यातिलब्ध आचार्य थे। इनका मत-कुमारिल भट्ट के श्लोक वार्तिक, भोजवृत्ति आदि ग्रन्थों मे वर्णित है।

5. विज्ञान भिक्षु- सोलहवीं सदी में हुए विज्ञान भिक्षु ने सांख्य की परंपरा को आगे बढ़ाते हुए 'सांख्य सूत्र' और उसका भाष्य 'सांख्य प्रवचन भाष्य' इन दो ग्रन्थों का प्रणयन किया। इन ग्रन्थों में सांख्य के वेदान्त के मत भी मिश्रित है।

6. ईश्वर कृष्ण- ईसा के पूर्व दूसरी सदी में हुए ईश्वर कृष्ण सांख्य के प्रकाण्ड आचार्य हुए है। इन्होंने सांख्य दर्शन पर एक सर्वांग पूर्ण ग्रंथ 'सांख्य कारिका' लिखा। यही आज सांख्य दर्शन का सरलता से ज्ञान कराने वाला ग्रंथ है, जो सर्वत्र उपलब्ध भी है।

आइये सांख्य दर्शन की तत्व मीमांसा, ज्ञान मीमांसा, आचार मीमांसा, सांख्य के सिद्धान्त एवं सांख्य दर्शन और शिक्षा आदि बिन्दुओं पर क्रमिक विचार करते हैं।

6.3.2 सांख्य दर्शन और शिक्षा-

सांख्य दर्शन मे शिक्षा के सम्बन्ध में स्वतन्त्र रूप से कोई विचार नहीं किया है परन्तु उसकी तत्व मीमांसा से शिक्षा के अन्तिम उद्देश्य, ज्ञान मीमांसा से शिक्षा के सामान्य उद्देश्य पाठ्यचर्या, अनुशासन और शिक्षक-शिक्षार्थी सम्बन्ध के विषय में ज्ञान प्राप्त होता है। मनुष्य की बाह्य एवं आन्तरिक रचना के सम्बन्ध में सांख्य मनोविज्ञान, आधुनिक मनोविज्ञान अधिक विकसित है। यहां हम सांख्य दर्शन में निहित शिक्षा सम्बन्धी विचारों को क्रमबद्ध करने का प्रयास करेंगे

शिक्षा का सम्प्रत्यय- सांख्य के सत्कार्यवाद के सिद्धान्तानुसार कार्य कारण में पहले से निहित होता है, शिक्षा का कार्य बाहर निकालना है। सांख्य प्रकृति और पुरूष दोनों को मूलतत्व मानता है। पर दोनों के मूलभूत अन्तर को भी जानना है। उसकी दृष्टि से वास्तविक शिक्षा वह, जो मनुष्य को प्रकृति-पुरुष के भेद का ज्ञान कराती है।

सांख्य की दृष्टि से मनुष्य का शरीरर तन्मात्राओं से बना कर्मेन्द्रियों एवं ज्ञानेन्द्रियों का ढांचा होता है, उसका अन्तकरण मन, अहंकार और बुद्धि इन तीन तत्वों का समुच्चय होता है और इन सबका प्रकाशित करने वाला होता है, पुरुष (आत्मा)। सांख्य के अनुसार शिक्षा द्वारा इन सबका विकास होना चाहिए। सांख्य के अनुसार मनुष्य जीवन का अन्तिम उद्देश्य मुक्ति है और यह मुक्ति प्रकृति-पुरुष के भेद को जानने से प्राप्त होती है। अतः मनुष्य का विकास इस रूप में होना चाहिए कि वह प्रकृति-पुरुष के भेद को समझ सके दुःखत्रय से छुटकारा प्राप्त कर सके, मुक्ति हो सके। उसकी सृष्टि के भेद को समझ सके दुःखत्रय से छुटकारा प्राप्त कर सके, मुक्त हो सके, उसकी दृष्टि से यह शिक्षा का साध्य उद्देश्य है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए वह योग साधन मार्ग को आवश्यक मानता है और योग साधना के लिए नैतिक आचरण को आवश्यक मानता है। आज की भाषा में हमें इन उद्देश्यों को निम्नलिखित रूप में क्रम बद्ध कर सकते हैं।

6.3.3 साध्य उद्देश्य

1. दुःख त्रय से छुटकारे का उद्देश्य (प्रकृति-पुरुष भेद को जानने का उद्देश्य, मुक्ति का उद्देश्य) साधन उद्देश्य-

1. शारीरिक विकास का उद्देश्य (तन्मात्राओं, कर्मेन्द्रियों एवं ज्ञानेन्द्रियों का विकास)

2. मानसिक विकास का उद्देश्य (मन तत्व का विकास, विचार को ऊर्ध्वगामी बनाना)

3. भावात्मक विकास का उद्देश्य (अहंकार तत्व का विकास, अहम् में सत्व की प्रधानता का विकास)

4. बौद्धिक विकास का उद्देश्य (बुद्धि तत्व का विकास, उसे इन्द्रियों की दासता से हटाना, पुरुष की अनुभूति में संलग्न करना।)

5. नैतिक विकास का उद्देश्य (सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह एवं ब्रहाचर्यव्रत तथा शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय एवं ईश्वर प्रणिधान नियमों के पालन की ओर प्रवृत्त करना।)

अपनी उन्नति जानिए Check Your Progress

प्रश्न 1 वेद मूलक षड्दर्शनों में सबसे प्राचीन किसे माना जाता है।

प्रश्न 2 श्रीमद् भागवत में कपिल को किसका पॉचवा अवतार निरूपित किया गया है।

6.4 सांख्य दर्शन की तत्व मीमांसा-

सांख्य द्वैतवादी दर्शन है इसके अनुसार दो मूल तत्व हैं- एक प्रकृति और दूसरा पुरुष और यह सृष्टि इन्हीं दो तत्वों के योग से बनी है। सांख्य के अनुसार यह प्रकृति सत्व, रज और तम तीनों गुणों का समुच्चय है और पुरुष निर्गुण। सांख्य के सत्कार्यवाद के सिद्धान्तानुसार कार्य कारण में पहले से ही निहित होता है। यह सृष्टि भी प्रकृति में पहले से निहित थी, इसी से इसकी उत्पत्ति हुई है, प्रकृति कारण है और सृष्टि इसका कार्य। कारण के कार्य रूप में परिवर्तित होने का नाम उत्पत्ति है और कार्य के पुनः कारण रूप में परिवर्तित होने का नाम विनाश है। वैसे प्रकृति और पुरुष दोनों ही अनादि और अनन्त हैं। सांख्य का स्पष्टीकरण है कि प्रकृति केवल जड है, बिना पुरुष (चेतन तत्व) इसमें कोई क्रिया नहीं हो सकती है और दूसरी ओर पुरुष केवल चेतन हैं, बिना जड़ माध्यम के वह क्रिया नहीं कर सकता। अतः सृष्टि की रचना के लिए प्रकृति एवं पुरुष का संयोग आवश्यक है। सांख्य के अनुसार प्रकृति एवं पुरुष दोनों की सत्ता स्वयं सिद्ध है। प्रकृति इन्द्रिय ग्राह की सत्ता का द्योतक है। सांख्य ने प्रकृति और पुरुष के बीच 23 अन्य तत्वों की खोज की है और इस प्रकार उसके अनुसार तत्वों की कुल संख्या 25 है। ये तत्व हैं-

प्रकृति - प्रकृति अथवा प्रधान अथवा अव्यक्त

विकृति- हाथ, पैर, वाणी, गुदा और जनेन्द्रिय, आंख, कान, नाक, जिह्वा और त्वचा, मन तथा पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश|

प्रकृति- विकृति- अहंकार महत् (बुद्धि), शब्द तन्मात्रा, स्पर्श तन्मात्रा रूपतन्मात्रा, रस तन्मात्रा और गंध तन्मात्रा न प्रकृति न विकृति-पुरुष (आत्मा)।

पुरूष (चेतन तत्व)- जिस प्रकार किसी जड़ पदार्थ को प्रत्यक्षः देखा जा सकता है, उस प्रकार से पुरूष अथवा चेतन तत्व का प्रत्यक्ष दर्शन नहीं किया जा सकता, परन्तु जब इसकी रचना और उद्देश्य

पर गहराई से विचार किया जाता है, तब इसका वास्तविक तथ्य समझ में आता है एवं इसके अस्तित्व को स्वीकार करना ही पड़ता है। किसी भी कार्य का कोई कारण अवश्यमेव होता है। जब विश्व के कार्य मे एक सुनिश्चित क्रम, एक व्यवस्था का अनुभव होता है, तब उसका कारण कोई चेतन तत्व होना भी आवश्यक है। उपर्युक्त सांख्य के 24 तत्वों के अतिरिक्त जो पच्चीसवॉं तत्व है, वह पुरूष है। वह चेतन है। इस संदर्भ में यह प्रमाण द्रष्टव्य है-

> संघातपरार्थत्वात् त्रिगुणादिविपर्ययादधिष्ठानात्।
>
> पुरूषोऽस्ति भोक्तृभावात् कैवल्यार्थं प्रवृत्त्च्चा।। (सांख्यकारिका, 16)

अर्थात् संघात के पदार्थ होने से त्रिगुणादि (सत्व, रज, तम) के विपरीत होने से, भोक्ताभाव से और मोक्ष की ओर प्रवृत्ति होने से पुरूष (चेतन तत्व) के अस्तित्व की सिद्धि होती है।

6.4.1 सांख्य दर्शन की ज्ञान मीमांसा-

सांख्य दर्शन ने ज्ञान को दो भागों में बांटा है- एक पदार्थ ज्ञान, इसे वह यथार्थ ज्ञान कहता है और दूसरा प्रकृति-पुरुष के भेद का ज्ञान, इसे वह विवेक ज्ञान कहता है। सांख्य के अनुसार हमें पदाथो का ज्ञान इन्द्रियों द्वारा होता है। इन्द्रियों से यह ज्ञान मन, मन से अहंकार, अहंकार से बुद्धि और बुद्धि से पुरूष को प्राप्त होता है। दूसरी ओर सांख्य यह मानता है कि पुरुष बुद्धि को प्रकाशित करता है, बुद्धि अहंकार को जाग्रत् करती है, अहंकार मन को क्रियाशील करता है और मन इन्द्रियों को क्रियाशील करता है, उनके और वस्तु के बीच संसर्ग स्थापित करता है। सांख्य का स्पष्टीकरण है कि इन्द्रियां, मन, अहंकार और बुद्धि से यह प्रकृति से निर्मित हैं। अतः ये जड़ हैं और जड़ में ज्ञान का उदय नहीं हो सकता। दूसरी ओर पुरुष केवल चेतन तत्व है, बिना जड़ प्रकृति के माध्यम के वह भी ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता है। ज्ञान की प्राप्ति के लिए पदार्थ ज्ञान प्राप्त करने की प्रक्रिया को हम निम्नांकित रेखाचित्र द्वारा स्पष्ट कर सकते हैं- पदार्थ, इन्द्रियां, मन, अहंकार, बुद्धि पुरुष।

6.4.2 सांख्य में प्रमाण विचार-

सांख्य में वर्णित 25 प्रमेयों के समुचित ज्ञान से दुःखों की आत्यान्तिक निवृत्ति होती है। ये प्रमेय व्यक्त, अव्यक्त और ज्ञान तीन प्रकार के हैं। इनका ज्ञान भी तीन प्रमाणों से होता है। ये प्रमाण है- प्रत्यक्ष (दृष्ट), अनुमान और आप्त वचन। इन्हें क्रमशः इस तरह समझें-

1. प्रत्यक्ष प्रमाण- सांख्य की पंचम कारिका मे वर्णित इसका लक्षण यह है- ‘प्रति विषयाध्यवसायः अर्थात् प्रत्येक ज्ञान के विषय में जो पृथक्-पृथक् निश्चित ज्ञान है, वही प्रत्यक्ष प्रभाव है।

2. अनुमान प्रमाण- अनुमान प्रमाण का लक्षण लिंग और लिंगी के ज्ञानपूर्वक है। इसके तीन विभाग है- पूर्ववत् अनुमान, शेषवत् अनुमान एवं सामान्यतोदृष्ट अनुमान।

3. आप्तवचन- आगम प्रमाण ही आप्त वचन कहलाता है। इन तीनों प्रमाणों से ही सांख्य शास्त्र के सभी तत्वों का ज्ञान हो जाता है।

इनमें भी व्यक्त प्रमेयों का ज्ञान प्रत्यक्ष से अव्यक्त (अतीन्द्रिय) प्रमेयों का ज्ञान अनुमान से और जो परोक्ष हों, उनका ज्ञान आप्तागम (आप्तवचन) अर्थात् वेदवाक्य के द्वारा होता है। अतः वेदवाक्य द्वारा ही 'ज्ञ' पुरूष का अस्तित्व सिद्ध होता है। कहा भी है-

तस्मादपि= अनुमानादपि च असिद्धम् परोक्षम्=अतीन्द्रियम् आप्तागमात् सिद्धम्।

6.4.3 सांख्य दर्शन की आचार मीमांसा

सांख्य दर्शन का आरम्भ दुःख त्रय-आध्यात्मिक (आत्मा, मन और शरीरर सम्बन्धी) आदि भौतिक (बाह्य जगत सम्बन्धी) और अधिदैविक (ग्रह एवं दैवीय प्रकोप सम्बन्धी) की सार्वभौमिकता की स्वीकृति से होता हैं- त्रिविध दृःखात्यन्त निवृत्तिरत्यन्त पुरूषार्थः (सांख्य दर्शन, 1.1)। उसके अनुसार दुःखत्रय का मुख्य कारण अज्ञान है। यह अज्ञान क्या है? जब पुरुष बुद्धि के कार्य को अपना काय्र बना लेता है अर्थात प्रकृति के सत्व, रज और तम गुणों की अनुभूति करने लतगा है, तो इसे अज्ञान कहते है, इसी कारण वह दुःख का भोक्ता हो जाता है। अन्यथा वह तो निर्गुण है, उसे सुख-दुःख की अनुभूति नहीं होनी चाहिए। पदार्थो के वास्तविक स्वरूप को जानना बुद्धि, अहंकार , मन और इन्द्रियों के कार्यो को अपना कार्य न समझना ही ज्ञान है, इस ज्ञान की स्थिति में ही मनुष्य सुख-दुःख के अनुभव से अलग हो सकता है (ज्ञानान्मुत्तिः, सांख्य दर्शन, 3.23)। इसकी प्राप्ति के लिए सांख्य योग साधन मार्ग (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि) को आवश्यक मानता है। यम का अर्थ है-मन, वचन और कर्म का संयम। इसके लिए योग सत्य, अहिंसा, अस्त्तेय, अपरिग्रह और ब्रहाचर्य व्रत के पालन को आवश्यक मानना है। योग के अनुसार नियम भी पांच हैं यथा-शौच, सन्तोष तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान। सांख्य दर्शन मोक्ष के इच्छुक को इन सब को अपने आचरण में उतारने का उपदेश देता है। इन नैतिक महाव्रतों एवं नियमों का पालन करने से ही मनुष्य अपनी इन्द्रियों को वश में कर सकता, अपने मन को निर्मल कर सकताहै और योग साधना के अन्य छह पदों -आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि का अनुसरण कर सकता है।

अपनी उन्नति जानिए Check Your Progress

प्रश्न 1 महर्षि कपिल सांख्य के प्रथम आचार्य हैं?

प्रश्न 2 ज्ञान कितने प्रमाणों से होता है?

6.5 सांख्य दर्शन के मूल सिद्धान्त-

सांख्य दर्शन की तत्व मीमांसा, ज्ञान मीमांसा और आचार मीमांसा को यदि हम सिद्धान्तों के रूप् में क्रमबद्ध करना चाहें तो निम्नलिखित रूप् में कर सकते है-

1. यह सृष्टि प्रकृति और पुरुष के योग से निर्मित है- सांख्य के अनुसार वह सृष्टि प्रकृति और पुरुष के योग से निर्मित है। उसका तर्क है कि प्रकृति केवल जड़ तत्व है, बिना चेतन के संयोग के उसमें क्रिया नहीं हो सकती और बिन क्रिया के सृष्टि रचना नहीं हो सकती। दूसरी ओर पुरुष केवल चेतन तत्व है, बिना जड़ तत्व की सहायता के वह क्रिया नहीं कर सकता और क्रिया के अभाव में सृष्टि रचना नहीं हो सकती। अतः सृष्टि रचना के लिए प्रकृति-पुरुष का संयोग आवश्यक है।

2. प्रकृति और पुरुष दोनों मूल तत्व हैं सांख्य प्रकृति और पुरुष दोनों को मूल तत्व मानता है। अनादि और अनन्त मानता है, सत्य मानता है। पर प्रकृति के वह जड़ और पुरुष को चेतन मानता है। प्रकृति को त्रिगुणात्मिका और पुरुष को निर्गुण मानता है। सांख्य के अनुसार सृष्टिरचना की दृष्टि से प्रकृति और पुरुष दोनों एक दूसरे के पूरक हैं।

3. पुरुष की स्वतन्त्र सत्ता है और वह अनेक हैं- सांख्य पुरुष अर्थात् आत्मा की स्वतंत्र सत्ता मानता है, वह ब्रहा का अंश नहीं मानता, उसे अपने में मूल तत्व मानता है। सांख्य प्रत्येक प्राणी में एक स्वतन्त्र आत्मा की सत्ता स्वीकार करता है, वह अनेकात्मवादी दर्शन है।

4. मनुष्य प्रकृति एवं पुरुष का योग है सांख्य के अनुसार मनुष्य सृष्टि का ही एक अंश है अतः उसकी रचना भी प्रकृति-पुरुष के संयोग से होना निश्चित हैं। उसका इन्द्रियों, मन, अहंकार बुद्धि और तन्मात्राओं से बना शरीरर जड़ है और उसमें निहित चेतन तत्व पुरुष है। सांख्य मनुष्य जीवन को सप्रयोजन मानता है।

5. मनुष्य का विकास उसके जड़ एवं चेतन दोनों तत्वों पर निर्भर करता है- सांख्य के अनुसार मनुष्य प्रकृति एवं पुरुष का योग होता है और उसका विकास इन्ही दो तत्वों पर निर्भर करता है। सांख्य की दृष्टि से मानव विकास की तीन दिशाएं होती हैं- शारीरिक, मानसिक और आत्मिक।

6. मनुष्य जीवन का अन्तिम उद्देश्य मुक्ति है। सांख्य के अनुसार मनुष्य जीवन सप्रयोजन है, उसका उद्देश्य दुःखत्रय से छुटकारा पाना है, इसे ही वह मुक्ति कहता है। दुःखत्रय क्यों होता है? जब पुरुष अपने वास्तविक स्वरूप् को भूल कर अपने को बुद्धि समझ बैठता है तब उसे दुःख की अनुभूति होती है अन्यथा तो वह इन सबसे अलग है। जब मनुष्य अपनी आत्मा के वास्तविक स्वरूप् को पहचान लेता है तब वह दुःख त्रय से छुटकारा पा जाता है, मुक्त हो जाता है। जो मनुष्य इसी जीवन में दुःख त्रय के अनुभव से मुक्त हो जाता है उसे सांख्य में जीवन्मुक्त कहते हैं और जो शरीरर के नाश होने पर दुःख त्रय अनुभव से मुक्त होता है, उसे विदेह मुक्त कहते हैं।

7. मुक्ति के लिए विवेक ज्ञान आवश्क होता है- सांख्य की दृष्टि से मुक्ति के लिए विवेक अपने आप को प्रकृति से अलग कर सुख-दुःख से अलग हो सकता है, कर्मफल भोग से मुक्त हो सकता है।

8. विवेक ज्ञान के लिए योग्य साधन मार्ग आवश्यक है- सांख्य विवेक ज्ञान के लिए योग द्वारा निर्दिष्ट साधन मार्ग (यम, नियम आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि को आवश्कता मानता है।

9. योग मार्ग के अनुयायी के लिए नैतिक आचरण आवश्यक है- योग साधन मार्ग का प्रथम पद है- यम। यम का अर्थ है मन वचन और कर्म का संयम। इसके लिए योग सत्य अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रहाचर्य व्रत का पालन आवश्यक मानता है। योग साधन मार्ग का दूसरा पद है- नियम। योग के अनुसार नियम भी पांच हैं-शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और प्राणिधान। योग के अनुसार इन पांच व्रतों और पांच नियमों का पालन करने के बाद ही साधक आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि की क्रियाएं कर सकता है। इन्हें ही आज की भाषा में नैतिक नियम कहा जाता है।

6.5.1 शिक्षा की पाठ्यचर्या-

पाठ्यचर्या तो उद्देश्यों की प्राप्ति का साधन होती है। सांख्य दर्शन मनुष्य के भौतिक आध्यात्मिक दोनों पक्षों को सत्य मानता है और दोनों के विकास को समान महत्व देता है। उसकी दृष्टि से पाठ्यचर्या में पदार्थ एवं आत्मा दोनों से सम्बन्धित ज्ञान एवं क्रियाओं को स्थान देना चाहिए। सांख्य मनुष्य के विकास क्रम से परिचित है, उसके अनुसार भिन्न-भिन्न आयु वर्ग के बच्चों के लिए भिन्न-भिन्न पाठ्यचर्या होनी चाहिये।

सांख्य के अनुसार शिशु काल में बच्चों की कर्मेन्द्रियों एवं ज्ञानेन्द्रियों का विकास बहुत तेजी से होता है अतः इस काल में सबसे अधिक बल इनके उचित विकास पर ही देना चाहिए। बच्चों की इन्द्रियों के विकास के लिए उचित पर्यावरण की आवश्यकता होती है। बच्चों को खुले आकश के नीचे, खुली हवा में खेलने-कूदने, दौड़ने-उछलने के अवसर देने चाहिये, इससे उनकी कर्मेन्द्रियों का विकास होता है। इसी के साथ उन्हें वनस्पति के सम्पर्क में आने देना चाहिए, देखने, सुनने, सूंघने, चखने और स्पर्श करने के अवसर देने चाहिए इससे उनकी ज्ञानेन्द्रियों का विकास होता है, तन्मात्राओं के अनुभव की शक्ति विकसित होती है। आधुनिक युग में इटली की डा0 माण्टेसरी ने भी इसी तथ्य पर बल दिया है।

सांख्य बाल्यकाल के मनोविज्ञान से भी परिचित है। उसके अनुसार इस अवस्था पर बच्चों की इन्द्रियों का विकास चालू रहता है और इसके साथ-साथ उनके अन्तःकरण (मन अहम् और बुद्धि तत्व) का विकास भी होने लगता है। अतः इन्द्रियों के विकास एवं प्रशिक्षण की प्रक्रिया चालू रहनी चाहिए और इसके साथ-साथ मन, अहंकार और बुद्धितत्व के विकास के लिए पाठ्यचर्या में भाषा, साहित्य, सामाजिक विषय, पदार्थ विज्ञान और गणित को सम्मिलित करना चाहिये। सांख्य के

अनुसार किशोरावस्था पर अहंकार (स्व-प्रत्यय) स्थाई होने लगता है, बुद्धि में निर्णय लेने की शक्ति आने की लगती है। अतः इस आयु के बच्चों की पाठ्यचर्या में तर्क आधारित विवेचनात्मक विषयों (ज्यामिति आदि) को स्थान देना चाहिए। सांख्य के अनुसार यदि बच्चों को उनके शैशव काल, बाल्य काल और किशोर काल में यथा विकास के उचित अवसर दिए जायें, तो युवाकाल तक उनकी समस्त शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक शक्तियों का विकास हो जाता है। तब उन्हें धर्म, दर्शन, तर्कशास्त्र आदि की शिक्षा देनी चाहिए, पदार्थ एवं अज्ञतम तत्व के ज्ञान की शिक्षा देनी चाहिए। सांख्य अनेकात्मवादी दर्शन है, व्यक्ति की वैयष्टिकता का आदर करने वाला दर्शन है। अतः उसके अनुसार इस आयुवर्ग के बच्चों के लिए उनकी योग्यता, क्षमता एवं रूचि के अनुकूल विशेष अध्ययन की व्यवस्था भी होनी चाहिए, जैसे- शरीरर विज्ञान, आयुर्वेद विज्ञान एवं ज्योतिष शास्त्र। सांख्य शिक्षा (अध्ययन) की निरन्तरता का पक्षधर है। योग में जिन पांच नियमों की चर्चा है, उनमें एक स्वाध्याय भी है। सांख्य के अनुसार मनुष्य को जीवन पर्यन्त स्वाध्याय करना चाहिए और तब तक करना चाहिए, जब तक वह प्रकृति -पुरुष के भेद की नहीं जान जाता। इस स्वाध्याय के साथ योग साधना बराबर चलनी चाहिए, योग साधना द्वारा ही वह आत्मा के वास्तविक स्वरूप को जान सकता है, उसकी अनुभूति कर सकता है

6.5.2 शिक्षण विधियॉ-

सांख्य के अनुसार ज्ञान, वस्तु विशेष के गुणों के माध्यम से उत्पन्न होता है, परन्तु ये गुण बुद्धि पर आरोपित नहीं होते, अपितु बुद्धि इन्हें ग्रहण करती है। इस प्रकार ज्ञान की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे सांख्य दर्शन का सिद्धान्त व्यावहारवादी मनोविज्ञान के उद्दीपन अनुक्रिया के समान है, परन्तु दोनों में मूलभूत अन्तर यह है कि उद्दीपन अनुक्रिया सिद्धान्तानुसार ज्ञान प्रक्रिया बाहर से अन्दर की ओर होती है जबकि सांख्य सिद्धान्तानुसार यह प्रक्रिया अन्दर से बाहर की ओर होती है। यहां हम संख्या के सीखने-सिखाने सम्बन्धी मनोविज्ञान को क्रमबद्ध करने का प्रयत्न करेंगे।

ज्ञान प्राप्त करने के उपकरण - सांख्य ने ज्ञान प्राप्त करने के उपकरणों को दो भागों में बांटा हैं- बाह्य उपकरण और अतः उपकरण। बाह्य उपकरणों में कमेन्द्रियां एवं ज्ञानेन्द्रियां आती हैं और अन्तः उपकरणों में मनस् (मन), अहंकार (अहम्) महत् (बुद्धि) और पुरुष (आत्मा) आते हैं। सांख्य के अनुसार ज्ञान प्राप्ति के लिये भी जड़ (इन्द्रिय, मन, अहंकार और बुद्धि) तथा चेतन (आत्मा) का संयोग आवश्यक होता है।

ज्ञान प्राप्त करने के साधन अथवा स्रोत- सांख्य के अनुसार ज्ञान प्राप्त करने के तीन प्रमाण (साधन अथवा स्रोत) होते हैं- प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द। शब्द से उसका तात्पर्य आप्त पुरुष के वचन से है। वेद को वह शब्द मानता है।

ज्ञान प्राप्त करने की विधियां - सांख्य के अनुसार ज्ञान प्राप्त करने के तीन साधन हैं- प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द। इसी आधार पर ज्ञान प्राप्त करने अथवा ज्ञान प्राप्त कराने की तीन विधियां होती हैं- प्रत्यक्ष विधि, अनुमान विधि और शब्द विधि। यहां इन तीनों विधियों के सन्दर्भ में सांख्य मत प्रस्तुत है।

प्रत्यक्ष विधि - प्रत्यक्ष विधि वह विधि है जिसमें सीखने वाला किसी वस्तु अथवा क्रिया का ज्ञान अपनी इन्द्रियों द्वारा सीधे प्राप्त करता है। सांख्य मनोविज्ञान के अनुसार इन्द्रियों द्वारा अनुभूत ज्ञान मन, अहंकार और बुद्धि द्वारा आत्मा पर पहुंचता है। दूसरी ओर जब तक आत्मा (चेतन तत्व) इन्द्रियों मन, अहंकार और बुद्धि के साथ संयोग नहीं करता तब तक ये क्रिया शील नहीं होते। ज्ञान प्राप्ति के लिए जड़ और चेतन दोनों का संयोग आवश्यक है। इस प्रकार प्रत्यक्ष विधि में इन्द्रियां, मन, अहंकार, बुद्धि और आत्मा सभी क्रियाशील रहते हैं। सांख्य के प्रत्यक्ष को हम निम्नांकित रेखा चित्र द्वारा स्पष्ट कर सकते हैं।

पदार्थ अथवा क्रिया इन्द्रियां मन अहंकार बुद्धि आत्मा सांख्य की दृष्टि से प्रत्यक्ष विधि में मनुष्य के बाह्य एवं आन्तरिक दोनों उपकरण क्रियाशील रहते हैं, इस प्रकार प्राप्त किया ज्ञान वास्तविक होता है, स्थाई होता है। वैसे भी प्रारम्भ में मनुष्य प्रत्यक्ष विधि द्वारा ही सीखता है और फिर इस प्रत्यक्ष ज्ञान के आधार पर वह अनुमान और शब्द प्रमाणों के माध्यम से सीखता है। बिना प्रत्यक्ष ज्ञान के अन्य विधियों से सीखना सम्भव नहीं। प्रत्यक्ष ज्ञान शिक्षा और शिक्षण का आधार होता है।

अनुमान विधि -अनुमान का अर्थ है किसी पूर्व ज्ञान के पश्चात् होने वाला ज्ञान। इस प्रकार अनुमान विधि वह विधि है जिसमें ज्ञान विषय के आधार पर अज्ञात विषय का किसी हेतु के माध्यम से अनुमान लगाया जाता है। सांख्य के अनुसार अनुमान के दो भेद होते हैं। वीत और अवीत। जो अनुमान शाश्वत विधि वाक्य पर अश्रित होता है उसे वीत कहते हैं और जो शाश्वत निषेध वाक्य पर आधारित होता है उसे अवीत कहते हैं। सांख्य के अनुसार अनुमान प्रमाण का प्रयोग प्रत्यक्ष एवं शब्द प्रमाण के साथ भी होता है। पर जब यह अनुमान प्रत्यक्ष ज्ञान एवं तर्क पर आधारित होता है तो लाभकर होता है और जब यह बिना किसी आधार पर किया जाता है तो हानिकारक होता है। सांख्य का यह कथन सत्य है। भाषा के लाक्षणिक अर्थों की प्रतीति हमें अनुमान विधि का ही प्रयोग करके ही होता है। शोधकर्ता अपना शोध कार्य अनुमान के आधार पर ही आगे बढ़ाता है।

शब्द विधि - शब्द का अर्थ है आप्त मनुष्य की वाणी। आत्म मनुष्य उसे कहते हैं जिसे पदार्थ एवं आत्म तत्व का ज्ञान होता है। इस प्रकार शब्द विधि वह विधि है जिसमें आप्त मनुष्यों के मुख के सुनकर अथवा उनके द्वारा विचारित ग्रंथों का अध्ययन करके ज्ञान प्राप्त किया जाता है। संख्य के अनुसार जहॉ प्रत्यक्ष या अनुमान प्रमाण से ज्ञान प्राप्त न किया जा सके वहां शब्द प्रमाण का प्रयोग करना चाहिए। बस ज्ञाता को यह सावधानी बरतनी चाहिए कि इस प्रकार से सीखे ज्ञान को वह अपने प्रत्यक्ष ज्ञान की कसौटी पर कसकर ही गृहण करे। शब्द विधि ज्ञान प्राप्त करने की सर्वव्यापक विधि

है। आज भी हमें अधिकतर शब्द प्रमाण का प्रयोग करना चाहिए। बस ज्ञाता को यह सावधानी बरतनी चाहिए कि इस प्रकार से सीखे ज्ञान को वह अपने प्रत्यक्ष ज्ञान की कसौटी पर कसकर ही गृहण करे। शब्द विधि ज्ञान प्राप्त करने की सर्वव्यापक विधि है। आज भी हम अधितर शब्द द्वारा ही सीखते-सिखाते हैं। शिक्षण की सभी मौखिक युक्तियां-प्रश्नोत्तर, विवरण संख्या आदि शब्द विधि के अन्तर्गत आती है। पाठ्य पुस्तक प्रणाली भी शब्द विधि का रूप है। पर्यवेक्षित अध्ययन इस प्रणाली का सबसे अधिक निखरा हुआ रूप है। आज के मानव जीवन में सीखने-सिखाने की दृष्टि से प्रेस, रेडियों और टेलीविजन का बड़ा महत्व है और ये सब शब्दों द्वारा ही शिक्षा देते हैं। शब्द प्रणाली का इस युग में भी बड़ा महत्व है।

अनुशासन- सांख्य योग अनुशासन का समर्थक है। योग अनुशासन का पहला पद है- यम । यम का अर्थ है मन, वचन और कर्म का संयम। इसके लिए योग सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रहाचर्य इन पांच वृत्तों के पालन पर बल देता है। योग अनुशासन का दूसरा पद है।- नियम। योग के अनुसार नियम भी पांच हैं- शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान। सांख्य के अनुसार जो व्यक्ति इन पांच व्रतों और पांच नियमों का जितनी सीमा तक पालन करता है, वह उसी सीमा तक अनुशासित माना जाना चाहिए। सांख्य का स्पष्ट मत है कि बिना इस अनुशासन का पालन किए मनुष्य अपने शरीरर को स्वस्थ और मन अहंकार एवं बुद्धि को निर्मल नहीं बना सकता और जब तक वह अपने शरीरर को स्वस्थ और मन, अहंकार तथा बुद्धि को निर्मल नहीं बनाता, तब तक वह पदार्थ अथवा आत्म तत्व का वास्तविक ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता।

शिक्षक- सांख्य शिक्षक को आप्त रूप में देखता है। उसके अनुसार शिक्षण को अपने विषय का पंडित होना चाहिए। उसे यदि प्रकृति-पुरुष के भेद का स्पष्ट ज्ञान हो, तो सोने में सुहागा समझिए, उसी स्थिति में वह शिष्य में विवेक ज्ञान विकसित कर सकता है। सांख्य शिक्षक से यह भी आशा करता है कि उसे ज्ञान प्राप्ति के प्रमाणों का स्पष्ट ज्ञान हो और वह उनकी सहायता से शिष्यों में ज्ञान का विकास करने में सक्षम हो, निपुण हो। वह शिक्षक को अनुशासन का पालन करने का उपदेश देता है।

शिक्षार्थी- सांख्य अनेकात्मवादी दर्शन है, वह छात्र के व्यष्टितम का आदर करता है, वह उसके वैयक्तिक विकास का पक्षधर है। पर वह यह भी मानता है कि आत्मतत्व के साथ उसके प्रवृति तत्व भी है- सत्व, रज और तम गुण भी है। अतः वह छात्र को नैतिक आचरण का उपदेश देता है, अनुशासन में रहने का उपदेश देता है। उसी स्थिति में शिष्य पदार्थ और आत्म तत्व का ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

विद्यालय- सांख्य दर्शन के विकास काल में विद्यालय का सम्प्रत्यय विकसित नहीं हुआ था वैसे भी सांख्य मनुष्य के वैयष्टिक विकास का समर्थक है और उस दृष्टि से व्यष्टि शिक्षण ही उपयोगी होता है।

शिक्षा के अन्य पक्ष- सांख्य मनुष्य के जड़ और चेतना दोनों तत्वों को समान महत्व देता है वह मनुष्य के भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों पक्षों के विकास का पक्षधर है। उसकी दृष्टि से मानव जीवन सप्रयोजन है, मुनष्य का अन्तिम उद्देश्य मुक्ति है । तब सांख्य की दृष्टि से सभी मनुष्यों (स्त्री और पुरुषों) का भौतिक एवं आध्यात्मिक विकास होना चाहिए।

6.5.3 सांख्य दर्शन की महत्ता और प्रतिपाद्य-

तत्वज्ञान की दृष्टि से सांख्यदर्शन का स्थान बहुत ऊँचा है। इसलिए विद्वानों में यह कहावत प्रसिद्ध है- न हि सांख्य समं ज्ञानम् नहि योग समं बलम्। जहॉं सांख्य ज्ञान परक है, वहीं योग क्रिया परक। सांख्य और योग वास्तव में एक दूसरे के पूरक है। दोनों दर्शनों के ऐक्य को वर्णित करते हुए गीताकार कहते हैं- ''सांख्य योगो पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः'' सांख्य दर्शन का प्रमुख प्रतिपाद्य आत्मा-परमात्मा, सृष्टि-रचना, प्रकृति का क्रमशः विकास है। सांख्य शास्त्र के समान व्यापक कोई दूसरा शास्त्र नहीं हुआ। इसके तत्व स्थूल नहीं है वरन् वे हमारे बौद्धिक जगत के तत्व है। सांख्य की व्यापकता इसी बात से प्रकट है कि उपनिषद से लेकर साहित्य तथा त्योतिष् शास्त्र के भी ग्रन्थों में किसी न किसी प्रसंग में सांख्य शास्त्र के विषयों का उल्लेख मिल ही जाता है।

अपनी उन्नति जानिए Check Your Progress

प्रश्न 1 योग साधना के छह पदों के नाम लिखिय ?

प्रश्न 2 सांख्य और -- वास्तव में एक दूसरे के पूरक है।

6.6 शिक्षा दर्शन के रूप में सांख्य दर्शन का मूल्यॉकन-

सांख्य प्रकृति (जड़) और पुरुष (चेतन) दोनों के स्वतन्त्र अस्तित्व को स्वीकार करता है और इस प्रकार वह भौतिकवादी एवं अध्यात्मवादी दोनों को स्वीकार है। परन्तु उसका अनेकात्मवाद और निरीश्वरवाद अन्य भारतीय दर्शनों की आलोचना का विषय है। पर कुछ भी हो, उसकी तर्क एवं ज्ञान मीमांसा बड़ी वैज्ञानिक है और उसकी आचार मीमांसा बड़ी व्यावहारिक है। इस दृष्टि से इस दर्शन का शैक्षिक महत्व सबसे अधिक है।

सांख्य ने शिक्षा प्रक्रिया के स्वरूप पर तो चर्चा नहीं की है, परन्तु उसके कार्यो को बहुत अच्छे ढंग से स्पष्ट किया है। सांख्य मनुष्य को भी प्रकृति एवं पुरुष का योग मानता है और उसके इन दोनों पक्षों के विकास पर बल दिया है। मनुष्य के प्रकृति पक्ष के अन्तर्गत तन्मात्राएं, कर्मेन्द्रियां, ज्ञानेन्द्रियॉं, मन, अहंकार और बुद्धि तत्व आते हैं और उसके पुरुष पक्ष में उसका पुरुष अर्थात् आत्मतत्व आता है। सांख्य के अनुसरण शिक्षा द्वारा मनुष्य की इन्द्रियों, मन अहंकार और बुद्धि का विकास करना चाहिए

और उसे योग साधन मार्ग में प्रशिक्षित करना चाहिए। जिससे वह अपने आत्म तत्व के वास्तविक स्वरूप को पहचान सके। इस प्रकार सांख्य मनुष्य के सर्वांगीण विकास पर बल देता है।

सांख्य ने उपरोक्त उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए विस्तृत पाठ्यचर्या का विकास किया है। वह मानव विकास क्रम से भी परिचित है। सांख्य का बल विकास का विवेचन बड़ा मनोवैज्ञानिक है। उसने बाल विकास के अनुसार ही पाठ्यक्रम का नियोजन किया है। पाठ्यक्रम निर्माण सम्बन्धी सांख्य मत आज भी बड़ा उपयोगी है।

सांख्य का प्रमाण विवेचन भी बड़ा वैज्ञानिक है। उसका सीखने सम्बन्धी मनोविज्ञान आधुनिक मनोविज्ञान से अधिक विकसित प्रतीत होता है। प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द विधियों का जितना वैज्ञानिक विश्लेषण सांख्य ने किया है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। सीखने में अन्तःकरण (मन, अहंकार, बुद्धि और आत्मा) की भूमिका का विश्लेषण सांख्य की अपनी विशेषता है। आज के मनोवैज्ञानिक को सांख्य मनोविज्ञान को समझने का प्रयत्न करना चाहिए। सांख्य के अनुशासन, शिक्षक और शिक्षार्थी सम्बन्धी विचार भी अति प्राचीन होते हुए भी अति आधुनिक है। अध्यापक और छात्र दोनों को अनुशासन पालन का सांख्य का उपदेश किये बिना मान्य नहीं होगा। अध्यापक को अपने ज्ञान का पंडित और प्रमाणों के प्रयोग में निपुण होने का उपदेश देकर सांख्य ने युग-युग के अध्यापकों का मार्ग दर्शन किया है। सांख्य व्यक्ति के व्यष्टितव का आदर करता है, उसकी यह बात आज के लोकतन्त्र की आधार शिला है।

6.7 शब्दावली (Glossary)

पंचषिख- आसुरि के प्रथम शिष्य पंचशिख थे, इन्होंने सांख्य दर्शन पर एक सूत्र ग्रन्थ लिखा था, वह भी अनुपलब्ध है, किन्तु इनके नाम से कुछ सूत्र सम्प्राप्त होते हैं

विन्ध्यवास- विन्ध्यवास या विन्ध्यवासी सांख्य के ख्यातिलब्ध आचार्य थे। इनका मत-कुमारिल भट्ट के श्लोक वार्तिक, भोजवृत्ति आदि ग्रन्थों मे वर्णित है।

विज्ञान भिक्षु- सोलहवीं सदी में हुए विज्ञान भिक्षु ने सांख्य की परंपरा को आगे बढ़ाते हुए ‘सांख्य सूत्र’ और उसका भाष्य ‘सांख्य प्रवचन भाष्य’ इन दो ग्रन्थों का प्रणयन किया। इन ग्रन्थों में सांख्य के वेदान्त के मत भी मिश्रित है।

6.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer of Practice Questions)

भाग एक

उत्तर 1 वेद मूलक षड्दर्शनों में सांख्य दर्शन सबसे प्राचीन माना जाता है।

उत्तर 2 श्रीमद् भागवत में कपिल को विष्णु का पॉचवा अवतार निरूपित किया गया है।

भाग दो

उत्तर1 महर्षि कपिल सांख्य के प्रथम आचार्य हैं।

उत्तर 2 ज्ञान भी तीन प्रमाणों से होता है।

भाग तीन

उत्तर 1 योग साधना के अन्य छह पदों -आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि का अनुसरण है।

उत्तर 2 सांख्य और योग वास्तव में एक दूसरे के पूरक है।

6.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (References)

1. पाण्डे, (डॉ) रा. श. *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*. आगरा: अग्रवाल प्रकाशन.

2. सक्सेना, (डॉ) सरोज. *शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार*. आगरा: साहित्य प्रकाशन.

3. मित्तल, एम.एल. (2008). *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*. मेरठ: इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस.

4. शर्मा, रा. ना. व शर्मा, रा. कु. (2006). *शैक्षिक समाजशास्त्र*. नई दिल्ली: एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स.

5. सलैक्स, (डॉ) शी. मै. (2008). *शिक्षक के सामाजिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्षय*. नई दिल्ली: रजत प्रकाशन.

6. गुप्त, रा. बा. (1996). *भारतीय शिक्षा शास्त्र*. आगरा: रतन प्रकाशन मंदिर.

6.10 उपयोगी सहायक ग्रन्थ (Useful Books)

1. पाण्डे, (डॉ) रा. श. *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*. आगरा: अग्रवाल प्रकाशन.

2. सक्सेना, (डॉ) सरोज. *शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार*. आगरा: साहित्य प्रकाशन.

3. मित्तल, एम.एल. (2008). *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*. मेरठ: इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस.

4. शर्मा, रा. ना. व शर्मा, रा. कु. (2006). *शैक्षिक समाजशास्त्र*. नई दिल्ली: एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स.

5. सलैक्स, (डॉ) शी. मै. (2008). *शिक्षक के सामाजिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्षय*. नई दिल्ली: रजत प्रकाशन.

6.11 दीर्घ उत्तर वाले प्रश्न (Long Answer Type Question)

1. सांख्य दर्शन का सामान्य परिचय दीजिए और उसके शिक्षा सम्बन्धी विचारों की विवेचना कीजिए।

2. सांख्य दर्शन से आप क्या समझते है? उसके शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यचर्या और शिक्षण विधियों सम्बन्धी विचारों की विवेचना कीजिए और यह बताइए कि आज के युग में वे कहां तक उपयोगी हैं।

3. सांख्य दर्शन का मनोविज्ञान आधुनिक मनोविज्ञान से अधिक विकसित है- सीखने-सिखाने के सन्दर्भ में इस कथन की विवेचना कीजिए।

4. सांख्य दर्शन के मूल सिद्धान्तों का उल्लेखि कीजिए। सांख्य दर्शन की ज्ञान मीमांसा पर प्रकाश डालिए।

5. सांख्य दर्शन द्वारा प्रतिपादित शिक्षा के उद्देश्यों को स्पष्ट कीजिए।

इकाई - 7 योग (Yoga)

7.1 प्रस्तावना Introduction

7.2 उद्देश्य

भाग एक

7.3 योग शिक्षा

    7.3.1 योग का अर्थ एवं परिभाषा

    7.3.2. योग अध्ययन का

अपनी उन्नति जानिए Check Your Progress

भाग दो

7.4 योग की परम्पराएँ

अपनी उन्नति जानिए Check Your Progress

भाग तीन

7.5 योग का व्यावहारिक स्वरूप

अपनी उन्नति जानिए Check Your Progress

7.6 योग दर्शन का शारांश

7.7 शब्दावली Vocavolary

7.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर Answer of Practice Question

7.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची References

7.10 उपयोगी सहायक ग्रन्थ Useful Books

7.11 दीर्घ उत्तर वाले प्रश्न Long Answer Type Question

7.1 प्रस्तावना Introduction

सृष्टि के आरम्भ से पृथ्वी पर जन्म लेने के साथ ही मनुष्य ने जीवन में दुख का अनुभव करके उससे बचने का प्रयास किया। उसी काल में त्रिविध दुखों का निवारण करने के लिए जिन अनेक उपायों का अनुसंधान किया, योग साधना उनमें मुख्य है। विश्व के प्राचीनतम् साहित्य वेद में सर्वप्रथम योग का संकेत मिलता है। वेद का मुख्य प्रतिपाद्य विषय ब्रह्म ज्ञान था, जिसका उद्देश्य चित्त

शुद्धि के फलस्वरूप व्यक्ति विशेष में ज्ञान ग्रहण करने की योग्यता उत्पन्न करके उसे कर्मकाण्ड से हटाकर परमात्म स्वरूप में स्थित करना था।

योग भारतवर्ष की एक प्राचीनतम साधना पद्धति एवं सर्वसम्मत अविसम्वादि सार्वभौम सिद्धान्त है। यह भारतीय जीवन पद्धति का महत्वपूर्ण अंग है। यह कब कहाँ और किसके द्वारा सर्वप्रथम प्रकट किया गया यह निर्विवाद नहीं है। जब हम इस ओर दृष्टि ले जाते हैं तो सर्वप्रथम विश्व के प्राचीनतम ग्रंथ वेद में योग शब्द की चर्चा हुई है। वेद भारतीय संस्कृति एवं ज्ञान विज्ञान के मूल स्रोत हैं। वेद का मुख्य प्रतिपाद्य विषय वह ज्ञान ही है, अन्यतम तो वह ज्ञान परम्परा व योग प्रेरित करने के लिए ही है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि योग विद्या का प्रारम्भ वेदों से ही हुआ। कुछ विद्वानों की मान्यता है कि योग सैन्धव (सिन्धु घाटी सभ्यता) की देन है क्योंकि सिन्धु घाटी सभ्यता के अवषेषों में विभिन्न मुद्राओं एवं आसनों की आकृतियां मिलती हैं जिससे यह स्पष्ट होता है कि उन दिनों भी योग के अभ्यास किये जाते रहे होंगे। किन्तु साथ ही अन्य अवषेषों से यह भी प्रतीत होता है कि सिन्धु घाटी सभ्यता में वैदिक क्रिया कलापों को भी प्रयोग में लाया जाता रहा है जिससे यह वैदिक सभ्यता के बाद होने वाली वैदिक मूलक सभ्यता है।

वेद अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि योग सम्बन्धी विचार धारा का उल्लेख सर्वप्रथम ही ऋग्वेद में हुआ है। लेकिन योग का उद्गम वेदों की रचना से पूर्व ही हुआ इस बात के प्रबल प्रमाण हैं या यूँ कहें कि योग की उच्च अवस्था में ही ऋषियों को वेद का ज्ञान प्राप्त हुआ। ऋषियों ने विश्व में निहित सत्य का दर्शन करके उसे ही वैदिक मन्त्रों के रूप में प्रकट किया। यथा -

''तद्यदेनां स्तपस्य भावात्ब्रह्म स्वयम्भवभ्यानर्षतः।

तदृष्यो भवं स्महर्षिणां ऋषि त्वमिति विज्ञायते।।''

योग का सर्वप्रथम वर्णन किसके द्वारा किया गया, योग के आदि प्रवक्ता कौन हैं यह भी निर्विवाद नहीं है। नाथ परम्परा के योगी आदिनाथ शिव को प्रथम वक्ता मानते हैं। उनके अनुसार भगवान शिव ने श्रष्टि के प्रारम्भ में मनुष्यों के कल्याणार्थ इस विद्या का सर्वप्रथम उपदेश् माता पार्वती को दिया था। जिसे वहीं पास के सरोवर के जल में एक मत्स्य सुन रहा था। इसी को शिव ने कृपा करके मत्स्येन्द्रनाथ बना दिया। इन्होंने आगे योग विद्या का प्रचार किया।

योग का सर्वप्रथम वर्णन श्रुति और स्मृति ग्रन्थों में है। उतः इन्हीं के आधार पर प्रथम वक्ता का निर्धारण करना समीचीन होगा। याज्ञवल्क्य स्मृति में कहा गया है -

हिरण्यगर्भो योगस्य वक्ता नान्यः पुरातनः 12/5

हिरण्यगर्भ भगवान ने सबसे पहले सनकादिक एवं विवष्वान को परमात्म साक्षात्कार रूप सनातन योग का उपदेश् दिया। सनक, सनातन, सनन्दन, कपिल, वोढु, पंचशिख आदि योग के अनुयायी हुए।

श्रीमद्भगवद्गीता में इस अभिप्राय की पुष्टि हुई है -

जो मनुष्य अनन्त काल तक देह अभिमान त्याग कर प्रभु के निर्गुण स्वरूप में चित्त लगाये इसी को भगवान हिरण्यगर्भ ने योग की सबसे बड़ी कुश्लता कहा है इससे प्रतीत होता है कि योग के प्रथम प्रवक्ता हिरण्यगर्भ है। इस बात का भी मतैक्य नहीं है क्योंकि हिरण्यगर्भ नामक किसी भी ऐतिहासिक मनुष्य का कहीं पर भी उल्लेख नहीं प्राप्त होता। हिरण्यगर्भ कोई मनुष्य नहीं हो सकते। इसकी पुष्टि वेदों में की गई है। ऋग्वेद में कहा गया है -

'हिरण्यगर्भा समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।

सदाधार पृथ्वीः द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविशा विधेम।।

अर्थात् सर्वप्रथम हिरण्यगर्भ ही उत्पन्न हुए जो सम्पूर्ण विश्व के एक मात्र पति हैं, जिन्होने अन्तरिक्ष, स्वर्ग व पृथ्वी सबको धारण किया अर्थात् उपयुक्त स्थान पर स्थिर किया उन प्रजापति देव का हवन द्वारा पूजन करते हैं। इसी प्रकार का वर्णन 'अद्भुत रामायण' में किया है।

7.2 उद्देश्य:-

इस पाठ को पढ़कर छात्र -

1. योग की ऐतिहासिक पृष्टभूमि को समझ सकेंगे।
2. योग की परंपराओं को जान सकेगे।
3. जीवन और योग का परस्पर संबंध जान सकेंगे।
4. शारीरिक और योग मानसिक स्वास्थ्य में योग की भूमिका समझ सकेंगे।
5. आत्मज्ञान के विकास और व्यवहारों के परिमार्जन में योग की महत्त्व समझ सकेंगे।
6. आध्यात्मिक विकास के लिए योग की मार्ग अपना सकेगे।

भाग एक -

7.3 योग शिक्षा

योग स्वयं में शिक्षा की एक विशिष्ट विधि है, जिसे आत्मशिक्षा कहा जा सकता है। एक बालक के लिए सच्ची शिक्षा जिन आवश्यकताओं की पूर्ति करती है, योग भी उन सभी आवश्यकताओं की परिपूर्ति में हर संभव सहायक होता है। इतना ही नहीं योग हमेशा पूर्णता एवं सर्वांग पक्ष पर जोर देता

है। योग शिक्षा के मर्मज्ञ स्वामी शिवानन्द सरस्वती विद्यार्थियों के लिए योग शिक्षा के महत्व को अपनी पुस्तक समाधि योग में इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं- Yoga helps the students to attain ethical perfection and perfect concentration of mind and to unfold various psychic powers. It teaches applied psychology. स्वामी जी के कथन का एक मर्म यह है कि विद्यार्थी में मानसिक एवं मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की परिपूर्ति करने में योग पूरी तरह सक्षम है। वस्तुतः विद्यार्थी में मस्तिष्क तथा क्षमता का विकास एक आधारभूत आवश्यकता है। कहते हैं, अनेक शिक्षार्जन पढ़ाई-लिखाई करने के बाद भी मस्तिष्क का केवल 7-8 प्रतिशत हिस्सा ही जागृत होता है, बाकी प्रसुप्त ही रह जाता है। किन्तु योग कहता है ऐसा नहीं है, विभिन्न यौगिक प्रक्रियाओं के माध्यम से बचपन से ही प्रयास करने पर मस्तिष्क का अधिकतम भाग जागृत किया जा सकता है। वास्तव में इसी दृष्टि के आधार पर प्राचीन शिक्षा परम्परा में विद्यार्थी को शिक्षा और योग का अभ्यास साथ-साथ कराया जाता था। फलस्वरूप प्रखर, तेजस्वी, पराक्रमी, साहसी, ऋषि - मनीषी स्तर के विद्यार्थी गढ़े जाते थे। योग और शिक्षा का यह पूरक संबंध आज के परिप्रेक्ष्य में भी उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि प्राचीन समय में था। योग के अनेक साधन प्रक्रियाएँ किस प्रकार बालकों व विद्यार्थियों की मस्तिष्कीय क्षमता, सृजनात्मकता आंतरिक क्षमता, बौद्धिक परिपक्वता आदि क्षमताओं का अभिवर्धन करती है, इसका वैज्ञानिक स्वरूप क्या है? इस सम्बन्ध में आज अनेक शोध अनुसंधान कार्य किए जा चुके हैं। वृहद् शोध अनुसंधान करने के बाद परिणाम प्रस्तुत करते हुए मास्को के इन्स्टीट्यूट ऑफ जनरल साइकोलॉजी के प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक जी.एन. क्राइजेन्पेस्की का कहना है- योगाभ्यास परक प्रक्रियाएँ आंतरिक ऊर्जा की अभिवृद्धि करने एवं चेतना के विकास के लिए बहुत उपयोगी है। योगासनों द्वारा मस्तिष्क सहित सम्पूर्ण तंत्रिका तंत्र पर नियंत्रण साधा और उन्हें सुव्यवस्थित किया जा सकता है। प्रख्यात विदुशी साधिका गेराइडन कोस्लर कहती हैं- ”मेरा दावा है कि योग मानसिक विकास की एक व्यावहारिक विधि है।“

उपरोक्त वर्णित क्रिया प्रक्रियाओं के अतिरिक्त योग के माध्यम से विद्यार्थियों के व्यक्तित्व में निम्न गुणों का अभिवर्द्धन किया जा सकता है:-

सीखने की क्षमता, स्मृति क्षमता, तर्कक्षमता, एकाग्रता, अन्तर्ज्ञान, त्वरित निर्णय क्षमता, सुस्पष्ट प्रत्यक्षण आदि का क्रमिक विकास ।

आईक्यू., ईक्यू., एवं एस. क्यू का समानान्तर एवं संतुलित विकास जिसके माध्यम से प्रतिभा का जागरण।

सजगता, विधेयात्मक चिंतन, आत्मविश्वास, भावनात्मक बुद्धि आदि का विकास।

आत्मानुशासन, उत्कृष्ट चरित्र -चिंतन, व्यवहार, सुसंगठित व्यक्तित्व।

स्वप्रबंधन का ज्ञान, सुव्यवस्थित जीवन शैली अपनाने की प्रवृति, संयमित एवं संतुलित आहार-विहार करने की प्रेरणा।

मानसिक व भावनात्मक विकास में बाधा डालने वाले तत्व- तनाव, विकृतियों का समुचित निराकरण।

मानवीय मूल्य- सेवा, सहिष्णुता, दया, करूणा, परोपकार,सौजन्य, त्याग उदारता, सहानुभूति, सहअस्तित्व का भाव आदि का विकास।

यहाँ यह स्पष्टकर देना उपयुक्त है कि योग का उद्देश्य आत्मसाक्षात्कार पूर्वक समाधि प्राप्ति ही उपदिष्ट किया गया है, परन्तु योगांगों का पालन शिक्षा के क्षेत्र में भी उतना ही उपादेय है। योग का महत्व जितना व्यक्तिगत रूप से है उतना ही सामाजिक स्तर पर दृष्टिगत होता है समाज व्यक्तियों से मिलकर बना है समाज में जब यम, नियमों का पालन करते हैं तो उनके अनुरूप सुन्दर, संयमी समाज का निर्माण प्रारम्भ हो जाता है जैसा कि उपरोक्त भी कहा गया है कि योग साधना से प्रवृत हुआ व्यक्ति अनेक उपलब्धियों को प्राप्त होता है। वह चरित्रवान, सन्मार्ग पर दुस्साहसपूर्वक चलने वाला, लोक-मंगल के लिए आत्म-समर्पणकर्त्ता होता है। तो वह सम्पूर्ण जगत को एक दिशा प्रवाह प्रदान करता है। आत्मा का परमात्मा से मिलन मस्तिष्क काशरीररपर नियन्त्रण, व्यक्तित्व को सच्चे अर्थों में सुंस्कृत और समुन्नत बनाना, चित की वृत्तियों का निरोध, क्या ये सब किसी विधा द्वारा सम्भव है ? यदि इस दिशा में खोज की जाए तो हमारे सामने यह तथ्य प्रकट होता है कि योग विधा ही एक ऐसा ज्ञान है, विज्ञान है, जिसे जीवन में उतार कर मानव इन उपलब्धियों को प्राप्त कर सकता है। अतः अपने इन विशिष्ट गुणों के कारण आध्यात्मिक क्षेत्र, वैज्ञानिक क्षेत्र व अन्य क्षेत्रों में योग का अपना विशिष्ठ महत्व है।

7.3.1 योग का अर्थ एवं परिभाषा

योग एक गूढ़ एवं जटिल शब्द है। इसका व्यवहार बहुत ही व्यापक अर्थ में किया जाता है और इसका क्षेत्र भी बहुत विस्तृत है। योग शब्द पर विचार करने पर यह तथ्य सामने आता है कि योग शब्द संस्कृत के ‘युज’ धातु से बना है जिसका अर्थ है जोड़ना अर्थात किसी वस्तु से अपने को जोड़ना अथवा किसी कार्य में लगाना। अर्थात् कार्य के लिए आरूढ़ हो जाना कमर कस लेना जिस प्रकार के उद्देश्य की सिद्धि करनी होती है उसी प्रकार का उद्योग भी करना होता है। इसलिए उद्योग शारीरिक, मानसिक दोनों हो सकता है जीवन की पूर्णता प्राप्त करने के लिए मन से और शरीरर से जो क्रिया करनी होगी उसे योग कहते है।

पाणिनिगण पाठ में तीन ‘युज’ धातु हैं। दिवादिगणीय ‘‘युज’’ धातु का अर्थ है - समाधि। इसका प्रकृति प्रत्यय करने पर सम+आ+धा+कि सम् = सम्यक्। आ + धा = स्थापन । सम्यक

स्थापन समाधि शब्द का प्रकृति प्रत्यय प्राप्त अर्थ है। जब मन का प्रगाढ़ संयोग सुशुम्नान्तर्गत ब्रह्मनाड़ी से होता है तब पूर्ण समाधि की स्थिति प्राप्त होती है।

रूधादिगणीय 'युज' धातु का अर्थ है - 'युजिर योगे' अर्थात संयोग (जोड़ना) है। 'युज्यतेहसौ योगः' जो युक्त करे, मिलाते उसे योग कहते है

'तं विद्याद् दुःख संयोग वियोगं योगसंज्ञितम्।'।।

गीता 6/23।।

अर्थात 'दुःखरूप संसार के संयोग से रहित होने का नाम ही योग है। योग का आध्यात्मिक अर्थ है वह साधन जिसके द्वारा योगी को जीवात्मा और परमात्मा के साथ ज्ञानपूर्वक संयोग होता है ।

चुरादिगणीय 'युज' धातु का सम्बन्ध भी 'वशीकृतस्य मनसः से है अर्थात मन को वश् में करना ही मन का संयमन है। समाधि के अन्तरंग प्रत्याहार धारणा और ध्यान इन तीनों को एक ही साथ संयम नाम दिया गया है यह त्रिविध 'युज' धातु ही योग शब्द के मूल में वर्तमान है। 'योग' शब्द का अर्थ-क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। जिस 'योग' का जो विशेष अर्थ उद्देश्य होता है, उसका संकेत करने वाला शब्द आगे जोड़ दिया

जाता है। जैसे भक्तियोग का अर्थ है - ब्रह्मसत्ता, भक्तिभाव से जुड़े रहने की जीवन पद्धति। ज्ञान योग का अर्थ है - ज्ञान साधना द्वारा सर्वव्यापी सत्ता की अखण्ड अनुभूति। मन्त्रयोग अर्थात मन्त्र जप द्वारा आत्म चेतना का ब्रह्म चेतना से समरसता प्राप्त करने का प्रयास। कर्मयोग को प्रखर स्वस्थता के लिए की जाने वाली विशिष्ट शारीरिक मानसिक क्रियाओं का अभ्यास।

योग का अर्थ सभी आचार्यों ने आत्मदर्शन तथा ब्रह्मसाक्षात्कार कहा है वेदादिक शास्त्रों में भी आत्मदर्शन तथा ब्रह्मसाक्षात्कार होने की बात कही गई है

वह परमब्रह्म परमात्मा सर्वान्तर्यामी होने के कारण सबके हृदय में ज्योतिष्मान के रूप में विद्यमान है। इस से बढ़कर आत्मदर्शन तथा ब्रह्मसाक्षात्कार के लिए क्या प्रमाण हो सकता है। अतः योग समाधि के द्वारा आत्मदर्शन करना और अन्त में कैवल्य मोक्ष को प्राप्त कर लेना ही योग है और यही योग का वास्तविक अर्थ है। योग को अलग-अलग विषयों, ग्रन्थों, विद्वानों ने अनेक प्रकार से परिभाषित किया है जो कि निम्न प्रकार है -

महर्षि व्यास के अनुसार योग - 'योगसमाधिः' योग को समाधि बतलाया है। जिसका भाव यह है कि जीवात्मा इस उपलब्ध समाधि के द्वारा सच्चिदानन्द (सत+चित+आनन्द) स्वरूप ब्रह्म का साक्षात्कार करें।

मनुस्मृति के अनुसार - ''ध्यान योगेन सम्पष्यद्गतिस्यान्तरात्मनः।'' 16/731 ध्यान योग से भी आत्मा को जाना जा सकता है इसलिए ध्यान-योग परायण होना चाहिए। अर्थात - प्राण, मन व इन्द्रियों का एक हो जाना, एकाग्रावस्था को प्राप्त कर लेना, बाह्य विषयों से विमुख होकर इन्द्रियों का मन में और मन का आत्मा में लग जाना, प्राण का निष्चल हो जाना योग है।

याज्ञवलक्य स्मृति के अनुसार - ''संयोगों योग इत्यक्तो जीवात्मनो'' जीवात्मा व परमात्मा के मिलन को योग कहा है। आत्मा अपने चित्त को शुद्ध कर सभी सांसारिक बन्धनों को काटकर परमात्मा के सानिध्य में निवास करें। उनके अनुसार आत्मा अज्ञान के कारण परमात्मा को भूलकर इस संसार चक्र में फंसा हुआ है। जब ज्ञान का उदय हो जाता है तो उसका परमात्मा से मिलन हो जाता है फलस्वरूप उसके सभी दुख समाप्त हो जाते हैं। इसलिए आत्मा व परमात्मा के मिलन को योग कहा गया है।

अग्नि पुराण के अनुसार –

''ब्रह्म प्रकाश्नम् ज्ञानं योगस्थ त्रैचित्तता

चित्त वृत्ति निरोधष्चः जीवन ब्रह्ममात्मनों परः।।''

अर्थात् ज्ञान का प्रकाश् पड़ने पर चित्त ब्रह्म में एकाग्र हो जाता है जिससे जीव का ब्रह्म में मिलन हो जाता है। ब्रह्म में चित्त की यह एकाग्रता ही योग है।

जीवात्मा व परमात्मा का अलग-अलग होना ही दुख का कारण है और इनका अपृथक भाव ही योग है। (एकत्व की स्थिति ही योग है।) (आत्मा + परमात्मा)

महर्षि अरविन्द के अनुसार - योग वह सर्वांग साधन प्रणाली है जिससे सांसारिक जीवन और आध्यात्मिक जीवन के बीच सर्व विजयी सामंजस्य स्थापित हो सके अर्थात् मानव जीवन के भीतर भगवान और प्रकृति का पुनर्मिलन योग है।

रांगेय राघव - रांगेय राघव अपनी पुस्तक ''गोरखनाथ और उनका युग'' में शिव व शक्ति के मिलन को योग कहते हैं। योग जीवन जीने की कला है।

गीता के अनुसार योग का अर्थ - गीता में श्रीकृष्ण ने योग को परिभाषित करते हुए अर्जुन से कई बाते कहीं -

''योगस्थ कुरू कर्माणि संगत्यक्त्वा धनंजय।

जब किसी भी कर्म में आसक्ति होती है तभी उसके भले या बुरे फल का प्रभाव हमारे दिल-दिमाग पर पड़ता है और उसके अनुसार ही संस्कार बन जाता है फिर वही संस्कार पाप और पुन्य के रूप में कर्म की परिपक्व अवस्था में उदय होता है। इसी कर्मफल को भुगतने के लिए ही विभिन्न योनियों में

जन्म लेना पड़ता है और इस तरह से जन्म-मृत्यु के चक्र में न पड़े और जब यह दशा प्राप्त हो जाती है, तो दिल-दिमाग एकरस, संतुलित रहता है। सम रहता है इसी दशा का नाम समत्व है। समता ही योग है।

7.32. योग अध्ययन का उददेश्य

योग जीवन जीने की कला है। साधना विज्ञान है मानव जीवन में इसका महत्वपूर्ण स्थान है। इसकी साधना व सिद्धान्तों में ज्ञान का महत्व दिया है। इसके द्वारा आध्यात्मिक और भौतिक विकास सम्भव है वेदों, पुराणों में भी योग की चर्चा की गई है। यह सिद्ध है कि यह विद्या प्राचीन काल से ही बहुत विशेष समझी गई है। उसे जानने के लिए सभी ने श्रेष्ठ स्तर पर प्रयास किए हैं और गुरूओं के शरण मे जाकर जिज्ञासा प्रकट की व गुरूओं ने शिष्य की पात्रता के अनुरूप योग विद्या उन्हें प्रदान की अतः आज के विद्यार्थियों का यह कर्तव्य है कि वह इन महात्माओं, विद्धानों द्वारा प्रदान विद्या को जाने और चन्द सुख व भौतिक लाभ को ही प्रधानता न देते हुए यह समझे कि यह श्रेष्ठ विद्या इन योगियों ने किस उद्देश्य से प्रदान की।

आज का मानव जीवन कितना जटिल है उसमें कितनी उलझने और अशांति है वह कितना तनावयुक्त और विद्रूप हो चला है। यदि किसी को दिव्य दृष्टि मिल सकी होती तो वह देख पाता कि मनुष्य का हर कदम पीड़ा की कैसी अकुलाहट से भरा है, उसमें कितनी निराशा, भय, व्याकुलता है। इसलिए यह आवश्यक है कि हमारा हर पग प्रसन्नता का प्रतीक बन जाए, उसमें पीड़ा का अंश्-अवशेष न बचे। इसके लिए हमे वह विधा समझनी होगी कि अपने प्रत्येक कदम पर चिंतामुक्त और तनावरहित कैसे बनते चलें और दिव्य शांति एवं समरसता को किस भांति प्राप्त करें। इसी रहस्य को उजागर करना ही योग का मुख्य उद्देश्य है।

योग अध्ययन का मुख्य उद्देश्य ऐसे व्यक्तियों का निर्माण करना है जिनका भावनात्मक स्तर दिव्य मान्यताओं से, दिव्य आंकाक्षाओं से, दिव्य योजनाओं से उमगता रहे, जिससे उनका चिन्तन और क्रिया कलाप ऐसा हो जैसा कि ईष्वर भक्तों का - योगियों का होता है क्योंकि ऐसे व्यक्तियों में क्षमताओं और विभूतियां भी उच्च स्तरीय होती है। वे सामान्य मनुष्यों की तुलना में निष्चित ही समर्थ और उत्कृष्ट होते हैं और उस बचे हुए प्राण-प्रवाह को अचेतन के विकास करने में नियोजित करना है। प्रत्याहार धारणा, ध्यान, समाधि जैसी साधनाओं के माध्यम से चेतन मस्तिष्क को शून्य स्थिति में जाने की सफलता प्राप्त होती है। (चेतन मस्तिष्क की सक्रियता, अचेतन की क्षमता तरंगों को काटती है इसलिए उसे अविकसित स्थिति में पड़ा रहना पड़ता है। यदि बौद्धिक संस्थान की गतिविधियां मन्द से शिथिल की जा सके तो उसी अनुपात में अचेतन केन्द्र जागृत हो सकता है और उसके माध्यम से अविज्ञान का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।) दूरदर्शन, दूर-श्रवण, विचार-प्रेरणा, भविषय ज्ञान, अदृष्य का प्रत्यक्ष आदि कितनी ही ऐसी विशेषताएं प्राप्त की जा सकती है जो साधारण मनुष्यों में नहीं होती।

योग विधा के यदि अलग-अलग विषयों पर हम दृष्टिपात करते हैं तो पाते हैं कि- हठयोग साधना का उद्देश्य स्थूलशरीररद्वारा होने वाले विक्षेप को जो कि मन को क्षुब्ध करते हें, पूर्णतया वश् में करना है। स्नायविक धाराओं एवं संवेगों को वश् में करके एक स्वस्थ्यशरीररका गठन करना है। यदि हम अष्टांग योग के अन्तर्गत आते हैं। तो पाते हैं कि राग, द्वेश्, काम, लोभ, मोहादि चित को विक्षिप्त परमौषम

स्थूलशरीररसे होने वाले विकर्षणों को दूर करना आसन, प्राणायाम का प्रमुख उद्देश्य है।

चित्त को विषयों से हटाकर आत्म दर्शन के प्रति उन्मुख करना प्रत्याहार का उद्देश्य है।

धारणा का उद्देश्य चित को समस्त विषयों से हटाकर स्थान विशेष में उसके ध्यान को लगाना है। धारणा स्थिर होने पर क्रमश: वही ध्यान कही जाती है और ध्यान की पराकाष्ठा समाधि है। समाधि की उच्चतम अवस्था में ही परमात्मा के यर्थाथ स्वरूप का प्रत्यक्ष दर्शन होता है जो कि पूर्व विद्वानों के अनुसार मनुष्य मात्र का परम लक्ष्य, परम उद्देश्य है, परमात्मा को जानना।

संक्षेप में यदि कहा जाए तो जीवात्मा का विराट चतेना से सम्पर्क जोड़कर - दिव्य आदान-प्रदान का मार्ग खोल देना ही योग अध्ययन, योग साधना का मुख्य लक्ष्य उद्देश्य है।

योग की महत्ता पर प्रकाश् डालते हुए कहा गया है -

''भव तापेन तप्तनां योगो हि परमौषधम्'' (गरूड़ पुराण)

अर्थात - इस संसार के दुखियों को योग ही उत्तम औषधि है।

योग से श्रेष्ठ न कोई पुन्य है, न कोई कल्याणदायक है और न कोई सूक्ष्म वस्तु हैं अर्थात योग से बढ़कर कुछ नहीं है।

योग साधन बालक, नर-नारी सभी के लिए सरल और सम्भव है। हर स्थिति के व्यक्ति के लिए उसके स्तर के अनुरूप साधनाओं का विधान विधमान है। शरीरर और मस्तिष्क को जागृत करने की सामर्थ्य योग साधना में है। योग साधना में प्रवृत हुआ मनुष्य अपनी आत्मा की ससीमता को जब परमात्मा की असीमता के साथ मिला देता है तो अनेक दृष्टियों से असामान्य बन जाता है। वह अपने शरीररमें कायाकल्प जैसा परिवर्तन कर सकता है। अति दीर्घजीवी हो सकता है - अदृष्य जगत का ज्ञान प्राप्त करके उसमें चल रही हलचलों को मन्द शिथिल एवं परिवर्तित कर सकता है। इन सबसे ऊपर योग मार्ग द्वारा समाधि को प्राप्त हुआ व्यक्ति त्रिकालदर्षी और विश्व की जड़चेतन सत्ता को

प्रभावित करने में समर्थ बन जाता है। इस प्रकार व्यक्तिगत जीवन में योग का महत्व आलौकिक उपलब्धियों के रूप में देखें जा सकते हैं।

अपनी उन्नति जानिए Check Your Progress

प्रश्न 1 योग का संकेत विश्व के किस प्राचीनतम् साहित्य में सर्वप्रथम मिलता है।

प्रश्न 2 योग सम्बन्धी विचार धारा का उल्लेख सर्वप्रथम किस वेद में हुआ है।

7.4 योग की परम्पराएँ

अधिकार भेद के कारण यह योग ब्रह्मयोग अथवा राजयोग एवं कर्मयोग इस प्रकार की दो शाखाओं के रूप में योग का उद्भव हुआ। इन परम्पराओं का ही वर्णन गरूड़ पुराण व गीता में मिलता है पवित्र अन्तःकरण वाले सनक सनातन, सनन्दन, कपिल आसुरी, पंचशिख, पद्धति आदि विद्वान है। सर्वकर्म सन्यास रूप ब्रह्मयोग अथवा ज्ञानयोग के अनुयायी हुए। यह बात महाभारत में कही गई है। यही योग बाद में सांख्य योग ज्ञान योग एवं अध्यात्म योग आदि के नामों से प्रचलित हुआ।

हिरण्यगर्भ प्रवृति के योग की दूसरी शाखा कर्म योग की परम्परा में किंचित आसक्त चित्र से युक्त संसार के कार्यों को करते हुए परमात्मा साधन करने वाले विवष्वान, मनु इक्ष्वाकु व अन्य राजर्शि हुए। इस परम्परा का मूल तात्पर्य यह है कि जो व्यक्ति कर्मों का सर्वथा कभी त्याग नहीं कर सकता है, वह सब कर्मो को ईष्वर को अर्पण करते हुए कर्म फलों में आसक्त न होकर समाहित चित्त होकर परमात्मा का साक्षात्कार कर सकता है। इसी परम्परा का उल्लेख छान्दोग्य उपनिष्द में भी हुआ है। इसी परम्परा के विषय में कालान्तर में भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन से गीता में कहा कि हे अर्जुन! मैंने इस योग को विवष्वान से सृष्टि के आदि में कहा था। विवष्वान ने मनु से, व मनु ने राजा इक्ष्वाकु से कहा, इस प्रकार परम्परा से प्राप्त यह योग बहुत काल से लुप्तप्राय हो गया था, तू मेरा प्रिय भक्त एवं सखा है इसलिए वही पुरातन योग आज मैंने तुझे बताया है क्योंकि यह ब्रह्म ही उत्तम रहस्य है।

योग की उपरोक्त दो परम्पराओं के अतिरिक्त अन्य दो परम्पराएं और प्रचलित हैं।

1. वैदिक योग परम्परा
2. नाथ संप्रदाय की हठयोग परम्परा

वैदिक योग परम्परा में विवष्वान, मनु, इक्ष्वाकु, योगेश्वर, कृष्ण तथा कालान्तर में महर्षि पतंजलि मुख्य हुए हैं। महर्षि पतंजलि ने योग की विभिन्न धाराओं को व्यवस्थित रूप देकर एक महानदी का रूप दिया एवं एक स्वतन्त्र ग्रन्थ 'योग सूत्र' की रचना की जो योग दर्शन के रूप में जाना जाता है। महर्षि पतंजलि की इस परम्परा को उनके सूत्रों की व्याख्या करके अनेक विद्वानों ने गति दी। व्यास

भाष्य, वाचस्पति मिश्र की तत्ववैशारदी, विज्ञानमिक्षु का योग वर्तिका, योग सार संग्रह, षंकर का भाष्य विवरण मास्वती टीका, भोजराज का राज मार्तण्ड, सदा शिवेन्द्र का योग सुधाकर आदि प्रसिद्ध ग्रन्थ है।

नाथ परम्परा में आदिनाथ शिव को योग का आदि प्रवक्ता माना जाता है। उनके द्वारा माता पार्वती को जो योग का उपदेश् दिया गया उसे मत्स्येन्द्रनाथ ने भी सुना। शिव के आदेशानुसार मत्येन्द्रनाथ ही योग विद्या के प्रचारक हुए। इसके शिष्य गोरखनाथ महान् योगी हुये हैं। उनके शिष्य गेवी नाथ, चर्पटीनाथ आदि हुए हैं। इसी परम्परा में घेरण्डऋषि स्वात्माराम योगी हुए हें, उन्होंने हठयोग के सिद्धान्तों का प्रचार-प्रसार किया। इन सब ने हठयोग की परम्परा को गुरु-शिष्य परम्परा के द्वारा अक्षुण्ण बनाये रखा। हठयोग प्रदीपिका, शिव-संहिता, गोरक्षसंहिता घेरण्ड संहिता आदि इस परम्परा के महत्वपूर्ण ग्रन्थ हैं।

कुछ विद्वानों का मत है कि योग सैन्धव कालीन सभ्यता की देन है यदि हम सिन्धुकालीन सभ्यता पर दृष्टिपात करे तो पता चलता है कि मोहन जोदड़ो में जो धार्मिक उद्देश्य प्राप्त हुए हैं उनमें केवल मां भगवती की ही मूर्तिया नहीं है, अपितु एक नरदेवता की भी मूर्ति प्राप्त हुई है जो ऐतिहासिक शिव का आदि रूप प्रतीत होता है। स्पष्टतः आधुनिक हिन्दू सभ्यता के कई बातों का स्रोत बहुत पुराने काल से उपलब्ध होता है। सर 'जान मार्षल' ने अपनी पुस्तक 'मोहनजोदड़ो एण्ड द इण्डस सिविलिजेश्न' में स्पष्ट किया है कि मोहनजोदड़ो में जिस नरदेवता की मूर्ति मिली है वह त्रिमुखी है। वह देवता एक कम ऊंचे पीठासन पर योगमुद्रा में बैठे हैं। उसके दोनो पैर इस प्रकार मुड़े हुए है कि एड़ी से एड़ी मिल रही है। अंगूठे नीचे की ओर मुड़े हुए है। एवं हाथ घुटने के ऊपर आगे की ओर फैले हुए है।

इस तथ्य पर विचार करते समय यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि उस समय यौगिक विचार धारा का प्रचलन किसी न किसी रूप में अवश्य था। इन्हीं बातों के आधार पर कुछ विद्वानों ने इसे वेद के पूर्व की सभ्यता मानकर यह कहा कि सैन्धव सभ्यता से ही प्रथमतः योग विद्या का अभ्युदय हुआ। आधुनिक शोधों से यह स्पष्ट हो गया है कि सिन्धु सभ्यता, वैदिक सभ्यता के पश्चात होने वाली वैदिक मूलक सभ्यता है विदेशी विद्वानों ने इन्हें आर्य एवं द्रविण जाति के रूप में विभाजित कर दिया। उत्खनन में प्राप्त देवी देवताओं की प्रतिभाएं, आध्यात्मिक चिन्ह वैदिक चिन्हों से समीकृत किये जा सकते है। इन कारकों के आधार पर निष्कर्ष निकलता है कि मोहनजोदड़ो और हड़प्पा की सभ्यता वैदिक सभ्यता से भिन्न नहीं थी अपितु ये सभ्यताएं वैदिक सभ्यता की ही अंग थी। योग सम्बन्धी विचारधारा का सर्वप्रथम उल्लेख हमें ऋग्वेद में प्राप्त होता है परन्तु ऋग्वेद में अपने पूर्वजों, ऋषि यों एवं मार्ग प्रदर्षकों के प्रति समर्पण यह स्पष्ट करते हैं कि उनमें वर्णित सभ्यता का स्वरूप बहुत पहले ही निर्धारित हो चुका था। ऋग्वेद में हमें जिस सभ्यता का बोध होता है। वह ऋग्वेद की रचना के पूर्व ही फल-फूल चुकी थी और अब प्रौढ़ावस्था को प्राप्त हो रही थी।

गीता।।4/1,2।।

अर्थात 'मैने सर्वप्रथम इस अविनाशी योग को विवष्वान के प्रति उपदेश् किया। विवस्वान ने (अपने पुत्र) मनु से कहा और मनु ने (पुत्र) इच्छवाकु से कहा।' इस प्रकार परम्परा से प्राप्त यह योग राजर्षियों द्वारा जाना गया, किन्तु इसके बाद यह लुप्त प्राय हो गया। तू मेरा प्रिय भक्त व सखा है, इसलिए वही पुरातन योग आज मैंने तुझे बताया है क्योंकि यह बहुत उत्तम रहस्य है। अतः इनसे यह सिद्ध होता है कि भगवान हिरण्यगर्भ ही योग के आदि प्रवर्तक हैं।

अपनी उन्नति जानिए Check Your Progress

प्रश्न 1 शारीरिक, मानसिक तनावों को साधारणतया किस से दूर किया जा सकता है?

प्रश्न 2 योग किस कालीन सभ्यता की देन है?

7.5 योग का व्यावहारिक स्वरूप

योग भारतीय जीवन पद्धति का एक महत्वपूर्ण अंग है। प्राचीन समय से योग केवल साधु सन्यासियों और मोक्षमार्ग के पथिकों के लिए ही उपादेय समझा जाता है। लेकिन यह सत्य नहीं है। योग जितना एक सन्यासी के लिए उपयोगी है उतना ही गृहस्थ के लिए भी है। योग एक जीवन पद्धति है। एक ऐसा विज्ञान है जो मनुष्य के सामाजिक व व्यक्तिगत जीवन को सुन्दर और सुखमय बनाने के साथ-साथ उसे मोक्षरूपी परम लक्ष्य की प्राप्ति कराता है। आधुनिक युग में योग का महत्व दिनों दिन बढ़ता जा रहा है। योग के द्वारा शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक शक्ति का विकास होता है। शरीरर सुदृढ़, मन स्वस्थ व आत्मा स्वच्छ होती है।

योग एक शाष्वत विज्ञान है, साधना पद्धति है, ब्रह्मा द्वारा निर्दिष्ट, ऋषियों, तपस्वियों तथा दार्शनिकों द्वारा अपनाई गई श्रेष्ठ विद्या है। यह विशेष ज्ञान जीवन के महत्वपूर्ण तथ्यों को दर्शाने तथा विभिन्न भौतिक और आध्यात्मिक उपलब्धियों को प्राप्त कराने वाला है। यह वह विज्ञान है जिसके माध्यम से शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक, सामाजिक और भावनात्मक स्तर पर ऊँचा उठा जा सकता है। स्वास्थ्य एवं अध्यात्म के समन्व्यात्मक स्वरूप को प्राप्त किया जा सकता है।

योग के माध्यम से मनुष्य काम, क्रोध, मद, लोभ इत्यादि दुर्गुणों से ऊँचा उठकर श्रेष्ठ कार्यों की तरफ प्रवृत्त हो सकता हे। इसकी साधना पद्धतियों के माध्यम से समाधि तथा आत्म साक्षात्कार तक की स्थिति को प्राप्त किया जा सकता है। बिना योग का ज्ञान निष्चय करके मोक्ष का देने वाला कैसे हो सकता है और बिना ज्ञान के योग भी मोक्ष देने में समर्थ नहीं है, इसलिये मोक्षामिलाशी ज्ञान और योग दोनों का दृढ़ता से अभ्यास करें।

योग जितना एक व्यक्ति के लिए उपादेय माना गया है उतना ही एक समाज के लिए भी उपयोगी है। समाज व्यक्तियों से ही मिलकर बना है। समाज में रहने वाले व्यक्ति जब योगियों का पालन करने

लगते हैं तो उनके अनुरूप ही एक सुन्दर, संयमी समाज का निर्माण प्रारम्भ हो जाता है। समाज की अनेक समस्याएं तो केवल यम-नियम के पालन से ही दूर हो सकती है।

जिस समाज के व्यक्ति योग के आसन, प्राणायाम आदि अंगों का अभ्यास करते हैं। वह समाज शारीरिक, मानसिक रूप से स्वस्थ तो रहेगा ही साथ ही आध्यात्मिक उत्थान भी कर सकेगा। स्वास्थ्य संरक्षण एवं रोग निवारण दो अलग-अलग तथ्य हैं। रोग, निवारण में व्यक्तिगत व सामाजिक स्तर पर करोड़ो रुपये खर्च होते हैं जबकि स्वास्थ्य संरक्षण पर इतना ध्यान दिया जाय तो शायद यह व्यय कम हो सकता है। जहाँ तक कहा जा सकता है कि स्वस्थ व्यक्ति से स्वस्थ समाज का निर्माण हो सकता है। योगांगो के पालन से मूलतः प्रत्याहार के अभ्यास से व्यक्ति जीतेन्द्रिय हो सकता है और जिस समाज में इस तरह के व्यक्ति होंगे वह समाज आत्मनिर्भर और सुसंपन्न ही होगा। धारणा और ध्यान के अभ्यास भी समाज में रहने वाले सदस्यों के लिए हर तरह से लभादायक हैं। क्योंकि एकाग्रता का उपयोग विज्ञान एवं तकनीकी के क्षेत्र में नये आविष्कारों में भी सहायक सिद्ध होंगे। मानसिक शक्ति के विकास के माध्यम से व्यक्ति का समग्र विकास होता है और योग इसमें स्वतः सफल हैं। योग के माध्यम से समाज का समग्र उत्थान सम्भव है।

योग एक ऐसी जीवन पद्धति है कि जब व्यक्ति इसके अनुसार जीना प्रारम्भ कर देता है तो उसके सभी प्रकार के कष्ट चाहे वे शारीरिक हों या मानसिक दूर होने लगते हैं। योग के मुख्यतः आठ अंग होते हैं यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि।

इन सभी अंगों का व्यक्ति के जीवन में एक विशेष महत्व है। इनमें से जिन अंगों का व्यक्ति पालन करता है उसी के अनुरूप उसे फल प्राप्त होने लगता है। योग साधना का प्रथम अंग 'यम' व्यक्ति के व्यवहार से सम्बन्धित है। महर्षि पातंजलि ने इन्हे सर्वप्रथम स्थान दिया है क्योंकि जब तक किसी व्यक्ति का व्यवहार ठीक नहीं होगा वह पूर्ण रूप से स्वस्थ नहीं कहा जा सकता। आयुर्वेद में भी इस बात को स्वीकार किया गया है।

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि संगत्यक्त्वा करोति यः।

लिप्यते न स पापेन पùपत्रमिवाम्भसा।। 5/10

योग सिद्ध पुरुष के सभी कर्म अनासक्त होते हैं। वह संसार में कर्म करता हुआ भी उनमें लिप्त नहीं रहता। जिस प्रकार पानी में रहते हुए भी कमल का पत्ता गीला नहीं होता ठीक वैसे ही योगी पुरुष संसार में रहता हुआ भी उसमें लिप्त नहीं रहता।

योगी की जठराग्नि और ज्ञानाग्नि दोनों प्रदीप्त रहती है। वह जो कुछ खाता है उसी को सुचारू रूप से पचा लेता है। उसकी ज्ञानाग्नि से अज्ञान रूपी आवरण भस्म हो जाता है। ज्ञान का उदय होता है, उसकी बुद्धि सूक्ष्म से सूक्ष्म विषयों को आसानी से ग्रहण करने लगती हैं। योग सिद्ध हो जाने पर

व्यक्ति की सभी नाड़ियां शुद्ध हो जाती है। उनमें किसी भी प्रकार का विकार नहीं रहता जिसके फलस्वरूप उसकी शारीरिक एवं मानसिक क्रियाएं भली प्रकार सम्पादित होती हैं। अर्थात् वहशरीरऔर मन दोनों से स्वस्थ रहता है।

उपरोक्त वर्णन के आधार पर योगी के व्यक्तित्व को इस प्रकार निरूपित किया जा सकता है - 'एक योगी काशरीरहल्का और साथ ही बलवान होता है। उसके मुख पर प्रसन्नता और तेज विराजमान रहता है। आँखें सुन्दर और निर्मल होती है।

7.5.1 अष्टांग योग –

अष्टांग योग की रचना का श्रेय महर्शि पतंजलि को जाता है। योग सूत्र के दूसरे अध्याय में उन्होंने अष्टांग योग का वर्णन किया है।

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाध्योऽश्टावङ्गानि।।

योग सूत्र 2/29

अर्थात् - यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि, योग के यह आठ अंग हैं।

यमः आठ अंगों में यम सर्वप्रथम है। यह यम धातु से बना है। जिसका अर्थ होता है नियंत्रण करना अर्थात् मन को अधोमुखी पतन से रोकने वाला अनुशासनात्मक गुण है। ये निशेधात्मक सद्गुण है। इन्हें प्रकारान्तर से दुश्प्रवृ उन्मूलनात्मक अनुशासन भी कहा जा सकता है।

अहिंसासत्यास्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः।

- योग सूत्र 2/30

अर्थात्- अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह ये पाँच यम कहलाते हैं।

अहिंसा- मन, वचन, कर्म से प्राणिमात्र को दुःख या कश्ट न पहुँचाना अहिंसा कहलाता है। किन्तु निःस्वार्थ भाव से लोककल्याण के लिए एवं उसी प्राणी के हितोभाव से यदि किसी को कश्ट देना पड़े तो वह भी अहिंसा की श्रेणी में आता है।

अहिंसा का उत्कर्ष में योगदानः- अहिंसा की साधना से साधक के मन से वैर-द्वेश भाव तो निकलता ही है साथ ही साधक के सम्पर्क में आने वाले प्राणियों में भी प्रेम-शांति का प्रसार होता है।

सत्य- यों साधारणतया मन-वचन कर्म में एकता सत्य की कसौटी मानी जाती है परन्तु वास्तव में पवित्र उद्देश्य के लिए, सभी के कल्याण के लिए विवेक पूर्वक बोला गया वचन सत्य कहलाता है।

सत्य का मानव उत्कर्ष में योगदान:- सत्य भाषण से व्यवहार जगत में हमारा व्यक्तित्व प्रामाणिक एवं विष्वास का पात्र बनता है। शास्त्रानुसार सत्यभाषण से वाक् सिद्धि प्राप्त होती है।

अस्तेय- नीतिवूर्वक, परिश्रम से अर्जित की हुयी वस्तुओं का ही प्रयोग करना।

अपरिग्रह- अनावष्यक संचय या संग्रह न करना।

ब्रह्मचर्य- ब्रह्मचर्य अर्थात् ब्रह्म की शोध-खोज हेतु आचार-आचरण, वास्तव में विषय मात्र का निरोध ही ब्रह्मचर्य है। परन्तु व्यावहारिक रूप से मनसा-वाचा कर्मणा से समस्त प्रकार के मैथुनों से दूर रहना ही ब्रह्मचर्य है।

नियम:सत्प्रवृ संवर्धन- विधेयात्मक सद्गुण

प्राणायाम:-तस्मिनसति ष्वासप्रष्वास योर्गतिविच्छेदः प्राणायामः।

यो. सू. 2/49

अर्थात्- स्वास-प्रवास की गति के अवरूद्ध (नियंत्रित) होने को प्राणायाम कहते हैं।

प्राणस्य आयामौ इतिः प्राणायामः।

अर्थात्- प्राणशक्ति को आयाम देना या नियंत्रित करना ही प्राणायाम कहलाता है। प्राण के नियंत्रण से मन स्वतः ही नियंत्रित हो जाता है।

प्रारंभ में प्रवास की क्रिया को नियंत्रित करने का अभ्यास किया जाता है। तत्पश्चात्शरीरअवस्थित नाड़ियों की शुद्धि की जाती है उसके पश्चात् प्राण से सम्पर्क साधा जाता है।

प्राणायाम के अन्तर्गत मुख्यतः चार अवस्थाऐं आती हैं-

1. पूरक - प्राणावायु को अन्दर खींचना
2. अन्तःकुम्भक - प्राणवायु को अन्दर खींचकर स्थिर रखना
3. रेचक - प्राणवायु को बाहर निकालना
4. बाह्यकुम्भक - बाहर रोकना

समाधि:- तदेवार्थमात्र निर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः।

- यो. सू. 3/3

जब ध्यान में मात्र ध्येय की ही प्रतीति होती है एवं चित का निज स्वरूप शून्य हो जाता है उसी अवस्था को समाधि कहते हैं। समाधि के मुख्यतः दो भेद बताये गये हैं।

1. सम्प्रज्ञात या सबीज समाधि - जब ध्याता, ध्येय में लीन हो जाता है।
2. असम्प्रज्ञात समाधि - समस्त अवलम्बनों की समाप्ति समस्त कर्मबीजों की समाप्ति परम वैराग्य की प्राप्ति- आत्म साक्षात्कार।

इस प्रकार जीव, जीवन के चरम लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है।

अपनी उन्नति जानिए Check Your Progress

प्रश्न 1 योग के माध्यम से मनुष्य किन दुर्गुणों से ऊँचा उठकर श्रेष्ठ कार्यों की तरफ प्रवृत्त हो सकता हे?

प्रश्न 2 अस्तेय से आपका क्या अभिप्राय है?

7.6 सारांश

योग दर्शन के विचारानुसार छात्र को शिक्षा प्राप्त करने हेतु चित्त की एकाग्रता आवश्यक है। यह एकाग्रता योग द्वारा ही विकसित की जा सकती है। उपनिषदों के अनुसार एकाग्रता की स्थिति सम्प्रज्ञात समाधि के नाम से जानी जाती है। यह स्थिति पाने हेतु छात्र की केवल बुद्धि ही परीक्षा नहीं ली जाती वरन् आस्था की परीक्षा भी योग द्वारा की जाती है। यह आस्था ही पात्रता है। यही आस्था व्यक्ति को ज्ञान पाने हेतु प्रेरित करती है। इस आस्था के साथ संकल्प भी जरूरी है। यदि संकल्प कमजोर होगा तो आस्था के डिगने का खतरा रहता है तीसरी चीज़ जिसकी सर्वाधिक आवश्यकता होती है, वह है अनुशासन। योग दर्शन में अनुशासन की ही विस्तार से चर्चा की गई है। वास्तव में यह अनुशासन अन्तर व बाह्य-अनुशासन ही योग दर्शन है।

शिक्षार्थी को अनुशासन में रहने हेतु पहला चरण आसन है। एक स्थिर आसन ही व्यक्ति को शैक्षिक प्रक्रिया में आगे बढ़ने के लिए आवश्यकता होती है प्राणायाम की। अतः शिक्षा जगत में बढ़ती हुई अनुशासन हीनता को नियंत्रण में लाने हेतु योग दर्शन अर्थात योगाभ्यास एक बहुत प्रमुख साधन सिद्ध हो सकता है। स्थिर आसन व सफल प्राणायाम का स्वप्रयास छात्र को अधिगम में अग्रसर व सफल बना सकता है। शिक्षक को यह प्रयास करना चाहिए कि छात्रों में अनुशासन थोपने का प्रयास न करें अपितु इतनां सक्षम बनाएँ कि वे स्वतः ही अनुशासन का पालन करें।

शिक्षा प्राप्ति की प्रक्रिया में मनोवैज्ञानिक अवधारणा है कि इससे बालक के व्यक्तित्व का विकास होता है। योग दर्शन ही छात्र के व्यक्तित्व को पूर्ण विकसित रूप देता है क्योंकि बुद्धि को विकसित करने में जहाँ शैक्षिक ज्ञान प्रदान किया जाता है, वहीं इस बुद्धि को परिपक्व करने हेतु स्वनियन्त्रण विकसित करने को प्रेरणा योग द्वारा ही दी जा सकती है। इस स्वनियन्त्रण में मानसिक पक्ष के साथ-साथ आत्मिक व शारीरिक पक्ष भी विकसित करने होते हैं। अतः पूर्ण व्यक्तित्व के विकास के लिए, मानव के भीतर विकसित अहम् के ;म्हवद्ध विनाश् हेतु यौगिक प्रक्रिया आवश्यक है। व्यक्तित्व के तीनों पक्षों को निम्न चित्र द्वारा दर्षाया जा सकता है

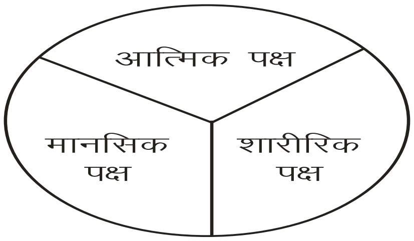

संतुलित व्यक्तित्व के वांछनीय पक्ष

चित्र में दर्शाये मानसिक पक्ष के वांछनीय पक्ष का विकास विद्यालय की सामान्य शैक्षिक विशयी-प्रक्रिया करती है किन्तु शारीरिक तथा आत्मिक विकास हेतु योग दर्शन का अष्टांग मार्ग ही सहायक सिद्ध होता है

इस अश्टाग मार्ग के दोनों पक्ष निम्न प्रकार दर्षाये जा सकते है।

अष्टांग मार्ग

शारीरिक विकास पक्ष बहि रंग साधन	आत्मिक विकास पक्ष अंतरंग साधन
1. यम	1. प्रत्याहार
2. नियम	2. धारणा
3. आसन	3. ध्यान
4. प्राणायाम	4. समाधि

ये दोनों पक्ष छात्र के सन्तुलित व्यक्तित्व निर्माण में सहायक हैं। विभिन्न आसन छात्र के शारीरिक रखरखाव में सौंदर्य प्रदान करते है, प्राणायाम आन्तरिक शक्ति की वृद्धि करते हैं व भीतरी अंगों की सुदृढ़ता बनाये रखने में सहायक होते हैं। विभिन्न अंतरग साधन धारण, समाधि आदि, छात्रों को एकाग्रता विकसित करने व में अपूर्व योगदान देते हैं।

इस प्रकार संक्षेप में हम कह सकने हैं कि योग दर्शन शिक्षा के विभिन्न उद्देश्यो को प्राप्त करने में सहायक हैः सूक्ष्म रूप में यह कहा जा सकता है कि योगदर्शन-

1. शुद्ध चैतन्य स्वरूप का विकास करता है

2. मानसिक व शारीरिक स्वास्थ्य के विकास पर बल देता है।

3. आत्मिक विकास पर बल देता है।

4. स्वअनुशासन बल प्रदान करता है।

5. आन्तरिक अनुशासन पर बल देता है।

6. शिक्षा व योग द्वारा आर्थिक विकास पर बल देता है

7. परिश्रम की महत्ता पर बल देता है।

8. मोक्ष प्राप्ति पर बल देता है

अतः योग दर्शन की शिक्षा प्राप्त कर शिक्षार्थी विद्या प्राप्ति कर जीवन के शाश्वत सत्य-सत्यम्, शिवम् सुन्दरम् की प्राप्ति के मार्ग पर अग्रसर होता है। विद्यार्थी जीवन में शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक नैतिक तथा सामाजिक उन्नति हेतु योग दर्शन के ज्ञान का प्रयोग होता आया है। यह ज्ञान शिक्षार्थी को उन्नत जीवन जीने हेतु प्रेरित करता रहा है वास्तव में जीवन को अनुशासित करने में योग दर्शन एक सक्षम भूमिका निभाता रहा है। प्रगतिशील जीवन जीने में योग विज्ञान एक सुदृढ़ नींव का काम करता है अतः इसका अभ्यास आज के छात्र को जन्म से ही कराया जाना चाहिए ताकि वह एक सुव्यवस्थित एवं संगठित राश्ट्र कि निर्माण में योगदान दे सके।

7.7 शब्दावली (Glossary)

मानवीय मूल्य- सेवा, सहिष्णुता, दया, करूणा, परोपकार,सौजन्य, त्याग उदारता, सहानुभूति, सहअस्तित्व का भाव आदि का विकास।

अस्तेय- नीतिवूर्वक, परिश्रम से अर्जित की हुयी वस्तुओं का ही प्रयोग करना।

अपरिग्रह- अनावष्यक संचय या संग्रह न करना।

ब्रह्मचर्य- ब्रह्मचर्य अर्थात् ब्रह्म की शोध-खोज हेतु आचार-आचरण, वास्तव में विषयमात्र का निरोध ही ब्रह्मचर्य है। परन्तु व्यावहारिक रूप से मनसा-वाचा कर्मणा से समस्त प्रकार के मैथुनों से दूर रहना ही ब्रह्मचर्य है।

7.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

भाग एक

उत्तर 1 विश्व के प्राचीनतम् साहित्य वेद में सर्वप्रथम योग का संकेत मिलता है।

उत्तर 2 योग सम्बन्धी विचार धारा का उल्लेख सर्वप्रथम किस ऋग्वेद में हुआ है।

भाग दो

उत्तर 1 शारीरिक, मानसिक तनावों को साधारण योगाभ्यास से दूर किया जा सकता है।

उत्तर 2 योग सैन्धव कालीन सभ्यता की देन है।

भाग तीन

उत्तर 1 योग के माध्यम से मनुष्य काम, क्रोध, मद, लोभ इत्यादि दुर्गुणों से ऊँचा उठकर श्रेष्ठ कार्यो की तरफ प्रवृत्त हो सकता हे।

उतर 2 अस्तेय- नीतिवूर्वक, परिश्रम से अर्जित की हुयी वस्तुओं का ही प्रयोग करना।

7.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (References)

1. पाण्डे, (डॉ) रा. श. *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*. आगरा: अग्रवाल प्रकाशन.

2. सक्सेना, (डॉ) सरोज. *शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार*. आगरा: साहित्य प्रकाशन.

3. मित्तल, एम.एल. (2008). *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*. मेरठ: इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस.

4. शर्मा, रा. ना. व शर्मा, रा. कु. (2006). *शैक्षिक समाजशास्त्र*. नई दिल्ली: एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स.

5. सलैक्स, (डॉ) शी. मै. (2008). *शिक्षक के सामाजिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्षय*. नई दिल्ली: रजत प्रकाशन.

6. गुप्त, रा. बा. (1996). *भारतीय शिक्षा शास्त्र*. आगरा: रतन प्रकाशन मंदिर.

7.10 उपयोगी सहायक ग्रन्थ (Useful Books)

1. पाण्डे, (डॉ) रा. श. *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*. आगरा: अग्रवाल प्रकाशन.

2. सक्सेना, (डॉ) सरोज. *शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार*. आगरा: साहित्य प्रकाशन.

3. मित्तल, एम.एल. (2008). *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*. मेरठ: इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस.

4. शर्मा, रा. ना. व शर्मा, रा. कु. (2006). *शैक्षिक समाजशास्त्र*. नई दिल्ली: एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स.

5. सलैक्स, (डॉ) शी. मै. (2008). *शिक्षक के सामाजिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्षय*. नई दिल्ली: रजत प्रकाशन.

7.11 दीर्घ उत्तर वाले प्रश्न (Long Answer Type Questions)

1. योग के अर्थ को स्पष्ट करते हुए उसकी कुछ व्यावहारिक परिभाषाएँ प्रस्तुत करें।

2. योग के ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालें।

3. योग की ख्यात परम्पराओं पर विस्तार से चर्चा करें।

4. योग के व्यावहारिक स्वरूप की चर्चा करते हुए अपने जीवन में उसकी उपादेयता प्रकाश डालें।

5. महर्षि पतंजलि द्वारा उपदिष्ट अष्टांग योग पर एक आलेख लिखें।

6. शिक्षा क्षेत्र में योग के समावेश की आवश्यकता पर प्रकाश डालें।

इकाई - 8 श्रीमद्भागवद्गीता (ShriMad Bhagwadgeeta)

8.1 प्रस्तावना-
8.2 उद्देश्य-
भाग एक
8.3 श्रीमद्भागवद्गीता (नीतिशास्त्र) –
8.3.1 गीता के अनुसार शिक्षा का अर्थ-
8.3.3 शिक्षा का पाठ्यक्रम-
अपनी उन्नति जानिए Check Your Progress
भाग दो
8.4 शिक्षण विधियाँ -
8.4.1 गुरू-शिष्य सम्बन्ध-
अपनी उन्नति जानिए Check Your Progress
भाग तीन
8.5 गीता का दार्शनिक चिंतन एवं मानवमूल्य-
8.5.1 शिक्षा में भगवतगीता का योगदान-
अपनी उन्नति जानिए Check Your Progress
8.6 सारांश –
8.7 शब्दावली Vocavolary
8.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर Answer of Practice Question
8.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची References
8.10 उपयोगी सहायक ग्रन्थ Useful Books
8.11 दीर्घ उत्तर वाले प्रश्न Long Answer Type Question

8.1 प्रस्तावना-

श्रीमद्भागवद्गीता भगवान कृष्ण के मुखारविन्द से निकला हुआ सुमधुर गीत है। यह महाभारत के भीष्मपर्व का एक भाग है। इस पवित्रतम धार्मिक ग्रन्थ की रचना किन परिस्थितियों में हुई यह समझना आवश्यक है। अर्जुन युद्ध के लिए युद्धभूमि में उतरता है। रण में युद्ध के बाजे बज रहे हैं परन्तु अपने सगे संबन्धियों को युद्ध-भूमि में देखकर अर्जुन का हृदय भर जाता है। यह सोचकर कि मुझे अपने आत्मीयजनों की हत्या करनी होगी, वह किकंर्तव्यविमूढ़ और अनुत्साहित होकर बैठ जाता है। अर्जुन की अवस्था दयनीय हो जाती है। वह निराश हो जाता है। उसकी वाणी में रूदन है। वह कौरवों की हत्या नहीं करना चाहता है।

अर्जुन की यह स्थिति अध्यात्म जगत में आत्मा के अन्धकार की स्थिति कही जाती है। श्रीकृष्ण अर्जुन की इस स्थिति को देखकर उसे युद्ध करने का निर्देश देते है और यही निर्देश ईश्वरीय वाणी है वे कहते हैं-

सर्व धर्मान परित्यज्य मामेक शरणं व्रज।

अहं त्वं सर्व पापेभ्यों मोक्षयिष्यामि मा शुचः।। गीता

सभी पूर्वाग्रह को त्याग कर हे, पार्थ तू मेरी शरण में आ मैं तूझे सभी पापों से मुक्त कर दूगा। हे! पार्थ तू सोच मत कर। गीता का संदेश सार्वभौम है, यह हमारे जीवन में हम सबके हृदय में घटित होने वाला युद्ध ही है। आज प्रत्येक व्यक्ति जीवन में द्वन्द्व की स्थिति में है, वस्तुतः गीता मनुष्य के जीवन को एक मोड दिखाती है। महात्मा गॉधी कहा करते थे- 'जब मैं निराशा से घिर जाता हू, जीवन में प्रकाश की कोई किरण नहीं दिखाई देती तो मैं गीता की शरण में जाता हूँ। उससे मुझे कोई न कोई ऐसी किरण मिल जाती है जो मेरे जीवन को प्रकाश प्रदान करती है।'

8.2 उद्देश्य-

1. इस अध्याय को पढ़कर आप भगवद्गीता की पृष्ठभूमि एवं रहस्य समझ सकेगे।

2. निष्काम कर्म योग के प्रति रूचि जाग्रत होगी।

3. भक्तियोग के माध्यम से भक्तिभाव विकसित होगा।

4. ज्ञानयोग के माध्यम से आत्मज्ञान के प्रति उत्सुकता बढ़ेगी।

5. कर्म, भक्ति, ज्ञानयोग के भावों से धर्म में आस्था जागृत होगी।

6. इन्द्रिय संयम के विषय में अनासक्तभाव उत्पन्न हो सकेगा।

7. स्थित-प्रज्ञ जीवनशैली को स्वीकार करने की प्रेरणा मिलेगी।

8. ईश्वर के विराट स्वरूप की अवधारणा विकसित हो सकेगी।

8.3 श्रीमद्भागवद्गीता (नीतिशास्त्र) -

भारतीय परम्परा के अनुसार गीता को उपनिषदों का सार तत्व माना गया है, तथापि कुछ आधुनिक लेखकों ने इसे विविध वैचारिक प्रवृत्तियों का सम्मिश्रण बताया है। एक रूप में गीता को मानव जाति का सर्वभौम नीतिशास्त्र माना जा सकता है। वैचारिक प्रवृत्तियों में बाहरी विविधताओं के बावजूद गीता एक अनोखा उद्देश्य प्रदर्शित करता है और इसमें सिद्धान्त की दृष्टि से एकत्व है। जिसे व्यवहार में प्राप्त किया जा सकता है।

हमारा जीवन मानसिक दबावों व तनाव से भरा पड़ा है। यह पीड़ा, व्यथा, विशाद, क्लेश इत्यादि से आक्रान्त है। किसी भी परीक्षा कि घड़ी में हम विरोधी आवेगों के मध्य लड़खड़ा जाते है, और यह निश्चय नहीं कर पाते की कौनसा मार्ग अपनायें अथवा क्या करें। वास्तव में मनुष्य की समस्या यह है कि जब परस्पर विरोधी आवेग हमारे समस्त प्रयत्नों को गतिहीन व अशक्त कर दे और हम अपने आप को पूर्ण अनिश्चित्ता की स्थिति में पायें तो उस अवस्था में एक संतुलित जीवन कैसे बितायें? कैसे अपनी बृद्धि व मानसिक शांति को बनाये रखें? शोक और पीड़ा आदि को किस प्रकार शांतिपूर्वक सहन करें, परीक्षा के क्षणों में शांति और ईमानदारी से अर्थात् अंतःकरण की आवाज के अनुकूल कार्य करें?

इन समस्याओं को हल करने के मार्ग पर चलते हुए गीता मानव-जीवन से संबंधित लगभग प्रत्येक समस्या का समाधान है। समस्या यह है कि हम एक कर्मठ, तेजस्वी, उत्साही व रस पूर्ण जीवन कैसे व्यतीत करें? इन प्रश्नों के आशिंक रूप से उत्तर ढूंढ़ने पर भारत में और पश्चिमी देशों में बहुत से विचारको अथवा चिंतन पद्धतियों द्वारा प्रयत्न किये गये हैं, परन्तु गीता के सिवाय किसी एक दर्शन में अथवा किसी एक ग्रंथ में सम्पूर्ण समस्याओं का उत्तर नहीं मिलता। शुभ और अशुभ, अच्छाई अथवा बुराई अभी तक अनिर्णीत रही है, फिर भी मनुष्य को इसके नैतिक संघर्ष में जो चिजें थामें रहती है, वह है-उसका धर्मनिष्ठ विश्वास कि अंत में अच्छाई की बुराई पर विजय अवश्य होती है।

सभी भारतीय पद्धतियों के अनुसार मुसीबत तथा संघर्ष, हर्ष और पीड़ा इत्यादि वेदनाएँ 'संसार' के अभिन्न लक्षण है। संसार व्युत्पतीय दृष्टि से जीवन, मरण व पूनर्जन्म के चक्कर के रूप में निरन्तर घूमने वाली प्रक्रिया का नाम है। यह संभावना की अनादि और अनंत प्रक्रिया है। मानव प्राणी के सुख-दुखात्मक अनुभव इस संसार में प्रतिभागित्व के कारण उसकी इसके साथ अपने एकात्मीकरण या तादात्मयक के कारण होते हैं। जीवन की इस प्रक्रिया के कारण व्यक्ति अपने

नैसर्गिक स्वभाव गुणातीतत्व का अतिक्रमण कर बैठता है। यह उलंघन उस तथ्य को न जानने के कारण है कि ‘मैं स्वयं क्या हूँ?’ यह व्यक्ति का प्रारम्भिक अज्ञान है, जिसे उसका अकरण या अनाचरण का दोष कहेगें। दूसरी प्रकार से उलंघन वह तब करता है, जब वह स्वयं का इस सांसारिक प्रक्रिया के साथ पूर्ण एकात्मीकरण कर बैठता है, इसे ही अपना जीवन कहता है, और तदनुसार उसमें जीता है। यह उसका कारण दोष या उसका अनाचरण दोष कहलाता है।

गीता का ध्यान पूर्वक अध्ययन करने पर हमे पता चलता है कि कर्तव्य का कोई भी सिद्धान्त अर्जुन को इस दलदल से कोई बाहर नहीं निकाल पा रहा है। उसे क्या करना चाहिए, उसका अन्तिम निर्णय वह यथार्थ के उस ज्ञानोदय से प्राप्त करता है जो उसके धर्म तत्वज्ञ दिव्य गुरू से मिलता है। यथार्थ स्थिति का ज्ञान उसकी अनिर्णय अथवा गलत निर्णय की स्थिति पर काबू पाने में सहायता करता है। उसे उसके वास्तविक कर्तव्य का बोध कराता है एवं प्रायोगिक निर्णयों का स्त्रोत व सैद्धान्तिक ज्ञान होता है।

हमें सुख की अनुभूति हमारे इस ब्रह्माण्डीय प्रवाह में प्रतिबंधित भागीदारी के कारण होती है। ऐसी स्थिति में प्रांसगिक किसी समस्या के समाधान के लिए गीता व्यक्ति को निष्काम कर्म का आदेश देती है। यह ऐसा कर्म है, जो परिस्थिति के अनुकूल किसी भी कर्मफल की इच्छा किए बिना मनोवेग रहित ढ़ंग से किया हो। कोई भी मानवकर्का, जो मुक्ति की इच्छा रखता हो अधिकार क्षेत्र उन कार्यों तक सीमित होता है, जो निस्वार्थ भाव से और किसी भी अवस्था में इन कर्मफलों के उपभोग की इच्छा न हों। अद्वैत वादियों की भॉति यह ज्ञानयोगियों का मार्ग है। गीता असाम्प्रदायिक है। सभी मानव बुराइयों के उत्कृष्ट समाधान के लिए इसकी निष्काम कर्म की संस्तुति सभी व्यक्तियों के लिए और बिना किसी धार्मिक अथवा सांस्कृतिक सम्बंध का ध्यान रखें सभी मानव संदर्भों में प्रभावी है। इस अर्थ में गीता एक सार्वभौम नीतिशास्त्र होने का दावा करती है। मानव क्षमताए अलग-अलग व्यक्तियों की अलग-अलग होती है। इस हेतु व्यक्ति अपनी वैयक्तिक भावनाओं का दमन कर निष्काम भाव की अभिवृत्तिया का विकास करे। इसी उद्देश्य की प्राप्ति हेतु ऐसे व्यक्तियों के लिए गीता एक अलग मार्ग बताती है, वह मार्ग ‘भक्ति’ मार्ग है। यह अहम्भाव तथा वैयक्तिक भाव से ईश्वर के प्रति आत्म-समर्पण करके छुटकारा पाने का मार्ग है।

गीता अपने निष्काम कर्म के संदेश के साथ उपनिषद पर एक उपयुक्त टीका है। इसमें यह विशेषता है कि इसके अट्ठारह अध्यायों में से प्रत्येक अध्याय को किसी न किसी प्रकार का योग कहते हैं। गीता विशाद योग से आरम्भ होती है जिसमे विशेष रूप से एक ऐसी मानव स्थिति को प्रस्तुत किया गया है, जो तनाव, संदेह व आशंका, नैराश्य और अनिश्चितता से परिपूर्ण है। इसका समाधान मोक्षयोग के विवेचन से होता है, जो अन्तिम रूप से तनाव मुक्त करता है, संदेह को दूर करता है, रहस्य को सुलझाता है और शांति का मार्ग प्रशस्त करता है।

8.3.1 गीता के अनुसार शिक्षा का अर्थ-

श्रीकृष्ण के अनुसार सच्ची शिक्षा का अर्थ गुणों के ज्ञान का अवबोध है। गुणों का ज्ञान वह है, जिसके द्वारा हम एकता में अनेकता का अनुभव करते हैं। वह हर प्राणी में ईश्वर का आभास मानते है। गीतादर्शन के अनुसार हम कह सकते हैं, कि 'वास्तविक शिक्षा वह है, जो हमें इस योग्य बनाती है कि हम प्राणी की आत्मा में ईश्वर की सत्ता ही देखें।' आरम्भ में जब अर्जुन युद्ध के प्रति भ्रमित था, तब श्रीकृष्ण ने अपने ब्रह्मरूप को दिखाकर जिसमें सबका वास था, अर्जुन को यह अनुभव कराया, कि युद्ध में वह किसी की आत्मा को नहीं मार सकता क्योंकि आत्मा का वास्तविक वास तो ब्रह्म में है।

8.3.2 गीता के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य -

आदर्शवादिता की उच्चतम सीढ़ी के आधार पर भवगद्गीता के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य निम्न प्रकार से वर्णित किये जा सकते है।

1. जीवन का चरम लक्ष्य मोक्षः मानव ज्ञान की उस स्थिति को सर्वोपरि माना गया है जब आत्मा, परमात्मा में विलीन होकर मोक्ष को प्राप्त कर ले। गीता में श्रीकृष्ण ने अर्जुन के माध्यम से शिक्षा के इस पावन एवं उच्चतम उद्देश्य की ओर संकेत किया है। ज्ञान का आदान-प्रदान इस स्तर का हो कि व्यक्ति मोक्ष प्राप्ति को ही जीवन का लक्ष्य माने, तथा उसे प्राप्त करने में अपना सर्वस्व लगा दे।

2. नैतिकता पूर्ण जीवनः अर्जुन के माध्यम से श्रीकृष्ण द्वारा समझना कि अनैतिक समाज को उत्साह देने से बड़ा कोई पाप नहीं है। यह अनैतिक पीढ़ी सारे राष्ट्र को खण्डित कर देगी। इस प्रकार श्रीकृष्ण नैतिक आचरण करने की प्रेरणा तथा अनैतिकता के प्रति युद्ध लड़ना, से यही सीख देता है कि समाज व राष्ट्र के उत्थान के लिए नैतिकता पूर्ण आचरण ही स्वीकार्य होना चाहिए।

3. निर्लिप्त भाव से जीवन यापनः हर व्यक्ति एक आत्मा है जो अकेला आया है व अकेला जाएगा। वह परमात्मा का अंश है। उसे मोहमाया में नहीं फंसना चाहिए। स्वंय की सत्ता को जानकर अपने अन्तिम लक्ष्य, मोक्ष प्राप्ति के लिए निर्लिप्त भाव से ज्ञानार्जन करना चाहिए।

4. आत्माकी अमरता के ज्ञान का उद्देश्यः आत्मा अजर-अमर है। उसे तो न शस्त्र भेद सकता है न आग जला सकती है, न पानी गला सकता है, न हवा सोख सकती है, मरता तो केवल शरीरर है। अतः शिक्षा ऐसी हो जो व्यक्ति को हर अन्याय व अत्याचार से निर्भीकता पूर्वक साहस से लड़ने के योग्य बना सके। वह मृत्यु भय से मुक्त होकर हर अन्याय का सामना कर सके।

5. आत्म बल बढ़ाने का उद्देश्यः गीता की शिक्षा का उद्देश्य है कि व्यक्ति जगत में रहते हुए अपनी शक्ति का इस प्रकार प्रयोग करे कि सज्जनों की रक्षा हो व दुष्टों का नाश हो। सत्धर्म की स्थापना हो। अतः गीता मनुष्य के वास्तविक विकास के लिए आत्मबल का संचार करती है।

6. जीवन में पलायन न करके चुनौतियों का सामना करने की भावना का विकासः व्यक्ति को जीवन में न तो दीनता दिखानी है, न किसी परिस्थिति से भागना है उसे उठकर सामना करना है क्योंकि जब तक आयु है उसे कोई नहीं मार सकता, वैसे मरता तो केवल शरीरर ही है आत्मा नहीं। इस प्रकार भगवद्गीता के शिक्षा के उद्देश्य मानव को कर्म में प्रवृत कर उसे आत्म विकास की प्रेरणा देते हुए अनाचार से लड़कर, अपने चारों ओर न्याय व सद्गुण के प्रचार व प्रसार को प्रोत्साहित करते हैं। इसमें वैयक्तिक एवं सामाजिक उद्देश्यों का सुन्दर समन्वय है।

8.3.3 शिक्षा का पाठ्यक्रम-

भगवद्गीता में प्रश्नोत्तरों द्वारा ऐसा पाठ्यक्रम प्रस्तुत किया गया हैं, जो परा ज्ञान व अपरा ज्ञान से प्राणी को अवगत कराता है। अर्मूत व मूर्त ज्ञान की प्राप्ति के लिए शिक्षा में साहित्यक, सामाजिक, धार्मिक व वैज्ञानिक विषयों का अध्ययन आवश्यक है। भौतिक ज्ञान के साथ-साथ आध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति भी व्यक्ति के लिए नैतिक जीवन जीने हेतु आवश्यक है।

परा विद्या के अन्तर्गत-आत्म ज्ञान, ब्रह्म ज्ञान आता है जो नित्य व सनातन है, पूर्ण ज्ञान है, नीतिपूर्ण ज्ञान व आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करते समय छात्र की अपूर्णता व अस्थिरता की ओर भी ध्यान आकृष्ट करना चाहिए ताकि छात्र में सद्गुणों का उदय हो। वह सही व गलत में भेद कर सके।

अपरा विद्या के अन्तर्गत- सभी प्रकार के विज्ञानों का अध्ययन यथा रसायन शास्त्र, भौतिक शास्त्र, नक्षत्र विद्या यान्त्रिकी, वनस्पति शास्त्र, जीव शास्त्र, शरीरर व स्वास्थ्य विज्ञान, अर्थशास्त्र, गणित, भूगोल, इतिहास, नागरिक शास्त्र, क्षत्रियो के लिए धनुर्विद्या, मन तथा बुद्धि द्वारा प्राप्त अनुभवात्मक ज्ञान और ज्ञानेन्द्रियों से प्राप्त प्रत्यक्ष ज्ञान, सभी प्रयोगात्मक व अवलोकन की दृष्टि से मान्य हैं। साथ ही सभी भाषाओं, कला व साहित्य के ज्ञान की भी अपेक्षा की गई है।

इन दोनों विद्याओं के अतिरिक्त गीता में पुरूषार्थ चतुष्टय-धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को भी स्थान दिया गया है, अतः पाठ्यक्रम निर्धारण में छात्र के उपयुक्त पुरूषार्थो के अनुरूप ध्यान देना आवश्यक होता है। गीता के 18वें अध्याय में चारों वर्णों के कर्मों का विवरण देते हुए, सफल जीवन जीने हेतु उपयुक्त कार्य करने की दिशा धारा मिलती है। इसके अतिरिक्त छात्र की रूचि, बुद्धि, स्वभाव व वर्ण के अनुकूल शिक्षा देने का प्रावधान बताया गया है।

अपनी उन्नति जानिए Check Your Progress

प्रश्न 1 भगवान कृष्ण के मुखारविन्द से निकला हुआ सुमधुर गीत किसमे है?

प्रश्न 2 सभी पूर्वाग्रह को त्याग कर हे, पार्थ तू मेरी शरण में आ मैं तूझे सभी पापों से मुक्त कर दूगा,गीता मे यह कथन किसका है?

8.4 शिक्षण विधियाँ –

आदर्शवादी विचारधारा के अनुरूप गीता में प्रश्नोत्तर विधि का खुलकर प्रयोग हुआ है। यह विधि अत्यन्त प्रभावी विधि मानी गई है। शिष्य अपने मन के सन्देह, प्रश्नों के रूप में प्रकट करता है, गुरू उनके सन्तोष प्रद उत्तर देता है, जिज्ञासाओं को शान्त करता है व जीवन के गूढ़ रहस्यों की परतें खोलकर रख देता हे। प्रश्नोत्तरों द्वारा ज्ञान का आदान-प्रदान भगवद्गीता की मूल शिक्षण विधि है।

वार्तालाप विधि व संवाद विधि का भी गीता में विचारों के आदान प्रदान हेतु प्रयोग हुआ है। कृष्ण द्वारा दिये गए उत्तरों पर पुनः प्रश्न उठते हैं। अर्जुन भी अपने विचार प्रस्तुत करता है। दोनो अपनी - अपनी बात कहने के लिए तर्क प्रस्तुत करते हैं। इस प्रकार तर्क विधि का भी गीता में काफी खुलकर प्रयोग हुआ है। जहाँ तक ज्ञान का प्रश्न है यह श्लोकों के माध्यम से मौखिक विधि द्वारा प्रभावशाली ढंग से दिया गया है।

अर्जुन को ज्ञान पाने हेतु पात्रता विकसित करने के लिए श्रीकृष्ण आत्म समर्पण के लिए भी कहते हैं। यह आदर्शवादी दर्शन की एक महत्वपूर्ण विधि है। शिष्य को गुरू के दिखलाए मार्ग पर चलना चाहिए, तभी वह सद्ज्ञान को प्राप्त कर सकेगा। इसी आत्म समर्पण विधि द्वारा अर्जुन ज्ञान पाने में सक्षम होकर कर्म करता हुआ जीवन में मोक्ष का अधिकारी बन सका।

मनौवैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखने पर दो तथ्य शिक्षण हेतु के लिए अनिवार्य माने गये हैं।

(1) शिक्षण विधि सप्रयोजन होनी चाहिए।

(2) शिक्षण, छात्र की मानसिकता के अनुकूल हो, उसकी योग्यता के अनुरूप उसे सीखने के लिए उत्प्रेरित करना चाहिए।

गीता में शिक्षण विधि का स्वरूप

ज्ञानात्मक	भावात्मक	क्रियात्मक	प्रवृति
ज्ञान-योग	भक्ति योग	कर्म योग	विधि
किशोरावस्था	उत्तरबाल्यावस्था	बाल्यावस्था	अवस्था

एक व्यक्ति के जीवन में विकास की विभिन्न प्रवृतियाँ अलग-अलग अवस्थाओं में प्रकट होती है। जैसेः- बाल्यावस्था में खेल-खेल में विभिन्न क्रियाओं, अनुभवों व इन्द्रिय प्रशिक्षण के द्वारा ज्ञान

ग्रहण किया जाता है। यही ज्ञान उत्तरबाल्यावस्था में श्रद्धा पूर्वक, बिना शंका किए, शिक्षक को आदर्श मान कर, पूजा, अर्चन, कीर्तन, श्रवण, आत्म निवेदन आदि नवधा भक्ति की विधियों द्वारा ग्रहण किया जाता है। किशोरावस्था में बालक तर्क विधि द्वारा, शंकाओं का विवेचन, विश्लेषण करके, श्रवण, मनन, निद्रिध्यान द्वारा ज्ञान को ग्रहण करता है। इस प्रकार ज्ञान प्राप्ति के तीनों स्तर, ज्ञानात्मक, भावात्मक, क्रियात्मक विभिन्न होते हुए भी एक दूसरे के पूरक हैं।

ऐसा ही ज्ञान भगवद्गीता में विभिन्न शिक्षण विधियों का प्रयोग करते हुए अर्जुन रूपी जीव को ब्रह्म ज्ञान व आत्म ज्ञान देने हेतु किया गया है।

8.4.1 गुरू- शिष्य सम्बन्ध-

भगवद्गीता में गुरू के प्रति अटलश्रद्धा व अखण्ड विश्वास दर्शाया गया है। शिष्य को गुरू की सहायता व कृपा से ही जीवन की सही दिशा मिल सकती है। यही भाव सदैव शिष्य के मन में रहता है। शिष्य जब-जब अपनी शंकायें गुरू के सामने प्रस्तुत करता है, गुरू उन्हें बड़े स्नेह व प्यार के साथ अपने विचारो व उपदेशों द्वारा समाधान करता है। हर संकट के समय गुरू शिष्य की सहायता करता है। श्रीकृष्ण ने अर्जुन का सारथी बनकर उसे हर विपत्ति से बचाते हुए शिक्षित किया है। भगवद्गीता में यह भी ध्यान रखा गया है कि गुरू ने कभी भी अपने विचार शिष्य पर नहीं थोपे बल्कि अर्जुन को यही कहा है, ''मैंने तो तुम्हें सारे मार्ग बता दिये हैं, अब यह तुम पर है कि तुम कौन सा पथ स्वीकारते हो।' अतः यह सम्बन्ध पिता-पुत्र जैस है, जहाँ गुरू शिष्य को सही मार्ग पर ले चलना गु अपना दायित्व समझता है।

शिक्षक को गीता में देवतुल्य माना गया है। बालक को भी अव्यक्त पुरूषोतम की सुन्दरतम् कृति माना गया है, उसमें भी देवत्व विद्यमान है। वह भी ईश्वरीय ज्योति से प्रकाशित है, इसलिए गुरू उसके शारीरिक, मानसिक व आत्मिक विकास के लिए प्रयासरत रहता है। शिष्य को पुत्र, सखा, भक्त मान कर उसके बहुमुखी विकास हेतु मार्ग दर्शन करता है।

गुरू शिष्य के अज्ञान को निगल जाता है। ऐसा गुरू-शिष्य सम्बन्ध गीता में श्रीकृष्ण-अर्जुन का दिखलाई पड़ता है। अर्जुन युद्ध से पहले अज्ञानी है पर युद्ध के बिगुल बजने पर श्रीकृष्ण अपने ज्ञान की वर्षा करके उसका अज्ञान मिटा देते हैं शब्दार्थ करने परः 'गु' शब्द का अर्थ है 'अन्धकार' और 'रू' शब्द का अर्थ उसका विरोध या विनाश करनेवाला। इस प्रकार अन्धकार का मिटाने वाला गुरू है। गुरू कर्तव्य व अकर्तव्य में भेद स्पष्ट करता है। कुगति से सुगति का मार्ग दर्शाता है। कुलावर्ण तन्त्र के अनुसार गुरू के छः कार्य बतलाये हैं। प्रेरक, सूचक, वाचक, दर्शक, शिक्षक और बोधक।

सारांश में गुरू को सात्विक गुणों के आधार पर भटके हुए शिष्य का उचित मार्ग दर्शन करना है। उसे अन्धकारमय मार्ग से ज्योतिर्मय मार्ग का दिशाबोध कराना है। उसे अपरा से परा ज्ञान

की भोर ले जाना है ताकि निष्काम कर्म करता हुआ अन्त में स्थित-प्रज्ञ की संज्ञा को प्राप्त कर सके।

इस प्रकार गीता में गुरू-शिष्य सम्बन्ध, पिता-पुत्र की भाँति एक उच्चतम स्तर के द्योतक हैं।

अपनी उन्नति जानिए Check Your Progress

प्रश्न 1 किसी समस्या के समाधान के लिए गीता व्यक्ति को किस प्रकार के कर्म का आदेश देती है?

प्रश्न 2 युद्ध में वह किसी की आत्मा को नहीं मार सकता क्योंकि आत्मा का वास्तविक वास तो ब्रह्म में है, यह कथन गीता मे किसके लिय कहा गया?

8.5 गीता का दार्शनिक चिंतन एवं मानवमूल्य-

विश्व के सभी दर्शनों में प्राचीनतम भारतीय दर्शन है। वैदिक काल से लेकर आज तक भारतीय चिंतकों ने वैयक्तिक तथा सामाजिक समस्याओं को लेकर ही चिंतन आरंभ किया तथा समयानुसार देश, काल के संदर्भ में उन समस्याओं का समाधान ढूंढ़ा। उन सभी दार्शनिकों के लिए समस्याए प्रारम्भिक रूप में अनुभूत रहीं है। जो भी दर्शन विशेष विचारकों ने दिया वह उस अनुभवात्मक समस्या पर किये गए चिंतन मनन का ही परिणाम था। मूल्यों के दार्शनिक विवेचन में कहा गया है कि मूल्य किसी वस्तु या व्यक्ति से संबंधित नहीं होते बल्कि किसी विचार या दृष्टिकोण से संबंधित होते हैं। अतः जो चीज किसी व्यक्ति के लिये उपयोगी होती है वही उसके लिये मूल्यवान बन जाती है।

वास्तव में भारतीय दार्शनिक चिंतन का उद्गम एक प्रकार की आत्मिक अशांति से होता है। संसार में व्याप्त दुःख तथा पाप भारतीय दार्शनिकों कों अशान्त कर देंते है और वे उनके मूल कारणों की खोज में निकल पड़ते हैं। दुःखों से मुक्ति के अपने प्रयास में मानव जीवन के प्रयोजन, सृष्टि के स्वरूप आदि सूक्ष्म विषयों का चिंतन करते हैं। भारतीय चिंतकों का उद्देश्य वास्तव में उस मार्ग की तलाश है जिससे शांति व अमरत्व की प्राप्ति हो। इस प्रकार सभी भारतीय चिंतकों का, चाहे वे आस्तिक हों या नास्तिक, एक मात्र उद्देश्य है, 'मुक्ति' अर्थात् दुःखों से मुक्ति, उन बन्धनों से मुक्ति जो आत्मा के असली स्वरूप से व्यक्ति को परिचित नहीं होने देते।

भारतीय चिंतन का उद्देश्य बौद्धिक जिज्ञासा की तृप्ति मात्र नहीं है अपितु बेहतर जीवन की तलाश है। दर्शन शब्द का अर्थ है, सत्य की अनुभूति, मात्र जानना ही नहीं। यही कारण है कि भारतीय चिन्तकों के लिए संत हुए बिना केवल ज्ञानी होना कोई अर्थ नहीं रखता। जबकि पाश्चात्य चिंतक प्रायः मात्र चिंतक हुए हैं, संत नहीं। ज्ञान तो व्यक्ति को स्वतः ही मानव मूल्यों की पराकाष्ठा की ओर लेता चला जायेगा। ज्ञान को उपनिषदों में एक अद्भुत शक्ति के रूप में माना गया है, चाहे वह आत्मज्ञान हो अथवा प्रकृति सम्बन्धी। उपनिषदों में यह स्वीकार किया गया है कि यह आवश्यक नहीं की शिक्षकों के आचार में सभी बातें अनुसरणीय हों। अतः छात्रों को शिक्षक के उचित-अनुचित

सभी प्रकार के व्यवहारों की उपेक्षा नहीं रखनी चाहिए। आचार समय तथा परिस्थिति सापेक्ष होता है। अतः समय के साथ-साथ आचार संबंधी सामान्यक बदलते जाते हैं।

गीता के अध्धयन के द्वारा निम्न गुणो का विकास किया जा सकता है।

व्यक्ति में गुणों के ज्ञान का विकास- यह माना जाता है, कि छात्र स्वगुणों के ज्ञान से अनभिज्ञ होते है। श्रीकृष्ण अर्जुन की अज्ञानता को दूर करके अपने कर्तव्य पालन करने को कहते हैं। अतः शिक्षा का उद्देश्य छात्रों के अज्ञान को दूर करना और अनमें आत्मा के गुणों के ज्ञान का विकास करना है।

व्यक्तित्व का विकास और उसका परिशोधन- प्रत्येक व्यक्ति का व्यक्तित्व सद्गुणों तथा दुर्गुणों का परिणाम है। प्रत्येक प्राणी में सद्गुण पाण्डवों के रूप में तथा दुर्गुण कौरवों के रूप में होते हैं। श्रीकृष्ण अर्जुन को सद्गुणों को बोध कराकर सत्य मार्ग पर चलने की प्रेरणा देते हैं। शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास और उसका परिशोधन करना है। यह कार्य शिक्षक द्वारा किया जाना चाहिए।

व्यक्तिगत एवं सामाजिक उद्देश्य में सामंजस्य उत्पन्न करना - जब अर्जुन अपनी व्यक्तिगत स्वंतंत्रता और सामाजिक उत्तरदायित्व तथा अपने कर्म और अधिकारों के प्रति भ्रमित था। तब श्रीकृष्ण उसे अपना गाण्डीव उठाकर अपने स्वजनों की बुराइयों का अन्त करने के लिए कहते हैं, इस प्रकार शिक्षा व्यक्तिगत और सामाजिक उद्देश्यों में सामंजस्य ठहराने और अपनी बुराइयॉ समाप्त करने के लिए आवश्यक है।

आन्तरिक चेतना का विकास - जब अर्जुन अंतःज्ञान के विकास हेतु युद्ध से विमुख हो जाता है, तब कृष्ण उसे अपनी इच्छाशक्ति के विरूद्ध युद्ध करने की प्रेरणा नहीं देते। उसे तर्क व बुद्धि का प्रयोग करके अपनी बुद्धि (तर्क) के अनुरूप स्वधर्म का पालन करने को कहते है। तब अर्जुन युद्ध के लिए तैयार हो जाता है। जिस प्रकार भगवान श्रीकृष्ण एक गुरू और एक मित्र की भॉति अर्जुन की आन्तरिक चेतना का जगाने में सफल होते है, ठीक उसी प्रकार एक शिक्षक को अपने शिष्य में आन्तरिक चेतना का विकास करने के लिए इस प्रक्रिया का अनुसरण करना चाहिए।

तर्कशक्ति और बौद्धिक योग्यता का विकास - अर्जुन को युद्ध की उपयोगिता में सन्देह होता है। श्रीकृष्ण अपनी बौद्धिकता, कौशल और तर्क शक्ति द्वारा अर्जुन के सन्देह को दूर करते है और विभिन्न विकल्पों में से अपनी निर्णय शक्ति के द्वारा उसे सही विकल्प का चयन करने को कहते हैं। इस प्रकार शिक्षा का उद्देश्य अध्यापक और छात्र के सम्बन्धों के प्रसंग में यही होना चाहिए।

जीवन में स्वधर्म की महत्ता की स्थापना - एक व्यक्ति अपने कर्तव्य और अधिकारों मं‍े सन्तुलन बनाकर ही खुश रह सकता है। श्रीकृष्ण अर्जुन का बताते हैं, कि अपने कर्तव्य के पालन से अच्छा कुछ नहीं है। गीता का उद्देश्य विद्यार्थियों मे ऐसे कर्म करने की सूझ उत्पन्न करना है, जो सबके कल्याण के लिए हो।

8.5.1 शिक्षा में भगवतगीता का योगदान-

भगवद्गीता का ज्ञान मनुष्य जीवन के लिए ‘जीवन जीने की कला’ दर्शाता है। सम्पूर्ण जीवन के हर पक्ष में गीता का भक्ति-योग, ज्ञान-योग, व कर्म-योग मानव जीवन का पथ-प्रदर्शन करता है। आत्मा की अमरता मानव को साहस, निर्भीकता, निर्लिप्तता व नैतिकता पूर्ण जीवन जीने की प्रेरणा देता है। भगवद्गीता में मानव मात्र को जीवन की सभी समस्याओं का समाधान मिल जाता है। इसे एक सनातन ग्रन्थ, ज्ञान ग्रन्थ, विजय ग्रन्थ एवं जीवन ग्रन्थ आदि की संज्ञा दी गई। यह जीवन की समझ और कर्म कौशल सिखाने वाला एक प्रेरक ग्रन्थ है।

भगवद्गीता में मानव जीवन के विकास क्रम की तीन स्थितियाँ बताई गई है। पहला जैविक प्राणी, जो अन्नमय व प्राणमय कोश की मूलभूत आवश्यकताओं की सन्तुष्टि एवं भौतिक स्वरूप की रक्षा व पोषक प्रक्रिया तक सीमित है। दूसरी सामाजिक प्राणी बनने की प्रक्रिया है जिसमें प्राणी स्वहित को त्याग कर मनोमय व विज्ञानमय कोशों के आधार पर सामाजिक धरातल पर चिन्तन प्रारम्भ करना सीखता है। तीसरा स्तर आध्यात्मिक प्राणी के स्वरूप का है जिसमें प्राणी अपने व्यक्तित्व का चहुँमुखी विकास करता हुआ ‘स्व’ का साक्षात्कार करने की स्थिति में होता है। वह नैतिकता व उत्तम चरित्र के उच्चतम धरातल तक पहुँच जाता है। अतः यह शिक्षा-दर्शन की दृष्टि से अमूल्य निधि है। यह दर्शन का प्रेयस (प्रवृति मार्ग) और श्रेयस (निवृति मार्ग) दर्शाती हुई अपना महत्वपूर्ण स्थान बनाये हुए है।

अपनी उन्नति जानिए Check Your Progress

प्रश्न 1 गीता किस धर्म का आधार ग्रन्थ है।

प्रश्न 2 भगवद्गीता में मानव जीवन के विकास क्रम की कितनी स्थितियाँ बताई गई है।

8.6 सारांश -

कोई भी धर्म वास्तव में अनुशासन का ही एक रूप व साधन है। भगवद्गीता भी एक धर्मग्रन्थ है। गीता के तीसरे अध्याय के चालीसवें श्लोक में श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं।‘‘इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, काम के स्थान हैं इसलिए हे अर्जुन, मनुष्य इन्हें अपने वश में करे, यही अनुशासन है।’’गीता में स्वानुशासन पर बल दिया गया है। स्वयं पर कठोर अनुशासन रखने से ही व्यक्ति रागद्वेश विमुक्त हो सकता है।

निरन्तर कर्म में रत रहना ही गीता के अनुसार संयम व अनुशासन है। इन्द्रियों को वश में किये हुए व्यक्ति को ही ईश्वर प्यार करता है। वही ईश्वर को प्राप्त कर सकता है।

वास्तव में भगवद्गीता का ज्ञान मनुष्य रूपी जीव के पंचकोषों को जगाने, सँवारने ओर उन्नति करने हेतु एक उच्चस्तरीय गुरू मंत्र है। यह अन्नमय कोश प्राणमय कोश, मनोमय कोश, विज्ञानमय कोश

एवं आनन्दमय कोश के जागरण हेतु क्रमशः कर्म, भक्ति, ज्ञान, ध्यान एवं योग में प्रवृत कर मोक्षरूपी ज्ञान प्रदान करता है। इसी ज्ञान की महिमा उच्च स्तरीय दार्शनिकों को अरविन्द, गाँधी, विवेकानन्द, टैगोर, लोकमान्य तिलक एवं अन्य पाश्चात्य मनीषियों ने अपने जीवन में अपना कर संसार मे ख्याति प्राप्त कर ली है। यह ज्ञान जीवन को सँवारने व मानवता से देवत्व के ओर ले जाने का मूल-मंत्र है।सम्पूर्ण जीवन में हम, मासलो के अनुसार अधिकतम समय प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु लगा देते हैं व सबसे कम समय आत्मानुभूति के लिए दे पाते है। व्यक्ति उस समबन्ध में स्वयं को जितना सजग बनाकर आत्मोत्थान के लिए क्रियाशील हो सकेगा, उतना ही देवत्व को पाते हुए मोक्ष रूपी सफलता को पा सकेगा।

निष्कर्ष में यदि देखा जाए तो सर्वमान्य सत्य यही है कि गीता का दर्शन किसी काल विशेष अथवा वर्ग विशेष के लिए न होकर सर्वकालिक व सार्वदेशिक है। गीता में वर्णित उपदेश पहले भी मान्य थे, अब भी मान्य है व भविषय में भी मान्य होंगे। आज भारत ही नही, सब देशों में भगवद्गीता के भाष्य प्रचलित है। अर्न्देशीय स्तर पर ख्याति प्राप्त ग्रन्थ भगवद्गीता ही है। सत्य ही है कि जब-जब समाज में विश्रृंखलता उत्पन्न होती है, तब-तब समाज के पुनर्गठन हेतु अवतार होता है। सामाजिक परिवर्तन एक निरन्तर चलनेवाली प्रक्रिया है। इस परिवर्तन में सुव्यवस्था बनाये रखने हेतु शिक्षक अथवा गुरू ही उत्तरदायी होता है, उसे ही सदैव एक उच्च स्तरीय भूमिका का निर्वाह करना होता है। वही एक अवतार रूप में समाज को राह दिखाता है।

श्रीभगवद्गीता जैसा ग्रन्थ, विश्व साहित्य में कदाचित् ही देखने को मिले। यही कारण है कि विश्व की अनेक भाषाओं में इसका अनुवाद हुआ है। स्वतंत्रता संग्राम में जब बापू, बाल गंगाधर तिलक, नेहरू तथा अनेक मूर्धन्य स्वतंत्रता सैनानी जेलखानों में कैद कर लिये गए थे, पूरे भारतवर्ष में हाहाकार मचा था, ऐसे समय में पाश्चात्य देशों के बच्चे तथा भारतीय स्कूलों के बच्चे ''गीता'' पर लेख लिख रहे थे। शिक्षक श्रीमद्भगवद्गीता के आलोक को प्रसारित करने लगे थे। पूरे भारत में गीता का सन्देश गूजने लगा था। हैरान होकर अंग्रेज अधिकारी ने एक महत्वपूर्ण गोष्ठी में कहा था-''कौन है यह महिला 'गीता' इसे कैद कर लिया जाए'' तत्काल ही दूसरे व्यक्ति ने बताया कि महाशय यह कोई महिला नहीं, बल्कि यह तो हिन्दूओं का अत्यन्त पवित्र ग्रन्थ है। आशय यह है कि यह ग्रन्थ हिन्दू धर्म का आधार ग्रन्थ है। जिसमें तत्व विचार नीति-नियम, ब्रह्म-विद्या और योग शास्त्र निहित है। गीता का विचार सरल, स्पष्ट और प्रभावोंत्पादक हैं। औपनिदेषिक विचारों से परिपूर्ण होते हुए भी इसकी शैली इतनी सरल और विश्लेषणात्मक है कि इसे साधारण मनुष्य को समझने में कठिनाई नहीं होती है।

8.7 शब्दावली (Glossary)

निर्लिप्त भाव से जीवन यापनः हर व्यक्ति एक आत्मा है जो अकेला आया है व अकेला जाएगा। वह परमात्मा का अंश है। उसे मोहमाया में नहीं फंसना चाहिए। स्वंय की सत्ता को जानकर अपने अन्तिम लक्ष्य, मोक्ष प्राप्ति के लिए निर्लिप्त भाव से ज्ञानार्जन करना चाहिए।

परा विद्या- के अन्तर्गत-आत्म ज्ञान, ब्रह्म ज्ञान आता है जो नित्य व सनातन है, पूर्ण ज्ञान है, नीतिपूर्ण ज्ञान व आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करते समय छात्र की अपूर्णता व अस्थिरता की ओर भी ध्यान आकृष्ट करना चाहिए ताकि छात्र में सद्गुणों का उदय हो। वह सही व गलत में भेद कर सके।

8.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer of Practice Questions)

भाग एक

उत्तर 1 भगवान कृष्ण के मुखारविन्द से निकला हुआ सुमधुर गीत श्रीमद्भागवद्गीता मे है।

उत्तर 2 भगवान कृष्ण ।

भाग दो

उत्तर 1 किसी समस्या के समाधान के लिए गीता व्यक्ति को निष्काम कर्म का आदेश देती है।

उत्तर 2 अर्जुन के लिय ।

भाग तीन

उत्तर 1 यह ग्रन्थ हिन्दू धर्म का आधार ग्रन्थ है।

उतर 2 भगवद्गीता में मानव जीवन के विकास क्रम की तीन स्थितियाँ बताई गई है।

8.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (References)

1. पाण्डे, (डॉ) रा. श. *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*. आगरा: अग्रवाल प्रकाशन.

2. सक्सेना, (डॉ) सरोज. *शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार*. आगरा: साहित्य प्रकाशन.

3. मित्तल, एम.एल. (2008). *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*. मेरठ: इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस.

4. शर्मा, रा. ना. व शर्मा, रा. कु. (2006). *शैक्षिक समाजशास्त्र*. नई दिल्ली: एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स.

8.10 उपयोगी सहायक ग्रन्थ (Useful Books)

1. पाण्डे, (डॉ) रा. श. *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*. आगरा: अग्रवाल प्रकाशन.

2. सक्सेना, (डॉ) सरोज. *शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार*. आगरा: साहित्य प्रकाशन.

3. मित्तल, एम.एल. (2008). *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*. मेरठ: इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस.

4. शर्मा, रा. ना. व शर्मा, रा. कु. (2006). *शैक्षिक समाजशास्त्र*. नई दिल्ली: एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स.

5. सलैक्स, (डॉ) शी. मै. (2008). *शिक्षक के सामाजिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्षय*. नई दिल्ली: रजत प्रकाशन.

8.11 दीर्घ उत्तर वाले प्रश्न (Long Answer Type Questions)

1. भगवद्गीता का उपदेश कब और किन परिस्थितियों में दिया गया? गुरू-शिष्य संबंधों पर गीता में अभिव्यक्त संदेश पर प्रकाश डालिए।

2. वर्तमान के संदर्भ में भगवद्गीता का क्या महत्व है?

3. गीता के दार्शनिक चिन्तन पर विस्तार से प्रकाश डालिए।

4. गीता के अनुसार कर्मयोग का औचित्य निरूपीत कीजिए।

5. कृष्ण और अर्जुन के संवाद में अर्जुन की मनःस्थिति का वर्णन कीजिए।

6. प्रमुखरूप से गीता की क्या प्रेरणाए हैं? गीता के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य बताइए।

7. श्रीकृष्ण ने अर्जुन को उपदेश देते समय किन-किन विधियों का प्रयोग किया है? इन विधियों को और अधिक प्रभावशाली कैसे बनाया जा सकता है?

इकाई 9 : प्रकृतिवाद (Naturalism)

9.1 प्रस्तावना Introduction

9.2 उद्देश्य Objectives

भाग-1

9.3 प्रकृतिवाद Naturalism

9.3.1 प्रकृतिवादी दर्शन का अर्थ Meaning of Naturalistic Philosophy

9.3.2 प्रकृतिवाद की परिभाषाएं Definition of Naturalism

9.3.3 प्रकृतिवाद के दार्शनिक स्वरूप Philosophy Form of Naturalism

अपनी उन्नति जानिए Check your progressभाग-2

9.4 प्रकृतिवाद के प्रमुख सिद्धान्त Principal of Naturalism

9.4.1 प्रकृतिवाद व शिक्षा के उद्देश्य Naturalism and aims of Education

9.4.2 प्रकृतिवाद व पाठ्यक्रम Naturalism and Curriculum

9.4.3 प्रकृतिवाद व शिक्षण विधियां Naturalism and Methods of Teaching

अपनी उन्नति जानिए Check Your Progress

भाग-3

9.5 प्रकृतिवाद की प्रमुख विशेषताएं Chief Characteristics of Naturalism

9.5.1 शिक्षा में प्रकृतिवाद की देन Contribution of Naturalism in Education

अपनी उन्नति जानिए Check your Progress

9.6 सारांश Summary

9.7 कठिन शब्द Difficult Words

9.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर Answer of Practice Question

9.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची References

9.10 उपयोगी सहायक ग्रन्थ Useful Books

9.11 दीर्घ उत्तर वाले प्रश्न Long Answer Type Question

9.1 प्रस्तावना (Introduction)

दर्शन की समस्या के रूप में तत्व की खोज तो अनादि काल से हो रही है और इसी आधार पर दार्शनिकों को समूहों में बांट दिया गया है। जो एक तत्व मानते हैं वे एकतत्ववादी अथवा अद्वैतवादी, जो दो तत्वों में विश्वास करते हैं वे द्वितत्ववादी अथवा द्वैतवादी और बहुतत्व मानने वाले बहुततत्ववादी कहलाते हैं। साधारणतया एकतत्ववादी विचारधारा ही प्रबल है। ब्रह्माण्ड का मूल कारण चेतन है अथवा अचेतन? उसका रूप पौद्गलिक है अथवा मानसिक? इन प्रश्नों का उत्तर यह प्रकट कर देगा कि विचारक विचारवादी है अथवा प्रकृतिवादी। विचारवादी प्रत्ययों को शाश्वत मानता है और उन सब प्रत्ययों का भी मूल किसी एक प्रत्यय को ही मानता है। यह मूल तत्व उसके अनुसार मानसिक है। यह तत्व चेतन है। इस पर आधारित शिक्षा-प्रणाली उस शिक्षा प्रणाली से भिन्न होगी जो पुद्गल को ही प्रथम कारण मानते हैं और साथ-साथ उसे स्वयं प्रेरक, परिवर्तनशील और प्रयोजनहीन मानते हैं। यह मूल तत्व पुद्गल है और प्रयोजनहीन है तो शिक्षा का उद्देश्य प्रयोजनशील नहीं हो सकता। केवल जीवित रहने के योग्य बनाना ही शिक्षा का लक्ष्य रहेगा।

एक प्रकृतिवादी विचारधारा यांत्रिक भौतिकवाद से मिलती है। भौतिकवादी के लिए पुद्गल मूल तत्व है, मनस् है मस्तिष्क उसकी क्रिया। पुद्गल ही मनस् का उद्गम है, न कि मनस् पुद्गल का प्रेरक। चेतना इस मस्तिष्क का उपफल है। भौतिकवादी संसार को एक यंत्र मानते हैं और उनके लिए जीवित प्राणी तो केवल अणु-परमाणु इत्यादि का जोड़ है। प्राकृतिक चुनाव के द्वारा उच्च प्रकार की चेतन-मशीनों की उत्पत्ति संभव है। अतः भौतिकवादियों के लिए मनुष्य एक यंत्र है। प्रयोजनहीन, लक्ष्यहीन और निर्माण की शक्ति से च्युत मनुष्य केवल एक यंत्र है और मनोविज्ञान के लिए व्यवहारवादी शाखा इस दर्शन की देन है। व्यवहारवादी मनोविज्ञान के अनुसार मनोविज्ञान मनुष्य के केवल बाह्य व्यवहार का अध्ययन करता है और जिन्हें हम मानसिक क्रियायें कहते है। वे केवल बाह्य उत्तेजन की प्रतिक्रिया मात्र हैं। आत्मा और परमात्मा की मान्यता इस विचारधारा के अनुसार नहीं के बराबर है। चार्वाक का मत भी इस विचारधारा से मिलता-जुलता सा ही है।

9.2 उद्देश्य (Objectives)

1. प्रकृतिवाद के बारे में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
2. प्रकृतिवाद व शिक्षा के संबंध में जान सकेंगे।
3. प्रकृतिवादी दर्शन के अर्थ का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
4. प्रकृतिवाद के दार्शनिक रूपों का अध्ययन कर सकेंगे।

5. प्रकृतिवाद के प्रमुख सिद्धान्तों के बारे में जान सकेंगे।

6. प्रकृतिवाद की प्रमुख विशेषताओं के बारे में जान सकेंगे।

9.3 प्रकृतिवाद और शिक्षा (Naturalism and Education)-

प्रकृतिवाद यह मानता है कि ‘‘वास्तविक संसार भौतिक संसार है’’ (Material word is the real word) इसी कारण हम प्रकृतिवाद को भौतिकवादी दर्शन भी कहते हैं। प्रकृतिवाद इस सृष्टि की रचना के लिए प्रकृति को ही उत्तरदायी मानता है। इसके अनुसार सभी दार्शनिक समस्याओं का प्रत्युत्तर प्रकृति में निहित होता है। (Nature alone Contain the final answer to all philosophical Problems)

दार्शनिक प्रकृति की व्याख्या सामान्यतया इस रूप में करते हैं कि प्रकृति सामान्य व स्वाभाविक रूप से विकसित होने वाली एक प्रक्रिया है। इस ब्रह्माण्ड की वह सभी वस्तुएं जिनकी रचना या निर्माण में मनुष्य का शून्य योगदान है, वही प्रकृति है। इसके साथ ही कुछ दार्शनिक विचारधारा मानती है कि प्रकृति वह है जो सर्वत्र तथा सर्वदा विद्यमान है और इसकी गतिविधियां निश्चित व प्राकृतिक नियमों द्वारा संचालित व नियंत्रित होती हैं। साथ ही इनका यह भी विचार है कि प्रकृति में अनेक पदार्थ होते हैं जिनके परस्पर सहयोग से विभिन्न प्रकार की रचनाएं जन्म लेती हैं। यह पदार्थ गतिशील व क्रियाशील होते हैं। इसी कारण प्रकृतिवाद, भौतिकवाद भी कहा जाता है। दर्शनशास्त्र में प्रकृति को ही सर्वोपरि सत्ता के रूप में स्वीकार किया जाता है परन्तु प्राकृतिक दार्शनिक विचारधारा बहुत ही व्यापक रूप में प्रकृति को स्वीकार करती है। एक ओर तो वह प्रकृति को भौतिक जगत के रूप में देखती है, जिसका हम प्रत्यक्ष दर्शन कर सकते हैं तो दूसरी ओर प्रकृति की व्याख्या जीव-जगत के रूप में भी की जाती है। साथ ही तीसरे अर्थ में देश-काल की सभी बातें भी प्रकृति में निहित होती हैं।

9.3.1 प्रकृतिवादी दर्शन का अर्थ (meaning of Naturalistic Philosophy)-

प्रो. सोर्ले के अनुसार प्रकृतिवाद को नकारात्मक रूप से भली-भांति समझाया जा सकता है। यह वह विचारधारा है जिसके अनुसार स्वाभाविक या निर्माण की शक्ति मनुष्य के शरीरर को नहीं दी जा सकती। प्रकृतिवादी विचारक बुद्धि का स्थान मानते हैं, पर कहते हैं कि उसका अर्थ केवल बाह्य परिस्थितियों तथा विचारों को काबू में लाना है जो उसकी शक्ति से बाहर जन्म लेते हैं। एक प्रकार से प्रकृतिवादी भी भौतिकवादियों की भांति आत्मा-परमात्मा, स्पष्ट प्रयोजन, इत्यादि की सत्ता में विश्वास नहीं करते। प्रकृतिवाद सभ्यता की जटिलता की प्रतिक्रिया के रूप में हमारे सम्मुख आया है। इसके मुख्य नारे ‘‘प्रकृति की ओर लौटो’’, ‘‘समाज के बंधनों को तोड़ो’’ इत्यादि हैं। सभ्यता का लचीलापन समाप्त होने पर यह वाद जन्म लेता है। पर प्रकृति का अर्थ क्या है ? सर जान एडम्स ने

कहा है कि यह शब्द बड़ा ही जटिल है। इसकी अस्पष्टता के कारण बहुत सी भूलें और अन्धकार का फैलाव होता है। इसका अर्थ तीन प्रकार से किया जा सकता है। प्रथम अर्थ में प्रकृति का तात्पर्य है निहित गुण और विशेषकर वे गुण जो जीवन के विकास और क्रमशः उन्नति की ओर ले जाने के लिए सहायक हों। यदि हम बालक को पढ़ाना चाहते हैं तो उसके विकास के नियम हमें ज्ञात होने चाहिए। प्रकृति का इस प्रकार अर्थ करने का गौरव रूसो को प्राप्त है। डॉ. हॉल जिसे बाल-केन्द्रित शिक्षा कहते हैं, उसे रूसो ने प्रेरणा दी थी, यद्यपि उससे पूर्व क्विन्टिलियन भी इसे जानता था। इस संदर्भ में हम कह सकते हैं कि प्रथम अर्थ में प्रकृति का तात्पर्य बहुत कुछ स्वभाव से लगाया जाता है।

प्रकृति का द्वितीय अर्थ है बनावट के ठीक विपरीत। जिस कार्य में मनुष्य ने सहयोग न दिया वही प्राकृतिक है। यह सत्य है कि मनुष्य प्रकृति में अपनी क्रियात्मकता से परिवर्तन लाया करता है। पर इसका अर्थ बनावट तो नहीं है। क्योंकि उक्त परिवर्तन अप्राकृतिक कैसे हो सकता है, जबकि मनुष्य स्वयं प्रकृति के कारण जीवित है और वह प्राकृतिक प्राणी है। बस इसका अर्थ यह है कि हम आदि काल की बात सोचने लगें। उस समय मनुष्य पशु था अथवा एक साधु अवस्था में, इसका निर्णय कठिन है। फिर एक चोर चोरी करने में क्या अपने स्वभाव का सहारा नहीं लेता ? फिर उसे सजा क्यों मिलती है ? क्या हमें बालक को मूल्य प्रवृत्ति या संवेगों की शिक्षा देनी है ? हम ठीक नहीं बता सकते। हमारा हृदय केवल उपयुक्त और हृष्ट-पुष्ट मनुष्यों को ही जीवित रहने में सहायता पहुंचाना नहीं है वरन् आधे से अधिक मनुष्यों को जीवित रखने के योग्य बनाना है और हम यहां प्रकृति को स्वाभाविक तथा बनावटी दोनों ही रूपों में लेते हैं।

प्रकृति का तृतीय अर्थ है समस्त विश्व तथा उसकी क्रिया और इस अर्थ में मनुष्य जो कुछ भी करता है वह प्राकृतिक है। शिक्षा में इसका अर्थ होगा विश्व की क्रिया का अध्ययन और उसे जीवन में उतार देना। इसका अर्थ हुआ कि एक सुस्त और कामचोर को भी इस प्रकार कहने का अवसर मिल सकता है कि वह बहुत से कीटाणुओं की भांति स्वाभाविक रूप से कार्य नहीं कर सकता। इस प्रकार हिंसक प्रवृत्ति का व्यक्ति अपनी हिंसात्मक कार्यवाहियों को भी प्राकृतिक कहने की धृष्टता कर सकेगा। कुछ विद्वानों का मत है कि मनुष्य को प्रकृति की विकासवादी श्रृंखला में बाधक नहीं बनना चाहिए वरन् उसे उस क्रिया से अलग ही रहना ठीक है। विकास किसी व्यक्तित्व के बिना नहीं हो सकता, व्यक्तित्व बिना प्रयोजन काम नहीं कर सकता। इसलिए हमें कुछ विद्वानों के अनुसार इस विकास के नियम का अध्ययन करना चाहिए तथा प्रकृति का अनुयायी हो जाना चाहिए। शिक्षा का उद्देश्य इस विकास को समझाना तथा इसका अनुयायी बनने में सहायता करना है। शिक्षा संभव हो सके, इसलिए हमें बहुत सी बनावटी बातों पर भी बल देना होगा। इस प्रकार हमने देखा कि प्रकृति के अर्थ का निर्णय कठिन है। फिर भी हम इस बात को जानते हैं कि हरबर्ट स्पेसर तथा रूसो को प्रकृतिवादी माना जाता है।

9.3.2 प्रकृतिवाद की परिभाषाएं (Definition of Naturalism) -

प्रकृतिवाद की परिभाषा को हम निम्न प्रकार समझ सकते हैं:-

जेम्स बार्ड- ''प्रकृतिवाद वह सिद्धान्त है, जो प्रकृति को ईश्वर से पृथक करता है, आत्मा को पदार्थ के अधीन करता है और अपरिवर्तनीय नियमों को सर्वोच्चता प्रदान करता है।''

थॉमस और लेंग के अनुसार- ''प्रकृतिवाद आदर्शवाद के विपरीत मन को पदार्थ के अधीन मानता है, और यह विश्वास करता है कि अंतिम वास्तविकता-भौतिक है, आध्यात्मिक नहीं।''

जायस के अनुसार- ''प्रकृतिवाद एक ऐसा दार्शनिक तंत्र है, जिसमें प्रभुत्व विशेषता के रूप में आध्यात्मिक, अन्त ज्ञानात्मक एवं पदार्थ जगत से परे की अनुभूतियों को बहिष्कृत किया जाता है।''

पैरी के अनुसार - ''प्रकृतिवाद, विज्ञान नहीं है, वरन् विज्ञान के बारे में दावा है। अधिक स्पष्ट रूप में यह इस बात का दावा है कि वैज्ञानिक ज्ञान अंतिम है, जिसमें विज्ञान से बाहर या दार्शनिक ज्ञान का कोई स्थान नहीं है।''

ब्राइस के अनुसार- ''प्रकृतिवाद एक प्रणाली है और जो कुछ आध्यात्मिक है, उसका बहिष्कार ही उसकी प्रमुख विशेषता है।''

रस्क के अनुसार- ''प्रकृतिवाद एक दार्शनिक स्थिति है जिसे वे लोग अपनाते हैं, जो दर्शन की व्याख्या वैज्ञानिक दृष्टिकोण से करते हैं।''

9.3.3 प्रकृतिवाद के दार्शनिक स्वरूप (Philosophy Form of Naturalism)

दार्शनिक सिद्धान्त की दृष्टि से प्रकृतिवाद के निम्नलिखित तीन रूप माने जाते हैं:-

(1) भौतिक जगत का प्रकृतिवाद (Naturalism of Physical Words) - यह सिद्धान्त मानव क्रियाओं व्यक्तिगत अनुभवों, संवेगों, अनुभूतियों आदि की भौतिक विज्ञान से व्याख्या करना चाहता है। यह भौतिक विज्ञान के द्वारा समस्त जगत की व्याख्या करना चाहता है। इसका शिक्षा के क्षेत्र पर विशेष प्रभाव नहीं है। इसने विज्ञान को ज्ञान में सबसे ऊंचे आसन पर बैठा दिया है। विज्ञान न केवल एक मात्र ज्ञान है बल्कि उसके अलावा कोई ज्ञान संभव नहीं है। इस प्रकार भाववाद के रूप में इस सिद्धान्त में दार्शनिक ज्ञान को भी व्यर्थ माना जाता है।

(2) यांत्रिक प्रकृतिवाद (Mechanical Naturalism) - इस सिद्धान्त के अनुसार समस्त जगत एक यंत्र के समान कार्य कर रहा है और वह यंत्र जड़तत्व का बना है जिसमें स्वयं उसको चलाने की शक्ति है। इस प्रकार प्रकृतिवाद का यह रूप जड़वाद है। जड़वाद के अनुसार जड़तत्व ही सब कुछ है और जो कुछ है वह जड़ है। व्यक्ति एक सक्रिय यंत्र से अधिक कुछ नहीं है। उसमें परिवेश के प्रभाव के

कारण कुछ सहज क्रियायें होती हैं। यंत्रवाद के प्रभाव से मनोविज्ञान में व्यवहारवादी सम्प्रदाय का जन्म हुआ जिसके अनुसार समस्त मानव-व्यवहार की व्याख्या उत्तेजना और अनुक्रिया के शब्दों में की जा सकती है। व्यवहारवादी जड़तत्व से अलग चेतना का कोई अस्तित्व नहीं मानते और चिन्तन, कल्पना, स्मृति आदि सभी मानसिक प्रक्रियाओं की व्याख्या शारीरिक शब्दों के द्वारा करते हैं। इनके अनुसार मनुष्य और पशु की क्रियाओं में कोई अन्तर नहीं है, इन दोनों की ही व्याख्या उत्तेजना-अनुक्रिया के शब्दों में की जा सकती है। इस प्रकार व्यवहारवाद समस्त मानव-व्यवहार की यांत्रिक प्रक्रिया के रूप में व्याख्या करता है। प्रकृतिवाद के इस रूप ने शिक्षा के क्षेत्र में व्यापक प्रभाव डाला है।

(3) जैवकीय प्रकृतिवाद (Biological naturalism) - प्रकृतिवाद के इस रूप ने शिक्षा के क्षेत्र में सबसे अधिक प्रभाव डाला है। इसी ने प्राकृतिक मानव का सिद्धान्त उपस्थित किया। विकासवाद पशु और मानव विकास को एक ही क्रम में मानता है। वह मनुष्य की आध्यात्मिक प्रकृति को नहीं मानता और उसकी प्रकृति को मानव पूर्वजो से मिला हुआ मानता है। इसलिए मनुष्य और पशु स्वभाव में बहुत कुछ समानता है। जैवकीय प्रकृतिवाद के अनुसार जगत में समस्त प्रक्रियाओं और समस्त प्रकृति की व्याख्या भौतिक अथवा यांत्रिक क्रियाओं के रूप में नहीं की जा सकती क्योंकि जीव जगत में विकास मुख्य घटना है। सभी प्राणियों में जीवन की प्रेरणा होती है और इसलिए जीवन का निम्न से उच्च स्तरों का विकास होता है। विकास के समस्त लक्षण मानव व्यक्ति के जीवन में देखे जा सकते हैं। वह क्या रूप लेगा और किस प्रकार वृद्धि करेगा यह सब विकास के सिद्धान्तों से निश्चित होता है। जबकि पशु-जगत में विकास की प्रक्रिया केवल भौतिक स्तर तक ही सीमित है। मानव-प्राणियों में वह सबसे अधिक मानसिक, नैतिक और आध्यात्मिक स्तरों पर ही बढ़ती है। केवल मानव व्यक्ति ही नहीं बल्कि मानव समूहों में भी विकास की प्रेरणा होती है और इसलिए वे विकसित होते हैं तथा उनमें विकास के वे ही नियम काम करते हैं जो व्यक्ति के विषय में लागू होते हैं। चार्ल्स डार्विन ने विकास की प्रक्रिया में अस्तित्व के लिए संघर्ष (Struggle for Existence) और उपयुक्ततम की विजय (Survival of the Fittest) के सिद्धान्तों को महत्वपूर्ण माना है। इसके अनुसार आत्म-संरक्षण (Self preservation) ही प्राकृतिक जगत में सबसे बड़ा नियम है।

अपनी उन्नति जानिए Check your Progress

प्र.1. पुदगल से क्या अभिप्राय है ?

प्र. 2. प्रकृति से आप क्या समझते हैं ?

प्र. 3. ''प्रकृतिवाद आदर्शवाद के विरूद्ध मन को पदार्थ के अधीन मानता है और यह विश्वास करता है कि अंतिम वास्तविकता भौतिक है, आध्यात्मिक नहीं।'' यह परिभाषा किस विद्वान की है ?

(अ) जेम्स वार्ड (ब) थॉमस और लैग (स) जायस (द) पैरी

प्र. 4. यांत्रिक प्रकृतिवाद से आप क्या समझते हैं ?

9.4 प्रकृतिवाद के प्रमुख सिद्धान्त (Principles of Naturalism)

प्रकृतिवाद के प्रमुख सिद्धान्त निम्नवत् हैं:-

1. इस सृष्टि का निर्माण वस्तु या तत्व से हुआ है। मानव भी वस्तु का ही एक रूप है।

2. प्रकृतिवाद में धर्म एवं ईश्वर का कोई स्थान नहीं है।

3. मस्तिष्क की क्रिया फल ही अनुभव है।

4. प्रकृतिवाद के अनुसार समाज व्यक्ति के लाभ के लिए है। अतः समाज का स्थान व्यक्ति के बाद आता है।

5. मानव की मूल प्रवृत्ति पशुओं के समान होती है।

6. प्रकृति अंतिम सत्ता या वास्तविकता है।

7. नैतिक मूलप्रवृत्ति, जन्मजात अन्तरात्मा, परलोक, वैयक्तिक अमरता, चमत्कार, ईश्वर-कृपा, प्रार्थना-शक्ति और इच्छा की स्वतंत्रता, भ्रम है।

8. मनुष्य के सांसारिक जीवन की भौतिक दशाएं विज्ञान की खोजों और मशीनों के आविष्कारों द्वारा बदल दी गई।

9. विकास की प्रक्रिया में मस्तिष्क एक घटना है। यह उच्चकोटि के जीवों में अधिक विकसित नाड़ी मण्डल का समूह है।

10. हर वस्तु का जन्म प्रकृति के ही सान्निध्य में होता है और मृत्युपरांत प्रकृति (पंचतत्व) में ही विलीन हो जाता है।

11. ज्ञान और सत्य का आधार-इन्द्रियों का अनुभव है।

12. प्रकृति के नियम अपरिवर्तनीय हैं। अपरिवर्तनीय प्राकृतिक नियम सब घटनाओं को भली प्रकार स्पष्ट करते हैं।

13. वास्तविकता की व्याख्या केवल प्राकृतिक विज्ञानों द्वारा की जा सकती है।

14. मस्तिष्क मानव की शक्ति एवं क्रिया का स्रोत है।

9.4.1 प्रकृतिवाद व शिक्षा के उद्देश्य Naturalism and aims of Education

प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री रूसो (Rousseau) ने कहा कि शिक्षा का उद्देश्य मानव को प्रकृति के अनुकूल जीवन व्यतीत करने हेतु योग्य बनाना है। शिक्षा के द्वारा हम मानव में कुछ नया उत्पन्न नहीं करते वरन् मानव की मौलिकता को बनाये रखने का प्रयास करते हैं और मानव संसर्ग के फलस्वरूप उसमें जो कृत्रिमता आ जाती है, उसका विनाश करने का प्रयास करते हैं। रूसो ने कहा कि ''रोजमर्रा के व्यवहार को (समाज-सम्मत व्यवहार को) बदल डालो और सदा सर्वदा तुम्हारा कृत्य सही होगा।'' रूसो ने हर स्थान पर सामाजिक संस्थाओं की अवहेलना की है। वह कहता है कि ''मानवीय संस्थाएं मूर्खता तथा विरोधाभास के समूह हैं।'' परन्तु वह प्रकृति को ईश्वरीय सृष्टि मानता है और मनुष्यको ईश्वरीय कृति।

जैवकीय प्रकृतिवाद के अनुसार शिक्षा के तीन प्रमुख उद्देश्य माने जाते हैं:-

1 व्यक्ति को इस योग्य बनाना जिससे कि वह इस जगत में अपने आपको जिन्दा रख सके, जीवन के संघर्षो का मुकाबला कर सके तथा सफलता प्राप्त करने हेतु प्रयास कर सके।

2 शिक्षा का उद्देश्य है व्यक्ति को उसके वातावरण के साथ सामंजस्य स्थापित करने की योग्यता प्रदान करना।

3.बर्नार्ड शॉ के अनुसार, ''शिक्षा का उद्देश्य एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक जातीय संस्कृति का संरक्षण, हस्तान्तरण व वृद्धि होना चाहिए। यह उद्देश्य आदर्शवादी उद्देश्य के निकट है।''

संक्षेप में, प्रकृतिवाद के अनुसार हम शिक्षा के निम्न उद्देश्य बता सकते हैं -

1. शिक्षा द्वारा बालक को प्राकृत जीवन व्यतीत करने हेतु तैयार करना।

2. बालक की प्राकृतिक शक्तियों का विकास करना।

3. बालक को इस प्रकार का ज्ञान व दक्षता प्रदान करना जिससे कि वह अपने पर्यावरण के साथ समायोजित हो सके।

4 मानव में उचित तथा उपयोगी सहज क्रियाओं को उत्पन्न करना अर्थात् मनुष्य में शिक्षा द्वारा ऐसी आदतोंएवं शक्तियों का विकास करना जो मशीन के पुर्जे की भांति अवसरानुकूल प्रयुक्त की जा सकें।

5. बालक को जीवन संघर्षो के योग्य बनाना।

6. जातीय निष्पत्तियों का संरक्षण करना व विकास करना।

7. बालक का आत्मसंरक्षण व आत्मसंतोष की प्राप्ति।

8. मूल प्रवृत्तियों का शोधन एवं मार्गान्तरीकरण।

9. बालके के व्यक्तित्व का स्वतंत्र विकास।

9.4.2 प्रकृतिवाद व पाठ्यक्रम Naturalism of Curriculum-

प्रकृतिवाद के शिक्षा के उद्देश्य के संबंध में स्पेन्सर ने पांच उद्देश्यों की चर्चा की है। वह प्रकृतिवाद के पाठ्यक्रम को भी इन उद्देश्यों की पूर्ति का एक साधन मानते हुए कहते हैं:- वास्तव में यदि देखा जाए तो प्रकृतिवादी पाठ्यक्रम का संगठन अपने ही ढंग से करते हैं और मानते हैं कि बालक की प्रकृति, नैसर्गिक रूचि, योग्यता, अनुभव व स्वाभाविक क्रियाओं के आधार पर ही पाठ्यक्रम का संगठन होना चाहिए और पाठ्यक्रम में वह विषय रखे जाने चाहिए जो बालक के विकास की विभिन्न अवस्थाओं के अनुरूप हों। पाठ्यक्रम निर्माण के सिद्धान्तों के संबंध में प्रकृतिवादी विचारधारा इस प्रकार हैः-

1. पाठ्यक्रम निर्माण का आधार बालक हो।
2. पाठ्यक्रम में विज्ञान विषयों को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाये।
3. पाठ्यक्रम व्यावहारिक व जीवनोपयोगी हो।
4. पाठ्यक्रम अनुभव-केन्द्रित हो।

9.4.3 प्रकृतिवाद व शिक्षण विधियां Naturalism and method of Teaching

प्रकृतिवाद शिक्षण विधियों के परम्परागत प्रारूप की आलोचना करता है और इस विचार को मान्यता देता है कि शिक्षण विधियों में भी नित्य नवीन परिवर्तन होने चाहिए। रूसो Rousseau) ने कहा है कि अपने शिक्षार्थी को कोई भी शाब्दिक पाठ न पढ़ाओ वरन् उसे अनुभव द्वारा सीखने के अवसर दो। (Give your scholar no verbal lesson, he should be taught by experience alone) प्रकृतिवाद का केन्द्र बिन्दु छात्र है। इस कारण वह यह मानते हैं कि जिन विधियों के द्वारा छात्रों को पढ़ाया जाये, वह निम्न तीन सिद्धान्तों पर आधारित हों:-

1. विकास या उन्नति का सिद्धान्त (Principal of growth)
2. छात्र क्रिया का सिद्धान्त (Principal of pupil Activity)
3. वैयक्तिकता का सिद्धान्त (Principal of Individualization

स्पेन्सर (Spencer) महोदय ने प्रकृतिवादी शिक्षण विधियों की चर्चा की है, जो इस प्रकार है -

1. प्रकृति के अनुरूप शिक्षा (Education according to Nature) शिक्षा बालक के लिए संचालित की जाने वाली एक प्रक्रिया है जिसका उद्देश्य बालक का स्वाभाविक रूप से विकास करना है। अतः शिक्षा के द्वारा बालक की नैसर्गिक वृद्धि होनी चाहिए और शिक्षण प्रक्रिया व बालक के अनुभवों के बीच सामंजस्य स्थापित किया जाना चाहिए।

2. शिक्षा आनन्द प्रदायनी Education for Enjoyment : हम शिक्षण की जो विधि अपनाएं, उसका उद्देश्य बालक में शिक्षण के प्रति रूचि जागृत करना होना चाहिए। चूंकि जब तक बालक किसी चीज में रूचि नहीं लेगा, तब तक वह शारीरिक व मानसिक रूप से किसी भी बात को सीखने हेतु तत्पर नहीं होगा। इसी कारण प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक थार्नडाइक ने कहा था कि शिक्षण विधि में अभिप्रेरणा सिद्धान्त, प्रभाव का नियम तथा तत्परता का नियम (Law of Effect) को समाहित किया जाना चाहिए।

3. स्वचालित आत्म-क्रिया (Spontaneous self-activity): स्पेन्सर का विचार था कि बालक किन्ही अन्य के प्रयासों द्वारा नहीं सीखता, अपितु वह स्वयं अपनी आत्म-क्रिया सीखता है और स्वयं के प्रयासों द्वारा अर्जित ज्ञान ही वास्तविक व चिरस्थाई होता है।

4. शिक्षा में शारीरिक व मानसिक विकास का संतुलन (Balance in Physical and mental development) : शिक्षण विधियां इस विचार को ध्यान में रखते हुए अपनाई जानी चाहिए कि शिक्षा को बालक के व्यक्तित्व के दो प्रमुख पक्षों (मानसिक व शारीरिक) का समान रूप से विकास करना है। किसी की भी उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए।

5. नकारात्मक शिक्षा (Negative Education) - नकारात्मक शिक्षा से आशय है कि शिक्षा हमें सत्यता व पुण्य का पाठ नहीं पढ़ाये वरन् हमें असत्यता व पाप से दूर रहना सिखाए। अर्थात् नकारात्मक शिक्षा गुण आरोपित नहीं करती वरन् अवगुणों से बचाती है। यह वह मार्ग प्रशस्त करती है जो व्यक्ति को अवगुणों से परे रखता है।

6. शिक्षण विधि आगमनात्मक हो (Teaching Method should be Inductive) - इस संदर्भ में प्रकृतिवाद ने जिस विधि को जन्म दिया, उसे ह्यूरिस्टिक विधि (Heuristic Method) के नाम से जाना जाता है। बालक को प्रत्यक्ष रूप से सीखने के अवसर मिलने चाहिए, जिसमें छात्र को एक अन्वेषक या आविष्कारक की भूमिका अदा करनी होती है। इसी को आगमन विधि कहते हैं।

9.5 प्रकृतिवाद की प्रमुख विशेषताएं (Chief Characteristics of Nature)

1. प्रकृति ही वास्तविकता है (Nature is Ultimate Reality) - प्रकृतिवाद प्रकृति को अंतिम सत्ता मानता है और मानव प्रकृति पर अधिक बल देता है। यह इस बात पर विश्वास करता है कि

वास्तविकता व प्रकृति (Reality and Nature) में कोई अन्तर नहीं है। अर्थात् जो वास्तविक है, वह प्रकृति है या जो प्रकृति है, वह वास्तविक है। हॉकिंग (Hocking) के शब्दों में- ''प्रकृतिवाद इस बात को अस्वीकार करता है कि प्रकृति से परे, प्रकृति के पीछे या प्रकृति के अलावा कोई चीज अपना अस्तित्व रखती है, चाहे वह सांसारिक परिधि में हो या आध्यात्मिक परिधि में।'' (Naturalism denies existence of anything nature, behind nature such as the supernatural of other worldy)

2. मन व शरीरर में कोई अंतर नहीं है (No distinction between mind and body) - प्रकृतिवादी विचारधारा मन व शरीरर में कोई अंतर नहीं करती। वह यह मानती है कि मानव पदार्थ है, चाहे उसका मन हो या शरीरर, दोनों ही इस पदार्थ का परिणाम हैं।

3. वैज्ञानिक ज्ञान पर बल (Emphasis on Scientific knowledge) - प्रकृतिवाद यह भी मानता है कि वैज्ञानिक ज्ञान ही उचित ज्ञान होता है और हमारा प्रयास यह होना चाहिए कि हम इस वैज्ञानिक ज्ञान को जीवन से जोड़ सकें।

4. वैज्ञानिक विधि द्वारा ज्ञान प्राप्ति पर बल (Emphasis on acquiring knowledge through scientific method) - प्रकृतिवाद के अन्तर्गत आगमन (Inductive) विधि द्वारा ज्ञानार्जन की चर्चा की गई है, साथ ही वह इस बात की भी चर्चा करते हैं कि ज्ञान-प्राप्ति का सर्वोचित तरीका निरीक्षण विधि है।

5. ज्ञान-प्राप्ति हेतु इन्द्रियों की आवश्यकता (Need of sense for Acquiring Knowledge) - प्रकृतिवाद यह भी मानता है कि मानव इस जगत पर जो भी ज्ञान प्राप्त करता है, उसका माध्यम इन्द्रियां होती हैं। बिना इन्द्रिय सहयोग के मानव ज्ञानार्जन नहीं कर सकता।

6. प्रकृति ही वास्तविक सत्ता ;(Nature as a big Power) - प्रकृतिवादी विचार यह भी मानता है कि इस संसार में सर्वोच्च शक्ति प्रकृति के हाथों में ही निहित रहती है और प्रकृति के नियम अपरिवर्तनशील हैं।

7. मानव प्रकृति का ही अंग है (Man is a Segment of Nature)- प्रकृतिवादी समाज के अस्तित्व के प्रति कोई आस्था नहीं रखते। इस कारण मनुष्य को समाज का अंग नहीं मानते। उनका विचार है कि मनुष्य प्रकृति का ही अभिन्न अंग होता है।

8. मूल्य प्रकृति में ही निहित है (Value Lie in Nature) - मूल्य का निर्धारण आदर्शवादी के अनुसार समाज द्वारा होता है। जबकि प्रकृतिवादी यह मानते हैं कि मूल्य प्रकृति में ही विद्यमान रहते हैं और यदि मानव मूल्यों की प्राप्ति चाहता है तो उसे प्रकृति से घनिष्ठ संबंध स्थापित करना होगा।

9. आत्मा और परमात्मा का कोई महत्व नहीं (No Importance of Soul and God) - प्रकृतिवाद किसी आध्यात्मिक शक्ति में या आत्मा में विश्वास नहीं रखते। वह मानते हैं कि मानव की रचना प्रकृति के द्वारा हुई है और मनुष्य के शरीर का नाश होते ही उसका चेतन तत्व भी समाप्त हो जाता है।

10. भौतिक सुख की प्राप्ति (To achieve Material Prosperity) - प्रकृतिवाद मानव जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य भौतिक सम्पन्नता की प्राप्ति मानता है। इस कारण मानव परिस्थितियों को अपने अनुकूल ढालता है। वह मानव को इस संसार का श्रेष्ठतम पदार्थ मानता है जो बुद्धि, तर्क व चिन्तन के कारण अन्य पशुओं से सर्वोपरि है।

11. वैयक्तिक स्वतंत्रता पर बल (Emphasis on Scientific Knowledge) - प्रकृतिवाद यह भी मानता कि व्यक्ति दुःखी इस कारण है चूंकि वह प्रकृति से दूर होता जा रहा है। व्यक्ति को इतनी स्वतंत्रता मिलनी चाहिए कि वह प्रकृति से समीपता स्थापित कर सके।

9.5.1 शिक्षा में प्रकृतिवाद की देन (Contribution of naturalism in education)

1. बालक का प्रमुख स्थान प्रकृतिवाद की विशेषता है। आज हमें इस बात पर आश्चर्य नहीं होता किन्तु 19वीं शताब्दी के अन्त तक लोग बालक को प्रौढ़ का छोटा रूप मानते थे, उसका अलग व्यक्तित्व मानने को तैयार न थे। 'बाल केन्द्रित शिक्षा' प्रकृतिवाद की देन है।

2. बाल-मनोविज्ञान के अध्ययन की प्रेरणा भी इसी विचारधारा ने दी। बालक को पढ़ाने के लिए उसके मनोविज्ञान को जाने की आवश्यकता की पूर्ति हेतु मनोविज्ञान के क्षेत्र में खोज प्रारम्भ हुईं मनोविज्ञान ने बताया कि बालक विकास काल में विभिन्न स्थितियों से होकर गुजरता है। यही नही मनोविज्ञान की एक विशेष शाखा-मस्तिष्क विश्लेषण को तो विशेष प्रोत्साहन मिला। बालक को व्यर्थ ही दबाना नहीं चाहिए। लिंग-भेद की ओर इस मनोविज्ञान की विशेष देन है। इसके प्रति इसने एक स्वस्थ विचारधारा को जन्म दिया।

3. शिक्षा की विधि में प्रकृतिवाद ने शब्दों की अपेक्षा अनुभवों पर बल दिया। केवल शब्द शिक्षा के लिए आवश्यक गुण नहीं है, अनुभव भी आवश्यक हैं। इसलिए अब भूगोल तथा इतिहास के पाठ केवल कक्षा की चाहरदीवारी के अन्दर न पढाकर परिभ्रमण एवं शिक्षा-यात्राओं के माध्यम से पढाये जाते हैं।

4. शिक्षा में खेल की प्रमुखता इस विचारधारा की ही देन है। इससे पूर्व खेल व्यर्थ की चीज समझा जाता था। प्रकृतिवाद ने खेल को स्वाभाविक तथा आवश्यक सिद्ध किया।

5. 'प्रकृति की ओर लौटो' इस विचारधारा का नारा है। इसका कथन है 'सभ्यता की जटिलता से दूर प्रकृति की शान्तिमयी गोद की ओर चलो।' इस प्रवृत्ति ने प्रकृति-प्रेम में वृद्धि की।

6.केवल पुस्तकीय ज्ञान को हटाकर अनुभव तथा ज्ञान को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया।

अन्त में यह कह देना आवश्यक होगा कि इंग्लैण्ड में नील के स्कूल में तथा डोरा रसेल के स्कूल में इस प्रक्रियावादी विचारधारा पर आधारित, स्वतंत्रता तथा सरलता के वातावरण में, मूल प्रवृत्ति के आधार पर, स्वयंचालित शिक्षा दी जाती थी। इन स्कूलों में भेद न होने के कारण तथा स्वस्थ विचारधाराओं के कारण चरित्र संबंधी शिकायत कभी नहीं चलती थी। यहां शिक्षा भी खेल के ऊपर आधारित थी। पुस्तकीय ज्ञान का महत्व कम है। अतः डोरा रसेल के विद्यालय में इस पर अधिक बल नहीं था। पर, यह कहना भ्रामक न होगा कि केवल प्रकृतिवाद ही बालक की रूचि पर बल देने वाली विचारधारा नहीं है। आदर्शवाद भी बालक के महत्व को कम न करेगा। कहना न होगा कि यदि प्रकृति को आदर्शवाद का संबल मिल जाये तो पाशविक एवं आध्यात्मिक दोनों अवस्थाओं से मनुष्य का उचित संबंध स्थापित हो जाएगा।

अपनी उन्नति जानिए (Check Your Progress)

प्र.1. ‘‘मन व शरीर में कोई अन्तर नहीं है।’’ ;(No distinction between mind and body) विचारधारा है-

(अ) आदर्शवाद (ब) प्रयोज्यवाद (स) अस्तित्ववाद (द) प्रकृतिवाद

प्र.2. ‘‘वैज्ञानिक ज्ञान ही उचित ज्ञान होता है। हम इस वैज्ञानिक ज्ञान को जीवन से जोड़ सकें।’’ यह विचारधारा है-

(अ) आदर्शवाद (ब) प्रकृतिवाद (स) प्रयोजनवाद (द) अस्तित्ववाद

प्र.3. ‘‘इस संसार में सर्वोच्च शक्ति प्रकृति के हाथों में निहित है और प्रकृति के नियम अपरिवर्तनशील हैं’’। यह विचारधारा है-

(अ) आदर्शवाद (ब) प्रकृतिवाद (स) अस्तित्ववाद (द) प्रयोजनवाद

प्र. 4. किसने शिक्षा की विधि में शब्दों की अपेक्षा अनुभवों पर बल दिया है ?

(अ) प्रकृतिवाद (ब) प्रयोजनवाद (स) आदर्शवाद (द) अस्तित्ववाद

प्र.5. ‘‘सभ्यता की जटिलता से दूर प्रकृति की शान्तिमयी गोद की ओर चलो’’। यह विचारधारा है-

(अ) अस्तित्ववाद (ब) प्रकृतिवाद (स) प्रयोजनवाद (द) आदर्शवाद

9.6 सारांश (Summary)

शिक्षा के क्षेत्र में प्रकृतिवाद का प्रभाव दो रूपों में दिखलाई पड़ता है- एक तो दर्शन के रूप में उसने शिक्षा के लक्ष्यों और उद्देश्यों को निश्चित किया है। दूसरे उसने मानव प्रकृति की व्याख्या करके शिक्षण विधियों और शिक्षा के साधनों की व्याख्या की है। शिक्षा के क्षेत्र में प्रकृतिवाद न तो भौतिक जगत का प्रकृतिवाद है, न यांत्रिक प्रकृतिवाद और न जैवकीय प्रकृतिवाद। इन तीनों से भिन्न वह एक नमनीय व्याख्या है जो कि शिक्षा को बालक के संपूर्ण अनुभव पर आधारित करना चाहती है और किताबी ज्ञान के विरूद्ध अर्थात् प्रकृतिवाद के बनाए हुए शिक्षा के चित्र में बालक सबसे आगे होता है। शिक्षक, विद्यालय, पुस्तकें, पाठ्यक्रम आदि सब पृष्ठभूमि में होते हैं। सर जॉन एडम्स ने इस प्रवृत्ति को बाल केन्द्रित अभिवृत्ति (Paidocentric attitude) कहा है। प्रकृतिवादियों के अनुसार बालक पर पूर्ण आयोजित शिक्षा लादी नहीं जानी चाहिए। चाहे वह कितनी भी वैज्ञानिक क्यों न हो। शिक्षा में बालक को स्वतंत्र चुनाव का अवसर देना चाहिए। वह क्या पढ़ेगा, किस तरह व्यवहार करेगा, किस तरह खेलेगा-कूदेगा, कैसे बैठेगा आदि बातें उसकी इच्छा पर छोड़ देनी चाहिए। साथ ही शिक्षा का स्थान शासक का नहीं बल्कि मित्र और साथी का है। शिक्षक का कार्य उसे सामग्री जुटाना, अवसर उत्पन्न करना, आदर्श परिवेश का निर्माण करना है। जिससे बालकों का सर्वांगीण विकास हो सके। प्रकृतिवादी शिक्षा-प्रणालियांे के विषय में खेल प्रणाली पर जोर देता है तथा पाठ्यक्रम बहुमुखी और व्यापक हो, इसमें समाजशास्त्रीय, मनोवैज्ञानिक तथा वैज्ञानिक प्रवृत्ति के अतिरिक्त शिक्षा के लक्ष्यों और पाठ्यक्रम की ओर समाहारक प्रवृत्ति दिखलाई पड़ती है। लगभग बहुमुखी पाठ्यक्रमों और पाठ्यक्रमोत्तर कार्यक्रमों का महत्व स्वीकार किया गया है।

9.7 कठिन शब्द (Difficult Words)

1. भौतिक जगत का प्रकृतिवाद- यह सिद्धान्त मानव-क्रियाओं, व्यक्तिगत अनुभवों, संवेगों, अनुभूतियों आदि की भौतिक विज्ञान से व्याख्या करना चाहता है। यह भौतिक विज्ञान के द्वारा समस्त जगत की व्याख्या करना चाहता है।

2. स्वचालित आत्म-क्रिया (Spontaneous Self-activity) - स्पेन्सर का विचार है कि बालक किन्हीं अन्य के प्रयासों द्वारा नहीं सीखता, अपितु वह स्वयं अपनी आत्म-क्रिया से सीखता है और स्वयं के प्रयासों द्वारा अर्जित ज्ञान ही वास्तविक व चिरस्थाई होता है।

3. प्रकृतिवाद की ओर लौटो- प्रकृतिवादी चाहते हैं कि सभ्यता की जटिलता से दूर प्रकृति की शान्तिमयी गोद की ओर चलो ताकि बालक का नैसर्गिक विकास हो सके।

4. यांत्रिक प्रकृतिवाद- इस सिद्धान्त के अनुसार समस्त जगत एक यंत्र के समान कार्य कर रहा है। व्यक्ति एक सक्रिययंत्र से अधिक कुछ नहीं है। उसमें परिवेश के प्रभाव के कारण कुछ सहज क्रिया होती है। यंत्रवाद के प्रभाव से मनोविज्ञान में व्यवहारवादी सम्प्रदाय का जन्म हुआ।

9.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer of Practice Question)

भाग-1

उत्तर-1 भौतिकवाद के लिए पुदगल मूल तत्व है, मनस् है मस्तिष्क $ उसकी क्रिया। पुदगल ही मनस का उद्गम है, न कि मनस पुदगल का प्रेरक। चेतना इस मस्तिष्क का उपफल है। भौतिकवादी संसार को एक यंत्र मानते हैं और उनके लिए जीवित प्राणी तो केवल अणु-परमाणु इत्यादि का जोड़ है।

उत्तर-2 प्रकृति से हमारा अभिप्राय समस्त विश्व तथा उसकी क्रिया और इस अर्थ में मनुष्य जो कुछ भी करता है, वह प्राकृतिक है। शिक्षा में इस का अर्थ होगा विश्व की क्रिया का अध्ययन और उसे जीवन में उतार देना।

उत्तर-3 (ब) थॉमस और लैग

उत्तर-4 यांत्रिक प्रकृतिवाद (Mechanical Naturalism) समस्त जगत एक यंत्र के समान कार्य कर रहा है और वह यंत्र जड़तत्व का बना है, जिसमें स्वयं उसको चलाने की शक्ति है। इस प्रकार प्रकृतिवाद का यह रूप जड़वाद है। व्यक्ति एक सक्रिय यंत्र से अधिक कुछ नहीं है। उसमें परिवेश के प्रभाव के कारण कुछ सहज क्रियाएं होती हैं।

भाग-2

उत्तर-1 (i) प्रकृतिवाद के अनुसार समाज व्यक्ति के लाभ के लिए है। अतः समाज का स्थान व्यक्ति के बाद आता है।

(ii) प्रकृति के नियम अपरिवर्तनीय हैं। अपरिवर्तनीय प्राकृतिक नियम सब घटनाओं को भली प्रकार स्पष्ट करते हैं।

उत्तर-2 (A) रूसो

उत्तर-3 (i) शिक्षा द्वारा बालक को प्राकृत जीवन व्यतीत करने हेतु तैयार करना।

(ii) बालकों को इस प्रकार का ज्ञान व दक्षता प्रदान करना जिससे कि वह अपने पर्यावरण के साथ समायोजित हो सके।

उत्तर-4 प्रकृतिवाद की दो शिक्षण विधियां हैं:-

(i) प्रकृति के अनुरूप शिक्षा (Education According to Nature)

(ii) शिक्षा आनन्द प्रदायनी (Education is for Enjoyment)

उत्तर-5 प्रकृतिवाद में नियमानुसार शामिल हैं, जैसे-शरीर विज्ञान, रोजगार हेतु गणित, सामाजिक अध्ययन के सभी विषय, साहित्य, संगीत, ललितकला, मनोविज्ञान आदि।

भाग-3

उत्तर- 1 (D)
3 (D)
4 (A)
5 (B)

9.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (References)

1. पाण्डे, (डॉ) रा. श. *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*. आगरा: अग्रवाल प्रकाशन.

2. सक्सेना, (डॉ) सरोज. *शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार*. आगरा: साहित्य प्रकाशन.

3. मित्तल, एम.एल. (2008). *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*. मेरठ: इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस.

4. शर्मा, रा. ना. व शर्मा, रा. कु. (2006). *शैक्षिक समाजशास्त्र*. नई दिल्ली: एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स.

5. सलैक्स, (डॉ) शी. मै. (2008). *शिक्षक के सामाजिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्षय*. नई दिल्ली: रजत प्रकाशन.

6. गुप्त, रा. बा. (1996). *भारतीय शिक्षा शास्त्र*. आगरा: रतन प्रकाशन मंदिर.

9.10 उपयोगी सहायक ग्रन्थ (Useful Books)

1. पाण्डे, (डॉ) रा. श. *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*. आगरा: अग्रवाल प्रकाशन.

2. सक्सेना, (डॉ) सरोज. *शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार*. आगरा: साहित्य प्रकाशन.

3. मित्तल, एम.एल. (2008). *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*. मेरठ: इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस.

4. शर्मा, रा. ना. व शर्मा, रा. कु. (2006). *शैक्षिक समाजशास्त्र*. नई दिल्ली: एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स.

5. सलैक्स, (डॉ) शी. मै. (2008). *शिक्षक के सामाजिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्षय*. नई दिल्ली: रजत प्रकाशन.

6. गुप्त, रा. बा. (1996). *भारतीय शिक्षा शास्त्र*. आगरा: रतन प्रकाशन मंदिर.

9.11 दीर्घ उत्तर वाले प्रश्न (Long answer type Question)

प्र.-1 प्रकृतिवाद के अनुसार शिक्षा के उद्देश्यों और पाठ्यक्रम के स्वरूप की व्याख्या कीजिए।

प्र-2 प्रकृतिवादी शिक्षा के उद्देश्यों का वर्णन कीजिए।

प्र-3 प्रकृतिवाद का क्या अर्थ है? शिक्षा के सिद्धान्त को इसने किस प्रकार प्रभावित किया है ?

प्र-4 प्रकृतिवादी दर्शन की प्रमुख विशेषताएं क्या हैं ? व्याख्या कीजिए।

प्र-5 प्रकृतिवादी शैक्षिक उद्देश्यों का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।

प्र-6 प्रकृतिवाद के विविध रूप कौन-कौन से हैं?

इकाई 10 : आदर्शवाद (Idealism)

10.1 प्रस्तावना Introduction
10.2 उद्देश्य Objectives
भाग-एक
10.3 आदर्शवाद और शिक्षा Idealism and Education
10.3.1 आदर्शवाद का अर्थ Meaning of Idealism
10.3.2 आदर्शवाद की परिभाषाएं Definition of Idealism
10.3.3 जीवन दर्शन के रूप में आदर्शवाद Idealism as a philosophy of life
अपनी उन्नति जानिए Check your Progress
भाग-दो
10.4 शिक्षा के उद्देश्य Aims of Education
10.4.1 आदर्शवाद व शिक्षा के उद्देश्य Idealism and Aims of Education
10.4.2 आदर्शवाद और पाठ्यक्रम Idealism and Teacher
10.4.3 शिक्षण पद्धतियां Teaching method
अपनी उन्नति जानिए Check your Progress
भाग-तीन
10.5 आदर्शवाद व शिक्षक Idealism and Teacher
10.5.1 आदर्शवाद एवं बालक Idealism and Child
10.5.2 आदर्शवाद का मूल्यांकन Evolution of Idealism
अपनी उन्नति जानिए Check your Progress
10.6 सारांश Summary
10.7 कठिन शब्द difficult Words
10.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर Answer of Practice Question
10.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची References
10.10 उपयोगी सहायक ग्रन्थ Useful books
10.11 दीर्घ उत्तर वाले प्रश्न Long Answer Type Questions

10.1 प्रस्तावना (Introduction)

मानव सभ्यता के उदभव और विकास के समय से ही आदर्शवादी विचारधारा का किसी न किसी रूप में अस्तित्व रहा है। आधुनिक काल में जब मानव ने चिन्तन एवं मनन आरम्भ किया तब से आदर्शवादी विचारधारा निरन्तर पुष्पित एवं पल्लवित होती है। आदर्शवादी विचारधारा जीवन की निश्चितताओं से जुड़ी हुई है। इसका आशय है-जीवन के लिए निश्चित आदर्शो व मूल्यों का निर्धारण कर मनुष्य को उनके अनुकरण हेतु निर्देशित करना। यह विचारधारा भौतिक वस्तुओं की अपेक्षा विचारों पर अधिक बल देती है। आदर्शवादी दर्शन का प्रतिपादन सुकरात, प्लेटो, डेकॉर्टो, स्पनोसा, वर्कलकान्ट, फिटशे, रोलिग, हीगल, ग्रीन जेन्टाइल आदि अनेक पाश्चात्य तथा वेदों व उपनिषदों के प्रणेता महर्षियों से लेकर अरविन्द घोष तक अनेक पूर्वी दार्शनिकों ने किया है।

10.2 उद्देश्य (Objectives)

i आदर्शवाद का ज्ञान प्राप्त करा सकेंगे।

ii आदर्शवाद का अर्थ, परिभाषाएं व जीवन दर्शन के रूप में आदर्शवाद को समझ सकेंगे।

iii आदर्शवाद व शिक्षा के उद्देश्यों को जान सकेंगे।

iv आदर्शवाद में पाठ्यक्रम व शिक्षण पद्धति का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

v आदर्शवाद में शिक्षक व बालक के गुणों को समझ सकेंगे।

भाग-एक

10.3 आदर्शवाद और शिक्षा (Idealism and Education)

आदर्शवाद दार्शनिक जगत में प्राचीनतम विचारधाराओं में से है। एडम्स के शब्दों में ‘‘आदर्शवाद एक अथवा दूसरे रूप में दर्शन के समस्त इतिहास में व्याप्त है। आदर्शवाद का उदगम स्वयं मानव प्रकृति में है। आध्यात्म शास्त्रीय दृष्टि से आध्यात्मवाद है। अर्थात् इसके अनुसार विश्व में परम सद्वस्तु की प्रकृति आध्यात्मिक है। समस्त विश्व आत्मा या मनस से अवस्थित है। प्रमाण शास्त्र की दृष्टि से आदर्शवाद प्रत्यवाद है। अर्थात् इसके अनुसार विचार ही सत्य है। यह प्रत्यवाद प्राचीन यूनानी दार्शनिक प्लेटो के विचारों में मिलता है। जिसके अनुसार विचारों का जगत वस्तुजगत से कहीं अधिक यथार्थ है। मूल्यात्मक दृष्टि से इस दर्शन को आदर्शवाद कहा जाता है।

आदर्शवाद के दर्शन को संक्षेप में उपस्थित करते हुए जी.टी. डब्ल्यू पैट्रिक ने लिखा है, ''आदर्शवादी यह मानने से इन्कार करते हैं कि जगत् एक विशाल यंत्र है। वे हमारे जगत् की व्याख्या में जड़तत्व, यंत्रवाद और ऊर्जा के संरक्षण को सर्वोच्च महत्व से इन्कार करते हैं। वे अनुभव करते हैं कि किसी न किसी प्रकार से कुछ विज्ञान जैसे मनोविज्ञान, तर्कशास्त्र, नीतिशास्त्र, सौन्दर्यशास्त्र आदि का आधारभूत और अंतरंग चीजों से संबंध है कि वे प्रकृति के रहस्यों को समझने के लिए वैसी ही कुंजी है जैसे कि भौतिकशास्त्र और रसायनशास्त्र है। वे यह विश्वास करते हैं कि जगत का एक अर्थ है एक प्रयोजन है। शायद एक लक्ष्य है। अर्थात् जगत के ह्दय और मानव की आत्मा में एक प्रकार का आन्तरिक समन्वय है, जिसमें कि मानवबुद्धि प्रकृति के बाहरी आवरण को छेद सकती है। आदर्शवाद की इस व्याख्या में जड़वाद के विरूद्ध आदर्शवाद के लक्षण बतलाए गये हैं।

कोई भी दार्शनिक सिद्धान्त दो प्रकार से समझा जा सकता है- एक तो उन सिद्धान्तों को समझकर, जिनका कि वह प्रतिपादन करता है और दूसरे उन बातों को जानकर जिनका कि वह निराकरण करता है। क्योंकि प्रत्येक दर्शन कुछ सिद्धान्तों के समर्थन और कुछ बातों के निराकरण पर आधारित होता है। इस दृष्टि से आदर्शवाद की स्थिति की व्याख्या करते हुए डब्लू.ई. हाकिग ने लिखा है कि आदर्शवाद के अनुसार प्रकृति आत्मनिर्भर नहीं है। वह स्वतंत्र दिखलाई पड़ती है। किन्तु वास्तव में वह मनस् पर आधारित है। दूसरी ओर मनस् आत्मा या प्रत्यय ही वास्तविक सद्वस्तु है।

10.3.1 आदर्शवाद का अर्थ Meaning of Idealism

आदर्शवाद, जिसे हम अंग्रेजी में (Idealism) कहते हैं, दो शब्दों से मिलकर बना है- Ideal+ism लेकिन कुछ विचारक यह मानते हैं कि इसमें दो शब्द हैं - Ideal+ism इसमें स् सुविधा के लिए जोड़ दिया गया है। वास्तव में यदि देखा जाये तो इसे Idea या विचार से ही उत्पन्न होना माना जाना चाहिए। चूंकि इसके प्रवर्तक दार्शनिक विचार की चिरन्तन सत्ता में विश्वास करते हैं, इस कारण इसे विचारधारा का प्रत्ययवाद की संज्ञा दी जाती है। परन्तु प्रचलन में हम आदर्शवाद का प्रयोग ही करते हैं। यह दर्शन वस्तु की अपेक्षा विचारों, भावों तथा आदर्शो को महत्व देते हुए यह स्वीकार करता है कि जीवन का लक्ष्य आध्यात्मिक मूल्यों की प्राप्ति तथा आत्मा का विकास है। इसी कारण यह आध्यात्मिक जगत को उत्कृष्ट मानता है और उसे ही सत्य व यथार्थ के रूप में स्वीकार करता है।

10.3.2 आदर्शवाद की परिभाषाएं Definition of Idealism

रास (Ross) . ''आदर्शवादियों के अनेक रूप हैं, किन्तु सबका सार यह है कि मन या आत्मा ही इस जगत का पदार्थ है और मानसिक स्वरूप सत्य है।'' (Idealism Philosophy takes many and varied from, but the postulate underlying all is that mind or sprit is essential word stuff that the true reality is of a Mental character)

ब्रूवेकर (Brubacher) ‘‘आदर्शवादियों के अनुसार- इस जगत को समझने के लिए मन केन्द्रीय बिन्दु है। इस जगत को समझने हेतु मन की क्रियाशीलता से बढ़कर उनके लिए अन्य कोई वास्तविकता नहीं है।’’ (The Idealism point out that It is mind that is central in understanding the world . To them nothing gives greater sense of reality then the activity of mind lugged in typing to comprehended its words.

हैण्डरसन (Handerson) ‘‘आदर्शवाद मनुष्य के आध्यात्मिक पक्ष पर बल देता है, क्योंकि आदर्शवादियों के लिए आध्यात्मिक मूल्य जीवन के तथा मनुष्य के सर्वाधिक महत्वपूर्ण पहलू हैं। एक तत्वज्ञानी आदर्शवादी का विश्वास है कि मनुष्य का सीमित मन असीमित मन से पैदा होता है। व्यक्ति और जगत दोनों बुद्धि की अभिव्यक्ति हैं और भौतिक जगत की व्याख्या मन से की जा सकती है।’’

डी.एम.दत्ता (D.M.datta) ‘‘आदर्शवाद वह सिद्धान्त है जो अन्तिम सत्ता आध्यात्मिकता को मानता है।’’

राजन के अनुसार . ‘‘आदर्शवादियों का विश्वास है कि ब्रह्माण्ड की अपनी बुद्धि एवं इच्छा है और सब भौतिक वस्तुओं कों उनके पीछे विद्यमान मन द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।’’

10.3.3 जीवन दर्शन के रूप में आदर्शवाद (Idealism of Philosophy of life)

आदर्शवाद जीवन की एक प्राचीन विचारधारा है। आज भी इस बात का पर्याप्त सम्मान है। जीवन दर्शन के रूप में इसने विश्व के उच्च कोटि के दार्शनिकों को आकृष्ट किया है। सुकरात, प्लेटो, कान्ट आदि दार्शनिक आदर्शवादी थे। संक्षेप में आदर्शवाद के मूल सिद्धान्त निम्न हैं:-

1. आदर्शवाद के अनुसार पदार्थ अन्तिम सत्य नहीं है। पदार्थ का प्रत्यय वास्तविक है, पदार्थ का भौतिक रूप असत्य है।

2. भौतिक सृष्टि सत्व का आभासमात्र है। इस सृष्टि के पीछे कोई मानसिक सत्य है जो सृष्टि के प्रकाशन का आधार है। सृष्टि वस्तुतः तार्किक एवं मानसिक ही है। इसका बाह्य रूप तो कल्पनाजन्य है।

3. जो अन्तिम सत्य है वही वास्तविक शिव है। अन्य भौतिक पदार्थो में भद्र अथवा शिव को देखना भ्रम है। जो सत्य है और शिव है, वही वास्तव में सुन्दर भी है। संसार के भौतिक पदार्थो में सुन्दरता का आभास मात्र है। अतः उनमें आसक्ति व्यर्थ है। ‘सत्यम् शिवम् सुन्दरम्’ की यह व्याख्या आदर्शवाद की आत्मा है।

4. भौतिक जगत नश्वर है, परिवर्तनशील है। सत्य को स्थायी एवं अपरिवर्तनशील होना चाहिए। अतः सत्य विचारात्मक एवं मानसिक है क्योंकि विचार एवं प्रत्यय में स्थायित्व होता है।

5. इस आधार पर शरीर नश्वर है, अतः असत्य है, आत्मा अनश्वर सत्य है।

6. मानव जीवन का लक्ष्य इसी अनश्वर, अजर, अमर एवं अपरिवर्तनशील आत्मा की प्राप्ति है।

7. आदर्शवाद विकास में विश्वास करता है, किन्तु उसका विकासवाद प्रकृतिवादी विकासवाद से भिन्न है। आदर्शवाद के अनुसार विकास का अन्तिम लक्ष्य आत्मा की प्राप्ति ही है न कि निचले स्तर से ऊंचे स्तर के प्राणी में विकास करना।

8. मन और पदार्थ भिन्न हैं। मन पर नैतिकता एवं आदर्शो का प्रभाव पड़ता है, पदार्थ पर नहीं। मन चेतन है, पदार्थ जड़। जड़ से चेतनता का उदय नहीं हो सकता।

9. इन्द्रियों की अपेक्षा मस्तिष्क अधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि विचारात्मक सत्य का ज्ञान इन्द्रियों से संभव नहीं।

10. अंतिम सत्य का ज्ञान ही वास्तविक ज्ञान है, शेष तो अज्ञान अथवा ज्ञानाभास है। यह ज्ञान तर्कजन्य है, चिन्तन एवं मनन तथा अंतदृष्टि का परिणाम है। यह इन्द्रियों का विषय नहीं है।

11. इस प्रकार विज्ञान द्वारा प्राप्त ज्ञान अपूर्ण है। वास्तविक ज्ञान तो व्यक्ति के अपने प्रयासों का परिणाम है।

12. आदर्शवाद धार्मिकता एवं नैतिकता का समर्थन करता है।

13. प्रकृति अपने आप में अपूर्ण है। वह स्वयं किसी सत्य पर आश्रित है। अतः प्रकृति का ज्ञान सम्पूर्ण ज्ञान नहीं। भारतीय सांख्य-दर्शन प्रकृति एवं पुरूष में मौलिक भेद करता है।

14. आदर्शवाद अनेकता में एकता का दर्शन करता है। सत्य मानसिक है। सृष्टि के अनेक रूपों में उस एक चरम सत्य को देखना ही अनेकता में एकता का दर्शन करना है।

इस प्रकार हम देख रहे हैं कि आदर्शवाद सृष्टि के आध्यात्मिक पहलू पर अधिक बल देता है। प्राकृतिक वातावरण की अपेक्षा आध्यात्मिक वातावरण अधिक महत्वपूर्ण है। आदर्शवाद व्यक्ति एवं सृष्टि पर इसी दृष्टिकोण को महत्वपूर्ण बताता है।

अपनी उन्नति जानिए Check your Progress

प्र.1 निम्न परिभाषा किस विद्वान की है ?

''आदर्शवाद एक अथवा दूसरे रूप में दर्शन के समस्त इतिहास में व्याप्त है।''

(अ) एडम्स (ब) जी.टी. डब्ल्यू पैट्रिक (स) डब्ल्यू.ई. हाकिग (द) हटसन

प्र.2 आदर्शवाद का दूसरा नाम है-

(अ) आत्मवाद (ब) विचारधारा का प्रत्यवाद (स) प्रकृतिवाद (द) प्रमाण-शास्त्र

प्र.3 शरीर नश्वर है अतः असत्य है, आत्मा अनश्वर अतः असत्य है। यह विचारधारा है-

(अ) प्रकृतिवाद (ब) प्रयोजनवाद (स) अस्तित्ववाद (द) आदर्शवाद

प्र.4 प्रकृति अपने आप में अपूर्ण है। वह स्वयं किसी सत्य पर आश्रित है। अतः प्रकृति का ज्ञान सम्पूर्ण ज्ञान नहीं है। यह विचारधारा है-

(अ) प्रकृतिवादी (ब) आदर्शवादी (स) प्रयोजनवादी (द) अस्तित्ववादी

प्र.5 निम्न में कौन विचारक आदर्शवादी थे ?

(अ) सुकरात (ब) लॉक (स) गैलीलियो (द) हांकिग

भाग-दो

10.4 शिक्षा के उद्देश्य (Objectives of Education)

आदर्शवादी दार्शनिकों के मतानुसार मानव के जीवन का लक्ष्य, मोक्ष की प्राप्ति, आध्यात्मिक विकास और साक्षात्मक करना या उसे जानना है। इस कार्य के लिए मानव को चार चरणों पर सफलता प्राप्त करनी होती है। प्रथम चरण पर उसे अपने प्राकृतिक 'स्व' का विकास करना होता है। इसके अंतर्गत मनुष्य का शारीरिक विकास आता है। दूसरे चरण पर उसे अपने सामाजिक 'स्व' का विकास करना होता है। इसके अंतर्गत सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक, चारित्रिक एवं नागरिकता का विकास आता है। तीसरे चरण पर उसे अपने मानसिक 'स्व' का विकास करना होता है। इसके अंतर्गत मानसिक, बौद्धिक एवं विवेक शक्ति का विकास करना होता है। और चौथे तथा अंतिम चरण पर उसे अपने आध्यात्मिक 'स्व' का विकास करना होता है। इसके अंतर्गत आध्यात्मिक चेतना का विकास आता है। आदर्शवादी इन्हीं सबको शिक्षा के उद्देश्य निश्चित करते हैं।

10.4.1 आदर्शवाद व शिक्षा के उद्देश्य (Idealism and Objectives of Education)

I आत्मनुभूति का विकास (Development of self –realization) - आदर्शवादी विचारधारा यह मानती है कि प्रकृति से परे यदि कोई चेतन सत्ता के अनुरूप है तो वह है 'मनुष्य'। इस कारण

विश्व व्याप्त चेतन सत्ता की अनुभूति मनुष्य तब तक नहीं कर सकता जब तक उसके अंदर व्याप्त चैतन्यता का विकास न हो। इस कारण शिक्षा का सर्वोच्च कार्य यह है कि वह मनुष्य को इतना सक्षम बनाये कि वह अपने वास्तविक स्वरूप को पहचाने व उसकी अनुभूति कर सके। इस आत्मानुभूति के प्रमुख रूप से चार सोपान होते हैं:-

4. आध्यात्मिक ‘स्व’ (spiritual self)
3. बौद्धिक ‘स्व’ Intellectual self
2. सामाजिक ‘स्व’ (Social self)
1. शारीरिक व जैविकीय (Physical Self)

शारीरिक ‘स्व’ आत्मानुभूति का निम्नतम सोपान है, जिसे प्रकृतिवादी आत्माभिव्यक्ति (Self expression) संज्ञा देते हैं। सामाजिक ‘स्व’ को अर्थ क्रियावादी महत्व देता है, इसमें व्यक्ति सामाजिक हित की परिकल्पना करता है व सामाजिक कल्याण हेतु व्यक्तिगत स्वार्थो का परित्याग कर देता है। बौद्धिक अनुभूति के स्तर पर व्यक्ति विवेक द्वारा ‘स्व’ की अनुभूति करता है व सामाजिक नैतिकता से ऊपर उठकर सद्-असद् में भेद कर सकता है और उसका आचरण चिन्तन तथा विश्वास विवेकपूर्ण हो जाता है। आध्यात्मिक ‘स्व’ स्वानुभूति का सर्वोच्च स्तर है जहां व्यक्ति गुणों को अपने व्यक्तित्व में अंगीकृत सहज प्रक्रिया द्वारा ही कर लेता है व अपने अंदर विश्वात्मा का तादाम्य करने लगता है। इस विश्वात्मा को हम तीन रूपों में अभिव्यक्त करते हैं:- सत्य, शिव व सुन्दर। आदर्शवादी जब आत्मानुभूति के लिए शिक्षा देने की बात करते हैं तो उनका एक ही लक्ष्य होता है, ‘‘अपने आपको पहचानो’’ (To Know Thyself)

Ii आध्यात्मिक मूल्यों का विकास (Development of Spiritual Values) - आदर्शवादी विचारधारा भौतिक जगत की अपेक्षाकृत आध्यात्मिक जगत को महत्वपूर्ण मानती है। अतः शिक्षा के उद्देश्यों में भी बालक के आध्यात्मिक विकास को महत्व देते हैं। यह मनुष्य को एक नैतिक प्राणी के रूप में अवलोकित करते हैं व शिक्षा का उद्देश्य चरित्र निर्माण को मानते हैं। वह ‘सत्यं शिवं सुन्दरं’ के मूल्यों का विकास करते हुए इस बात की भी चर्चा करते हैं कि शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य बालक में आध्यात्मिक दृष्टि से विकास करना है।

Iii बालक के व्यक्तित्व का उन्नयन (To Exalt Child’s Personality) - बोगोस्लोवस्की के अनुसार-‘‘ हमारा उद्देश्य छात्रों को इस योग्य बनाना है कि वे सम्पन्न तथा सारयुक्त जीवन बीता सकें , सर्वागीण तथा रंगीन व्यक्तित्व का निर्माण कर सकें, सुखी रहने के उल्लास का उपभोग कर सकें।

यदि तकलीफ आये तो गरिमा एवं लाभ के साथ उनका सामना कर सकें तथा इस उच्च जीवन को जीने में दूसरे लोगों की सहायता कर सकें''।

व्यक्तित्व के उन्नयन की चर्चा करते हुए प्लेटो व रॉस भी यह मानते हैं कि शिक्षा के द्वारा मानव व्यक्तित्व को पूर्णता प्राप्त की जानी चाहिए और साथ ही उसके व्यक्तित्व का उन्नयन होना चाहिए।

Iv अनेकता में एकता के दर्शन (To Establish Unity in Diversity) - आदर्शवाद इस विचारधारा का समर्थन करते हुए इस बात पर बल देता है कि शिक्षा का उद्देश्य बालक को इस दृष्टि से समर्थ बनाना होना चाहिए कि वह संसार में विद्यमान भिन्न-भिन्न बातों को एकता के सूत्र में बांध सके अर्थात् बालक के अंदर यह समझ उत्पन्न करनी चाहिए कि वह इस संसार के ि संचालन करने वाली एक परम सत्ता है जो ईश्वर के नाम से जानी जाती है और यह ईश्वर की सत्ता जगत के सभी प्राणियों का संचालन करती है। इस ईश्वरीय सत्ता की अनुभूति कराना ही शिक्षा का लक्ष्य होना चाहिए। इसकी अनुभूति होने पर ही व्यक्ति इस संसार के साथ तादात्म्य स्थापित कर सकता है व व्यक्तित्व को पूर्णता प्रदान कर सकता है।

V सभ्यता एवं संस्कृति का विकास Development of Culture and Civilization -

आदर्शवाद यह मानता है कि व्यक्ति जिस समाज का सदस्य है, उस समाज की संस्कृति से उसका परिचय होना परम आवश्यक है। साथ ही बालक यदि समाज को जीवित रखना चाहता है तो उसे समाज की धरोहर के रूप में जो सभ्यता व संस्कृति प्राप्त होती है, उसकी भी रक्षा करनी चाहिए। सभ्यता व संस्कृति तो वह आधार प्रस्तुत करती है जिसके द्वारा समाज का विकास संभव होता है। आदर्शवाद व्यक्ति की अपेक्षा समाज को महत्व देता है। इसी कारण वह शिक्षा का उद्देश्य सभ्यता व संस्कृति का विकास करना मानते हैं। रस्क का विचार है कि ''सांस्कृतिक वातावरण मानव का स्वरचित वातावरण है अथवा यह मनुष्य की सृजनात्मक क्रिया का परिणाम है जिसकी रक्षा व विकास करना शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिए।'' (Culture Environment is an environment of man's creative activity. The aim of idealistic education is the preservation as well as environment of Culture. (Rusk) |

vi वस्तु की अपेक्षा विचारों का महत्व (Idea are Important than Objective) - आदर्शवाद यह मानता है कि इस संसार में पदार्थ नाशवान है व विचार अमर। विचार सत्य, वास्तविक व अपरिवर्तनशील है। विचार ही मनुष्य को ज्ञान प्रदान करने का माध्यम है। यह संसार मनुष्य के विचारों में ही निहित होता है। वह यह मानते हैं कि यह जगत यंत्रवत् नहीं है। चूंकि इस जगत में विद्यमान वस्तुओं का जन्म मानसिक प्रक्रियाओं के फलस्वरूप ही होता है। इनका विचार है

कि ''यह विश्व विचार के समान है, यंत्रवत् नही। (Universe is like a thought than a machine)

vii जड़ प्रकृति की अपेक्षा मनुष्य का महत्व (Man is Important then Nature) -

आदर्शवादी मनुष्य का स्थान ईश्वर से थोड़ा ही नीचा मानते हैं। (Man is little lower than angels) इनका विचार है कि मनुष्य इतना सक्षम होता है कि वह आध्यात्मिक जगत का अनुभव कर सके व ईश्वर से अपना तादात्म्य स्थापित कर सके या उसकी अनुभूति कर सके। इस कारण वह जड़ प्रकृति से बहुत महत्वपूर्ण है। वह यह भी मानते हैं कि मनुष्य बुद्धिपूर्ण व विवेकपूर्ण प्राणी है और बुद्धि ही मनुष्य के विभिन्न प्रकार के क्रिया-कलापों का आधार बनती है, जिससे मानव अपने आपको पशुवत् गुणों से ऊंचा उठा लेता है।

viii समाज हित का उद्देश्य (Aims of the Welfare of the Society) - आदर्शवाद जब शिक्षा के उद्देश्यों की चर्चा करता है तो व्यक्तित्व के विकास पर बल देता है और व्यक्तित्व विकास में सामाजिक हित अन्तर्निहित होता है। जब आदर्शवाद आत्मानुभूति में व्यष्टि या स्वार्थपरता निहित न होकर समष्टि या परमार्थ भाव निहित होता है। प्रसिद्ध आदर्शवादी दार्शनिक हॉकिंग (Hocking) जब शिक्षा के उद्देश्यों की चर्चा करता है तो वह शिक्षा के दो उद्देश्य बताता है-

1. सम्प्रेषण (Communication)
2. विकास के लिए प्रावधान (Development of the Society)

सम्प्रेषण में वह यह मानता है कि शिक्षा का मुख्य उद्देश्य है कि वह समाज की संस्कृति को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक स्थानान्तरित करें, सिर्फ संस्कृति का सम्प्रेषण मात्र करना ही शिक्षा का उद्देश्य नहीं है। चूँकि सम्प्रेषण कर देने से संस्कृति अवरूद्ध हो जायेगी। अतः शिक्षा द्वारा प्रत्येक पीढ़ी को इस बात के लिए तैयार किया जाना चाहिए कि वह उस संस्कृति में विकास कर सके। इसके लिए यह आवश्यक है कि शिक्षा उचित सामाजिक वातावरण तैयार करे जो समाज के विकास में सहयोग दे। हॉर्न (Horn) इन दोनों पक्षों (व्यक्तिगत व सामाजिक) के मध्य संश्लेषण करते हुए कहता है, ''शिक्षा द्वारा बालक की संस्कृति का ज्ञान व उसमें विकास करना आना चाहिए, साथ ही उसमें सामाजिक कुशलता व नागरिकता का विकास भी होना चाहिए।''

आदर्शवादी विचारधारा ने मुख्यतया शिक्षा के उद्देश्यों की चर्चा की है, परन्तु इन्होंने शिक्षा के अन्य पक्षों पर भी थोड़ा प्रकाश डाला है, उनकी उपेक्षा नहीं की है। अब हम इस बात की चर्चा करेंगे कि आदर्शवाद ने पाठ्यक्रम, पाठन विधि, शिक्षक, अनुशासन आदि के संबंध में क्या विचार दिये हैं।

10.4.2 आदर्शवाद और पाठ्यक्रम (Idealism and Curriculum)

अब प्रश्न उठता है कि उपर्युक्त उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए पाठ्यक्रम किस प्रकार का होना चाहिए? छात्र जिस प्रकार के वातावरण में जन्म लेता है उसी प्रकार के वातावरण में रहने का आदी हो जाता है। यह निश्चित है कि हम पाठ्यक्रम की योजना बनाते समय इस वातावरण की उपेक्षा नहीं कर सकते। संभव है कि हम पाठ्यक्रम में ऐसी सूचनाओं एवं क्रियाओं को भी स्थान दें जिन्हें हम पूर्णतः सत्य नहीं मानते। आदर्शवाद भौतिक जगत को अंतिम सत्य नहीं मानता किन्तु सत्य का आभास तो मानता ही है। सत्य को इसी भौतिक जगत में रहकर एवं भौतिक वातावरण के सहयोग से ही आदर्शवाद चरम सत्य को प्राप्त करने का परामर्श देता है। मनुष्य का आध्यात्मिक वातावरण अधिक महत्वपूर्ण होता है किन्तु प्राकृतिक वातावरण की उपेक्षा नहीं की जा सकती। व्यक्ति शरीर और मन का संयोग है जिसमें मन अधिक महत्वपूर्ण है। किन्तु यदि शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति न की गयी तो मानसिक क्रिया भी दुःसाध्य हो जायेगी। व्यक्ति आत्मानुभूति की ओर तभी आगे बढ़ सकता है जबकि उसने शारीरिक आवश्यकताओं को वश में कर लिया हो। अतः भौतिक जगत की जानकारी भी आवश्यक है। छात्र को प्राकृतिक वातावरण का ज्ञान होना चाहिए। इसके साथ ही आध्यात्मिक वातावरण पर विशेष दृष्टि होनी चाहिए। आध्यात्मिक वातावरण में व्यक्ति के बौद्धिक, सौन्दर्यानुभूति संबंधी, नैतिक एवं धार्मिक सभी क्रिया-कलाप आते हैं। उसका ज्ञान, कला, नीति तथा धर्म इसी आध्यात्मिक वातावरण के अंतर्गत हैं। समाज की प्राकृतिक एवं आध्यात्मिक दोनों प्रकार की आवश्यकताएं हैं। प्राकृतिक वातावरण से मानव समाज प्रभावित होता रहता है। उसने कला, धर्म एवं नीति आदि का विकास करके आध्यात्मिक वातावरण का सृजन किया है। समाज अपने ज्ञान को स्थायी बनाना चाहता है कि उसके भावी सदस्य प्राकृतिक विषयों एवं आध्यात्मिक विषयों का ज्ञान प्राप्त करें। वह यह नहीं चाहता कि समाज में एक प्रकार के ही व्यक्ति हों। अतः समाज एवं व्यक्ति दोनों की दृष्टि से ही पाठ्यक्रम में प्राकृतिक एवं आध्यात्मिक वातावरण के ज्ञान का समावेश होना चाहिए। व्यक्ति आत्मानुभूति भी तभी कर सकता है जब दोनों प्रकार की आवश्यकता की पूर्ति में सचेष्ट हो।

इस दृष्टि से आदर्शवाद शारीरिक प्रशिक्षण की उपेक्षा नहीं कर सकता। शारीरिक शिक्षा भी उसके पाठ्यक्रम में होगी। प्राकृतिक वातावरण की जानकारी प्राकृतिक विज्ञानों से होती है, अतः भौतिकी, रसायनिकी, भूमिति, भूगोल, खगोल, भूगर्भ विज्ञान, वनस्पतिशास्त्र, जीव-विज्ञान आदि विषयों को आदर्शवाद तिलांजलि नहीं देता। आध्यात्मिक विकास के लिए कला, साहित्य, नीतिशास्त्र, दर्शन, धर्म, मनोविज्ञान, संगीत आदि विषय अधिक महत्वपूर्ण हैं। इन विषयों के अध्ययन से मानव की आत्मा का विकास होता है। यदि इन विषयों का अध्ययन न किया जाये तो व्यक्ति प्राकृतिक वातावरण तक ही सीमित रह जायेगा।

10.4.3 शिक्षण पद्धतियां (Teaching Method)

I स्वाध्याय विधि - आदर्शवादी दार्शनिक प्राचीन साहित्य का आदर करते हैं। वे मानते हैं कि हमारे प्राचीन साहित्य में हमारे पूर्वजों द्वारा खोजा हुआ ज्ञान भरा पड़ा है, हमें उससे लाभ उठाना चाहिए। प्राचीन साहित्य के अध्ययन के लिए वे स्वाध्याय विधि के पक्षधर हैं। पर इस विधि का प्रयोग शिक्षा के उच्च स्तर पर ही किया जा सकता है।

Ii आगमन एवं निगमन विधि - प्रसिद्ध दार्शनिक अरस्तू इन विधियों द्वारा शिक्षा दिये जाने पर बल देते हैं। आगमन विधि में सामान्य से विशिष्ट की ओर चला जाता है और निगमन विधि में विशिष्ट से सामान्य की ओर चला जाता है। पहले वे उदाहरण प्रस्तुत कर सामान्यीकरण करते थे और फिर इस प्रकार प्राप्त सिद्धान्त का प्रयोग करते थे।

iii प्रश्नोत्तर एवं संवाद विधि - प्रश्नोत्तर एवं संवाद पद्धति के जनक प्रख्यात दार्शनिक सुकरात थे। संदर्भ विषयों की व्याख्या करके और तदुपरान्त पूछे गये प्रश्नों का उत्तर देकर सुकरात तत्कालीन समय में विद्यार्थियों को शिक्षा प्रदान किया करते थे। वे किसी स्थान पर युवकों को एकत्रित कर उनके सामने प्रश्न प्रस्तुत करते थे, युवक उन प्रश्नों पर विचार करते थे, उत्तर देते थे, तब वे उन प्रश्नों के संदर्भ में अपना मत स्पष्ट करते थे। प्लेटो ने प्रश्नोत्तर विधि के आधार पर संवाद विधि का विकास किया। प्लेटो ने अपनी अधिकतर रचनाएं भी संवादों के रूप में लिखी हैं। प्लेटो के संवाद विश्वविख्यात हैं।

इसके अतिरिक्त आधुनिक आदर्शवादी दार्शनिकों ने तर्क विधि, खेल विधि, अनुदेशन विधि एवं आवृत्ति विधि का विकास किया है।

iv अनुकरण विधि - आदर्शवादी दार्शनिकों के अनुसार बालक अनुकरण द्वारा भी सीखता है। अतः शिक्षकों, बालकों के सामने अपने उच्च आचरण प्रस्तुत करने चाहिए। शिक्षकों से यह अपेक्षा करते हैं कि वे बच्चों के सम्मुख लेख, चित्रकला व संगीत आदि के उत्कृष्ट नमूने प्रस्तुत करें, जिनका अनुकरण कर वे इनको सीखें। वे शिक्षकों से यह भी अपेक्षा रखते हैं कि वे छात्रों में अच्छे से अच्छा कर दिखाने की प्रेरणा व स्पर्धा उत्पन्न करें। उस स्थिति में अनुकरण विधि द्वारा शिक्षण अति लाभकारी होता है। बच्चों के मूल्यों के विकास और उनके चरित्र निर्माण के लिए वे बच्चों के सामने धर्मग्रन्थों और साहित्य के धीरोदात्त नायकों के चरित्र प्रस्तुत करने पर बल देते हैं। आदर्शवादियों का विश्वास है कि मनुष्य की प्रकृति अच्छे बुरे में भेद करने की होती है, वे इन धीरोदात्त नायकों के गुणों का अनुकरण कर अच्छे मनुष्य बन सकेंगे।

अपनी उन्नति जानिए (Check your Progress0

प्र.1 आदर्शवादियों के अनुसार मानव को मोक्ष प्राप्त करने के लिए कितने चरणों (सोपान) पर सफलता प्राप्त करनी होती है?

(अ) पांच चरण (ब) चार चरण (स) तीन चरण (द) दो चरण

प्र.2 ''अपने आपको पहचानो'' (To Know Thyself) यह विचारधारा है-

(अ) प्रकृतिवाद (ब) अस्तित्ववाद (स) आदर्शवाद (द) प्रयोजनवाद

प्र.3 ''संसार में पदार्थ नाशवान हैं, विचार अमर, विचार सत्य, वास्तविक व अपरिवर्तनशील हैं'' यह विचारधारा है-

(अ) आदर्शवाद (ब) प्रकृतिवाद (स) प्रयोजनवाद (द) अस्तित्ववाद

प्र.4 ''सृष्टि की आत्मा चरम सत्य है, वही शिव है, वही सुन्दर है'', यह कथन है-

(अ) प्रकृतिवादी (ब) प्रयोजनवादी (स) अस्तित्ववादी (द) आदर्शवादी

प्र.5 तर्क विधि, खेल विधि, अनुदेशन विधि एवं आवृत्ति विधि का विकास किया है-

(अ) प्रकृतिवादी (ब) प्रयोजनवादी (स) आदर्शवादी (द) अस्तित्ववादी

भाग-तीन

10.5 आदर्शवाद व शिक्षक (Idealism and Teacher)

जेण्टील (Gentile) का कथन है कि ''अध्यापक सही चरित्र का आध्यात्मिक प्रतीक है'' (Teacher is Spiritual Symbol of right Conduct) I आदर्शवादी विचारक शिक्षक को उस अनुपम स्थिति में रखते हैं जिसमें शिक्षण प्रक्रिया का कोई अन्य अंश नहीं रखा जा सकता। आदर्शवादी दार्शनिक शिक्षक में जिन गुणों की परिकल्पना करते हैं, उनकी चर्चा बटलर ने इस प्रकार की है-

1. शिक्षक बालक के लिए सत्ता का साकार रूप होता है।
2. अध्यापक को छात्रों की व्यक्तिगत, सामाजिक व आर्थिक विशेषताओं का ज्ञाता होना चाहिए।
3. शिक्षक को अध्यापन कला का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए व उसमें व्यावसायिक कुशलता होनी चाहिए।

4. अध्यापक का व्यक्तित्व प्रभावशाली होना चाहिए जिससे वह छात्रों को अपनी ओर आकर्षित कर सके।

5. अध्यापक एक दार्शनिक, मित्र व पथ-प्रदर्शक के रूप में होना चाहिए।

6. अध्यापक का व्यक्तित्व अच्छे गुणों से परिपूर्ण होना चाहिए जिससे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में वह छात्रों को सद्गुणों के ढांचे में ढाल सके।

7. छात्रों के व्यक्तित्व को पूर्णता प्रदान करना अध्यापक के जीवन का परम लक्ष्य होना चाहिए।

8. शिक्षक को अपने विषय का पूर्ण एवं सही ज्ञान होना चाहिए।

9. अध्यापक में स्व-अध्ययन का गुण होना चाहिए जिससे वह निरन्तर नवीन ज्ञान की ओर उन्मुख हो सके।

10. अध्यापक को प्रजातंत्र की सुरक्षा रखने का प्रयास करना चाहिए।

प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री फॉबेल ने कहा है कि बालक एक पौधे के समान है और अध्यापक एक माली के सदृश, जो पौधे को आवश्यकतानुसार सींचकर, खाद आदि डालकर तथा काट-छांटकर सुव्यवस्थित रूप में पनपाता है, जिससे वह एक सुन्दर और मनमोहक वृक्ष बन सके। शिक्षक के महत्व के संबंध में रॉस ने भी कहा है-‘‘प्रकृतिवादी तो जंगली गुलाब से संतुष्ट हो सकता है, किन्तु आदर्शवादी तो एक सुन्दर व सुविकसित गुलाब की परिकल्पना करता है।’’ यह दार्शनिक विचारधारा यह मानकर चलती है कि बालक के विकास हेतु उपर्युक्त सामाजिक वातावरण एवं शिक्षक का सही मार्गदर्शन आवश्यक है।

10.5.1 आदर्शवाद एवं बालक (Idealism and Child)

आदर्शवाद में बालक को शिक्षण प्रक्रिया का मुख्य बिन्दु नहीं माना जाता। उनके अनुसार शिक्षण प्रक्रिया में भावों, विचारों व आदर्शो का महत्वपूर्ण स्थान है और इनको प्रदान करने के माध्यम के रूप में वह अध्यापक को महत्वपूर्ण स्थान देते हैं व बालक को गौण। वह छात्रों को एक आध्यात्मिक प्राणी मानते हैं व यह स्वीकार करते हैं कि आध्यात्मिक सत्ता भी होती है। वे मन को शरीर से अधिक महत्व देते हैं। हॉर्न ने इस संबंध में कहा है, ‘‘विद्यार्थी एक परिमित व्यक्ति है किन्तु उचित शिक्षा मिलने पर वह परम पुरूष के रूप में विकसित होता है। उसकी मूल उत्पत्ति दैविक है, स्वतंत्रता उसका स्वभाव है और अमरत्व की प्राप्ति उसका लक्ष्य है।’’

10.5.2 आदर्शवाद का मूल्यांकन (Evaluation of Idealism)

गुण (Merits)

1. बालक के व्यक्तित्व के पूर्ण विकास पर बल देना।
2. बालक में आत्मानुभूति की क्षमता उत्पन्न करना।
3. सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् को शिक्षा का आधार मानना।
4. शिक्षा के उद्देश्यों पर विस्तृत रूप में विचार करना।
5. शिक्षण प्रक्रिया में अध्यापक को महत्वपूर्ण स्थान देना।
6. आत्मानुशासन व आत्म-नियंत्रण पर बल देना।
7. शिक्षण विधियों को उद्देश्यों के अनुरूप बनाने की बात करना।

अवगुण (Demerits)

1. बालक के मनोवैज्ञानिक प्रारूप या विशेषताओं की उपेक्षा करना।
2. अध्यापक को आवश्यकता से अधिक महत्व देना।
3. कठोर सामाजिक व्यवस्था की परिकल्पना करना।
4. इनके द्वारा निर्धारित लक्ष्य वास्तविक न होकर काल्पनिक हैं। इसी कारण इनकी प्राप्ति असंभव है।
5. लक्ष्य वर्तमान पर आधारित न होकर भविषय पर आधारित हैं।
6. मानववाद पर आवश्यकता से अधिक महत्व।

भाग-तीन

अपनी उन्नति जानिए Check Your Progress

प्र. 1 ‘‘अध्यापक सही चरित्र का आध्यात्मिक प्रतीक है’’ यह परिभाषा है-

(अ) फ्रॉवेल (ब) जेण्टील (स) रॉस (द) फिक्टे

प्र. 2 ‘‘प्रकृतिवादी तो जंगली गुंलाब से संतुष्ट हो सकता है किन्तु आदर्शवादी तो एक सुन्दर व सुविकसित गुलाब की परिकल्पना करता है।’’ यह परिभाषा है-

(अ) फ्रॉवेल (ब) जेण्टील (स) रॉस (द) फिक्टे

प्र. 3 ‘‘अध्यापक में स्व-अध्ययन का गुण होना चाहिए, जिससे वह निरन्तर नवीन ज्ञान की ओर उन्मुख हो सके।’’ यह विचारधारा है-

(अ) प्रकृतिवादियों (ब) आदर्शवादियों (स) अस्तित्ववादिया (द) प्रयोजनवादियों

प्र. 4 ‘‘सत्यम् शिवम् सुन्दरम्’’ को शिक्षा का आधार मानते है-

(अ) प्रकृतिवादी (ब) आदर्शवादी (स) अस्तित्ववादी (द) प्रयोजनवादी

प्र. 5 आत्मानुशासन व आत्म-नियंत्रण पर बल देता है-

(अ) आदर्शवादी (ब) प्रकृतिवादी (स) प्रयोजनवादी (द) अस्तित्ववादी

10.6 सारांश (Summary)

आदर्शवादी शिक्षा को पवित्र कार्य मानता है। शिक्षार्थी का व्यक्तित्व उसके लिए महान है। अतः वह छात्र के व्यक्तित्व का पूर्ण विकास करना चाहता है। यह विकास सही दिशा में होना चाहिए। विकास की दिशा ऐसी हो कि बालक आत्मानुभूति की ओर बढ़ सके और ‘‘सत्यम् शिवम् सुन्दरम्’’ का दर्शन कर सके। विश्व में इससे बढ़कर न तो कोई लक्ष्य हो सकता है, न ही इससे बढ़कर कोई उपलब्धि हो सकती है। आदर्शवादी परम-सत्य में विश्वास करता है। वह परम-सत्य लक्ष्यों का लक्ष्य है, विभिन्न सत्यों का आधार, सुन्दरों में सौन्दर्य का मूल तथा साक्षात् शिवम् है। जीवन की पूर्णता उसी दिशा में चलने में है। अतः हम यह कह सकते हैं कि आदर्शवाद ने शिक्षा की दिशा निश्चित करने में शिक्षाशास्त्रियों का मार्ग-दर्शन किया है। शिक्षा के उद्देश्य निश्चित करते समय हम कभी-कभी दूर दृष्टि से काम नहीं लेते। आदर्शवाद हमें इस खतरे से सावधान करता है। आदर्शवाद ने आत्मानुभूति जैसा शिक्षा का उद्देश्य देकर, अनेकता में एकता की अंतदृष्टि प्रदान करके एवं ‘‘सत्यम् शिवम् सुन्दरम्’’ की प्राप्ति की दूर-दृष्टि देकर शिक्षा का बड़ा उपकार किया है।

आदर्शवाद ने शिक्षक के स्थान को बड़ा महत्व दिया है। इसका परिणाम यह होता है कि शिक्षक अत्यधिक सक्रिय रहता है और छात्र निष्क्रिय हो जाते हैं। छात्र इससे निरूत्साहित होता है और स्वयं सीखने के लिए इच्छा नहीं करता।

उपर्युक्त दोषों में कुछ सत्यता अवश्य है, किन्तु कभी-कभी किसी दार्शनिक विचारधारा को ठीक से न समझने के कारण ही उसकी आलोचना की जाती है। आदर्शवाद का परम-सत्य सबकी समझ में नहीं आ पाता। अतः वे उसे काल्पनिक और अयथार्थ समझते हैं। जहां तक शिक्षण-विधियों का प्रश्न है, आदर्शवाद ने अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए जिस विधि को उचित समझा, उसे अपनाया।

अन्त में हम यह कह सकते हैं कि जहा तक शिक्षा के उद्देश्यों का संबंध है, आदर्शवाद के सामने कोई दूसरी विचारधारा टिक नहीं सकती। शिक्षा के अन्य अंगों के क्षेत्र में आदर्शवाद ने अधिक ध्यान नहीं दिया।

10.7 कठिन शब्द (Difficult Words)

जगत - जगत से हमारा अभिप्राय संसार अर्थात् पूरे विश्व में व्याप्त भूमण्डल।

आध्यात्मिक - आध्यात्मिक से हमारा अभिप्राय धार्मिक क्रिया-कलापों, पूजा-पाठ व ईश्वर में ध्यान, सत्य का मार्ग आदि।

नश्वर - इस संसार में प्रत्येक वस्तु नश्वर है। अर्थात् जिसका जन्म हुआ है या निर्माण हुआ वह एक दिन समाप्त अवश्य ही होती है।

संस्कृति - संस्कृति से हमारा अभिप्राय हमारे रीति-रिवाज, परम्पपराएं, आचरण व धार्मिक क्रिया-कलाप, हमारी संस्कृति हैं।

10.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer of Practice question)

भाग-एक

उत्तर 1 (अ) एडम्स

उत्तर 2 (ब) विचारधारा या प्रत्यवाद

उत्तर3 (द) आदर्शवाद

उत्तर 4 (ब) आदर्शवाद

उत्तर 5 (अ) सुकरात

भाग-दो

उत्तर 1 (ब) चार चरण

उत्तर 2 (स) आदर्शवाद

उत्तर 3 (अ) आदर्शवाद

उत्तर 4 (द) आदर्शवाद

उत्तर 5 (स) आदर्शवाद

भाग-तीन

उत्तर 1 (ब) जेण्टील

उत्तर2 (स) रॉस

उत्तर 3 (ब) आदर्शवादियों

उत्तर4 (ब) आदर्शवादी

उत्तर 5 (अ) आदर्शवादी

10.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची (References)

1. पाण्डे, (डॉ) रा. श. *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*. आगरा: अग्रवाल प्रकाशन.

2. सक्सेना, (डॉ) सरोज. *शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार*. आगरा: साहित्य प्रकाशन.

3. मित्तल, एम.एल. (2008). *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*. मेरठ: इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस.

4. शर्मा, रा. ना. व शर्मा, रा. कु. (2006). *शैक्षिक समाजशास्त्र*. नई दिल्ली: एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स.

5. सलैक्स, (डॉ) शी. मै. (2008). *शिक्षक के सामाजिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्षय*. नई दिल्ली: रजत प्रकाशन.

6. गुप्त, रा. बा. (1996). *भारतीय शिक्षा शास्त्र*. आगरा: रतन प्रकाशन मंदिर.

10.10 उपयोगी सहायक ग्रन्थ (Useful Books)

1. पाण्डे, (डॉ) रा. श. *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*. आगरा: अग्रवाल प्रकाशन.

2. सक्सेना, (डॉ) सरोज. *शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार*. आगरा: साहित्य प्रकाशन.

3. मित्तल, एम.एल. (2008). *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*. मेरठ: इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस.

4. शर्मा, रा. ना. व शर्मा, रा. कु. (2006). *शैक्षिक समाजशास्त्र*. नई दिल्ली: एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स.

5. सलैक्स, (डॉ) शी. मै. (2008). *शिक्षक के सामाजिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्षय*. नई दिल्ली: रजत प्रकाशन.

6. गुप्त, रा. बा. (1996). *भारतीय शिक्षा शास्त्र*. आगरा: रतन प्रकाशन मंदिर.

10.11 दीर्घ उत्तर वाले प्रश्न (Long Answer Type Questions)

प्र. 1. आदर्शवाद से आप क्या समझते हैं? जीवन दर्शन के रूप में आदर्शवाद की विस्तृत चर्चा कीजिए।

प्र. 2. आदर्शवाद में शिक्षा के प्रमुख उद्देश्यों का विस्तृत वर्णन कीजिए।

प्र. 3. आदर्शवादी पाठ्यक्रम और शिक्षण पद्धतियों का विस्तृत वर्णन कीजिए।

प्र. 4. आदर्शवादी शिक्षक एवं बालकों के प्रमुख गुणों का विस्तृत वर्णन कीजिए।

इकाई- 11 : प्रयोजनवाद (Pragmatism)

11.1 प्रस्तावना Introduction

11.2 उद्देश्य Objectives

भाग-1

11.3 प्रयोजनवाद और शिक्षा Pragmatism and Education

11.3.1प्रयोजनवाद की तत्व मीमांसा, ज्ञान मीमांसा, आचार मीमांसा Metaphysics, Epistemology and Ethics of Pragmatism

11.3.2 प्रयोजनवाद का अर्थ Meaning of Pragmatism

11.3.3 प्रयोजनवाद की परिभाषाएं Definition of Pragmatism

11.3.प्रयोजनवाद की प्रमुख विशेषताएं Chief Characteristics of Pragmatism

अपनी उन्नति जानिए Check your Progress

भाग-2

11.4 प्रयोजनवाद के आधारभूत सिद्धान्त Fundamental Principals of Pragmatism

11.4.1प्रयोजनवादी पाठ्यक्रम Pragmatism Curriculum

11.4.2 प्रयोजनवादी शिक्षण पद्धति Pragmatic Method of Teaching

अपनी उन्नति जानिए Check your Progress

भाग-3

11.5 आदर्शवाद व प्रयोजनवाद में अंतर Difference Between Idealism and Pragmatism

11.5.1 प्रकृतिवाद व प्रयोजनवाद में अंतर Difference Between Naturalism and Pragmatism

11.5.2 प्रयोजनवाद का आधुनिक शिक्षा पर प्रभाव Impact of Pragmatism on Modern Education

अपनी उन्नति जानिए Check your Progress

11.6 सारांश Summary

11.7 कठिन शब्द Difficult Words

11.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर Answer of Practice Questions
11.9 सन्दर्भ Reference
11.10 सहायक/उपयोगी पुस्तकें Useful Books
11.11 निबन्धात्मक प्रश्न Essay Types Question

11.1 प्रस्तावना (Introduction)

प्रयोगवाद एक आधुनिक अमेरिकी जीवन दर्शन है। यह अमेरिकी राष्ट्र के जीवन तथा विचार का प्रतिनिधित्व करता है। वस्तुतः अमेरिका नव निवासियों का देश है। विशेषकर पश्चिमी यूरोप के प्रगतिशील निवासी ही वहां जाकर 16वीं-17वीं शताब्दी में बस गए। वहाँ उन्हें सर्वथा नई स्थितियां, समस्याओं एवं वातावरण का सामना करने के लिए कोई पूर्व निर्मित समाधान नहीं था। इसलिए वे अपने जीवन का मार्ग खुद प्रस्त किये। जीवनगत समस्याओं का समाधान भी उन्हें नये तरीके से स्वयं ढूंढना पड़ा। यहां तक कि पूर्व मान्यताएं स्वतः ही बिखरने लगीं तथा नवीन उपयोगी विचारधारा का जन्म हुआ। यही विचारधारा प्रयोजनवाद के नाम से अभिहित हुई। उसके अनुसार वही दर्शन सही है जिसका नाता मानव जीवन तथा मानव क्रियाकलापों से ही प्रयोजनवाद निश्चित एवं शाश्वत् मूल्यों के सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करता है। वह तो जीवन और समाज के लिए उपयोगी एवं व्यावहारिक सिद्धान्तों को स्वीकार करता है। जिनके सहारे मानव अपनी जीवनगत समस्याओं का समाधान ढूंढने में सफल होता है। यह आसमान को कम, धरती को ज्यादा महत्व देता है।

प्रयोजनवाद का उत्पत्ति स्थल अमेरिका है, जहां एक दर्शन के रूप में इसका विकास हुआ। चार्ल्स पियर्स तथा विलियम जेम्स इस विचारधारा के प्रतिपादक माने जाते हैं। जेम्स ने मानव अनुभव के महत्व को स्पष्ट किया और मानव को समस्त वस्तुओं और क्रियाओं की सत्यता की कसौटी बताया। जेम्स के बाद अमेरिका के ही एक विचारक जॉन डीवी ने इस विचारधारा को आगे बढ़ाया। डीवी ने व्यक्ति की इच्छा को सामाजिक परिप्रेक्ष्य में स्वीकार किया। उनके अनुसार मानव प्रगति का आधार सामाजिक बुद्धि ही होती है। डीवी के बाद अमेरिका में उनके शिष्य किलपैट्रिक ने इस विचारधारा को आगे बढ़ाया और इंग्लैण्ड में शिलर महोदय ने। इन सबमें डीवी का योगदान सबसे अधिक है। प्रयोजनवादी किसी निश्चित सत्य में विश्वास नहीं करते। उनके विचार से दर्शन भी सदा निर्माण की स्थिति में रहता है। चूंकि मानव जीवन परिवर्तनशील है, अतः इस प्रकार की शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्य चर्चा आदि का निर्माण न करके उनके निर्माण के सिद्धान्त प्रस्तुत किये गये हैं। इस विचारधारा के प्रमुख दार्शनिक एवं शिक्षाविद् जॉन डीवी माने जाते हैं।

11.2 उद्देश्य (Objectives)

1. प्रयोजनवाद व शिक्षा के संबंध में जान सकेंगे।
2. प्रयोजनवाद दर्शन के अर्थ और परिभाषाएं का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
3. प्रयोजनवाद के दार्शनिक रूपों का अध्ययन कर सकेंगे।
4. प्रयोजनवाद के प्रमुख सिद्धान्तों के बारे में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
5. प्रयोजनवाद की प्रमुख विशेषताओं के बारे में जान सकेंगे।
6. अस्तित्ववादी शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यक्रम के बारे में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
7. अस्तित्ववादी शिक्षक, विद्यार्थी व शिक्षण विधि के बारे में जान सकेंगे।

भाग-1

11.3 प्रयोजनवाद (Pragmatism)

प्रयोजनवाद एक व्यावहारिक व अद्वितीय दर्शन है, जिसमें प्रकृतिवाद व आदर्शवाद की प्रमुख विशेषताओं को समन्वित करने का प्रयास किया है। जॉन ड्यूवी ने अर्थ क्रियावाद की उपयोगिता को शिक्षा के क्षेत्र में भी बहुत अधिक माना है। कुछ शिक्षा दार्शनिक तो यहां तक कहते हैं कि आधुनिक शिक्षा का युग प्रयोजनवाद का युग है। प्रसिद्ध दार्शनिक ड्यूवी ने शिक्षा के अर्थ को स्पष्ट करते हुए कहा है, ''शिक्षा अनुभव का पुनर्निर्माण अथवा पुनर्रचना करने वाली प्रक्रिया है जिससे कि विवृद्ध वैयक्तिक कुशलता के माध्यम द्वारा उसे अधिक सामाजिक मूल्य प्राप्त होता है।'' वह यह मानता है कि मनुष्य की शिक्षा की प्रक्रिया अनवरत चलती रहती है। चूंकि अनुभव द्वारा वह कुछ न कुछ ग्रहण करता रहता है। नित्य प्रति मानवीय परिस्थितियां बदलती हैं और मनुष्य उनके अनुकूल अपनी क्रियाओं को भी बदल लेता है। नये परिवेश में व्यक्ति जब अपनी समस्याओं का हल ढूंढता है तो उसके अनुभव विकसित होने लगते हैं। यह समृद्ध अनुभव ही शिक्षा है। जॉन ड्यूवी शिक्षा को एक व्यापक प्रक्रिया के रूप में देखते हैं जो विद्यालय के साथ ही समाज में भी चलती रहती है। इसी कारण अर्थ क्रियावादी यह मानता है कि शिक्षा जीवन पर्यन्त चलने वाली एक प्रक्रिया है अथवा शिक्षा जीवन है और जीवन शिक्षा।

11.3.1 प्रयोजनवाद की तत्व मीमांसा, ज्ञान मीमांसा, आचार मीमांसा

Metaphysics, Epistemology and Ethics of Pragmatism

प्रयोजनवाद की तत्व मीमांसा Metaphysics of Pragmatism

प्रयोजनवादी इस ब्रह्माण्ड की रचना के संबंध में विचार करने के स्थान पर मनुष्य जीवन के वास्तविक पक्ष पर अपना ध्यान केन्द्रित रखते हैं। वे इस ब्रह्माण्ड के बारे में केवल इतना ही कहते हैं कि यह अनेक वस्तुओं और अनेक क्रियाओं का परिणाम है, वस्तु और क्रियाओं की व्याख्या के झमेले में ये नहीं पड़ते। इस इन्द्रियग्राह संसार के अतिरिक्त ये किसी अन्य संसार के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करते। ये आत्मा-परमात्मा के अस्तित्व को भी नहीं स्वीकारते। इनके अनुसार मन का ही दूसर नाम आत्मा है और मन एक पदार्थ जन्म क्रियाशील तत्व है।

प्रयोजनवाद की ज्ञान मीमांसा Epistemology of Pragmatism

प्रयोजनवादियों के अनुसार अनुभवों की पुनर्रचना ही ज्ञान है। ये ज्ञान को साध्य नहीं अपितु मनुष्य जीवन को सुखमय बनाने का साधन मानते हैं। इसकी प्राप्ति सामाजिक क्रियाओं में भाग लेने से स्वयं होती है। कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों को ये ज्ञान का आधार मानते हैं और मस्तिष्क तथा बुद्धि को ज्ञान का नियंत्रक।

प्रयोजनवाद की आचार मीमांसा Ethics of Pragmatism

प्रयोजनवादी निश्चित मूल्यों और आदर्शो में विश्वास नहीं करते इसलिए ये मनुष्य के लिए कोई निश्चित आचार संहिता नहीं बनाते। इनका स्पष्टीकरण है कि मनुष्य जीवन में निरन्तर परिवर्तन होता रहता है इसलिए उसके आचरण को निश्चित नहीं किया जा सकता। उसमें तो वह शक्ति होनी चाहिए कि वह बदले हुए पर्यावरण में समायोजन कर सके। वे बच्चों में केवल सामाजिक कुशलता का विकास करना चाहते हैं। सामाजिक कुशलता से व्यावहारिकतावादियों का तात्पर्य समाज में समायोजन करने, अपनी जीविका कमाने, मानव उपयोग की वस्तु एवं क्रियाओं की खोज करने और नई-नई समस्याओं का समाधान करने की शक्ति से होता हैं|

11.3.2 प्रयोजनवाद का अर्थ Meaning of Pragmatism

प्रयोजनवाद आंग्ल भाषा के ‘प्रैग्मैटिज्म’ (Pragmatism) शब्द का हिन्दी रूपान्तर है, जिसकी व्युत्पत्ति ग्रीक भाषा के ‘प्रैग्मा’ (Prama)शब्द से हुई है, जिसका तात्पर्य है ‘क्रिया’ अर्थात् ‘व्यावहारिक’ या ‘व्यवहार्य’। दूसरे शब्दों में प्रयोजनवाद वह विचारधारा है जो उन्हीं बातों को सत्य मानती है, जो व्यावहारिक जीवन में काम आ सकें। प्रयोजनवादी मूर्त वस्तुओं, शाश्वत सिद्धान्तों और पूर्णता तथा उत्पत्ति में विश्वास नहीं करते। इनके अनुसार सदैव देशकाल तथा परिस्थिति के अनुसार सत्य परिवर्तित होता रहता है, क्योंकि एक वस्तु जो एक देश, काल तथा परिस्थिति में उपयोगी होती है वह दूसरे में नहीं। प्रयोगवाद को ‘प्रयोजनवाद’ भी कहा जाता है, क्योंकि यह ‘प्रयोग’ (Experiment) को ही सत्य की एकमात्र कसौटी मानता है। इसे हम ‘फलवाद’ भी कह सकते हैं, क्योंकि इसमें किसी कार्य का मूल्य उसके परिणाम या फल के आधार पर आंका जाता है।

इस प्रकार, ''प्रयोजनवाद जिसे हम प्रयोगवाद या फलवाद भी कह सकते हैं, वह विचारधारा है जो उन्हीं क्रियाओं, वस्तुओं, सिद्धान्तों तथा नियमों को सत्य मानती है, जो किसी देश, काल और परिस्थिति में व्यावहारिक तथा उपयोगी हो।''

11.3.3 प्रयोजनवाद की परिभाषाएं Definition of Pragmatism

(1) रस्क के अनुसार (According to Rusk) - ''प्रयोजनवाद एक प्रकार से नवीन आदर्शवाद के विकास की अवस्था है, एक ऐसा आदर्शवाद जो वास्तविकता के प्रति पूर्ण न्याय करेगा, व्यावहारिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों का समन्वय करेगा और इसके परिणामस्वरूप उस संस्कृति का निर्माण होगा जिसमें निपुणता का प्रमुख स्थान होगा, न कि उसकी उपेक्षा होगी।''

(2) जेम्स के अनुसार (According to Jams) - ''प्रयोजनवाद मस्तिष्क का स्वभाव तथा मनोवृत्ति है। यह विचारों की प्रकृति एवं सत्य का भी सिद्धान्त है और अपने अंतिम रूप में यह वास्तविकता का सिद्धान्त है।'' (Pragmatism is a temper of mind an attitude. It Is also a thing of nature of ideas and truth and finally it is a thing about reality)

(3) रॉस के अनुसार (According to Ross)- ''प्रयोजनवाद एक मानवीय दर्शन है जो यह स्वीकार करता है कि मनुष्य क्रिया की अवधि में अपने मूल्यों का निर्माण करता है और यह स्वीकार करता है कि वास्तविकता सदैव निर्माण की अवस्था में रहती है।'' (Pragmatism is essently a humanistic philosophy, maintain that man creates his own values in course of activity, that reality is still in making and awaits its past of completion from that future)

(4) जैम्स प्रैट के अनुसार (According to Jams Prett) - ''प्रयोजनवाद हमें अर्थ का सिद्धान्त, सत्य का सिद्धान्त, ज्ञान का सिद्धान्त और वास्तविकता का सिद्धान्त देता है।'' (Pragmatism offers us a theory of meaning, a theory of truth , a theory of knowledge and a theory of Knowledge.)

(5) रोजन के अनुसार (According to Rosen) - ''प्रयोजनवाद के अनुसार सत्य को उसके व्यावहारिक परिणामों द्वारा जाना जा सकता है। इस कारण सत्य निरपेक्ष न होकर व्यक्तिगत या सामाजिक समस्या है।'' (Pragmatism states that truth can be known only through its practical consequence and is thus an Individual or social matter rather than an absolute)

वास्तव में देखा जाए तो अर्थ क्रियावाद व्यावहारिकता या क्रिया पर बल देता है।

11.3.4 प्रयोजनवाद की प्रमुख विशेषताएं (Chief Assertion of Pragmatism)

1. परम्पराओं व मान्यताओं का विरोधी (Pragmatism, a revolt against traditionalism) - अर्थ क्रियावाद निर्धारित आस्थाओं का विरोधी है। प्रकृतिवाद द्वारा प्रकृति के अस्थित्व में विश्वास रखना अथवा आदर्शवाद द्वारा एक चिरस्थायी सत्य को यह स्वीकार नहीं करता। यह विचारों की अपेक्षा क्रिया को अधिक महत्व देता है व यह मानता है कि वास्तविकता एक निर्माणशील प्रक्रिया है और उसके संबंध में हम किसी भी सामान्य सिद्धान्त का प्रतिपादन नहीं कर सकते हैं। वह यह मानते हैं कि सत्य तो व्यावहारिक परिस्थितियों पर निर्भर करता है और ज्ञान भी क्रियाओं का ही परिणाम है। क्रियाओं को सुचारू रूप से चलाने हेतु ज्ञान की आवश्यकता होती है।

2. शाश्वत मूल्यों का बहिष्कार (Rejects Ultimate Value) - प्रयोजनवाद किसी निश्चित अथवा शाश्वत सत्य अथवा सिद्धान्त की सत्ता को स्वीकार नहीं करता। वह यह मानते हैं कि मूल्य तो मानव की व्यक्तिगत व सामाजिक घटनाओं के फलस्वरूप उत्पन्न होते हैं जो सदैव परिवर्तनशील होते हैं। वह यह मानते हैं कि विश्व गतिशील है। अतः मूल्य भी गतिशील होते हैं। वास्तव में मूल्यों का निर्माण तो व्यक्ति स्वयं अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप करता है। आज जो ‘सत्य’ है, वह कल भी ‘सत्य’ होगा। सोचना गलत है चूंकि सत्य तो देश, काल व परिस्थितियों के अनुकूल बदलता रहता है।

3. विचार क्रिया के अधीन होते हैं (Though is Subordinate to Action) जव - प्रयोजनवाद क्रिया को सर्वोच्च स्थान देता है व यह मानता है कि कोई भी विचार तभी सार्थक हो सकता है जब हम उसे क्रिया रूप में हस्तांतरित करें। वास्तव में देखा जाए तो क्रिया ही विचारों को अर्थ प्रदान करती है और उनका महत्व निर्धारित करती है। हॉ, इस बात को भी स्वीकार करते हैं कि विचार आंतरिक वस्तु है व क्रिया बाह्य।

4. किसी सार्वभौमिक सत्ता में आस्था न होना (No faith in Supreme Power)- प्रयोजनवाद ईश्वरीय सत्ता को स्वीकार नहीं करता। वह यह मानता है कि ईश्वरा मिथ्या है। आत्मा के अस्तित्व को वह मानता अवश्य है परन्तु उसे एक क्रियाशील तत्व के रूप में स्वीकार करता है। उनके अनुसार सर्वाच्च सत्ता समाज की होती है।

5. उपयोगिता के सिद्धान्त पर बल (Emphasis on Principal of utility) - प्रयोजनवाद यह मानता है कि किसी भी सिद्धान्त अथवा विश्वास की कसौटी उपयोगिता है। यदि कोई सिद्धान्त हमारे उद्देश्यो का पूरक है व हमारे लिए लाभप्रद है तो ठीक है अन्यथा नहीं। कोई भी सिद्धान्त स्वयं में उपयोगी या अनुपयोगी नहीं होता। अगर उसका फल उपयोगी है तो ठीक है और अगर फल अनुपयोगी है तो सिद्धान्त भी ठीक नहीं है।

6. व्यक्ति के सामाजिक जीवन पर बल (Emphasis on Individual’s School life) - प्रयोजनवाद व्यक्ति को एक सामाजिक इकाई के रूप में स्वीकार करता है व बालक के व्यक्तित्व के सामाजिक पक्ष के विकास की अधिकांशतया चर्चा करता है। व्यक्ति समाज में रहकर अपने जीवन को सफल बना सके, इसे वह महत्व देता है व इसके लिए यह भी अनिवार्य मानता है कि व्यक्ति में सामाजिक कुशलता का विकास किया जाए।

7. मनुष्य एक मनोशारीरिक प्राणी (Man is a Psychological Individual) - प्रयोजनवाद मनुष्य को एक मनोशारीरिक प्राणी मानता है। इनके अनुसार मनुष्य को विचार व क्रिया करने की शक्तियां प्राप्त हैं, जिनके माध्यम से मनुष्य समस्या को समझने व उनका हल ढूंढने का प्रयास करता है और अन्ततोगत्वा वह स्वयं को अपने वातावरण के अनुकूल ढालने का प्रयास करता है।

8. बहुतत्ववादी विचारधारा (Pluralist Ideology) - प्रयोजनवाद यह मानता है कि इस संसार की रचना अनेक तत्वों से मिलकर हुई है और इन तत्वों के मध्य क्रिया चलती रहती है, जिसके परिणामस्वरूप रचनात्मक कार्य होता है। सबसे बड़ी बात यह है कि यह क्रिया सदैव चलती रहती है व संसार की रचना करती रहती है। इसी कारण प्रयोजनवाद के अनुसार यह संसार सदैव निर्माण की अवस्था में रहता है। मनुष्य इस संसार का सृजनशील प्राणी है। अतः मनुष्य भी सदैव क्रियाशील रहता है।

9. दर्शन, शिक्षा का सिद्धान्त (Philosophy as the Theory of Education) - प्रयोजनवाद यह मानता है कि शैक्षिक अभ्यासों के फलस्वरूप ही दर्शन का जन्म होता है। जॉन ड्यूवी ने इस संबंध में कहा कि सामान्य रूप से दर्शन शिक्षा का सिद्धान्त है। (Philosophy is the theory of education in its most general phase) वास्तव में दर्शन द्वारा निर्धारित सिद्धान्त ही सत्य व व्यवहार्य होते हैं।

10. प्रजातंत्र में आस्था (Faith in Democracy)- अर्थ क्रियावाद प्रजातंत्र शासन व्यवस्था पर बल देकर उसके प्रति अपनी आस्था अभिव्यक्त करता है। वह प्रजातंत्र को जीवन का एक तरीका व अनुभवों का आदान-प्रदान करने की एक व्यवस्था के रूप में देखता है। वह जीवन, शिक्षा व प्रजातंत्र को एक-दूसरे से संबंधित प्रक्रिया मानते हैं।

अपनी उन्नति जानिए Check your progress

प्र. 1 प्रयोजनवाद की उत्पत्ति स्थल किस देश को माना जाता है?

A. भारत B. अमेरिका C. इंग्लैण्ड D. रूस

प्र. 2 जॉन ड्यूवी किस देश के रहने वाले थे?

A. भारत B. चीन C. अमेरिका D. जर्मनी

प्र. 3 प्रयोजनवाद को किस-किस नाम से जाना जाता है?

प्र. 4 प्रयोजनवाद क्रिया को सर्वोच्च स्थान देता है

A. सत्य B. असत्य

प्र. 5 प्रयोजनवाद क्रिया की अपेक्षा विचारों को अधिक महत्व देता है-

A. सत्य B. असत्य

प्र. 6 ''शिक्षा बालक के लिए है, बालक शिक्षा के लिए नहीं'' यह विचारधारा है-

A. प्रयोजनवाद B. प्रकृतिवाद C. आदर्शवाद D. अस्तित्ववाद

भाग-2

11.4 प्रयोजनवाद के आधारभूत सिद्धान्त (Fundamental Principles of Pragmatism)

1. सत्य का हमेशा परिवर्तनशील होना Truth is always Changeable)- प्रयोजनवाद के अतिरिक्त जितनी भी दार्शनिक विचारधाराएं हुई हैं, वे सत्य को अपरिवर्तनशील मानती हैं, परन्तु प्रयोजनवाद के अनुसार सत्य सदैव देश, काल एवं परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तित होता रहता है। जो वस्तु एक स्थान पर सत्य है आवश्यक नहीं है कि वह दूसरे स्थान पर भी सत्य होगी। इसी प्रकार जो वस्तु आज सत्य है आवश्यक नहीं कि कल भी सत्य होगी। इस प्रकार प्रयोजनवाद के अनुसार 'सत्य सदा परिवर्तनशील है।' प्रयोजनवाद के जन्मदाता विलियम जेम्स ने ठीक ही कहा, ''सत्यता किसी विचार का स्थायी गुण धर्म नहीं है। वह तो अकस्मात् विचार में निर्वासित होता है। " The Truth an idea is not a stagnate property inherent in it. Truth happens an Idea)

2. समस्याएं सत्य की प्रेरक हैं (Problem are the motives of Truth) - प्रयोजनवादियों का विचार है कि मानव जीवन में एक न एक नवीन समस्याएं आती रहती हैं। इन समस्याओं का समाधान करने के लिए व्यक्ति अपने जीवन में बहुत से प्रयोग करता है। प्रयोग की सफलता सत्य का रूप ग्रहण कर लेती है। इस प्रकार हमारे जीवन की समस्याऐं ही सत्य की खोज के लिए हमें प्रेरणा प्रदान करती है।

3. सत्य मानव निर्मित होता है (Truth is Man-Made) - प्रयोजनवादियों के अनुसार सत्य कोई ऐसी चीज नहीं जो पहले से विद्यमान हो। परिस्थितियों में परिवर्तन होने के फलस्वरूप मनुष्य के

सामने अनेक समस्याएं उत्पन्न होती हैं। जिनकी पूर्ति के लिए मनुष्य चिन्तन करने लगता है, किन्तु चिन्तन में आए सभी विचार तो सत्य नहीं होते, सत्य तो केवल वही विचार होते हैं, जिनका प्रयोग करने पर सन्तोषजनक फल प्राप्त हो।

4. बहुत्ववाद का समर्थन (Vindication of Pluarism)- अंतिम सत्ता एक है, दो या अनेक इस संबंध में मुख्यतः तीन वाद हैं। 1. एकत्ववाद (Mononism) 2. द्वैतवाद (Dualism) तथा 3. बहुत्ववाद (Plualism)। प्रयोजनवाद बहुत्ववाद का समर्थक है। रस्क महोदय ने इस तथ्य पर विचार करते हुए लिखा है-''प्रकृतिवाद प्रत्येक वस्तु को जीवन या (भौतिक तत्व), आदर्शवाद मन या आत्मा मानता है। प्रयोजनवाद इस बात की आवश्यकता नहीं समझता कि संसार का किसी एक तत्व या सिद्धान्त के आधार पर स्पष्टीकरण करे। प्रयोजनवाद अनेक सिद्धान्तों को स्वीकार करने में संतोष अनुभव करता है। इस तरह वह बहुत्ववादी है।''

"Naturalism reduces everything to life, idealism to mind or spirit. Pragmatism sees no necessity for seeking one fundamental principal of explanation. It is quite content to admit several principles and accordingly is pluralistic" –Rusk.

5. उपयोगिता के सिद्धान्त का समर्थन (To Support the Principal of Utility)- प्रयोजनवाद के अनुसार केवल वही वस्तु अथवा विचार ठीक है जो हमारे लिए उपयोगी है और इसके विपरीत जो वस्तु या विचार हमारे लिए उपयोगी नहीं है वह हमारे लिए व्यर्थ है। इस प्रकार प्रयोजनवादी उपयोगिता के सिद्धान्त का समर्थन करते हैं।

6. मानवीय शक्ति पर बल (Emphasis on human power)- प्रयोजनवादी मानव की शक्ति पर विशेष बल देता है, क्योंकि वह उसके द्वारा अपनी आवश्यकतओं के अनुसार वातावरण बना लेता है। वह सफलतापूर्वक समस्याओं का समाधान करके अपने लिए सुन्दर वातावरण निर्मित कर लेता है।

7. सामाजिक प्रथाओं एवं परम्पराओं की उपेक्षा (Negligence of Social Customs and Traditions)- प्रयोजनवादी समाज में नाना प्रकार की प्रचलित रूढ़ियों, बंधनों एवं परम्पराओं की सर्वथा उपेक्षा करते हैं। ये लोग 'विचार' की अपेक्षा 'क्रिया' को विशेष महत्व देते हैं, क्योंकि उनका विचार है कि विचार हमेशा 'क्रिया'से ही उत्पन्न होते हैं।

8. आध्यात्मिक तत्वों की उपेक्षा (Negligence of Spiritual Elements)- प्रयोजनवादी व्यावहारिक जीवन से संबंध रखना उचित समझते हैं। ईश्वर, आत्मा, धर्म इत्यादि का व्यावहारिक जीवन से संबंध न होने के कारण इनका कोई महत्व नहीं है। हॉ, यदि व्यावहारिक जीवन में उनकी आवश्यकता अनुभव हो तो वे उन्हें स्वीकार करने में भी नहीं चूकते। कुछ भी हो प्रयोजनवादी आध्यात्मिक तत्वों की उपेक्षा करते हैं।

11.4.1 प्रयोजनवादी पाठ्यक्रम Pragmatism Curriculum)

प्रयोजनवादी पाठ्यक्रम निम्नलिखित बातों पर आधारित हैः-

1. उपयोगिता सिद्धान्त (Principle of Utility) - प्रयोजनवादियों के अनुसार पाठ्यक्रम में ऐसे नियमों को स्थान देना चाहिए जो बालकों के भावी जीवन में काम दें और उन्हें ज्ञान तथा सफल जीवन की क्षमता प्रदान करें। इस दृष्टि से उनके अनुसार पाठ्यक्रम में भाषा, स्वास्थ्य विज्ञान, शारीरिक प्रशिक्षण, इतिहास, भूगोल, गणित, विज्ञान-बालिकाओं को गृह-विज्ञान आदि विषयों को स्थान देना चाहिए जो कि मानव प्रगति में सहायक हों।

2. सानुबंधित का (Principle of Integration) - प्रयोजनवादियों का विचार है कि जो विषय पाठ्यक्रम में निर्धारित किए जायें उन सबमें आपस में संबंध होना चाहिए, क्योंकि ज्ञान का पृथक-पृथक विभाजन नहीं होता। उनका विचार है कि बालकों को समस्त विषय एक-दूसरे से संबंधित कर पढ़ाने चाहिए, जिससे न केवल बालकों का ज्ञान प्राप्त करना सार्थक हो वरन् शिक्षकों को पढ़ाने में भी सुविधा हो।

3. बाल केन्द्रित पाठ्यक्रम (Child-Centered Curriculum)- प्रयोजनवादियों का विचार है कि पाठ्यक्रम का संगठन इस प्रकार करना चाहिए कि उसमें बालक की प्राकृतिक अभिरूचियों को पूर्ण स्थान हो। बालक की ये अभिरूचियां मुख्य रूप से चार हैं- 1. बातचीत करना, 2. खोज करना, 3. कलात्मक अभिव्यक्ति एवं 4. रचनात्मक कार्य करना। इस दृष्टि से पाठ्यक्रम में लिखने, पढ़ने, गिनने, प्रकृति विज्ञान, हस्तकार्य एवं ड्राइंग का अध्ययन करने के साधनों को स्थान मिलना चाहिए।

4. बालक के व्यवसाय, क्रियाओं एवं अनुभव पर आधारित (On the base of Child’s Occupation Activities and Experience)- प्रयोजनवादियों का विचार है कि पाठ्यक्रम का संगठन बालक के व्यवसायों एवं अनुभव पर आधारित होना चाहिए। उनका विचार है कि किताबों को केवल रट लेना शिक्षा नहीं है बल्कि यह तो एक सुविचार प्रक्रिया है, फलस्वरूप पाठ्यक्रम में शिक्षा विषयों के अतिरिक्त सामाजिक, स्वतंत्र एवं उद्देश्यपूर्ण क्रियाओं को स्थान मिलना चाहिए, जिससे कि बालकों में नैतिक गुणों का विकास होगा, स्वतंत्रता की भावना का संचार होगा, उन्हें नागरिकताकी प्रतिक्षा मिलेगी तथा उनमें आत्म-अनुशासन की भावना पैदा होगी।

11.4.2 प्रयोजनवादी शिक्षण पद्धति Pragmatic Method of Teaching

प्रयोजनवादी शिक्षाशास्त्रियों ने प्राचीन एवं रूढ़िवादी शिक्षा पद्धतियों का विरोध करते हुए वर्तमान शिक्षण विधियों का प्रतिपादन किया। उनका विचार है कि कोई पद्धति इसलिए स्वीकार नहीं करनी चाहिए, क्योंकि वह पहली से शिक्षा के क्षेत्र में प्रयोग होती आ रही है बल्कि उनका विचार है कि परिस्थितियों के अनुसार नवीन पद्धतियों की रचना करनी चाहिए। इस दृष्टिकोण से उन्होंने शिक्षण

पद्धति के कुछ सिद्धान्त प्रतिपादित किये हैं, जिनके आधार पर उसका निर्माण होना चाहिए। ये सिद्धान्त निम्नलिखित हैं:-

1. बाल केन्द्रित पद्धति (Child- Centered Method) - प्रयोजनवादियों का विचार है कि प्रत्येक शिक्षण पद्धति को 'बाल केन्द्रित' (Child-Center) होना चाहिए, अर्थात् शिक्षा पद्धति इस प्रकार होनी चाहिए जो बालक की अभिरूचियों, आवश्यकताओं, उद्देश्यों आदि के अनुकूल हो, जिससे कि बालक प्रसन्नतापूर्वक अपने जीवन में काम आने वाली शिक्षा ग्रहण कर सके।

2. करके सीखने अथवा स्वानुभव से सीखने की पद्धति (Method of Learning by doing or Experience)- प्रयोजनवादी विचार अथवा शब्द की अपेक्षा क्रिया पर अधिक जोर देते हैं। उनका विचार है कि बालकों को पुस्तकों की अपेक्षा क्रियाओं और अनुभवों से अधिक सीखना चाहिए जिससे कि उनके ज्ञान का व्यावहारिक मूल्य अधिक हो, फलस्वरूप वह 'करके सीखने अथवा स्वानुभव द्वारा सीखने' (Learning by doing or Experience) पर विशेष महत्व देते हैं।

3. सानुबन्धता की पद्धति ((Method of Integration)- प्रयोजनवादियों ने शिक्षा-पद्धतियों के निर्माण का तीसरा सिद्धान्त प्रतिपादित किया है, जिसे सानुबन्धता का सिद्धान्त (Principal of Integration or Correlation))- कहते हैं। प्रयोजनवादी 'विभिन्नता में एकता के सिद्धान्त' (Principal of Unity in Divedrsity) का समर्थन करते हुए कहते हैं कि समस्त विषयों को परस्पर संबंधित कर पढ़ाना चाहिए, जिससे बालक जो ज्ञान और कौशल सीखते हैं, उनमें एकता स्थापित हो जाती है।

अपनी उन्नति जानिए (Check your Progress)

प्र. 1 ''सत्य सदैव देश, काल एवं परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तित होता रहता है, जो वस्तु एक स्थान पर सत्य है आवश्यक नहीं कि वह दूसरे स्थान पर भी सत्य होगी।'' यह विचारधारा है-

A. अस्तित्ववाद B. प्रयोगवाद C. आदर्शवाद D. प्रकृतिवाद

प्र. 2 प्रयोजनवाद समर्थन करता है-

A. एकत्ववाद (Mononism) B. द्वैतवाद (Dualism) C.बहुत्ववाद (Pluralism)

प्र. 3 ''विभिन्नता में एकता के सिद्धान्त (Principal of Utility In Diversity) का समर्थन करते हैं।'' यह विचारधारा है-

A. फलवाद/प्रयोजनवाद B. आदर्शवाद C. प्रकृतिवाद D. अस्तित्ववाद

प्र. 4 ‘‘प्रत्येक शिक्षण पद्धति को बाल केन्द्रित (Child-Cented) होना चाहिए।’’ यह विचारधारा है-

A. प्राचीनकालीन B. आधुनिक C. अस्तित्ववादी D. प्रयोजनवादी

प्र. 5 ‘‘मूल्य तो मानव की व्यक्तिगत व सामाजिक घटनाओं के फलस्वरूप उत्पन्न होते हैं जो सदैव परिवर्तनशील होते हैं।’’ यह विचारधारा है-

A. प्रयोजनवाद B. अस्तित्ववाद C. प्रकृतिवाद D. आदर्शवाद

प्र. 6 प्रयोग (Experiment) को ही सत्य की एकमात्र कसौटी कौन मानता है ?

A. प्रकृतिवाद B. अस्तित्ववाद C. प्रयोजनवाद D. आदर्शवाद

भाग-3

11.5 आदर्शवाद व प्रयोजनवाद में अंतर (Difference Between Idealism and Pragmatism)

दार्शनिक अंतर (Philosophical Difference)

आदर्शवाद (Idealism)	प्रयोजनवाद (Pragmatism)
1. आदर्शवाद एक ‘अंतिम सत्ता’ (Ultimate Reality) मानते हैं। 2. अंतिम सत्ता आध्यात्मिक स्वरूप की है। 3. आदर्शवादी शाश्वत मूल्यों तथा सत्यों पर विश्वास करते हैं। 4. आदर्शवादी ‘सत्यं शिवं सुन्दरम्’ को शाश्वत मूल्य बताते हैं जो संसार की व्यवस्था के पहले से भी विद्यमान है। 5. आदर्शवाद के अनुसार अंतिम सत्ता ईश्वर ही है जो संपूर्ण जगत् का नियंत्रण तथा पालन करता है। 6. आदर्शवादी विचार को अधिक महत्व देते हैं।	1. प्रयोजनवाद अनेक सत्ताओं या तत्वों के आधार पर विश्व की व्याख्या करता है। 2. ये अनेक अलग-अलग प्रकृति के हो सकते हैं। 3. प्रयोजनवादियों के अनुसार सत्य सदैव परिवर्तनशील है। 4. प्रयोजनवादी किसी पूर्व-निश्चित मूल्य को स्वीकार न कर मनुष्य की क्रिया द्वारा मूल्यों की सृष्टि बतलाते हैं। 5. प्रयोजनवादी यदि व्यवहार में ईश्वर की आवश्यकता अनुभव करते हैं तभी ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं। 6. प्रयोजनवादी विचार की अपेक्षा क्रिया को

7. आदर्शवादी बुद्धि को अधिक महत्व देते हैं। 8. आदर्शवादी ऐहिक या लौकिक जीवन को महत्व न देकर पारलौकिक जीवन को विशेष महत्व देते हैं।	अधिक महत्व देते हैं। 7. प्रयोजनवादी बुद्धि के स्थान पर भावना तथा परिस्थितियों को अधिक महत्व देते हैं। 8. प्रयोजनवादी लौकिक या भौतिक जीवन को अधिक महत्व देते हैं।

शैक्षणिक अंतर	(Educational Difference)
9. आदर्शवाद के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य शाश्वत मूल्यों को प्राप्त करना है।	9. प्रयोजनवाद के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य सामाजिक तथा व्यावहारिक जीवन उचित रूप से बिताने के लिए तत्वसंबंधी गुणों को विकसित करना है।
10. आदर्शवादी पाठ्यक्रम में शाश्वत मूल्यों से संबंधित विषयों को महत्वपूर्ण स्थान देते हैं।	10. प्रयोजनवादी पाठ्यक्रम में व्यावहारिक जीवन से संबंधित विषयों को अधिक महत्व देता है।
11. आदर्शवादी शिक्षक को बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान देते हैं।	11. प्रयोजनवादी शैक्षिक परिस्थितियों के सृजन के लिए शिक्षक को आवश्यक बतलाते है।
12. आदर्शवाद प्रभावात्मक अनुशासन पर विशेष बल देता है।	12. प्रयोजनवाद सीमित मुक्त्यात्मक अनुशासन पर विश्वास करता है।

1.5.1 प्रकृतिवाद व प्रयोजनवाद में अंतर

Difference Between Naturalism and Pragmatism

दार्शनिक अंतर (Philosophical Difference

प्रकृतिवाद Naturalism	प्रयोजनवाद (Pragmatism
1. प्रकृतिवादी 'पुद्गल' (Matter) से संसार की समस्त वस्तुओं तथा विचारों की उत्पत्ति मानते हैं। इस तरह से वे एकत्ववादी हैं। 2. प्रकृतिवादी पदार्थ विज्ञान संबंधी प्राकृतिक नियमों की 'सार्वभौमिकता' (Generalization)तथा 'वस्तुनिष्ठता' (Objectivity) पर जोर देते हैं। 3. प्रकृतिवाद के अनुसार समानता सत्य की कसौटी है। 4. प्रकृतिवादी आदर्शों एवं मान्यताओं को पूर्णरूपेण स्वीकार नहीं करते। 5. प्रकृतिवादियों का दृष्टिकोण यांत्रिक तथा अवैयक्तिक है। इसी दृष्टि से ही तो 'व्यवहारवाद' को जन्म मिला। 6. प्रकृतिवादी ईश्वर के अस्तित्व को किसी भी माने में स्वीकार करने को तैयार नहीं हैं।	1. प्रयोजनवादी संसार की व्याख्या अनेक तत्वों के आधार पर करते हैं। इस प्रकार के बहुत्ववादी हैं। 2. प्रयोजनवादी किसी भी नियम या सिद्धान्त को सार्वभौमिक तथा वस्तुगत नहीं मानता बल्कि प्रयोजनवादी जेम्स के अनुसार समस्त नियमों का विकास देश, काल तथा परिस्थिति के अनुसार होता है। 3. प्रयोजनवाद के अनुसार 'पुनः निरीक्षण'(Observation) सत्य की कसौटी है। 4. प्रयोजनवादी किसी न किसी रूप में आदर्शों तथा मान्यताओं को स्वीकार करते हैं। ड्यूवी के अनुसार यदि पूर्व-निश्चित मान्यताएं प्रयोग तथा अनुभव द्वारा सिद्ध होती हैं तो उन्हें भी स्वीकार कर लेना चाहिए। 5. प्रयोजनवादी मानव की प्रवृत्तियों, अनुभूतियों तथा भावनाओं पर बल देते हैं। इस दृष्टि से यह मानवीय विचारधारा कही जा सकती है। 6. यदि ईश्वर की मान्यता द्वारा मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके तो प्रयोजनवादी ईश्वर को मानने में नहीं चूकते हैं।

शैक्षणिक अंतर (Educational Difference)

7. प्रकृतिवादी शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य आत्म-प्रकाशन या वैयक्तिकता का विकास मानते हैं।	7. प्रयोजनवादी शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य सामाजिक कल्याण तथा कार्य निपुणता को मानते हैं।
8. प्रकृतिवादी बालक में किसी भी प्रकार की आदत निर्माण करने के विरोध में हैं।	8. प्रयोजनवादी कार्य निपुणता या 'स्वभाव निर्माण' को ही शिक्षा का केन्द्र बिन्दु मानते हैं।
9. प्रकृतिवादी पाठ्यक्रम में उन विषयों को रखने पर बल देते हैं जिनसे आत्म-प्रकाशन तथा आत्म-रक्षा संभव हो सके।	9. प्रयोजनवादी पाठ्यक्रम में उन विषयों को विशेष स्थान देते हैं जिनसे कि सारे समाज की प्रगति हो।
10. प्रकृतिवादी बालक की शिक्षा में शिक्षक की पूर्ण उपेक्षा करते हैं।	10. प्रयोजनवादी बालक में उत्तम गुणों के विकास के लिए शिक्षक को महत्वपूर्ण स्थान देते हैं
11. प्रकृतिवादी प्राकृतिक परिणामों द्वारा अनुशासन के सिद्धान्त अर्थात् मुक्त्यात्मक अनुशासन का समर्थन करते हैं।	11. प्रयोजनवादी प्राकृतिक दुष्परिणामों से बालक की रक्षा करने की दृष्टि से सीमित मुक्त्यात्मक अनुशासन पर बल देते हैं।
12. प्रकृतिवादी शिक्षा नकारात्मक विचारधारा पर आधारित है।	12. प्रयोजनवादी शिक्षा सकारात्मक विचारधारा पर आधारित है।

तीनों विचारधाराओं में सामंजस्य आवश्यक हैं

उपर्युक्त शब्दों का यह निष्कर्ष न निकालना चाहिए कि चूंकि इन तीनों वादों मे अंतर है। अतः शिक्षा के क्षेत्र में ये तीनों अलग-अलग कार्य करेंगे। वास्तव में रॉस के शब्दों में - ''यदि आदर्शवादी अपने आपको प्रगतिशील रखें तो प्रयोजनवाद एवं आदर्शवाद के बीच का अंतर कम हो जाता है।'' जहां तक मानव द्वारा निर्मित मूल्यों एवं आदर्शो का संबंध है वहां प्रयोगवाद प्रगतिशील आदर्शवाद से और जहां तक बालक एवं उसकी प्रगति अध्ययन का संबंध है वहां प्रयोगवाद प्रकृतिवाद से मिलता जुलता है। इसीलिए तो शायद प्रयोगवाद के प्रवर्तक जेम्स का कथन है, ''प्रयोगवाद को आदर्शवाद एवं प्रकृतिवाद की मध्यावस्था कहा जा सकता है।''

"Pragmatism is described as a Via-media between Idealism Naturalism" James

11.5.2 प्रयोजनवाद का आधुनिक शिक्षा पर प्रभाव (Impact of Pragmatism on Modern Education)

दर्शन के रूप में नहीं वरन् व्यवहार के रूप में प्रयोजनवाद ने आधुनिक शिक्षा पर बहुत प्रभाव डाला है। शिक्षा एक व्यावहारिक कला है और व्यावहारिक दृष्टि से प्रयोजनवाद शिक्षा से पुनःनिर्माण में बहुत सहायक सिद्ध हुआ। प्रयोजनवादी शिक्षा की निम्नलिखित धाराएं आज भी भारतीय शिक्षा में स्पष्ट हैः-

1. शिक्षा व्यापक रूप से विकास वृद्धि या व्यहार परिवर्तन का रूप लेती है।

2. शिक्षा के निकट के उद्देश्य बहुत महत्व रखते हों और उनकी प्राप्ति के लिए शिक्षण विधियां प्रगतिशील हों।

3. शिक्षा जीवन केन्द्रित हो और एक प्रगतिशील समाज में वह भी प्रगति का परिचय दे।

4. शिक्षा के सामाजिक प्रक्रिया है और समाज का पोषण है।

5. समाज शिक्षा संस्थाओं को अपने आदर्शो की पूर्ति के लिए स्थापित करता है। अतः शिक्षण संस्थाएं समाज का बन्धु रूप है।

6. जनतंत्रीय समाज के लिए जनतंत्रीय शिक्षा की आवश्यकता है।

7. ज्ञान की उत्पत्ति क्रिया से होती है, क्रिया प्रधान है, सफलतापूर्वक क्रिया का संपादन करने के लिए वह ज्ञान आता है और बालक क्रिया द्वारा सीखता है।

8. शिक्षा बालक की नैसर्गिक प्रवृत्तियों, रूचियों, शक्तियों आदि को केन्द्र बनाकर दी जाये परन्तु उसको साथ ही साथ सामाजिक रूप भी दिया जाये। बालक अपने हित के साथ-साथ समाज का हित करने की क्षमता भी सीख ले।

9. परम्परागत, रूढ़िगत तथा कठोर विधियों व विचारों को शिक्षा में लाकर एक लचकदार समाज में एक लचकदार शिक्षा की आवश्यकता है।

10. शिक्षा जीवन की तैयारी ही नहीं जीवन का लक्ष्य है। भविषय अनिश्चित है। अतः वर्तमान अधिक मूल्य रखता है। शिक्षा द्वारा बालकों को वह गुण, ज्ञान, मनोवृत्तियां व कौशल दिये जायें जो उन्हें एक बदलते हुए समाज में परिस्थितियों के अनुकूल अपना समाज में स्थान लेने योग्य बनाएं।

अपनी उन्नति जानिए (Check your progress)

प्र. 1 प्रयोजनवादी शाश्वत मूल्यों पर विश्वास करते हैं:-

A. सत्य B. असत्य

प्र. 2 प्रयोजनवादी भावना तथा परिस्थितियों से अधिक बुद्धि को अधिक महत्व देते हैं:-

A. सत्य B. असत्य

प्र. 3 प्रयोजनवादी शिक्षा में गतिशीलता व परिवर्तनशीलता पायी जाती है:-

A. सत्य B. असत्य

प्र. 4 प्रयोजनवादी 'पुद्गल' Metter से संसार की समस्त वस्तुओं तथा विचारों की उत्पत्ति मानते हैं। इस तरह से वे एक तत्ववादी हैं-

A. सत्य B. असत्य

प्र. 5 ''परम्परागत, रूढ़िगत तथा कठोर विधियों व विचारों को शिक्षा में लाकर एक लचकदार समाज में एक लचकदार शिक्षा की आवश्यकता है।'' यह विचारधारा है-

A. अस्तित्ववादी B. प्रकृतिवादी C. आदर्शवादी D. प्रयोजनवादी

11.6 सारांश (Summary)

शिक्षा दर्शन के रूप में प्रयोजनवाद का एक प्रगतिशील दर्शन है। वह शिक्षा को सामाजिक (Social) , गतिशील (Dynamic) और विकास की प्रक्रिया (Process of Development0 मानता है। उसके इस विचार ने प्रगतिशील शिक्षा (Progressive Education) को जन्म दिया है। वास्तववाद और प्रकृतिवाद ने शिक्षा को मनोवैज्ञानिक और वैज्ञानिक आधार ही दिए थे, व्यावहारिकतावाद ने उसे एक तीसरा आधार भी दिया, जिसे हम सामाजिक आधार कहते हैं।

जहां तक शिक्षा के उद्देश्यों की बात है, व्यावहारिकतावाद उन्हें निश्चित करने के पक्ष में नहीं है। उसका स्पष्टीकरण है कि यह संसार और मनुष्य जीवन परिवर्तनशील है, इसलिए शिक्षा के कोई निश्चित उद्देश्य नहीं हो सकते, अगर शिक्षा का कोई उद्देश्य हो सकता है तो यही कि उसके द्वारा मनुष्य का सामाजिक विकास कर उसे इस योग्य बनाया जाए कि वह बदलते हुए समाज में अनुकूलन कर सके और अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सामाजिक पर्यावरण पर नियंत्रण रख सके और उसमें परिवर्तन कर सके। परन्तु जब तक मनुष्य यह नहीं जानता कि उसे सामाजिक पर्यावरण में किस सीमा तक अनुकूलन करना है और उसे अपनी किन आवश्यकताओं की पूर्ति करनी है तब तक वह उचित मार्ग पर नहीं चल सकता। व्यावहारिकतावाद इन प्रश्नों के सही उत्तर नहीं देता, इसलिए

उसके द्वारा निश्चित शिक्षा के ये उद्देश्य अपने में अपूर्ण हैं। डीवी महोदय ने सामाजिक कुशलता के विकास और किलपैट्रिक महोदय ने लोकतंत्रीय जीवन के विकास पर बल दिया है। हमारी दृष्टि से तो शिक्षा को मनुष्य का सर्वागीण विकास करना चाहिए।

शिक्षण विधियों के क्षेत्र में प्रयोजनवादियों की देन बड़ी मूल्यवान है। जिन मनोवैज्ञानिक तथ्यों का उद्घाटन एवं प्रयोग वास्तववादियों और प्रकृतिवादियों ने किया, व्यावहारिकतावादियों ने उसमें सामाजिक पर्यावरण के महत्व को और जोड़ दिया। उन्होंने बच्चों की जन्मजात शक्तियों को पहचाना, उनके व्यक्तिगत भेदों का आदर किया और ज्ञानेन्द्रियों द्वारा सीखने, करके सीखने और अनुभव द्वारा सीखने पर बल दिया और इसके साथ-साथ इस बात पर भी बल दिया कि बच्चों को जो कुछ भी सिखाया जाये उसका संबंध उनके वास्तविक जीवन से होना चाहिए और उन्हें व्यावहारिक क्रियाओं के माध्यम से अनुभव करने के अवसर देने चाहिए। समस्त विषयों एवं क्रियाओं की शिक्षा एक ईकाई के रूप में देने पर भी इन्होंने बल दिया है। इन सिद्धान्तों पर डीवी महोदय ने समस्या समाधान विधि (Problem Solving Method) और किलपैट्रिक ने प्रोजेक्ट विधि (Project Method) का निर्माण किया। ईकाई विधि (Unit Technique0 भी इन्हीं सिद्धान्तों पर आधारित है। आज संसार के सभी देशों की शिक्षा में इन विधियो को अपनाया जाता है। प्रयोजनवादी व्यक्ति और समाज दोनों के हित साधन के लिए विद्यालयों को समाज के सच्चे प्रतिनिधि के रूप् में देखना चाहते हैं। उनके इस विचार ने विद्यालयों को सामुदायिक केन्द्रो (Community Centered) में बदल दिया है। अब विद्यालय कोई कृत्रिम संस्थाएं नहीं माने जाते अपितु बच्चों की जैविक प्रयोगशालाओं के रूप में स्वीकार किये जाते हैं, जहां बच्चे वास्तविक क्रियाओं में भाग लेते हैं, स्वयं क्रिया करते हैं, निरीक्षण करते हैं और वास्तविक जीवन की शिक्षा प्राप्त करते हैं।

11.7 कठिन शब्द (Difficult Words)

प्रयोजनवाद की तत्व मीमांसा Metaphysics of Pragmatism

यह अनेक वस्तुओं और अनेक क्रियाओं का परिणाम है, वस्तु और क्रियाओं की व्याख्या के झमेले में ये नहीं पड़ते। इस इन्द्रियग्राह संसार के अतिरिक्त ये किसी अन्य संसार के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करते। ये आत्मा-परमात्मा के अस्तित्व को भी नहीं स्वीकारते। इनके अनुसार मन का ही दूसरा नाम आत्मा है और मन एक पदार्थ जन्म क्रियाशील तत्व है।

प्रयोजनवाद की ज्ञान मीमांसा Epistemology of Pragmatism

प्रयोजनवादियों के अनुसार अनुभवों की पुनर्रचना ही ज्ञान है। ये ज्ञान को साध्य नहीं अपितु मनुष्य जीवन को सुखमय बनाने का साधन मानते हैं। इसकी प्राप्ति सामाजिक क्रियाओं में भाग लेने से स्वयं

होती है। कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों को ये ज्ञान का आधार मानते हैं और मस्तिष्क तथा बुद्धि को ज्ञान का नियंत्रक।

प्रयोजनवाद की आचार मीमांसा Ethics of Pragmatism

प्रयोजनवादी निश्चित मूल्यों और आदर्शों में विश्वास नहीं करते इसलिए ये मनुष्य के लिए कोई निश्चित आचार संहिता नहीं बनाते। इनका स्पष्टीकरण है कि मनुष्य जीवन में निरन्तर परिवर्तन होता रहता है इसलिए उसके आचरण को निश्चित नहीं किया जा सकता। उसमें तो वह शक्ति होनी चाहिए कि वह बदले हुए पर्यावरण में समायोजन कर सके।

11.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer of Practice Questions)

भाग-1

उत्तर-1 B. अमेरिका उत्तर-2 C. अमेरिका

उत्तर-3 प्रयोजनवाद को हम प्रयोगवाद, फलवाद, क्रियावाद, व्यवहारवाद, कारणवाद, नैमितिकवाद, अनुभववाद आदि नामों से पुकारते हैं।

उत्तर-4 A. सत्य उत्तर-5 B. असत्य

उत्तर-6 प्रयोजनवाद

भाग-2

उत्तर-1 B. प्रयोगवाद उत्तर-2 C. बहुत्ववाद उत्तर-3 A. फलवाद (प्रयोजनवाद)

उत्तर-4 D. प्रयोजनवाद उत्तर-5 A. प्रयोजनवाद उत्तर- C. प्रयोजनवाद

भाग-3

उत्तर-1 B. असत्य उत्तर-2 B. असत्य उत्तर-3 A. सत्य

उत्तर-4 B. असत्य उत्तर-5 D. प्रयोजनवादी

11.9 सन्दर्भ Reference

1. पाण्डे, (डॉ) रा. श. *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*. आगरा: अग्रवाल प्रकाशन.

2. सक्सेना, (डॉ) सरोज. *शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार*. आगरा: साहित्य प्रकाशन.

3. मित्तल, एम.एल. (2008). *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*. मेरठ: इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस.

4. शर्मा, रा. ना. व शर्मा, रा. कु. (2006). *शैक्षिक समाजशास्त्र*. नई दिल्ली: एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स.

5. सलैक्स, (डॉ) शी. मै. (2008). *शिक्षक के सामाजिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्षय*. नई दिल्ली: रजत प्रकाशन.

6. गुप्त, रा. बा. (1996). *भारतीय शिक्षा शास्त्र*. आगरा: रतन प्रकाशन मंदिर.

11.10 सहायक/उपयोगी पुस्तकें (Useful Books)

1. पाण्डे, (डॉ) रा. श. *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*. आगरा: अग्रवाल प्रकाशन.

2. सक्सेना, (डॉ) सरोज. *शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार*. आगरा: साहित्य प्रकाशन.

3. मित्तल, एम.एल. (2008). *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*. मेरठ: इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस.

4. शर्मा, रा. ना. व शर्मा, रा. कु. (2006). *शैक्षिक समाजशास्त्र*. नई दिल्ली: एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स.

5. सलैक्स, (डॉ) शी. मै. (2008). *शिक्षक के सामाजिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्षय*. नई दिल्ली: रजत प्रकाशन.

11.11 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Question)

प्र. 1 प्रयोजनवाद से आप क्या समझते हैं? प्रयोजनवाद एवं शिक्षा के संबंधों की चर्चा विस्तृत रूप से कीजिए।

प्र. 2 प्रयोजनवाद में तत्व मीमांसा, ज्ञान मीमांसा एवं आचार मीमांसा के बारे में विस्तृत रूप से वर्णन कीजिए।

प्र. 3 प्रयोजनवाद की विशेषताओं की विस्तृत रूप से व्याख्या कीजिए।

प्र. 4 प्रयोजनवाद के आधारभूत सिद्धान्तों की व्याख्या कीजिए।

प्र. 5 प्रयोजनवादी शिक्षण पद्धति की विस्तृत व्याख्या कीजिए।

प्र. 6 प्रयोजनवाद की दो परिभाषाएं देते हुए प्रयोजनवाद का आधुनिक शिक्षा पर क्या प्रभाव पड़ता है ?

इकाई 12: अस्तित्ववाद (Existentialism)

12.1 प्रस्तावना Introduction
12.2 उद्देश्य Objectives
भाग-1
12.3 अस्तित्ववाद और शिक्षा Existentialism and Education
    12.3.1 अस्तित्ववाद का अर्थ Meaning of Existentialism
    12.3.2 अस्तित्ववाद की परिभाषाएं Definition of Existentialism
    12.3.3 अस्तित्ववाद की विशेषताएं Characteristics of Existentialism
    अपनी उन्नति जानिए Check your Progress
भाग-2
12.4 अस्तित्ववादी और शिक्षा Existentialism and Education
    12.4.1 अस्तित्ववादी शिक्षा का अर्थ Meaning of Existentialism
    12.4.2 अस्तित्ववादी शिक्षा के उद्देश्य Objectives of Existentialism
    12.4.3 अस्तित्ववाद व पाठ्यक्रम Curriculum and Existentialism
    अपनी उन्नति जानिए Check your Progress
भाग-3
12.5 अस्तित्ववाद और शिक्षक Existentialism and Teacher
    12.5.1 अस्तित्ववाद और विद्यार्थी Existentialism and Students
    12.5.2 अस्तित्ववाद और शिक्षण विधि Existentialism and Teaching method
    अपनी उन्नति जानिए Check your progress
12.6 सारांश Summary
12.7 शब्दावली/कठिन शब्द Difficult Words
12.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर Answer of Practice Question
12.9 सन्दर्भ Reference
12.10 उपयोगी सहायक ग्रन्थ Useful Books
12.11 दीर्घ उत्तर वाले प्रश्न Long answer type Question

12.1 प्रस्तावना (Introduction)

अस्तित्ववाद मनुष्य के अस्तित्व की संभावना और उसके वर्तमान रूपों से संबंधित है। स्वतंत्रता की भावना को नैसर्गिक तथा स्वतंत्रता को जन्म सिद्ध अधिकार मान लेने के बाद इस यात्रा का प्रारम्भ होता है, जिसमें मानवीय जीवन की संभावनायें प्रत्येक व्यक्ति के लिए सुलभ हो सके। सोरेन किर्कगार्ड एवं जीन पॉल सार्त्रे ने अस्तित्ववादी चिन्तन को नया नैतिक धरातल प्रदान किया। उन्होंने स्वतंत्रता के प्रश्न को एक मानवीय प्रश्न बनाया और उसे समाज के संगठनात्मक ढांचे के अन्दर व्यवस्थित करने का प्रयास किया। मानवीय विकास के वर्तमान दौर की उसने पहली बार परिस्थितिगत तात्विक व्याख्या की और लगभग उसे कार्ल मार्क्स से मिलती-जुलती शब्दावली में वर्ग समाज कहा। सार्त्रे मनुष्य की वैयक्तिक इच्छाओं को ही अस्तित्व का केन्द्रीय बिन्दु मानता है तथा वर्तमान विघटनकारी परिस्थितियों के लिए औद्योगिक सभ्यता को उत्तरदायी ठहराता है।

वास्तव में अस्तित्ववाद पिछली दो शताब्दियों के 125 वर्षों में जिस तरह के परस्पर विरोधी विचारों को एक साथ मिला-जुलाकर एक बिन्दु पर केन्द्रित करता रहा है कि मानवीय अस्तित्व संकट के दौर से गुजर रहा है और मनुष्य के लिए अपने अस्तित्व की रक्षा का प्रश्न बन गया है। वह सभी दार्शनिकों की प्रवृतियों का प्रस्थान बिन्दु रहा है। मानवीय अस्तित्व के प्रारूप के बारे में अस्तित्वाद की धारणा अभी स्पष्ट नहीं है बल्कि स्वतंत्रता तथा परिस्थितियों की व्याख्या इसके दो मुद्दे हैं, जहां से सब कुछ नियंत्रित होता है। अस्तित्व की निरर्थकता तीसरा बिन्दु है जहां सभी विचारक सहमत होते हैं और स्वतंत्रता को चरितार्थ करने के प्रश्न पर पुनः गतिरोध उत्पन्न होता है।

12.2 उद्देश्य (Objectives)

1. अस्तित्ववाद और शिक्षा के संबंध में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
2. अस्तित्ववाद का अर्थ, परिभाषाएं और विशेषताओं के बारे में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
3. अस्तित्ववादी शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यक्रम के बारे में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
4. अस्तित्ववादी शिक्षक, विद्यार्थी व शिक्षण विधि के बारे में जान सकेंगे।
5. अस्तित्ववाद और मानव जीवन का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

12.3 अस्तित्ववाद और शिक्षा (Existentialism and Education)

प्राचीन काल से आज तक दर्शन शास्त्र में सब कहीं अस्तित्व की समस्याओं पर विचार किया जाता रहा है। प्राचीन उपनिषदों में यह समस्या थी कि मनुष्य में वह तत्व क्या है जिसे उसका सच्चा अस्तित्व माना जा सकता है। पूर्व और पश्चिम में सब कहीं दार्शनिकगण अस्तित्व की प्रकृति के विषय में विचार करते रहे हैं। संक्षेप में, संसार में कोई भी दर्शन ऐसा नहीं है जो किसी न किसी अर्थो में अस्तित्ववादी न कहा जा सकता हो। तब फिर समकालीन दर्शन में अस्तित्ववादी दार्शनिक सम्प्रदाय की विशेषता क्या है? इसकी विशेषता यह है कि यह दार्शनिक समस्याओं में सत् (Being) से अधिक सम्भूति (Becoming) पर, सामान्य (Universal) से अधिक विशेष (Particulars) पर और तत्व (Essence) से अधिक अस्तित्व (Existence) पर जोर देता है। कीर्केगार्ड के शब्दों में, ‘‘अस्तित्ववादी की मुख्य समस्या यह है कि मैं ईसाई किस प्रकार बनूंगा।’’ नास्तिकवादी यहां पर ईसाई शब्द के स्थान पर प्रमाणिक सत् (Authentic Being) शब्द का प्रयोग कर सकता है। इस प्रकार अस्तित्ववादियों ने ज्ञान (knowledge) और व्याख्या (Explaining) के स्थान पर क्रिया (Action) और चुनाव (Choice) पर जोर दिया है, क्या (What) के स्थान पर कैसे (How) को महत्वपूर्ण माना है।

अस्तित्ववादी दर्शन का प्राचीन यूनानी दर्शन से संबंध बतलाते हुए सुकरात को अस्तित्ववादी माना गया है। डॉ. राधाकृष्णन् के शब्दों में ‘‘अस्तित्ववाद एक प्राचीन प्रणाली के लिये एक नया नाम है।’’ इसी बात को दूसरी तरह से रखते हुये ब्लैकहम ने लिखा है, ‘‘यह प्रोटेस्टेंट अथवा स्टोइक प्रकार के व्यक्तिवाद की आधुनिक शब्दों में पुनः स्थापना प्रतीत होता है, जो कि पुनर्जागरण युग के अनुभववादी व्यक्तिवाद अथवा आधुनिक उदारतावाद अथवा एपीक्यूरस के व्यक्तिवाद और रोम या मास्को तथा प्लेटो की सार्वभौम व्यवस्था के विरूद्ध लड़ा हुआ दिखलाई पड़ता है। यह आदर्शो के संघर्ष में मानव अनुभव के आवश्यक सोपानों में से एक की समकालीन पुनर्जागृति है, जिसे इतिहास ने अभी समाप्त नहीं किया है।

12.3.1 अस्तित्ववाद का अर्थ Meaning of Existentialism

अस्तित्ववाद आधुनिक समाज तथा परम्परागत दर्शन की कुछ विशेषताओं के विरूद्ध एक आन्दोलन है। यह अंशतः ग्रीक की विवेकशीलता या शास्त्रीय-दर्शन के विरोध स्वरूप प्रकट हुआ। अस्तित्ववाद प्रकृति तथा तर्क के विरूद्ध वैयक्तिक की संज्ञा से प्रकट हुआ। यह विचार आधुनिक या प्रौद्योगिक युग की अवैयक्तिक प्रवृत्ति के विरोध स्वरूप प्रकट हुआ। औद्योगिक समाज व्यक्ति को मशीन के अधीन रखने पर बल देता है। इस कारण यह खतरा उत्पन्न हो गया है कि मानव एक यंत्र या वस्तु बनता जा रहा है। इस प्रकृति के विरोधस्वरूप यह विचार उभरा है। यह वैज्ञानिकवाद तथा प्रत्यक्षवाद की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप विकसित हुआ। वैज्ञानिकवाद तथा प्रत्यक्षवाद मानव की

बाह्य शक्ति पर बल देते हैं तथा उसे (मानव को) भौतिक क्रियाओं के अंग के रूप में संचालित करता है। इसका अधिनायकवादी प्रवृत्ति के विरोध में विकास हुआ। अतः अस्तित्ववाद एक प्रतिक्रियात्मक सिद्धान्त के रूप में उभरा है। व्यक्ति की विषम परिस्थितियों में उत्पन्न वेदनाओं का अनुभव कर उसे स्वर देने के लिए यह विचार एक समयोचित प्रयास है, प्रभुत्व और बाह्य दर्शनों का स्वतंत्र के नाम पर विरोध किया तथा स्पष्ट किया कि व्यक्ति अपने राजनैतिक, धार्मिक, नैतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक आदि संबंधों में स्वतंत्र किन्तु दायित्वयुक्त है। यह विरोध चिन्तन या तर्क बुद्धि की खोज नहीं बल्कि भोगे हुए सत्य का परिणाम है, जिसने उनके जीवन को झकझोर दिया।

आधुनिक युग में अभ्युदय के साथ ही धर्म ने विज्ञान को अपनी ज्योतिशलाका पकड़ा दी और विज्ञान ने औद्योगिक तथा प्रौद्योगिक प्रगति के क्रम में व्यक्ति को व्यक्ति नहीं रहने दिया। उसके अस्तित्व का अर्थ उसी की आंखों में समाप्त कर दिया। इसके साथ ही हीगल के 'विश्व मन' तथा मार्क्स के 'साम्यवाद' ने भी व्यक्ति की विशिष्टता और स्वतंत्रता को कोई महत्व नहीं दिया। इन सबके साथ युक्त होकर विश्वयुद्धों ने मूल्यों का विघटन किया। परम्परागत मूल्यों की मृत्यु ने धर्म, नैतिकता, विज्ञान, समानता भ्रातृत्व के सिद्धान्तों को धूल में मिला दिया। इस प्रकार अस्तित्ववाद शास्त्रीय तथा परम्परागत दर्शन पर एक प्रहार के रूप में विकसित हुआ, जिसने जीवन से असम्बद्ध दर्शन को समाप्त कर दिया। वस्तुतः अस्तित्ववाद मानवीय जीवन और नियति का यथार्थ परक विश्लेषण है। सोरेन किर्कगार्ड के अनुसार, अस्तित्व शब्द का उपयोग इस दावे पर बल देने के लिए किया जाता है कि प्रत्येक व्यक्ति या इकाई अपने आप में स्वयं जैसी या अद्भुत है तथा आध्यात्मिक या वैज्ञानिक प्रक्रिया के संदर्भ में अविश्लेषणीय है। यह वह अस्तित्वमय है, जो स्वयं चुनाव करता है एवं स्वयं चिन्तन करता है। उसका भविषय कुछ अंशों में उसके स्वतंत्र चुनाव पर निर्भर है। अतः इस संबंध में कुछ भी नहीं कहा जा सकता है।

12.3.2 अस्तित्ववाद की परिभाषाएं Definitions of Existentialism

अस्तित्ववाद की निम्न परिभाषाएं हैं:-

"जीन पॉल सार्त्रे लिखते हैं कि- ''अस्तित्ववाद अन्य कुछ नहीं वरन् एक सुसंयोजित निरीश्वरवादी स्थिति से सभी निष्कर्षो को उत्पन्न करने का प्रयास है।''

एनसाइक्लोपीडिया ऑफ ब्रिटेनिका के अनुसार- ''अस्तित्ववादी दर्शन चिन्तन का वह मार्ग है जो सम्पूर्ण पार्थिव ज्ञान का उपयोग करता है, उसे इस क्रम में परिवर्तित करता है, जिससे मानव पुनः स्वयं जैसा बन सके।''

डॉ. राधाकृष्णन के शब्दों में- ''अस्तित्ववाद एक प्राचीन प्रणाली के लिए एक नया नाम है।''

12.3.3 अस्तित्ववाद की विशेषताएं Characteristics of Existentialism

अस्तित्ववाद की निम्न विशेषताएं हैं:-

(1) आदर्शवाद की आलोचना Criticism of Idealism - अस्तित्ववाद आदर्शवाद के विरूद्ध विद्रोह के रूप में खड़ा हुआ है। अस्तु, अस्तित्ववादी दार्शनिक आदर्शवाद अथवा प्रत्ययवाद के सिद्धान्त का खण्डन करते हैं। प्रत्ययवाद के अनुसार मानव व्यक्तित्व किसी सार्वभौम सारतत्व या आध्यात्मिक तत्व की अभिव्यक्ति है। इसके बिल्कुल विरूद्ध अस्तित्ववादियों के अनुसार मानव अस्तित्व सार्वभौम सार तत्व (Universal Essence) के पहले होता है। प्रत्ययवाद के अनुसार मानव व्यक्तित्व की स्वतंत्रता सार्वभौम आध्यात्मिक तत्व की स्वतंत्रता पर निर्भर है।

(2) अन्तर्द्वन्द की समस्या पर जोर Emphasis on problem of Inner conflict- आज के जटिल संसार में सबसे बड़ी समस्या मनुष्य को किसी सिद्धान्त का अनुयायी बनाना नहीं बल्कि उसे उसकी स्वतंत्रता का बोध कराना है। ऐसा होने से आदान प्रदान सहज हो जाता है। संसार में शान्ति केवल शान्ति-शान्ति चिल्लाने से नहीं मिलेगी। जब तक मानव वस्तु से भी निम्न बना रहेगा तब तक शान्ति नहीं हो सकती। इस प्रकार अन्य दर्शनों की तुलना में अस्तित्ववादी दर्शन अन्र्द्वन्द की समस्याओं पर विशेष जोर देता है। परम्परागत दर्शन इन समस्याओं को महत्वपूर्ण नहीं मानते। मानव की जगत से पृथकता और स्वयं अपने से पृथकता से ही दर्शन प्रारम्भ होता है।

(3) प्रकृतिवाद की आलोचना Criticism of Naturalism - अस्तित्ववादी दार्शनिक एक ओर आदर्शवाद और दूसरी ओर उसके विपरीत दर्शन प्रकृतिवाद की भी आलोचना करते हैं। प्रकृतिवादी दर्शन के अनुसार-मानव व्यक्तित्व प्राकृतिक नियमों से नियंत्रित होता है और वह किसी प्रकार की स्वतंत्रता नहीं रखता। दूसरी ओर अस्तित्ववादियों ने मानव को प्रकृति के द्वारा नियंत्रित न मानकर व्यक्तित्व की स्वतंत्रता की स्थापना की है।

(4) निराशा से उत्पत्ति Born from Despair - हमारे चारों ओर का जगत अनेक संघर्षो और समस्याओं से भरा हुआ है, किन्तु सामान्य समझदार व्यक्ति इनसे समझौता करके जीवन जीता रहता है। अस्तित्ववादी को यह जीवन असंभव लगता है और वह अपने को असहाय महसूस करता है। वह अत्यधिक चिन्ता से व्याप्त हो जाता है। उसे भय लगता है कि वह कर्तव्यों को पूरा नहीं कर सकेगा। उसे प्रतीत होता है कि वह चारों ओर के जगत को समझ नहीं पा रहा है। वह समय की आवश्यकताओं को पूरा करने में अपने को असमर्थ पाता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से कुछ लोग इसे असामान्य संवेदनशीलता कह सकते हैं।

(5) मानव व्यक्तित्व का महत्व Value of Human Personality - अस्तित्ववादी दार्शनिक मानव व्यक्तित्व को अत्यधिक महत्वपूर्ण ठहराते हैं और इसके सामने ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा, जगत किसी को भी इतना अधिक महत्वपूर्ण नहीं मानते। मानव व्यक्तित्व का मूल तत्व स्वतंत्रता है। समाज

व्यक्ति के लिए है न कि व्यक्ति समाज के लिए है। यदि सामाजिक नियम व्यक्ति की स्वतंत्रता में बाधक हों तो व्यक्ति को इन नियमों का विरोध करने का अधिकार है। इस धारणा को लेकर अस्तित्ववादी साहित्यकारों और कलाकारों ने अपने विचारों को स्वतंत्र रूप से अभिव्यक्त करने की स्वतंत्रता को बनाये रखने के लिए सब कहीं भारी संघर्ष किया है और कर रहे हैं। वे इस स्वतंत्रता को अत्यधिक पवित्र मानते हैं और उसे किसी भी कीमत पर बेचने के लिए तैयार नहीं हैं। विभिन्न अस्तित्ववादी दार्शनिकों ने इस स्वतंत्रता की अलग-अलग प्रकार से व्याख्या की है।

(6) वैज्ञानिक दर्शन की आलोचना Criticism of Scientific Philosophy - प्रत्ययवाद और प्रकृतिवाद के अतिरिक्त अस्तित्ववादी दार्शनिक वैज्ञानिक दर्शन के आलोचक हैं। वास्तव में इन तीनों प्रकार के दर्शनों के विरूद्ध प्रतिक्रिया के रूप में ही अस्तित्ववाद का जन्म हुआ है। पाश्चात्य समाजों में विज्ञान और प्रौद्योगिकी की प्रगति के साथ-साथ नगरीयता बढ़ी। बड़े-बड़े नगरों में मानव का अस्तित्व भीड़ में खो गया। विशालकाय मशीनों के सामने उसका महत्व नगण्य हो गया। कारखाने का एक पुर्जा बनकर वह अपने अस्तित्व को भूल गया। यांत्रिक सभ्यता में उसके मूल्य खो गये। पग-पग पर वह यंत्रों और मशीनों का गुलाम बन गया। अस्तित्ववाद मानव के इसी अमानवीयकरण के विरूद्ध एक विद्रोह है। द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विकास का जो भयंकर रूप सामने आया उसे देखकर साहित्यकारों और कलाकारों ने मानव समस्याओं की ओर ध्यान देना आवश्यक समझा और मानव अस्तित्व के महत्व को फिर से स्थापित करने की आवश्यकता अनुभव की। अस्तु, साहित्य और कला के क्षेत्र में और क्रमशः धर्म व दर्शन के क्षेत्र में भी अस्तित्ववादी चिन्तन बढ़ने लगा।

(7) दार्शनिक व्यवस्था की रचना नहीं No Construction of Philosophical system- प्राचीनकाल से दार्शनिकगण ईश्वर, आत्मा और जगत, देश और काल, सृष्टि और विकास इत्यादि समस्याओं पर विचार करते रहे हैं। अस्तित्ववादी की समस्या व्यक्तिगत, वर्तमान और व्यावहारिक है। वह इन परम्परागत दार्शनिक प्रश्नों पर विचार नहीं करता। इसलिए वह दार्शनिक सिद्धान्त रचना को महत्व नहीं देता।

(8) आत्मनिष्ठता का महत्व Importance of Subjectivity - अस्तित्ववादी दार्शनिक कीर्केगार्ड ने कहा था कि सत्य आत्मनिष्ठता है। जबकि विज्ञान से प्रभावित दार्शनिकों ने आत्मनिष्ठता और व्यक्तिगत अनुभव को विशेष महत्वपूर्ण माना है। अस्तित्ववादी दर्शन मानव को उसके व्यक्तित्व के विकास में सहायता करता है और उसके प्रत्यक्ष अनुभवों जैसे-भय, आनन्द, घुटन इत्यादि की व्याख्या करके उनमें अन्तर्निहित सत् तत्व के दर्शन कराता है। प्रत्येक व्यक्ति आत्मनिष्ठ होकर ही अपने अन्दर के सम् (Being) को जान सकता है। यह एक रचनात्मक अनुभव है। इसी से मानव मूल्यों का सृजन होता है। यह एकाकीपन (Loneliness) की स्थिति है, जिसमें व्यक्ति प्रत्यक्ष रूप से केवल अपने अस्तित्व के सामने खड़ा होता है।

(9) व्यक्ति और विश्व के संबंध की समस्या पर जोर Emphasis on the Problem of the individual and Word - अन्त में अस्तित्ववादी दर्शन के अनुसार एक प्रमुख समस्या व्यक्ति और विश्व का संबंध है। इसकी जो परम्परागत व्याख्यायें की गयी हैं, उनसे यह समस्या हल नहीं होती। यदि निरपेक्ष सार्वभौम तत्व को हेगेल के समान मान लिया जाये तो व्यक्ति में किसी प्रकार की स्वतंत्रता नहीं रहती। अस्तु, अस्तित्ववादी ऐसे दर्शनों के विरूद्ध हैं क्योकि इस प्रकार के दर्शनों के रहते हुए व्यक्ति का कोई नैतिक उत्तरदायित्व नहीं बनता। अस्तित्ववादियों के अनुसार मानव को किसी भी नियम के अधीन नहीं किया जा सकता है,चाहे वह विश्व का नियम हो, प्रकृति का नियम हो, राज्य का नियम अथवा समाज का नियम। नियम कार्य की प्रमाणिकता नहीं दिखलाता, उल्टे कार्य ही नियम को प्रमाणिक बनाता है।

अस्तित्ववादी दर्शन किसी एक विचारक की सृष्टि नहीं है। यह दर्शन अनेक दार्शनिकों के लेखों में बिखरा हुआ है जिनमें प्रमुख हैं-नीत्शे (Nietzshe) सोरेन कीकेगार्ड (S.Kierkegaard), गैब्रियल मार्सेल (G.Marchel), मार्टिन हाईडैगर (M.Heideggar) ज्यां पॉल सार्त्र (J.P.Sartre), कार्ल जास्पर्स ;(K.Jaspers), एबगनामो (Abbagnamo), बरदाइयेव (Barduaev), कामू (Camus), इत्यादि। इन दार्शनिकों ने अस्तित्व के विषय में भिन्न-भिन्न प्रकार के सिद्धान्त उपस्थित किये हैं। सार्त्र अपने दर्शन को विशेष रूप से अस्तित्ववादी कहता है जबकि मार्सेल अपने को अस्तित्ववादी मानने के लिए भी तैयार नहीं है। कीर्केगार्ड और मार्सेल दोनों आत्मवादी विचार हैं। कुछ अस्तित्ववादी आस्तिक हैं और कुछ नास्तिक हैं। जास्पर्स और सार्त्र के चिन्तन में दर्शन का मनुष्य से उतना संबंध नहीं है, जितना कि कीर्केगार्ड के दर्शन में दिखलाई पड़ता है। कीर्केगार्ड, जास्पर्स और मार्सेल ईश्वरवादी हैं। दूसरी ओर नीत्शे हाईडेगर और सार्त्र नास्तिक हैं।

अपनी उन्नति जानिए Check your Progress -

प्र. 1. ‘अस्तित्ववाद एक प्राचीन प्रणाली के लिए नया नाम है’, यह परिभाषा है-

(अ) डॉ. राधाकृष्णन् (ब) कीर्केगार्ड (स) ब्लैकहम (द) रॉस

प्र. 2. कौन मानव को प्रकृति के द्वारा नियंत्रित न मानकर व्यक्ति की स्वतंत्रता की स्वतंत्रता पर बल देता है-

(अ) प्रकृतिवादी (ब) अस्तित्ववादी (स) आदर्शवादी (द) प्रत्ययवादी

प्र. 3. ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा, जगत से भी ऊपर मानव को महत्व देते हैं-

(अ) आदर्शवादी (ब) प्रकृतिवादी (स) अस्तित्ववादी (द) रॉस

प्र. 4. ‘प्रत्येक व्यक्ति आत्मनिष्ठ होकर ही अपने अन्दर के सम् (Being) को जान सकता है, यह रचनात्मक अनुभव है।’ यह परिभाषा है-

(अ) आदर्शवाद (ब) प्रकृतिवाद (स) प्रत्ययवाद (द) अस्तित्ववाद

प्र. 5. अस्तित्ववाद आदर्शवाद के विरूद्ध विद्रोह के रूप में खड़ा हुआ है-

(अ) सत्य (ब) असत्य

भाग-दो

12.4 अस्तित्ववादी शिक्षा (Existentialism Education)

अस्तित्ववादी शिक्षा के संबंध में पूर्ण आस्था तथा निश्चय के साथ यह नहीं कहा जा सकता है कि अमुक अस्तित्ववादी ने शिक्षा के संबंध में निश्चित ग्रन्थ या लेख में शैक्षिक विचारों को प्रकट किया है। बटलर ने कहा है कि ‘‘अस्तित्ववादी दर्शन ने शिक्षा में कोई विशेष रूचि प्रकट नहीं की है।’’

अतः जिन शैक्षिक निहितार्थो को यहां प्रस्तुत किया जा रहा है, वे अस्तित्ववादी विचारकों द्वारा निष्कर्षित नहीं किये गये हैं।

12.4.1 अस्तित्ववादी शिक्षा का अर्थ Meaning of Existentialism Education

अस्तित्ववादी विचारकों का मत है कि हम भौतिक वास्तविकताओं या सत्ताओं के जगत में निवास करते हैं तथा हमने इन सत्ताओं के विषय में उपयोगी तथा वैज्ञानिक ज्ञान का विकास कर लिया है, लेकिन हमारे जीवन में सबसे महत्वपूर्ण पक्ष वैयक्तिक या अवैज्ञानिक है। इसलिए अस्तित्ववादी इस बात पर बल देते हैं कि सबसे महत्वपूर्ण एवं प्रमुख ज्ञान मानवीय दशाओं या चयनों से संबंधित है।

इस विचार के अनुसार शिक्षा वह प्रक्रिया है जो स्वतंत्रता के चयन के लिए चेतना विकसित करती है। शिक्षा हममें स्व-चेतना की भावना का निर्माण करती है। इसी के कारण हम मानव प्राणी कहने के अधिकारी हो जाते हैं।

12.4.2 अस्तित्ववादी मनोविज्ञान Existentialism Psychology

अस्तित्ववादी शैक्षिक चिन्तन, सीखने वाले के माध्यमिक तथा रजस्वला के उत्तरोत्तर काल पर बल देता है। अस्तित्ववादियों के अनुसार, जब बालक का जन्म होता है तब बालक के अस्तित्व को जन्म मिलता है। इसके बाद पूर्व अस्तित्व का पक्ष आता है। इस समय बालक अपने ‘स्व’ के प्रति चेतनशील नहीं होता है। इसके बाद ‘अस्तित्ववादी आन्दोलन’ आरम्भ होता है। इस समय व्यक्ति

आकस्मिक रूप से अपने अस्तित्व के बारे में सचेत हो जाता है तथा यह भावना भी विकसित होती है कि पुनः अपनी बाल्यावस्था में जो कि 'स्व' की अज्ञानता का समय होता है। इस भावना को 'Pre-Existentialism Nostaligia' कहा जाता है। व्यक्ति इस भावना का बहादुरी के साथ सामना करता है। मनोवैज्ञानिक विचारधारा को निम्न रेखाचित्र से स्पष्ट किया जा रहा है-

अ ब स

Pre-Existentialism Existentialism

Phase Phase

(अ) जन्म (बालक का जन्म)

(ब) वह स्थिति जिसमें बाल्यवस्था की स्थिति को वापस नहीं लाया जा सकता है।

(स) मृत्यु

12.4.3 अस्तित्ववादी शिक्षा के उद्देश्य Objectives of Existentialism Education

अस्तित्ववाद का विश्वास है कि प्रत्येक व्यक्ति अद्भुत या अनोखा है। अतः शिक्षा को व्यक्ति में इस अनोखेपन को विकसित करना चाहिए। दूसरे शब्दों में, शिक्षा वैयक्तिक भेदों को संतुष्ट करे। शिक्षा का उद्देश्य प्रत्येक व्यक्ति को अपने अद्भुत गुणों को विकसित करने के योग्य बनाना चाहिए। अर्थात् असमनुरूपता शिक्षा का एक वांछनीय गुण है।

सार्त्रे की विचारधारा के अनुसार मानव अनुभूति करने में सक्षम है। वह जो बनना चाहता है, बनने के लिए स्वतंत्र है। शिक्षा का उद्देश्य उसे अपने मूल्यों के चयन में सक्षम बनाना होना चाहिए। आज की शिक्षा में निम्न उद्देश्यों को सम्मिलित करके शिक्षा को एक नई दिशा प्रदान की जा सकती है -

(1) स्वाभाविक वातावरण में शिक्षा देना।

(2) प्रामाणिक अस्तित्व का निर्माण करना।

(3) स्वानुभूतियों के अनुकूल व्यक्तित्व का विकास करना।

(4) स्वतंत्रतापूर्वक मूल्यों के चयन के लिए प्रेरित करना।

(5) उत्तरदायित्व की भावना का विकास करना।

(6) व्यक्ति को जीवन के लिए तैयार करना।

(7) स्वतंत्र एवं उत्तरदायित्वपूर्ण व्यक्तित्व का निर्माण करना।

(8) वैयक्तिता का विकास करना।

12.4.4 अस्तित्ववाद व पाठ्यक्रम Existentialism and Curriculum

अस्तित्ववादी पाठ्यक्रम की प्रस्तावना में आस्था नहीं रखते हैं। छात्र स्वयं अपने पाठ्यक्रम का चयन अपनी आवश्यकता, योग्यता तथा जीवन की परिस्थितियों के अनुकूल करे। यद्यपि वे ब्रह्माण्ड के विषय में मूलभूत ज्ञान प्रदान करने के पक्ष में नहीं हैं, फिर भी वे पाठ्यक्रम को उन सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा अन्य सामूहिक विषयों की अपेक्षा मानवीय अध्ययनों पर अधिक बल देते हैं। इन मानवीय अध्ययनों के माध्यम से मानव दुःख, चिन्ता तथा मृत्यु आदि के विषय में ज्ञान प्राप्त करता है। सार्त्रे की विचारधारानुसार मानविकी एवं सामाजिक विषयों को पाठ्यक्रम में स्थान दिया जाए क्योंकि ये विषय व्यक्ति के रागात्मक पक्ष का विकास करके उसे इस जगत की वास्तविकताओं यथा-पीड़ा, व्यथा, प्रेम, घृणा, पाप, मृत्यु आदि से परिचित कराते हैं। इस प्रकार व्यक्ति जीवन में आने वाले सुख-दुःख के लिए तैयार हो जाता है।

अपनी उन्नति जानिए (Check your Progress)

प्र. 1. अस्तित्ववादी दर्शन ने शिक्षा में कोई विशेष रूचि प्रकट नहीं की है-

(अ) बटलर (ब) सार्त्रे (स) ब्लैकहम (द) रॉस

प्र. 2. ''शिक्षा हममें स्व-चेतना की भावना का निमार्ण करती है। इसी के कारण हम मानव प्राणी कहने के अधिकारी हो जाते हैं।'' यह विचारधारा है-

(अ) अस्तित्ववाद (ब) प्रयोजनवाद (स) आदर्शवाद (द) प्रयोगात्मकवाद

प्र. 3. स्वतंत्र एवं उत्तरदायित्वपूर्ण व्यक्तित्व का निर्माण करना किसका उद्देश्य है-

(अ) आदर्शवाद (ब) अस्तित्ववाद (स) प्रयोजनवाद (द) प्रयोगवाद

प्र. 4. 'छात्र स्वयं अपने पाठ्यक्रम का चयन अपनी आवश्यकता, योग्यता तथा जीवन की परिस्थितियों के अनुकूल करें।'' यह विचारधारा है-

(अ) प्रयोजनवाद (ब) प्रकृतिवाद (स) आदर्शवाद (द) अस्तित्ववाद

प्र. 5. पीड़ा, व्यथा, प्रेम, घृणा, पाप, मृत्यु आदि वास्तविकताओं से परिचय कराता है-

(अ) अस्तित्ववाद (ब) प्रयोजनवाद (स) प्रकृतिवाद (द) आदर्शवाद

भाग-तीन

12.5 अस्तित्ववाद व शिक्षक (Existentialism and Teachers)

अस्तित्ववादी विचारधारा में शिक्षक को आरोहण करने वाले व्यक्ति के रूप में नहीं देखा गया है। उससे यह अपेक्षा की जाती है कि वह विषय सामग्री को इस प्रकार प्रस्तुत करे कि बालक उसमें निहित सत्य को स्वतंत्र साहचर्य द्वारा खोज सके। शिक्षक बालक का मार्गदर्शन अवश्य करें, परन्तु छात्रों की क्षमताओं व योग्यताओं के अनुरूप प्रत्येक बालक का अपना 'स्व' होता है। शारीरिक, मानसिक तथा आंतरिकता से जो कुछ वह है, वही उसका व्यक्तित्व है। बालक का 'स्व' कुण्ठित न होने पाये। वह किसी बात को इसलिए स्वीकार न कर ले कि यह उसको स्वीकार करनी ही है। वरन् वह प्रत्येक बात का परीक्षण, आलोचना एवं जांच करके ही स्वीकार करे। शिक्षक छात्रों को अपनी आंतरिक भावनाओं के विषय में बातचीत करने के लिए प्रोत्साहित करे जिससे वे अपनी सत्ता को स्पष्ट कर सकें।

12.5.1 अस्तित्ववाद व विद्यार्थी Existentialism and Students -

अस्तित्ववादी सीखने वाले व्यक्ति को महत्वपूर्ण स्थान देते हैं। ये सुव्यवस्थित व्यक्ति या सामंजस्यपूर्ण व्यक्तित्व पर बल नहीं देते हैं बल्कि व्यक्ति को अनिर्मित मानते हैं। वह स्वयं को निर्मित करने वाला है। वह स्वतंत्र रहकर अपने व्यक्तित्व को जीवन्त बनाना चाहता है। इस कारण सार्त्रे मनुष्य के उत्तरदायित्व को अधिक महत्वपूर्ण बनाता है। जिससे वह अपने मूल्यो को निर्मित कर सके। वस्तुतः अस्तित्ववादी शिक्षक-विद्यार्थी के बीच 'मैं-तू' के संबंध को स्थापित करने पर बल देता है।

12.5.2 अस्तित्ववाद व शिक्षण विधि Existentialism and Teaching Method

अस्तित्ववादी सुकराती उपागम का समर्थन करता है। वे इसी कारण 'शिक्षक-शिष्य' के मध्य मैं-तू' के संबंध स्थापित करने पर बल देते हैं। इस कारण वे विद्यालयी शिक्षा की अपेक्षा पारिवारिक शिक्षा को उपयुक्त मानते हैं। डब्ल्यू. आर.निबलैट का मत है कि अस्तित्ववादी समय-तालिका की बजाए पारस्परिक संपर्क पर अधिक बल देते हैं। सृजनात्मकता के लिए शिक्षा पर अस्तित्ववादी दार्शनिकों ने अधिक बल दिया है। इस कारण वे शिक्षण में व्यक्तिगत अवधान पर अधिक बल देते हैं।

सार्त्रे के अनुसार सच्चा ज्ञान वही है जो स्वयं मनुष्य द्वारा अर्जित किया जाये। अतः अस्तित्ववादी शिक्षा में 'करके सीखने के' सिद्धान्त पर बल दिया जाता है।

12.5.3 अस्तित्ववादी विद्यालय Existentialism Schools -

अस्तित्ववादियों के अनुसार विद्यालय वह स्थान है जहां शिक्षक संवाद तथा विचार-विमर्श कर सकता है। यह विचार-विमर्श चयन तथा जीवन संबंधी मामलों के संबंध में रहता है। इस स्थान पर विषयों के लिए विचार-विमर्श करने के लिए परिस्थितियों को निर्मित किया जा सकता है। विद्यालय में शिक्षक तथा शिक्षार्थी दोनों प्रश्न पूछने, उत्तर सुझाने तथा संवादों में संलग्न रहने के अवसर प्राप्त करते हैं।

12.5.4 अस्तित्ववाद व अनुशासन Existentialism and Discipline -

सार्त्रे किसी भी आचार-संहिता को स्वीकार नहीं करता। वह बालक को पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान करता है। ऐसी परिस्थिति में यह संभव है कि असंख्य विद्यार्थी मनमानी करें और समाज में अव्यवस्था फैल जाये। सार्त्रे के अनुसार वैयक्तिक चेतना द्वारा इस समस्या को आसानी से सुलझाया जा सकता है। स्वतंत्र चयन से वैयक्तिक निर्वाह की क्षमता उत्पन्न होती है।

व्यक्ति जो कुछ चयन करेगा, शुभ होगा। इसी प्रकार अशुभ का चयन भी हो जाता है तो उसका भोक्ता वह स्वयं है। इस प्रकार चयन से वैयक्तिक दायित्व उत्पन्न होता है। इस उत्तरदायित्व भाव तथा स्वतंत्रता से परे कोई नैतिक गुण नहीं होता। इससे ही अनुशासन लाया जा सकता है। अस्तित्ववाद ऐसा दर्शन है जिसने क्रान्तिकारी विचारों से मानव के अस्तित्व को मिटते देखा और पुनः मानव प्रतिष्ठा को प्राप्त करने के लिए उसके न हो या उसे शिक्षित न किया जाये। आज के युग में मनुष्य के अस्तित्व की प्राथमिकता को बनाए रखते हुए अतिमानव के व्यक्तित्व की कल्पना उभारने का प्रयास अस्तित्ववाद ने किया है।

अपनी उन्नति जानिए Check your progress -

प्र. 1. शिक्षक-विद्यार्थी के बीच 'मैं-तू' के संबंध को स्थापित करने पर बल देता है-

(अ) प्रकृतिवादी (ब) प्रयोजनवादी (स) अस्तित्ववादी (द) आदर्शवादी

प्र. 2. शिक्षण विधि में समय तालिका की बजाए पारस्परिक समर्पण पर अधिक बल देते हैं-

(अ) अस्तित्ववादी (ब) प्रकृतिवादी (स) प्रयोजनवादी (द) आदर्शवादी

प्र. 3. करके सीखने के सिद्धान्त पर बल देते हैं-

(अ) प्रकृतिवादी (ब) अस्तित्ववादी (स) प्रयोजनवादी (द) आदर्शवादी

प्र. 4. वैयक्तिकता का विकास संभव है-

(अ) प्रकृतिवादियों द्वारा (ब) आदर्शवादियों द्वारा

(स) प्रयोजनवादियों द्वारा (द)अस्तित्ववादियों द्वारा

12.6 सारांश (Summary)

अस्तित्ववाद का विकास समकालीन सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक परिस्थितियों के विरूद्ध प्रतिक्रिया के रूप में हुआ, जिनमें मानव ने अपनी आत्मा खो दी है। इस दर्शन ने कला और साहित्य पर व्यापक प्रभाव डाला है। राजनीति में वह युद्ध के विरूद्ध है। उसके अनुयायी सक्रिय रूप से युद्ध का विरोध करते हैं। शिक्षा के क्षेत्र में अस्तित्ववाद का योगदान अग्रलिखित हैं-

(1) सम्पूर्ण विकास - अस्तित्ववादियों का लक्ष्य शिक्षा के द्वारा बालक के व्यक्तित्व का सम्पूर्ण विकास है। शिक्षा का सरोकार सम्पूर्ण मनुष्य से है। उसका लक्ष्य चरित्र निर्माण और आत्म-साक्षात्कार है।

(2) आत्मगत ज्ञान - विज्ञान के वर्तमान युग में वस्तुगत ज्ञान पर इतना अधिक जोर दिया जा रहा है कि आत्मगत शब्द अयथार्थ, व्यर्थ, अज्ञानपूर्ण और अप्रांसगिक के लिए प्रयोग किया जाता है। अस्तित्ववादियों ने यह दिखलाया कि आत्मगत ज्ञान वस्तुगत ज्ञान से भी अधिक महत्वपूर्ण उनका कहना है कि सत्य आत्मगत है। वह मानव मूल्य है और मूल्य तथ्य नहीं होते। मूल्यों में आस्था कम होती है। अस्तु, विज्ञान और गणित का शिक्षा के साथ-साथ शिक्षा के प्रत्येक स्तर पाठ्यक्रम में मानविकी अध्ययनों, कला और साहित्य को उपयुक्त स्थान दिया जाना चाहिए। आधुनिक मनुष्य की अनेक परेशानियां अत्यधिक वस्तुगत दृष्टिकोण के कारण हैं। इसके लिए अस्तित्ववादी विचारों के प्रकाश में आत्मगत सुधार जरूरी है।

(3) परिवेश का महत्व - वर्तमान औद्योगिक, आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक परिवेश मूल्यहीन हैं। अस्तु, वह सब प्रकार की अस्तव्यस्तता, भ्रष्टाचार, तनाव और संघर्ष बढ़ाता है। अस्तित्ववादियों ने एक ऐसे परिवेश जुटाने की बात की, जिसमें आत्म-विकास और आत्म-चेतना संभव हुए। विद्यालय में इस परिवेश के लिए मानविकी अध्ययनों, कला और साहित्य की शिक्षा दी जानी चाहिए। इनसे शिक्षार्थी में वैयक्तिकता का विकास होगा और वह सामाजिक पहिये का एक पुर्जा मात्र बनकर नहीं रहेगा। दूसरी ओर वह आत्म-चेतन और संवेदनशील व्यक्ति बनेगा।

अस्तित्ववाद के उपरोक्त योगदान के बावजूद एक जीवन दर्शन के रूप में उसने संतुलित विचार उपस्थित नहीं किये। उसकी प्रतिभा के बावजूद उसमें अनेक मानसिक रोग के लक्षण दिखलाई पड़ते हैं। आधुनिक अस्तित्ववाद के जनक कीर्के-गार्ड के दर्शन में अनेक असामान्य तत्व हैं। वास्तव में यदि सत्य वस्तुगत नहीं है तो आत्मगत भी नहीं है। बुद्धिवाद के विरूद्ध अस्तित्ववाद का विद्रोह महत्वपूर्ण होते हुए भी अत्यधिक सीमित है। नैतिक और धार्मिक शिक्षा के क्षेत्र में अस्तित्ववादी प्रणालियां अधिक उपयोगी होते हुए भी वे विज्ञान और तकनीक के क्षेत्र में उपयोगी नहीं हैं। संक्षेप में, शिक्षा के क्षेत्र में अस्तित्ववादी शिक्षा की सीमाएं निम्नलिखित हैं:-

(1) शिक्षा का अस्तित्ववादी लक्ष्य अत्यधिक एकांगी है।

(2) मानविकी अध्ययनों, कला और साहित्य पर अत्यधिक जोर देना उतना ही एकांकी है, जितना कि विज्ञान की शिक्षा पर अत्यधिक जोर देना।

(3) आत्म-साक्षात्कार के जोश में अस्तित्ववादी यह भूल जाते हैं कि जीविकोपार्जन भी शिक्षा का एक महत्वपूर्ण लक्ष्य है। इस दृष्टि से शिक्षा का उपयोगितावादी लक्ष्य भी महत्वपूर्ण है।

(4) अस्तित्ववादी अध्यापन प्रणाली नैतिक और धार्मिक शिक्षा में महत्वपूर्ण हो सकती है, किन्तु वह विज्ञान और प्रौद्योगिकी के अध्यापन में महत्वपूर्ण नहीं है।

शिक्षा के क्षेत्र में अस्तित्ववाद के उपयोग और सीमाओं के उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि वह शिक्षा के क्षेत्र में कुछ महत्वपूर्ण कमियों को पूरा करता है।

12.7 शब्दावली/कठिन शब्द (Difficult Words)

अस्तित्ववाद - अस्तित्ववाद आधुनिक समाज तथा परम्परागत दर्शन की कुछ विशेषताओं के विरूद्ध एक आन्दोलन है। यह अंशतः ग्रीक की विवेकशीलता या शास्त्रीय-दर्शन के विरोध स्वरूप प्रकट हुआ।

प्रकृतिवाद - प्रकृतिवादी दर्शन के अनुसार मानव व्यक्तिगत प्राकृतिक नियमों से नियंत्रित होता है और वह किसी प्रकार की स्वतंत्रता नहीं रखता। दूसरी ओर अस्तित्ववादियों ने मानव को प्रकृति के द्वारा नियंत्रित न मानकर व्यक्तित्व की स्वतंत्रता की स्थापना की है।

अस्तित्ववादी अनुशासन - सार्त्रे किसी भी आचार संहिता को स्वीकार नहीं करता। वह बालक को पूर्ण स्वतंत्रता देता है। वह जो कुछ चयन करेगा शुभ होगा। इस प्रकार अशुभ का चयन भी हो जाता है तो उसका भोक्ता वह स्वयं है।

12.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer of Exercise Questions)

भाग-1

उत्तर 1. (अ) डॉ. राधाकृष्णन उत्तर. 2. (ब) अस्तित्ववाद

उत्तर. 3. (स) अस्तित्ववाद उत्तर 4. (द)अस्तित्ववाद

उत्तर. 5. (अ) सत्य

भाग-2

उत्तर. 1. (अ) बटलर उत्तर. 2. (अ) अस्तित्ववाद

उत्तर. 3 (ब) अस्तित्ववाद उत्तर 4 (द) अस्तित्ववाद

उत्तर. 5. (अ) अस्तित्ववाद

भाग-3

उत्तर. 1. (स) अस्तित्ववाद उत्तर. 2. (अ) अस्तित्ववाद

उत्तर 3 (ब) अस्तित्ववाद उत्तर . 4. (द) अस्तित्ववाद

12.9 सन्दर्भ (Reference)

1. पाण्डे, (डॉ) रा. श. *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*. आगरा: अग्रवाल प्रकाशन.

2. सक्सेना, (डॉ) सरोज. *शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार*. आगरा: साहित्य प्रकाशन.

3. मित्तल, एम.एल. (2008). *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*. मेरठ: इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस.

4. शर्मा, रा. ना. व शर्मा, रा. कु. (2006). *शैक्षिक समाजशास्त्र*. नई दिल्ली: एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स.

5. सलैक्स, (डॉ) शी. मै. (2008). *शिक्षक के सामाजिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्षय*. नई दिल्ली: रजत प्रकाशन.

6. गुप्त, रा. बा. (1996). *भारतीय शिक्षा शास्त्र*. आगरा: रतन प्रकाशन मंदिर.

12.10 उपयोगी सहायक ग्रन्थ (Useful Books)

1. पाण्डे, (डॉ) रा. श. *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*. आगरा: अग्रवाल प्रकाशन.

2. सक्सेना, (डॉ) सरोज. *शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार*. आगरा: साहित्य प्रकाशन.

3. मित्तल, एम.एल. (2008). *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*. मेरठ: इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस.

4. शर्मा, रा. ना. व शर्मा, रा. कु. (2006). *शैक्षिक समाजशास्त्र*. नई दिल्ली: एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स.

5. सलैक्स, (डॉ) शी. मै. (2008). *शिक्षक के सामाजिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्षय*. नई दिल्ली: रजत प्रकाशन.

6. गुप्त, रा. बा. (1996). *भारतीय शिक्षा शास्त्र*. आगरा: रतन प्रकाशन मंदिर.

12.11 दीर्घ उत्तर वाले प्रश्न (Long Answer Type Question)

प्र. 1. अस्तित्ववाद का अर्थ बताते हुए अस्तित्ववाद और शिक्षा में संबंधों को स्पष्ट कीजिए।

प्र. 2. अस्तित्ववाद की विशेषताओं का विस्तृत वर्णन कीजिए।

प्र. 3. अस्तित्ववाद की दो परिभाषाएं दीजिए व अस्तित्ववादी शिक्षा के उद्देश्यों की व्याख्या कीजिए।

प्र. 4. अस्तित्ववाद में पाठ्यक्रम व शिक्षण विधि की विस्तृत व्याख्या कीजिए।

प्र. 5. अस्तित्ववादी शिक्षा से आप क्या समझते हैं। अस्तित्ववाद में शिक्षक की भूमिका की स्पष्ट व्याख्या कीजिए।

प्र. 6. अस्तित्ववाद पर एक आलोचनात्मक लेख लिखिए।

इकाई -13 : महात्मा गाँधी (Mahatma Gandhi)

13.1 प्रस्तावना (Introduction)
13.2 उद्देश्य (Objectives)
13.3 गाँधी जी के दार्शनिक विचार Philosophical Thoughts of Gandhiji
13.3.1 गाँधी जी के सर्वोदय दर्शन की तत्वमीमांसा
Metaphysics of Philosophical Thoughts of Gandhiji
13.3.2 गाँधी जी के सर्वोदय दर्शन की ज्ञानमीमांनसा
Epistemology and Logic of Philosophical thoughts of Gandhiji
13.3.3 गाँधी जी के सर्वोदय दर्शन की मूल्यमीमांसा
Axiology and Ethics of Philosophical thoughts of Gandhiji
स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
13.4 महात्मा गाँधी के शैक्षिक विचार
Educational Thoughts of Mahatma Gandhi
13.4.1 शिक्षा का संप्रत्यय Concept of Education
13.4.2 शिक्षा के उद्देश्य Aims of Education
स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
13.5 शिक्षा का पाठ्यक्रम
13.5.1शिक्षण की विधियाँ Methods of Teaching
13.5.2 अनुशासन Discipline, शिक्षक Teacher, शिक्षार्थी Students,विद्यालय
13.5.3 बेसिक शिक्षा Basic Education
13.5.4 बेसिक शिक्षा के गुण Merits of Basic Education
13.5.5 बेसिक शिक्षा के दोष Demrits of Basic Education
स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
13.6 सारांश
13.7 शब्दावली
13.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
13.9 सन्दर्भ ग्रंथ सूची Reference Books
13.10 निबंधात्मक प्रश्न

13.1 प्रस्तावना

भारत के निर्माण में महात्मा गाँधी के योगदान को ध्यान में रखते हुये उन्हें सम्मान देने हेतु राष्ट्रपिता की उपाधि से नवाजा गया। गाँधी जी की विचारधारा आदर्शवादी विचारधारा से मेल खाती है। गाँधी जी की शिक्षा के क्षेत्र में अद्वितीय देन है। वे पहले व्यक्ति थे जिन्होंने भरतीय जीवन को दृष्टि में रखते हुये वातावरण के अनुसार ऐसी शिक्षा योजना प्रस्तुत की जिसको कार्य रूप में परिणत करने से भरतीय समाज में नया जीवन आने की सम्भावना है, गाँधी जी समस्त भारतीय नागरिकों को शिक्षित बनाना चाहते थे, शिक्षित होने से उनका तात्पर्य यह नही था कि वे केवल साक्षर बन कर रह जायें, क्योंकि गाँधी जी साक्षरता को शिक्षा का दर्जा नहीं देते थे। वे इसे ज्ञान या ज्ञान का माध्यम ही मानते थे।

13.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप-

महात्मा गाँधी के दार्शनिक विचारों को स्पष्ट कर पायेगें।

महात्मा गाँधी के अनुसार शिक्षा के संप्रत्यय का वर्णन कर सकेंगे।

महात्मा गाँधी के शैक्षिक विचारों को अपने शब्दों को व्यक्त कर सकेंगे।

महात्मा गाँधी के शैक्षिक विचारों का मूल्यांकन कर सकेंगे।

महात्मा गाँधी की बेसिक शिक्षा की विशेषताएँ लिख सकेंगे।

13.3 गाँधी जी के दार्शनिक विचार (Philosophical Thoughts of Gandhiji)

महात्मा गाँधी का जन्म 2 अक्टूबर, 1869 को गुजरात प्रान्त के पोरबन्दर नामक नगर में हुआ था। इनका पूरा नाम मोहन दास कर्मचन्द गाँधी था। इनके पिता कर्मचन्द गाँधी पोरबन्दर के दीवान थे। गाँधी जी की माता, पुतली बाई बड़ी नम्र तथा दयालु महिला थी। गाँधी जी अपने पारिवारिक वातावरण से काफी प्रभावित हुये। गाँधी जी ने अपने परिवार से में वैष्णव धर्म में शिक्षा प्राप्त की। उन्होंने अपनी बाल्यावस्था में 'मनुस्मृति' का अनुवाद पढ़ लिया था। वे प्रतिदिन गीता पढ़ा करते थे। प्राथमिक एंव माध्यमिक शिक्षा पूर्ण करने के पश्चात मात्र 19 वर्ष की अवस्था में 4 सितम्बर 1888 को वकालत पढ़ने के लिये वे इंग्लैण्ड चले गये।

इन्होंने इंग्लैण्ड में बाईबल (Bible) व लाईट ऑफ एशिया (Light of Asia) पढ़ी तथा एनी बेसन्ट के साथ अच्छा समय व्यतीत किया। इस सब के आधार पर उनके धार्मिक व दार्शिनिक विचार बने, परन्तु उनका जीवन दर्शन मूलतः गीता पर आधारित था। वे गीता को 'गीता माता' कहते थे। गाँधी जी ने नया दर्शन प्रतिपादित नहीं किया। उन्होंने भारतीय दर्शन दर्शन के मूल तत्वों को वास्तविक रूप दिया। अपने वास्तविक रूप में यह हमें गाँधी जी की अन्र्तदृष्टि के बारे में बताता है, जो कि गाँधी का दर्शन, गाँधीवाद या सर्वोदय दर्शन के नाम से जाना जाता हैं।

अब आप यहाँ गाँधी जी के सर्वोदय दर्शन की तत्वमीमांसा, ज्ञानमीमांसा व मूल्य मीमांसा के विषय में पढ़ेगें।

13.3.1 गाँधी जी के सर्वोदय दर्शन की तत्वमीमांसा
Metaphysics of Philosophical Thoughts of Gandhiji

गाँधी जी गीता की इस बात से सहमत थे कि मूल तत्व दो हैं- पुरूष (ईश्वर) और प्रकृति (पदार्थ) और इनमें ईश्वर श्रेष्ठ है। गाँधी जी ने ईश्वर की श्रेष्ठता को दो तथ्यो द्वारा स्पष्ट किया हैं। पहला कि ईश्वर प्रकृति के कण-कण में विद्यमान है परन्तु प्रकृति ईश्वर में विद्यमान नहीं है, दूसरा ईश्वर ही संसार का सृजक है पालनहार है और विनाशकर्ता भी है। उन्होंने ईश्वर को परम सत्य के रूप को माना, गाँधी जी ने माना कि ईश्वर अपरिवर्तनशील है। अतः वह सत्य है, और प्रकृति परिवर्तनशील है अतः असत्य है।

गाँधी जी आत्मा को परमात्मा का अशं मानते थे, और चूँकि परमात्मा सत्य है, तो आत्मा भी सत्य है। गाँधी जी मनुष्य को शरीर, मन व आत्मा का योग मानते थें, उसके जीवन का परम उद्देश्य आत्मज्ञान, ईश्वर प्राप्ति और मोक्ष प्राप्ति है।

13.3.2 गाँधी जी के सर्वोदय दर्शन की ज्ञानमीमांनसा
Epistemology and Logic of Philosophical thoughts of Gandhiji

गाँधी जी ने ज्ञान को दो वर्गो में बाँटा है भौतिक ज्ञान व आध्यात्मिक ज्ञान, भौतिक ज्ञान में उन्होंने भौतिक जगत व मनुष्य जीवन के विभिन्न पक्षों (सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक) को रखा है, और आध्यात्मिक ज्ञान में उन्होंने ब्रह्माण्ड की तत्वमीमांसा, आत्मा, परमात्मा को रखा है , गाँधी जी के अनुसार मनुष्य को दोनों प्रकार के ज्ञान की आवश्यकता है। भौतिक ज्ञान, भौतिक जगत के लिये आवश्यक है। और आध्यात्मिक ज्ञान आत्म ज्ञान, ईश्वर प्राप्ति व मोक्ष प्राप्ति के लिये आवश्यक है। गाँधी जी अनुसार भौतिक ज्ञान की प्राप्ति ज्ञानेन्द्रियों द्वारा की जा सकती है तथा आध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति गीता के पाठ, भजन व सत्संग द्वारा की जा सकती है।

13.3.3 गाँधी जी के सर्वोदय दर्शन की मूल्यमीमांसा

Axiology and Ethics of Philosophical thoughts of Gandhiji

गाँधी जी ने मनुष्य को शरीर, मन व आत्मा का योग माना, उनके अनुसार मानव जीवन का परम उद्देश्य मोक्ष प्राप्ति है। उन्होंने इसको मुक्ति कहा, परन्तु उन्होंने पहले भौतिक विकास कर मनुष्य को भौतिक अभावों से मुक्त होने पर बल दिया। मुक्ति के लिये गाँधी जी ने गीता के अनाशक्ति योगो को श्रेष्ठ माना है और भौतिक विकास के लिये श्रम, नैतिकता और चरित्र के महत्व को स्वीकार किया है। इन दोनों की प्राप्ति कि लिये गाँधी जी ने ‘एकादश व्रत‘ के अनुसरण पर बल दिया है। (सत्य, अहिंसा, अभय, अस्तेय, अपरिगृह ,अस्वाद, अस्पृश्यता निवारण, श्रम, सर्वधर्म, सम्भाव विनम्रता और ब्रह्मचर्य), गाँधी जी ने इन्हें मानव जीवन का मूल्य माना है।

गाँधी जी के जीवन के प्रमुख आर्दश व मूल्य निम्न हैं-

सत्य- गाँधी जी के अनुसार सत्य, साध्य एंव साधन दोनों है। गाँधी जी के अनुसार मानव जीवन का अन्तिम लक्ष्य ईश्वर प्राप्ति है। और ईश्वर को प्राप्त करने का सबसे अच्छा साधन केवल एक ही है- सत्य।

साध्य रूप में सत्य वह है जिसका अस्तित्व है जिसका कभी अन्त नही होता अर्थात ईश्वर और साधन के रूप में सत्य से गाँधी जी का तात्पर्य सत्य विचार, सत्य आचरण व सत्य भाषण से हैं। गाँधी जी के लिये ईश्वर व सत्य मे कोई अन्तर नही था। गाँधी जी ने अपने सम्पूर्ण जीवन सत्य की खोज में ही व्यतीत किया।

अहिंसा- अहिंसा गाँधी जी की दार्शनिक विचारधारा का दूसरा महत्वपूर्ण तत्व है। उनका विश्वास था कि सत्य का पालन केवल अहिंसा द्वारा ही सम्भव है। सत्य और अहिंसा को एक दूसरे से अलग करना प्रायः असम्भव है, यह एक सिक्के के दो पहलू है। अतः गाँधी जी ने सत्य और अहिंसा को एक दूसरे से सम्बन्धित मानते हुये इस बात पर बल दिया कि यदि जीवन का लक्ष्य उस सत्य रूपी ईश्वर को प्राप्त करना है तो उसकी प्राप्ति का साधन अहिंसा है। गाँधी जी के अनुसार अहिंसा का अर्थ है- समस्त प्राणियो के प्रति बुरी भावना, द्वेष का अभाव, अंहिसा अपने सक्रिय रूप में जीवन के प्रति सदभावना है यह शुद्व प्रेम है।

निर्भयता- निर्भयता का अर्थ स्पष्ट करते हुये गाँधी जी ने कहा है कि निर्भयता का अर्थ है समस्त भय से मुक्ति। गाँधी जी को विश्वास था कि बिना निर्भयता के सत्य तथा अहिंसा का पालन करना असम्भव है। जैसे बीमारी का भय, शारीरिक चोट तथा मृत्यु का भय, सम्पत्ति विहीन होने का भय, प्रतिष्ठा खोने का भय, अपने प्रियजन की मृत्यु का भय, अनुचित कार्य करने का भय इत्यादि।

सत्याग्रह- सत्याग्रह का शाब्दिक अर्थ है सत्य के प्रति आग्रह, सत्य का अनुसरण करना एवं कराना। गाँधी जी के अनुसार सत्याग्रह शब्द का अर्थ है -सत्य का दृढ़ अवलम्बन, उन्होंने इसको आत्मबल के नाम से भी पुकारा है। यह सिद्वान्त सत्य तथा प्यार पर आधारित है इसके अन्तर्गत विरोधी को कष्ट नहीं दिया जाता अपितु स्वयं को कष्ट देकर विरोधी को सत्य का समर्थन कराया जाता है। सत्याग्रह के प्रयोग के प्रारम्भिक स्तरों पर उन्होंने यह खोज की कि सत्य का अनुसरण इस बात की आज्ञा नहीं देता कि कोई व्यक्ति अपने विरोधी पर बल का प्रयोग करें, इसके विपरीत उसे धैर्य और सहानुभूति से उनको गलत मार्ग से हटाना चाहिये। कारण यह है कि जो बात एक व्यक्ति को सत्य मालूम होती है, वह दूसरे को असत्य मालूम हो सकती है।

गाँधी जी के अनुंसार प्रत्येक मनुष्य को इन आदर्शो को अनुसरण करना चाहिये । वह व्यक्ति को इन आदर्शों का अनुसरण करेगा सभी मनुष्यों के हित के बारे में सोचेगा वह सच्चे अर्थों में सर्वोदयी बनेगा, गाँधी जी के विचार से ऐसा व्यक्ति ही जीवन में सुख व शान्ति की प्राप्ति कर सकता है। उसे ही आत्म ज्ञान व ईश्वर की प्राप्ति होगी।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. महात्मा गाँधी का जन्म कब और कहाँ हुआ?

2. गाँधी जी का दर्शन किस नाम से जाना जाता है?

3. गाँधी जी के अनुसार दो मूल तत्व कौन से हैं?

4. गाँधी जी ने ज्ञान को किन दो वर्गो में बाँटा है?

5. गाँधी जी अनुसार भौतिक ज्ञान की प्राप्ति किन …… द्वारा की जा सकती है।

6. गाँधी जी ने मनुष्य को ....व ....का योग माना है|

7. गाँधी जी के जीवन के प्रमुख आदर्शों व मूल्यों के नाम लिखिए।

13.4 महात्मा गाँधी के शैक्षिक विचार (Educational Thoughts of Mahatma Gandhi)

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ना सिर्फ एक राजनीतिज्ञ ही थे बल्कि वे एक महान धार्मिक विश्लेषण कर्ता, समाज सुधारक व शिक्षाविद भी थे। गाँधी जी ने देश की राजनैतिक उन्नति की अपेक्षा

सामाजिक उन्नति को अधिक आवश्यक समझा। उन्होंने तत्कालीन शिक्षा में सुधार हेतु कई सुझाव दिए।

गाँधी जी के अनुसार, ''जो शिक्षा चित की शुद्धि न कर, निर्वाह का साधन न बनाए तथा स्वतंत्र रहने का हौसला और सामर्थ्य न उपजाए, उस शिक्षा में चाहे जितनी जानकारी का खजाना हो, तार्किक कुशलता और भाषा पांडित्य समाहित हो, वह सच्ची शिक्षा नहीं''। यद्यपि गॉधी जी शिक्षा विषय पर कोई ग्रंथ या पुस्तक नहीं लिखी, परन्तु समय-समय पर अपने विचार सभाओं में तथा 'हरिजन' नामक पत्रिका के अनेक लेखों में व्यक्त किए हैं।

गाँधी जी शिक्षा को मनुष्य का जन्म सिद्ध अधिकार माना और उसको किसी भी अन्य प्रकार के विकास की भाँति ही आवश्यक माना है। यही कारण है कि उन्होंने चौदह वर्ष की आयु तक के बच्चों के लिए नि:शुल्क व अनिवार्य शिक्षा पर बल दिया। उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया कि यह शिक्षा अंग्रेजी माध्यम में नहीं दी जा सकती, यह केवल मातृभाषा द्वारा ही दी जा सकती है। गाँधी जी ने अंग्रेजी को ऐसी भाषा माना जो कि मानसिक दासता (Mental Slavery) उत्पन्न करती है। वह चाहते थे कि शिक्षा मनुष्य को आत्म-निर्भर बनाए और उसको जीविकोपार्जन करने योग्य बनाए, अत: उन्होंने हस्तशिल्प की शिक्षा पर विशेष बल दिया।

इस शैक्षिक दर्शन के आधार पर गाँधी जी ने राष्ट्रीय शिक्षा का रूप निर्धारित किया और उसको 'बेसिक शिक्षा' नाम दिया।

अब आप गाँधी जी के शैक्षिक विचारों का निम्नवत अध्ययन करेंगे।

13.4.1 शिक्षा का संप्रत्यय Concept of Education

गाँधी जी साक्षरता को शिक्षा नहीं मानते थे। गाँधी जी के अनुसार, ''साक्षरता न तो शिक्षा का अन्त है और न आरम्भ। यह केवल एक साधन है जिसके द्वारा पुरूष तथा स्त्री को शिक्षित किया जा सकता है।''

"Literacy is not the end of education nor even the beginning. It is the only one of the means whereby men and women can be educated."

उनका विश्वास था कि शिक्षा को बालक की समस्त शक्तियों का विकास करना चाहिए जिससे वह पूर्ण मानव बन जाये। पूर्ण मानव का अर्थ बालक के व्यक्तित्व के चारों तत्वों-शरीर, हृदय, मन तथा आत्मा के समुचित विकास से है। गाँधी जी के अनुसार शिक्षा का कार्य लिखना, पढ़ना या गणना करना, सिखना नहीं हैं, बल्कि मनुष्य के शरीर, मस्तिष्क व हृदय का विकास करना है।

गाँधी जी के अनुसार, ''शिक्षा से मेरा तात्पर्य है – बालक और मनुष्य के शरीर, मस्तिष्क और आत्मा में पाये जाने वाले सर्वोत्तम गुणों का चहुँमुखी विकास।''

According to Gandhi ji – "By education I mean an all round drawing out of the best, in child and man-body, mind and spirit."

13.4.2 शिक्षा के उद्देश्य Aims of Education

गाँधी जी ने सभी पक्षों को ध्यान में रखा और शिक्षा को उसी के अनुसार कई दृष्किोणों से देखा। 'स्वावलम्बन' उनकी शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य था। प्राचीन भारतीय दर्शन की भाँति 'सा विद्या या विमुक्तये' गाँधी जी का आदर्श था। वह व्यक्ति की स्वतंत्रता के साथ उसे एक सामाजिक प्राणी के रूप में भी देखते हैं।

गाँधी जी के अनुसार, मानव जीवन का परम उद्देश्य मोक्ष है। उन्होंने मोक्ष को वृहद रूप में लिया है। उन्होंने आध्यात्मिक मुक्ति से पहले, भौतिक, मानसिक, आर्थिक व राजनैतिक मुक्ति की बात कही, उनका तर्क था कि जब तक मनुष्य शारीरिक व भौतिक कमजोरी, मानसिक दवाब, आर्थिक कमी तथा राजनैतिक दासता से मुक्त नहीं हो जाता, वह आध्यात्मिक मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकता। यही वह कारण है जिसके लिए वे मनुष्य के शरीर, मस्तिष्क व आत्मा के उच्चतम विकास को प्रभावित करना चाहते थे।

अब आप गाँधी जी के अनुसार शिक्षा के उद्देश्यों का निम्नवत अध्ययन करेंगे –

शारीरिक विकास (Physical Development) – मनुष्य जीवन का कोई भी उद्देश्य क्यों न हो उसकी प्राप्ति तभी संभव है जब शरीर स्वस्थ हो। अत: शरीर का स्वस्थ विकास सबसे पहले होना चाहिए। गाँधी जी ने इसे महत्वपूर्ण माना है।

मानसिक एवं बौद्धिक विकास (Mental and Intellectual Development) – गाँधी जी के अनुसार शरीर के साथ-साथ मन तथा आत्मा का विकास भी आवश्यक है। शिक्षा द्वारा बालक का मानसिक विकास होना चाहिए।

जीविकोपार्जन का उद्देश्य (Vocational Aim) – गाँधी जी शिक्षा में आत्मनिर्भरता से सिद्धान्त के प्रबल समर्थक थे। वे चाहते थे कि प्रत्येक बालक नियमित शिक्षा प्राप्त करें किसी व्यवसाय के द्वारा अपनी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति स्वयं कर सकें। आर्थिक आभाव से मुक्त होनेके उद्देश्य पर बल दिया। वे प्रत्येक मनुष्य को आत्मनिर्भर बनाना चाहते थे और उन्होंने हस्तशिल्प उद्योग की शिक्षा पर बल दिया। उन्होंने यह स्पष्ट रूप से कहा कि बालक को बेसिक शिक्षा द्वारा जीविकोपार्जन करने योग्य बनाना, शिक्षा का उद्देश्य है

वैयक्तिक एवं सामाजिक विकास (Individual and social Development) गाँधी जी ने मनुष्य के दोनों प्रकार के विकास पर बल दिया, वैयक्तिक विकास एवं सामाजिक विकास। गाँधी जी वैयक्तिक विकास को व्यक्ति, समाज और राष्ट्र, सभी के विकास के लिए आवश्यक मानते थे। इनके अनुसार वैयक्तिक विकास ही आध्यात्मिक विकास है, और आध्यात्मिक विकास के लिए सामाजिक विकास आवश्यक है। सामाजिक विकास से उनका तात्पर्य था प्रेम एवं सहयोग से जीना सीखना। उनका मानना था कि संपूर्ण मानव जाति से प्रेम करने व सेवा करने से ही आध्यात्मिक विकास संभव है। इस प्रकार गाँधीजी ने वैयक्तिक एवं सामाजिक उद्देश्यों को संश्लेषित किया।

सांस्कृतिक विकास (Cultural Development) – गाँधी जी के अनुसार, संस्कृति आत्मा से संबंधित है और वह स्वयं को मनुष्य के व्यवहार में परिलक्षित करती है। उन्होंने संस्कृति को जीवन का आधार माना है। उन्होंने मनुष्य के व्यवहार को नियंत्रित करने के लिए सांस्कृतिक विकास को महत्वपूर्ण माना है अत: इसे शिक्षा का उद्देश्य माना और कहा –‘’मैं शिक्षा के सांस्कृतिक पक्ष को उसके साहित्यिक पक्ष से अधिक महत्वपूर्ण समझता हूँ। अत: मानव के प्रत्येक व्यवहार पर संस्कृति की छाप होनी चाहिए।‘’

नैतिक तथा चारित्रिक विकास (Moral and Character development) – गाँधी जी समस्त शिक्षा को चरित्र निर्माण की कसौटी पर कसते हैं, उनका मानना है कि, शिक्षा का एक उद्देश्य चरित्र निर्माण भी है। उन्होंने बच्चों में सत्य, अहिंसा, अभय, अस्तेय, अपरिग्रह आदि गुणों के विकास को महत्व दिया। इस संबंध में उन्होंने अपनी आत्मकथा में लिखा है – ‘’मैंने सदैव ह्दय की संस्कृति, अथवा चरित्र निर्माण को प्रथम स्थान दिया है। उनके अनुसार सभी ज्ञान का अन्त वैयक्तिक शुद्धि एवं चरित्र निर्माण है।

आध्यात्मिक विकास (Spiritual Development) – गाँधी जी के अनुसार, मानव जीवन का अंतिम उद्देश्य मुक्ति, आत्म-बोध, स्वयं का ज्ञान है। उनके अनुसार शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जोकि मनुष्य को सांसारिक बन्धनों से मुक्त करें, उसकी आत्मा को उत्तम जीवन की ओर प्रवृत्त कर सकें, संक्षेप में, गाँधी जी शिक्षा के द्वारा आत्म विकास के लिए आध्यात्मिक स्वतंत्रता दिलाना चाहते थे।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

8.गाँधी जी ने किस आयु वर्ग के बच्चों के लिए नि:शुल्क व अनिवार्य शिक्षा पर बल दिया?

9.गाँधी जी ने किस माध्यम में शिक्षा देने की बात कही?

10.गाँधी जी ने किस शिक्षा पर विशेष बल दिया?

11.गाँधी जी की राष्ट्रीय शिक्षा किस नाम से जानी जाती है?

12.गाँधी जी के अनुसार शिक्षा की परिभाषा दीजिए।

13.5 शिक्षा का पाठ्यक्रम (Curriculum of Education)

गाँधी जी, देश के मूलभूत आवश्यकताओं से परिचित थे। उन्होंने देश की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए तथा एक वर्ग रहित समाज के निर्माण हेतु, क्रिया-प्रधान पाठ्यक्रम पर बल दिया। गाँधी जी की शिक्षा योजना को बेसिक शिक्षा की संज्ञा दी जाती है। इस शिक्षा का पाठ्यक्रम क्रिया-प्रधान है, तथा इसका उद्देश्य बालक को कार्य, प्रयोग एंव खोज के द्वारा उसकी शारीरिक,मानसिक और आध्यात्मिक शक्तियों का विकास करना है जिससे की वे अपना जीवोकोपार्जन कर, आत्मनिर्भर बनें एवं समाज का उपयोगी अंग बन जायें।

उन्होंने हस्तशिल्प एवं कुटीर उद्योग को बेसिक शिक्षा में प्रमुख स्थान दिया। शिक्षा के उद्देश्यों की पूर्ति हेतु निम्नलिखित क्रिया प्रधान पाठ्यक्रम का निर्माण किया गया।

हस्तशिल्प और उद्योग (बुनाई, कताई, बागवानी, कृषि, काष्ठकारी, चर्म उद्योग, मत्स्य पालन)।

मातृ भाषा

हिन्दुस्तानी भाषा

व्यवहारिक गणित

सामाजिक विषय – इतिहास, भूगोल, नागरिक शास्त्र।

सामान्य विज्ञान – बागवानी, वनस्पति विज्ञान, प्राणि विज्ञान, रसायन विज्ञान, गृह विज्ञान, भौतिक विज्ञान।

संगीत

स्वास्थ-विज्ञान (स्वच्छता, व्यायाम, खेलकूद)

चित्रकला

नैतिक शिक्षा

इस पाठ्यक्रम में हस्तशिल्प एवं उद्योग को प्रमुख स्थान दिया गया, इनके लिए 3 घण्टे 20 मिनट का समय निर्धारित किया गया था।

इस पाठ्यक्रम में अंग्रेजी भाषा तथा धार्मिक शिक्षा को कोई स्थान नहीं दिया गया है, सिर्फ नैतिक शिक्षा को स्वीकृत किया, जिसमें सभी धर्मों का सार निहित है। बेसिक शिक्षा योजना का पाठ्यक्रम 7 से 14 वर्ष तक के बालक व बालिकाओं के लिए निर्धारित किया गया। पाँचवी कक्षा तक सह-शिक्षा लागू रहेगी। इसके उपरान्त यद्यपि बालक-बालिकाओं के लिए पाठ्यक्रम समान है, फिर भी बालिकाओं के लिए सामान्य विज्ञान के स्थान पर गृह-विज्ञान की शिक्षा की व्यवस्था की गई।

13.5.1 शिक्षण की विधियाँ Methods of Teaching

गाँधी जी मनुष्य को शरीर, मन एवं आत्मा का योग मानते थे, उनके अनुसार इन सभी का सम्मिलित विकास आवश्यक है। उन्होंने क्रिया को महत्वपूर्ण स्थान दिया। गाँधी जी के उद्देश्य प्रचलित शिक्षा के उद्देश्यों से भिन्न थे। उन्होंने स्थानीय उद्योगों को शिक्षा का केन्द्र बिन्दु माना। इस दृष्टि से गाँधी जी की शिक्षण-पद्धति प्रचलित शिक्षण-विधियों से भिन्न थी।

अब आप गाँधी जी द्वारा दी गई शिक्षण विधियों का अध्ययन करेंगे।

अनुकरण विधि (Imitation Method) गाँधी जी के अनुसार, अनुकरण करना बच्चे की प्राकृतिक प्रवृत्ति है। प्रारंभ में वे अनुकरण द्वारा ही सीखते हैं, अत: उन्हें इस विधि द्वारा सीखना चाहिए। गाँधी जी के अनुसार, बच्चों को अच्छा आचरण सिखाने की यह सर्वोत्तम विधि है। उन्होंने इस बात पर बल दिया कि माता-पिता एवं शिक्षकों को बच्चों के साथ प्रेमपूर्वक व्यवहार करना चाहिए और उनके साथ सदा वही आचरण करना चाहिए जैसे आचरण की अपेक्षा वे बच्चों से करते हैं। ऐसे प्रेमपूर्ण तथा विनम्रता पूर्ण आचरण का अनुकरण कर बच्चे सदाचरण करेंगे।

स्वानुभव द्वारा सीखने की विधि (Learning by self-Experience) – गाँधी जी ने किसी भी ज्ञान अथवा कौशल को स्वयं करके, स्वयं के अनुभव से सीखने पर बल दिया। गाँधी जी के अनुसार, स्वयं के अनुभव द्वारा सीखा गया ज्ञानस्थायी होता है तथा जीवनपरन्त सफलता प्रदान करता है।

क्रिया विधि (Activity Method) – गाँधी जी ने यह स्पष्ट कर दिया कि क्रिया करना बालक की प्राकृतिक प्रवृत्ति है, वह निरन्तर किसी ना किसी क्रिया में संलग्न रहते हैं, बालक के मानसिक विकास के लिए प्रशिक्षण आवश्यक है, इसलिए गाँधी जी ने करके सीखने पर बल दिया और बेसिक शिक्षा को हस्तकला केन्द्रित (Craft Centered) बनाया।

सहसंबंध विधि (Correlation Method) – समस्त विषयों को एक दूसरे से संबंधित करके पढ़ाने की विधि को सहसंबंध विधि या सानुबन्धित विधि कहते हैं। गाँधी जी के अनुसार इस विधि के अंतर्गत बच्चे अपने जीवन की वास्तविक क्रियाओं में भाग लेते हैं और अपने आप सीख जाते हैं, इस प्रकार शारीरिक एवं मानसिक क्रियाओं को संश्लेषित कर बच्चों को वास्तविक जीवन के लिए तैयार किया जाता है। वे एक परिस्थिति में सीखे गए ज्ञान को दूसरी परिस्थति में उपयोग लाते हैं।

मौखिक विधि (Oral Method) – मौखिक विधि में व्याख्यान, प्रश्नोत्तर, वाद-विवाद इत्यादि आते हैं। बच्चे जिज्ञासु होते हैं, वे प्रश्न पूछते हैं, उनके प्रश्नों के तत्काल उत्तर देकर उनकी जिज्ञासा को शान्त करना चाहिए। परन्तु इस विधि का प्रयोग करते समय ये ध्यान रखना चाहिए कि बच्चे शारीरिक और मानसिक दोनों तरह से कक्षा में उपस्थित रहें।

श्रवण-मनन-निधिध्यासन विधि (Listening, Thinking and Practice Method) – श्रवण, मनन और निदिध्यासन विधि हमारी प्राचीन विधि है। इस विधि बालक पहले अपने शिक्षक द्वारा उपदेश सुनते हैं, फिर इस पर चिन्तन करते है और फिर अभ्यास करते हैं। वैसे भी उस ज्ञान का कोई अर्थ नहीं है जो हमारे वास्तविक जीवन में सहायक बन हमारा विकास न करें। गाँधी जी ने इस विधि की उपयोगिता को धर्म और दर्शन जैसे विषयों को पढ़ाने के लिए स्वीकार किया है।

13.5.2 अनुशासन Discipline

गाँधी जी अनुशासन को बहुत महत्व देते थे। उनके अनुसार सच्चा अनुशासन आंतरिक अभिप्रेरणा से आता है। गाँधी जी दमनात्मक अनुशासन के विरोधी थे। उनके अनुसार अनुशासन प्रभावात्मक तरीके से ही स्थापित किया जा सकता है। वे प्रभावात्मक अनुशासन के समर्थक थे। गाँधी जी ने बच्चे को प्राकृतिक और उच्च सामाजिक वातावरण देने पर बल दिया। उनके अनुसार ऐसे वातावरण में बच्चे उच्च आदर्श एवं उच्च आचरण सीखते हैं। गाँधी जी आत्मनियंत्रण द्वारा आत्मानुशासन चाहते थे। गाँधी जी के शिक्षक को बच्चों के समक्ष आदर्श आचरण प्रस्तुत करना चाहिए जिससे कि बच्चे उसका अनुकरण कर उस आचरण को आत्मसात करें।

शिक्षक Teacher

गॉधी जी के विचार से शिक्षक एक आदर्श व्यक्ति होना चाहिए, वह ज्ञान का पुंज और सत्य आचरण करने वाला होना चाहिए, गाँधी जी के अनुसार एक शिक्षक, आदर्श शिक्षक तभी बन सकता है जब कि वह अपने व्यवसाय को समाज सेवा के रूप में स्वीकार करें। एक शिक्षक कई भूमिका निभानी होती है। शिक्षक को बच्चे का मित्र और मार्गदर्शक होना चाहिए। उसे मैत्रीपूर्ण ढंग से बालक के मानोभावों के प्रति प्रतिक्रिया करनी चाहिए।

शिक्षार्थी Student

गाँधी जी शिक्षा व्यवस्था का केन्द्र शिक्षार्थी है। गाँधी जी के अनुसार विद्यार्थी को अनुशासित रहना चाहिए और ब्रह्राचर्य का पालन करना चाहिए। गाँधी जी बच्चों को उनके व्यक्तिगत विकास हेतु पूर्ण स्वतंत्रता देने के समर्थक हैं, परन्तु उनके सामाजिक और आध्यात्मिक विकास को ध्यान में रखते हुए। बच्चों को आत्मनिर्भर बनानेके लिए गाँधी जी ने प्रारंभ से ही उनके शारीरिक, मानसिक और

बौद्धिक विकास में बल दिया। गाँधी जी बच्चे को जिज्ञासु, उत्साही एवं आत्मबल रखने वाला बनाना चाहते थे।

विद्यालय School

विद्यालय को लेके गाँधी जी के विचार नीवन थे/ उनके अनुसार विद्यालय एक ऐसी कार्यशला होना चाहिए जहाँ शिक्षक समर्पित होकर कार्य करें। जहाँ कि शिक्षक और शिक्षार्थी के संयुक्त प्रयत्न से इतना उत्पादन किया जा सके जिससे कि वे आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बन सकें। इन्होंने विद्यालयों को सामूदायिक केन्द्र बनाने पर बल दिया। उनके अनुसार विद्यालयों को समुदाय में विभिन्न गतिविधियॉ करानी चाहिए और लोगों को वहॉ पढ़ने और काम करने की सुविधा होनी चाहिए। विद्यालयों को प्रौढ़ शिक्षा की व्यवस्था करनी चाहिए और रात में पाठशाला लगाने की व्यवस्था भी करनी चाहिए। समुदाय को विद्यालयों को विभिन्न क्रियाओं में सहायता करनी चाहिए और विद्यालय को समुदाय के लिए सहायक होना चाहिए।

13.5.3 बेसिक शिक्षा Basic Education

तत्कालीन शिक्षा के दोषों के निराकरण तथा अपने शैक्षिक प्रयोगों को राष्ट्रीय शिक्षा योजना का रूप देने के लिए स्वतंत्रता के साथ-साथ गाँधी जी ने शैक्षिक सुधार हेतु भी कार्य किए। अक्टूबर 1937 को वर्धा में राष्ट्रीय शिक्षा संगोष्ठी (The National Education conference) हुई, जिसमें गाँधी जी ने राष्ट्रीय शिक्षा योजना का प्रतिपादन किया, जिसे कि बेसिक शिक्षा कहा जाता है। इसे वर्धा योजना, नयी तालीम और बुनियादी शिक्षा के नाम से भी जाना जाता है।

अब आप बेसिक शिक्षा के प्रस्तावों को पढ़ेंगे –

7 से 14 वर्ष की आयु वर्ग के सभी बच्चों के लिए अनिवार्य एवं निशुल्क शिक्षा दी जाएगी।

शिक्षा का माध्यम मातृ भाषा होगी।

संपूर्ण शिक्षा स्थानीय हस्तकला पर आधारित होगी।

हस्तकला का चयन बच्चों की क्षमता और क्षेत्रीय आवश्यकताओं के आधार पर किया जाएगा।

बच्चों द्वारा बनाई गई वस्तुओं का उपयोग किया जाएगा और उससे अर्जित आर्थिक लाभ विद्यालय के व्यय में उपयोग लाया जाएगा।

हस्तकलाएँ इस प्रकार सिखाई जायें जिससे की बच्चे आत्मनिर्भर बनें।

आर्थिक महत्व के साथ-साथ हस्तकालाओं की शिक्षा को सामाजिक एवं वैज्ञानिक महत्व भी दिया जाए।

13.5. 4 बेसिक शिक्षा के गुण Merits of Basic Education

सैद्धान्तिक तौर पर यह योजना उपयोगी लगती है, परन्तु वास्तविकता में यह उपयोगी नहीं है।

सर्वांगीण विकास (All Round development of man) – बेसिक शिक्षा ने बालक के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक , सांस्कृतिक, नैतिक एवं चारित्रिक विकास में बल दिया।

सामाजिक और राष्ट्रीय एकता – धर्म, जाति और व्यवसाय के आधार पर समाज कई वर्गों में बटा है। बेसिक शिक्षा ने सभी को समान अवसर शिक्षा प्रदान कर वर्ग भेद को हटाया।

भारतीयता की छाप – बेसिक शिक्षा सच्चे अर्थों में भारतीय है। इसमें मातृ-भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाया और अंग्रेजी को कोई स्थान नहीं दिया।

क्रिया आधारित शिक्षण विधियॉ – बेसिक शिक्षा में स्वानुभव द्वारा सीखने के अवसर प्रदान किए गये। इसमें स्वयं करके सीखने के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त के आधार पर शिक्षा दी जाती है।

वास्तविक जीवन से संबंधित –बेसिक शिक्षा ग्रामीण उद्योगों में अनिवार्य करने के लिए बनी थीं। बेसिक शिक्षा कृषि, पशु-पालन, ग्रामीण उद्योग एवं हस्तकला की शिक्षा द्वारा शिक्षार्थी को जीविकोपार्जन के योग्य बनाती है। बेसिक शिक्षा बालक की क्रियात्मक प्रवृत्तियों को प्रोत्साहित करके उसकी उत्पादन क्षमता को बढ़ाती है। भारत जैसे कृषि प्रधान देश में इसका बड़ा महत्व है।

13.5.5 बेसिक शिक्षा के दोष Demerits of Basic Education

जैसा कि पहले कहा जा चुका है बुनियादी शिक्षा में उपरोक्त गुणों के होते हुए भी कुछ ऐसे मौलिक दोष हैं जिनके कारण उसे व्यवहार रूप में परिणित नहीं किया जा सका।

1. बेसिक शिक्षा को राष्ट्रीय योजना कहा जाता है परन्तु यह केवल अनिवार्य और निशुल्क शिक्षा की योजना है, इसमें केवल ग्रामीण बच्चों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखा गया ना कि शहरी बच्चों की। बेसिक शिक्षा केवल ग्रामीण परिवेश तक ही सीमित है।

2. बेसिक शिक्षा 7 से 14 वर्ष की आयु वर्ग के बच्चों के लिए है। इसका पाठ्यक्रम इसी आयु वर्ग एवं ग्रामीण बच्चों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर निर्मित किया गया है। यह माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा से संबंधित नहीं है। यह उच्च शिक्षा के लिए उपयुक्त आधार नहीं है।

3. बेसिक शिक्षा में बच्चों को तरह-तरह की हस्तकला सिखाने में कच्चे माल का उपयोग अपव्यय है।

4. भारतवर्ष गरीब देश है और यहॉ प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य व निशुल्क होनी चाहिए, परन्तु इसके लिए बालकों से अनिवार्य रूप से उत्पादन कराना उचित नहीं जान पड़ता।

5.बेसिक शिक्षा में हस्तकला पर आवश्यकता से अधिक जोर दिया गया, जिससे अन्य विषय उपेक्षित रह गए। इसमें पाठ्य-पुस्तकों को महत्व नहीं दिया जाता जिससे बालक उनके लाभ से वंचित रह जाता है।

6.बेसिक शिक्षा, भारत की मौलिक शिक्षा है, परन्तु इसमें धार्मिक शिक्षा को सम्मिलित नहीं किया गया है केवल नैतिक शिक्षा को ही सम्मिलित किया गया है। गाँधी जी को भय था कि धार्मिक शिक्षा वैमनस्य को बढा़वा दे सकती है।

गाँधी जी सर्वोदय दर्शन के समर्थक थे। वे एक वर्ग रहित समाज की स्थापना करना चाहते थे। गाँधी जी की शिक्षा के क्षेत्र में अद्वितीय देन है। वे पहले व्यक्ति थे जिन्होंने भारतीय जीवन को दृष्टि में रखते हुए ऐसी शिक्षा योजना प्रस्तुत की जिसको कार्य रूप में परिणत करने से भारतीय समाज में एक नया जीवन आने की संभावना है। उन्होंने इसके विस्तृत उद्देश्य निर्धारित किए,और व्यापक पाठ्यक्रम का निर्माण किया। गॉजीजी के दर्शन में प्रकृतिवाद, आदर्शवादतथा प्रयोजनवाद की झलक स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ती है।

डॉ एम०एस० पटेल ने भी इसी आशय की पुष्टि करते हुए लिखा है –

“दार्शनिक के रूप में गाँधी जी की महानता इस बात में है कि उनके शिक्षा-दर्शन में प्रकृतिवादी, आदर्शवाद और प्रयोजनवाद की मुख्य प्रवृत्तियॉ अलग और स्वतंत्र नहीं हैं वरन् वे सब मिलजुलकर एक हो गई हैं, जिससे ऐसे शिक्षा-दर्शन का जन्म हुआ है जो आज की आवश्यकताओं के लिए उपयुक्त होगा तथा मानव आत्मा की सर्वोच्च अकांक्षाओं को संतुष्ट करेगा।”

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

13.गाँधी जी ने.............. पाठ्यक्रम पर बल दिया।

14.गाँधी जी ने हस्तशिल्प एवं कुटीर उद्योग को बेसिक शिक्षा में प्रमुख स्थान दिया। (सत्य/असत्य)

15.गाँधी जी द्वारा दी गयी शिक्षण विधियों के नाम लिखिए।

16.गाँधी जी .... अनुशासन के समर्थक थे।

17.गाँधी जी अनुसार सच्चा अनुशासन आंतरिक अभिप्रेरणा से आता है।(सत्य/असत्य)

18.गाँधी जी के अनुसार शिक्षक को बच्चे का मित्र और मार्गदर्शक होना चाहिए। (सत्य/असत्य)

19.गाँधी जी शिक्षा व्यवस्था का केन्द्र .... है।

20.गाँधी जी के अनुसार विद्यालय एक .... होना चाहिए।

21. बेसिक शिक्षा को और किन-किन नामों से जाना जाता है?

13.6 सारांश

गाँधी जी ने नया दर्शन प्रतिपादित नहीं किया। उन्होंने भारतीय दर्शन दर्शन के मूल तत्वों को वास्तविक रूप दिया। गाँधी जी गीता की बात से सहमत थे कि मूल तत्व दो हैं- पुरूष (ईश्वर) और प्रकृति (पदार्थ) और इनमें ईश्वर श्रेष्ठ है। गाँधी जी आत्मा को परमात्मा का अशं मानते थे, और चूँकि परमात्मा सत्य है, तो आत्मा भी सत्य है। गाँधी जी मनुष्य को शरीर, मन व आत्मा का योग मानते थें, उसके जीवन का परम उद्देश्य आत्मज्ञान, ईश्वर प्राप्ति और मोक्ष प्राप्ति है।

गाँधी जी ने ज्ञान को दो वर्गो में बाँटा है भौतिक ज्ञान व आध्यात्मिक ज्ञान, गाँधी जी के अनुसार मनुष्य को दोनो प्रकार के ज्ञान की आवश्यकता है। भौतिक ज्ञान भौतिक जगत के लिये आवश्यक है और आध्यात्मिक ज्ञान आत्म ज्ञान, ईश्वर प्राप्ति व मोक्ष प्राप्ति के लिये आवश्यक है। गाँधी जी के जीवन के प्रमुख आर्दश हैं सत्य, अहिंसा, निर्भयता एवं सत्याग्रह। गाँधी जी के अनुसार सत्य, साध्य एंव साधन दोनो है। गाँधी जी के लिये ईश्वर व सत्य मे कोई अन्तर नही था। गाँधी जी ने अपने सम्पूर्ण जीवन सत्य की खोज में ही व्यतीत किया। अहिंसा गाँधी जी की दार्शनिक विचारधारा का दूसरा महत्वपूर्ण तत्व है। गाँधी जी के अनुसार निर्भयता का अर्थ है समस्त भय से मुक्ति। गाँधी जी को विश्वास था कि बिना निर्भयता के सत्य तथा अहिंसा का पालन करना असम्भव हैं। गाँधी जी के अनुसार सत्याग्रह शब्द का अर्थ है -सत्य का दृढ़ अवलम्बन, उन्होंने इसको आत्मबल के नाम से भी पुकारा है।

गाँधी जी शिक्षा को मनुष्य का जन्म सिद्ध अधिकार माना और उसको किसी भी अन्य प्रकार के विकास की भाँति ही आवश्यक माना है। गाँधी जी साक्षरता को शिक्षा नहीं मानते थे। गाँधी जी के अनुसार, ''साक्षरता न तो शिक्षा का अन्त है और न आरम्भ। यह केवल एक साधन है जिसके द्वारा पुरूष तथा स्त्री को शिक्षित किया जा सकता है।'' गाँधी जी, देश के मूलभूत आवश्यकताओं से परिचित थे। उन्होंने देश की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए तथा एक वर्ग रहित समाज के निर्माण हेतु, क्रिया-प्रधान पाठ्यक्रम पर बल दिया। गाँधी जी की शिक्षा योजना को बेसिक शिक्षा की संज्ञा दी जाती है। इस शिक्षा का पाठ्यक्रम क्रिया-प्रधान है, तथा इसका उद्देश्य बालक को कार्य, प्रयोग एंव खोज के द्वारा उसकी शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक शक्तियों का विकास करना है।

गाँधी जी अनुशासन को बहुत महत्व देते थे। उनके अनुसार सच्चा अनुशासन आंतरिक अभिप्रेरणा से आता है। गॉधी जी के विचार से शिक्षक एक आदर्श व्यक्ति होना चाहिए, वह ज्ञान का पुंज और सत्य आचरण करने वाला होना चाहिए। गाँधी जी शिक्षा व्यवस्था का केन्द्र शिक्षार्थी है। विद्यालय को लेकर गाँधी जी के विचार नवीन थे। उनके अनुसार विद्यालय एक ऐसी कार्यशला होना चाहिए जहाँ शिक्षक समर्पित होकर कार्य करें। जहाँ कि शिक्षक और शिक्षार्थी के संयुक्त प्रयत्न से इतना उत्पादन किया जा सके जिससे कि वे आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बन सकें।

तत्कालीन शिक्षा के दोषों के निराकरण तथा अपने शैक्षिक प्रयोगों को राष्ट्रीय शिक्षा योजना का रूप देने के लिए स्वतंत्रता के साथ-साथ गाँधी जी ने शैक्षिक सुधार हेतु भी कार्य किए। गाँधी जी सर्वोदय दर्शन के समर्थक थे। वे एक वर्ग रहित समाज की स्थापना करना चाहते थे। गाँधी जी की शिक्षा के क्षेत्र में अद्वितीय देन है।

13.7 शब्दावली

1.तत्वमीमांसा- वास्तविकता का विज्ञान

2.ज्ञानमीमांसा- ज्ञान का विज्ञान

3.मूल्यमीमांसा- मूल्य का विज्ञान

4.सत्याग्रह- सत्य के प्रति आग्रह।

13.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.महात्मा गाँधी का जन्म 2 अक्टूबर, 1869 को गुजरात प्रान्त के पोरबन्दर नामक नगर में हुआ।

2.गाँधी का दर्शन, गाँधीवाद या सर्वोदय दर्शन के नाम से जाना जाता हैं।

3.गाँधी जी के अनुसार दो मूल तत्व -पुरूष (ईश्वर) और प्रकृति (पदार्थ) है।

4.गाँधी जी ने ज्ञान को दो वर्गो में बाँटा है भौतिक ज्ञान व आध्यात्मिक ज्ञान।

5. ज्ञानेन्द्रियों

6. शरीर, मन व आत्मा

7. गाँधी जी के जीवन के प्रमुख आदर्शों व मूल्यों हैं- सत्य, अहिंसा, निर्भयता एवं सत्याग्रह।

8. 7 से 14 वर्ष की आयु वर्ग के सभी बच्चों के लिए अनिवार्य एवं निशुल्क शिक्षा पर बल दिया।

9. गाँधी जी ने मातृभाषा के माध्यम में शिक्षा देने की बात कही।
10. हस्तशिल्प
11. गाँधी जी की राष्ट्रीय शिक्षा ‘बेसिक शिक्षा के नाम से जानी जाती है।
12. गाँधी जी के अनुसार, ‘’शिक्षा से मेरा तात्पर्य है – ‘बालक और मनुष्य के शरीर, मस्तिष्क और आत्मा में पाये जाने वाले सर्वोत्तम गुणों का चहुँमुखी विकास।’
13. क्रिया –प्रधान

14. सत्य

15.गाँधी जी द्वारा दी गयी शिक्षण विधियाँ निम्न हैं-

(I)अनुकरण विधि

(II)स्वानुभव द्वारा सीखने की विधि

(III) क्रिया विधि

(iV) सहसंबंध विधि

(V) मौखिक विधि

(VI) श्रवण-मनन-निधिध्यासन विधि

16. प्रभावात्मक

17. सत्य

18.सत्य

19.शिक्षार्थी

20.कार्यशला

21.बेसिक शिक्षा को वर्धा योजना, नयी तालीम और बुनियादी शिक्षा के नाम से भी जाना जाता है।

13.9 सन्दर्भ ग्रंथ सूची Reference Books

लाल, एण्ड पलोड. *एजुकेशनल थॉट एण्ड प्रैक्टिस*. मेरठ:आर0लाल प्रकाशन.

पाण्डा, अ. कु. (2011). *शिक्षा दर्शन*. कानपुर: साहित्य रत्नालय.

सक्सेना, एन. आर. स्व., चतुर्वेदी, शि. (2010). *उदीयमान भारतीय समाज मे शिक्षक*. मेरठ:आर लाल प्रकाशन

एलैक्स, शी. मै. (2008). *शिक्षा दर्शन*. नई दिल्ली: रजत प्रकाशन.

ओड, ए. के. *शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि*. राजस्थान ग्रंथ अकादमी.

Sharma, s., Laxmi, N. A. *Principles of Education.* Aagra: educational Publication.

13.10 निबंधात्मक प्रश्न

1.गाँधी जी के अनुसार शिक्षा का अर्थ क्या है? गाँधी जी के अनुसार शिक्षा के उद्देश्यों को वर्णित कीजिए।

2.गाँधी के अनुसार शिक्षा के पाठ्यक्रम को स्पष्ट कीजिए।

3.गाँधी जी के जीवन के प्रमुख आर्दश व मूल्यों की व्याख्या कीजिए।

4.शैक्षिक उदेश्यों और पाठ्यक्रम के विषय में गाँधी जी के विचारों का वर्णन कीजिये।

5.शिक्षण विधियों के विषय में गाँधी जी के विचारों का वर्णन कीजिये।

6.बेसिक शिक्षा के गुण एवं दोषों को लिखिए।

इकाई 14 : रवीन्द्रनाथ टैगोर का शिक्षा दर्शन (Education Philosophy of Rabindranath Tagore)

14.1 प्रस्तावना (Introduction)
14.2 उद्देश्य (Objectives)
भाग-एक Part I
14.3 टैगोर का शिक्षा दर्शन (Education Philosophy of Tagore)
  14.3.1 टैगोर का जीवन परिचय एवं शिक्षा (Tagore's Life and Education)
14.3.2 टैगोर का का व्यावहारिक जीवन एवं गतिविधियां (Practical Life and Activities of Tagore)
14.3.3 आत्मशिक्षा के सिद्धान्त (Principles of Self Education)
  अपनी उन्नति जानिए (Check your Progress)
भाग-दो Part II
14.4 रवीन्द्रनाथ टैगोर का विश्वबोध दर्शन (The Philosophy of International Understanding of Ravindernath Tagore)
14.4.1 टैगोर के जीवन दर्शन में विभिन्न दार्शनिक विचारधाराओं का संश्लेषण (Synthesis of Various Philosophical View in the Philosophy of Life of Tagore)
14.4.2 शिक्षा के उद्देश्य (Aims of Education)
14.4.3 पाठ्यक्रम (Curriculum)
  अपनी उन्नति जानिए (Check your Progress)
भाग-तीन Part III
14.5 शिक्षण पद्धति (Method of Teaching)
  14.5.1 अनुशासन (Discipline)
  14.5.2 टैगोर के शिक्षा दर्शन का मूल्यांकन व योगदान (Estimation of Contribution of Tagore's Philosophy of Education)
अपनी उन्नति जानिए (Check your Progress)
14.6 सारांश (Summary)
14.7 शब्दावली/कठिन शब्द (Difficult Words)

14.8 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर (Answer of Practice Questions)
14.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Reference Books)
14.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री (Useful Books)
14.11 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions

14.1 प्रस्तावना (Introduction)

भारतीय शिक्षा शास्त्रियों में रवीन्द्रनाथ टैगोर का अपना द्वितीय स्थान है। डॉ. एस. सिन्हा के अनुसार- रवीन्द्रनाथ टैगोर का जीवन आधुनिक भारत के पूरे युग में फैला हुआ है। उनके व्यक्तिव विकास मे नव जागरण की मुख्य बाते पायी जाती है। उनके सामाजिक दर्शन का सही ज्ञान भारतीय लोगों में नूतन इतिहास का पर्याप्त ज्ञान का समावेश करता है। बड़े भारतीय जन-समूह की निरक्षरता पश्चिम के लोगों के साथ बहुत ही विशेष प्रकट करती है। शिक्षा के द्वारा निरक्षरता का निवारण उनके जीवन की एक प्रबल इच्छा बनी।

इस प्रकार के अद्वितीय व्यक्तित्व के कारण टैगोर अपने को एक महान कवि, साहित्यकार, समाज सुधारक और दार्शनिक के रूप में सीमित न रख सके बल्कि अपने महान विचारों के कारण भारत की जनता को प्रगति के पथ पर अग्रसर करने के लिए एक महान शिक्षा शास्त्री, शिक्षा विशेषज्ञ और शिक्षक के रूप में हमारे लिए वरदान सिद्ध हुए।

14.2 उद्देश्य (Objectives)

1. रवीन्द्रनाथ टैगोर की शिक्षा दर्शन का अध्ययन।
2. टैगोर के आत्मशिक्षा के सिद्धान्त का अध्ययन।
3. रवीन्द्रनाथ टैगोर के विश्वबोध दर्शन का अध्ययन
4. टैगोर के जीवन दर्शन में विभिन्न दार्शनिक विचारधाराओं का संश्लेषण का ज्ञान।
5. रवीन्द्रनाथ टैगोर की शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यक्रम, शिक्षण पद्धति, अनुशासन का ज्ञान।
6. टैगोर का शिक्षा दर्शन में योगदान।

भाग-एक Part I

14.3 टैगोर का शिक्षा दर्शन (Tagore's Philosophy of Education)

टैगोर के शिक्षा दर्शन का विकास (Tagore's Development of Philosophy Education)

टैगोर ने अपने जीवन दर्शन के विकास के साथ-साथ शिक्षा दर्शन का भी विकास किया। अतः उनके जीवन दर्शन के विकास में जिन तत्वों का प्रभाव पड़ा उन्हीं तत्वों का प्रभाव उनके शिक्षा दर्शन के विकास में भी पड़ा। टैगोर के शिक्षा दर्शन के निर्माण पर उनके परिवार का विशेष प्रभाव पड़ा जो कि सभी प्रकार के प्रगतिशील विचारों एवं कार्यो और विभिन्न राजनैतिक, सामाजिक, तथा सांस्कृतिक, धार्मिक आन्दोलनों का केन्द्र था।

श्री एस.सी. सरकार ने इस तथ्य की खोज करते हुए लिखा है- उन्होंने स्वयं ही शिक्षा के उन सभी सिद्धान्तों की खोज की, जिनका आगे चलकर उन्हें अपने लिए प्रतिपादन करना था। इसके अतिरिक्त टैगोर ने अपनी तीव्र बुद्धि द्वारा प्राकृतिक एवं सामाजिक विज्ञानों का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त कर लिया था, जिनका कि उनके शिक्षा दर्शन के निर्माण में पर्याप्त प्रभाव पड़ा। इस प्रकार टैगोर के विकास में अनेक महत्वपूर्ण बातों का प्रभाव पड़ा।

14.3.1 टैगोर का जीवन-परिचय एवं शिक्षा (Tagore's Life and Education)

टैगोर का जन्म एवं शिक्षा

जीवन वर्णन (Birth Sketch)

रवीन्द्रनाथ टैगोर का जन्म बंगाल के ख्यातिप्राप्त, सुसभ्य, सुशिक्षित एवं सुसंस्कृत परिवार में सन् 1861 में कलकत्ता में हुआ था। उनके पिता का नाम महर्षि देवेन्द्र नाथ टैगोर था। उस समय उनका परिवार अपनी समृद्ध, कला एवं संगीत के लिए सारे बंगाल में प्रसिद्ध था। टैगोर को अपने माता-पिता से विद्वता, देशभक्ति, धर्मप्रियता, साधुता आदि गुण उत्तराधिकार के रूप में प्राप्त हुए हैं। इनके पिता इन्हें एक साथ गायक, वैज्ञानिक, दार्शनिक, डॉक्टर, साहित्यिक सभी कुछ बना देना चाहते थे। इनका जीवन नौकरों के संरक्षण में व्यतीत हुआ, जो इन्हें घर की चार-दीवारी में रखते थे, जिसके कारण उनमें प्रकृति के प्रति प्रेम जागृत हो गया।

शिक्षा (Education)

प्रारम्भ से ही स्कूलों में गलत शिक्षा पद्धति व अध्यापक के तानाशाही व्यवहार के कारण ये स्कूल में न पढ़ सके। घर पर ही बड़े भाई देवेन्द्रनाथ टैगोर व अन्य शिक्षकों की देख-रेख में उन्होंने अंग्रेजी, संगीत, साहित्य, कुश्ती-व्यायाम, इतिहास, भूगोल, गणित आदि की शिक्षा प्राप्त की।

इसके अतिरिक्त टैगोर का परिवार स्वयं समाज के सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक एवं राष्ट्रीय कार्य का एक केन्द्र था, जिसका बालक टैगोर के मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव पड़ा और उसमें राष्ट्रीय भावना का बीज बो दिया गया। इस प्रकार सोलह वर्ष तक अस्त-व्यस्त ढंग से शिक्षा ग्रहण करने के उपरान्त सन् 1869 में टैगोर उच्च शिक्षा प्राप्त करने हेतु इंग्लैण्ड गये। वहां से विचार परिवर्तन करने के कारण लंदन चले गये किन्तु वहां किसी विद्यालय में प्रवेश नहीं लिया और घर वापस आ गये। लेकिन कुशाग्र बुद्धि तथा भावुक हृदय होने के कारण टैगोर ने अपनी जन्मजात प्रतिभा को और अधिक विकसित कर लिया।

14.3.2 टैगोर का व्यावहारिक जीवन एवं गतिविधियां

(Practical Life and Activities of Tagore)

सन् 1881 में जब वे इंगलैण्ड से स्वदेश लौटे तो उनका व्यावहारिक जीवन और भी अधिक व्यावहारिक हो गया। उन्होंने सर्वप्रथम भारत लौटकर सामाजिक, जातीय एवं राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होकर लेखक के रूप में अपना व्यावहारिक जीवन प्रारम्भ किया। शुरू में वे सन् 1881 तक मासिक पत्रिका ‘भारती’ में तथा इसके बाद सन् 1891 से 1894 ई. तक ‘साधना’ नामक पत्रिका में अपने लेख देते रहे। ‘गीतांजली’ उनके सबसे प्रमुख रचना थी, जिस पर उन्हें नोबल पुरस्कार भी प्राप्त हुआ। अपने विचारों का प्रसार करने के लिए सबसे महत्वपूर्ण कार्य ‘शान्ति निकेतन’ की स्थापना सन् 1901 में की, जिसे आज हम ‘विश्व भारती विश्वविद्यालय’ के नाम से संबोधित करते हैं।

शान्ति निकेतन में उन्होंने घरेलू उद्योग, ग्राम स्वायत्त शासन, सहकारिता, प्रारंभिक एवं प्रौढ़ शिक्षा का विकास, ग्रामोद्धार, कृषि विश्वविद्यालय, प्रयोगशाला, पुस्तकालय आदि के लिए आध्यात्मिक अनुभूति की ओर कदम बढ़ाये। सन् 1912 से 1916 तक उन्होंने विश्व भ्रमण किया और सर्वत्र विश्व शान्ति एकता एवं मातृत्व का संदेश दिया। सन् 1915 में ब्रिटिश सरकार ने 1916 में उन्हें नाइटहुड की उपाधि प्रदान की। सन् 1941 में इनकी मृत्यु हो गयी।

14.3.3 आत्म-शिक्षा के सिद्धान्त

आत्म-शिक्षा आत्म-साक्षात्कार पर आधारित है। आत्म-साक्षात्कार की प्रक्रिया शिक्षा की प्रक्रिया के समान आजीवन चलती रहती है। इसमें सबसे अधिक आवश्यक यह है कि शिक्षार्थी को स्वयं अपने में विश्वास हो और अपनी बाह्य आत्मा के मूल में अधिक व्यापक वास्तविक आत्मा के अस्तित्व में विश्वास हो। शिक्षा की प्रक्रिया में वे सब क्रियायें सहायक हो सकती हैं जिनमें आनन्द की स्वाभाविक अनुभूति मिलती है। यह आनन्द आत्मा की प्रतिक्रिया है और इसलिए सुख अथवा संतोष मात्र से भिन्न है। रवीन्द्र की आत्म-शिक्षा-व्यवस्था में शिक्षार्थी को निम्नलिखित तीन कार्यात्मक सिद्धान्तों को सीखकर उनका प्रयोग करना होता है।

1. स्वतंत्रता - रवीन्द्र ने अपनी शिक्षा प्रणाली में शिक्षार्थियों को सब प्रकार की स्वतंत्रता दी है। उन्होंने बुद्धि, हृदय, और संकल्प अथवा ज्ञान, भक्ति और कर्म की स्वतंत्रता पर विशेष जोर दिया है। इस स्वतंत्रता को प्राप्त करने के लिए शिक्षार्थी को निष्कामभाव, समानता, समन्वय और संतुलन का अभ्यास करना आवश्यक है। इससे वह सत्य और असत्य, स्वाभाविक और कृत्रिम, प्रासंगिक और अप्रासंगिक, स्थायी और अस्थायी, सार्वभौम और व्यक्तिगत तथा विशाल और संकुचित में अंतर कर सकता है तथा सत्य और स्वाभाविक, प्रासंगिक, शाश्वत, समन्वित और विश्वगत तत्वों को ग्रहण कर सकता है। एक बार यह सामर्थय उत्पन्न होने के बाद शिक्षार्थी स्वयं अपना निर्देशन कर सकता है। वह स्वयं यह जान सकता है कि कौन-कौन से अनुभव और क्रियायें उसके मार्ग में बाधक हैं और कौन से साधक हैं। रवीन्द्र के अनुसार स्वतंत्रता का अर्थ स्वाभाविकता है। दूसरे शब्दों में, जब बुद्धि, भावना और संकल्प स्वाभाविक रूप से विस्तृत हों तो उसे स्वतंत्रता की स्थिति कहा जा सकता है। इस प्रकार स्वतंत्रता अनियंत्रण से भिन्न है। वह आत्म-नियंत्रण है। वह ‘स्व’ के अनुसार आचरण करना है। इस प्रकार की स्वतंत्रता एक बार प्राप्त हो जाने पर फिर मार्ग-भ्रष्ट होने का खतरा नहीं रहता, क्योंकि उसकी इंद्रियां, बुद्धि, संवेग, अनुभूतियां और सभी शक्तियां उसके अपने ‘स्व’ के आदेश पर चलती हैं।

2. पूर्णता - आत्म-शिक्षा का दूसरा कार्यात्मक सिद्धान्त पूर्णता है। इसके अनुसार प्रत्येक शिक्षार्थी को अपने व्यक्तित्व के सभी पहलुओं और अपनी सभी शक्तियों का पूर्ण विकास करना चाहिए। इस दृष्टि से शिक्षा का लक्ष्य व्यावसायिक निपुणता प्राप्त करना, परीक्षा में सफल होना अथवा डिग्रियां लेकर सामाजिक सम्मान प्राप्त करना नहीं है। शिक्षा का एक मात्र लक्ष्य बालक के व्यक्तित्व का पूर्ण विकास है। यह पूर्ण विकास तभी संभव हो सकता है, जबकि व्यक्तित्व के सभी पहलुओं पर समुचित जोर दिया जाए, न किसी पर आवश्यकता से अधिक बल दिया जाए।

3. सार्वभौमिकता - व्यक्ति का विकास तब तक पूर्ण नहीं हो सकता, जब तक कि वह अपने अंदर उपस्थित विश्वात्मा को प्राप्त न कर ले। इसके लिए व्यक्तिगत आत्मा का विश्वात्मा से तादाम्य करना पड़ता है। इस विश्वात्मा के अस्तित्व में आस्था शिक्षा की पहली शर्त है। शिक्षा का उद्देश्य कोरा विकास मात्र न होकर एक नया जन्म है, जिससे व्यक्ति अपने सीमित व्यक्तित्व से ऊपर उठकर विश्वात्मा से एक हो जाता है। इस विश्वात्मा को न केवल व्यक्तिगत जीवन में, बल्कि अपने चारों ओर के प्राकृतिक जीवन में भी खोजा जाता है। यह खोज ज्ञान, भक्ति और कर्म तीनों के ही माध्यम से होती है। एक बार इस विश्वात्मा का साक्षात्कार हो जाने पर फिर इसके निर्देशन में आगे बढ़ना सरल हो जाता है।

उपर्युक्त विवेचन से स्प्ष्ट है कि रवीन्द्र नाथ टैगोर की शिक्षा-प्रणाली में शिक्षा का लक्ष्य स्वतंत्रता, पूर्णता और व्यापकता प्राप्त करना है। शिक्षा की प्रक्रिया के द्वारा शिक्षा एक ऐसे परिवेश का निर्माण

करती है, जिसमें बालक के व्यक्तित्व का उन्मुक्त, पूर्ण और अत्यधिक व्यापक विकास संभव होता है।

अपनी उन्नति जानिए (Check your Progress)

प्र. 1 रवीन्द्रनाथ टैगोर का जन्म किस वर्ष में हुआ था?

प्र. 2 नोबेल पुरस्कार उन्हें किस रचना पर प्राप्त हुआ था?

प्र. 3 शान्ति निकेतन (विश्व भारती) की स्थापना किस वर्ष हुई?

(अ) 1901 (ब) 1902 (स) 1903 (द) 1904

प्र. 4 गुरूदेव के कार्यक्रम किस क्षेत्र पर आधारित है?

भाग-दो Part II

14.4 रवीन्द्रनाथ टैगोर का विश्वबोध-दर्शन:-

रवीन्द्रनाथ टैगोर ने परमात्मा को विश्व की सर्वोच्च शक्ति के रूप में मानकर संसार के समस्त प्राणियों में अद्वैत-भावना का संचार किया। समस्त विश्व को उन्होंने एक दृष्टि से देखा। इन्होंने अपने बचपन में ही वेद और उपनिषद पढ़ डाले थे। उपनिषदों के तत्व ज्ञान का इन पर गहरा प्रभाव पड़ा। मूलतः वे उपनिषदों के पृष्ठपोषक थे, परन्तु इन्होंने उपनिषदीय चिन्तन को मानवीय दृष्टि से देखा-समझा और उसी के अनुरूप उसकी व्याख्या की। इनका विश्वास था कि संसार के समस्त प्राणियों में परमात्मा व्याप्त है। इनके विचार से अपने और संसार के अन्य समस्त प्राणियों में उस परमात्मा की व्याप्ति का अनुभव करने से विश्व के अन्य समस्त प्राणियों में उस परमात्मा की व्याप्ति का अनुभव करने से विश्व के समस्त प्राणियों में एकात्मभाव उत्पन्न हो सकता है और यही आत्मानुभूति का सर्वोत्तम मार्ग है। इनकी इस विचारधारा को विद्वानों ने विश्वबोध दर्शन की संज्ञा दी है।

विश्वबोध दर्शन की तत्व मीमांसा :-

गुरूदेव संसार को ईश्वर के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति मानते थे। इसलिए उनके अनुसार ईश्वर द्वारा निर्मित यह जगत उतना ही सत्य है जितना ईश्वर अपने आप में सत्य है। ईश्वर को इन्होंने निराकार और साकार, दोनों ही रूपों में स्वीकार किया है। इनके अनुसार बीज रूप में वह निराकार है और सृष्टि (प्रकृति) के रूप में साकार है। गुरूदेव को प्रकृति के कण-कण में ईश्वर की अनुभूति होती थी। आत्मा को गुरूदेव ने उपनिषदों के आधार पर तीन रूपों में स्वीकार किया है। अपने प्रथम रूप में यह मनुष्यों को आत्मरक्षा में प्रवृत्त करती है, दूसरे रूप में ज्ञान-विज्ञान की खोज और अनन्त ज्ञान की प्राप्ति की ओर प्रवृत्त करती है, और तीसरे रूप में अपने अनन्त रूप को समझने की ओर प्रवृत्त करती है।

गुरूदेव के अनुसार ये तीनों कार्य आत्मा के स्वाभाविक गुण हैं। इसमें आत्मानुभूति को गुरूदेव मनुष्य जीवन का अन्तिम उद्देश्य मानते थे।

विश्वबोध दर्शन की ज्ञान मीमांसा :-

ज्ञान प्राप्ति के साधनों के समंबन्ध में गुरूदेव ने स्पष्ट किया कि आध्यात्मिक तत्वों का ज्ञान सूक्ष्म माध्यमों द्वारा तथा भौतिक वस्तुओं एवं क्रियाओं का ज्ञान भौतिक माध्यमों द्वारा प्राप्त होता है। सूक्ष्म माध्यमों में इन्होंने प्रेम योग के महत्व को स्वीकार किया है। इन्होंने स्पष्ट किया कि आध्यात्मिक तत्व के ज्ञान के लिए सबसे सरल मार्ग प्रेम मार्ग है, प्रेम ही हमें मानव मात्र के प्रति संवेदनशील बनाता है, यही हमें एकात्म भाव की अनुभूति कराता है और यही हमें आत्मानुभूति अथवा ईश्वर की प्राप्ति कराता है। टैगोर अन्य भारतीय दर्शनों की तरह भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों पक्षों को महत्व देते हैं, इस मत का समर्थन करते हुए वे कहते हैं कि जो लोग केवल अविद्या अर्थात् संसार की ही उपासना करते हैं वे तमस् में प्रवेश करते हैं और उससे अधिक अंधकार में वे प्रवेश करते हैं जो केवल ब्रह्म विद्या में ही निरत हैं। अतः टैगोर भौतिक जगत के ज्ञान को उपयोगी ज्ञान और आध्यात्मिक जगत के ज्ञान को विशुद्ध ज्ञान कहते थे। इनकी दृष्टि से संसार की समस्त जड़ वस्तुओं और जीवों में एकात्म भाव ही अंतिम सत्य है और इसकी अनुभूति ही मनुष्य जीवन का अंतिम लक्ष्य है।

विश्वबोध दर्शन की आचार मीमांसा :-

गुरूदेव मानवतावादी व्यक्ति थे। ये मनुष्य को पहले अच्छा मनुष्य बनाने पर बल देते थे, ऐसा मनुष्य जो शरीर से स्वस्थ हो, मन से निर्मल और संवेदनशील हो, समस्त मानव जाति के प्रति उसके हृदय में प्रेम हो और जो प्रकृति के कण-कण से प्रेम करता हो। ये प्रेम को मनुष्य के आचार-विचार का आधार बनाना चाहते थे। इनका तर्क था कि प्रेम ही वह भावना है जो मनुष्य को मनुष्य के प्रति संवेदनशील बनाती है और मनुष्य को मनुष्य की सेवा की ओर प्रवृत्त करती है। इनका विश्वास था कि प्रेम से भौतिक जीवन भी सुखमय बनाया जा सकता है और आध्यात्मिक पूर्णता भी प्राप्त की जा सकती है। यही कारण है कि गुरूदेव के सभी कार्यक्रम-ग्राम सेवा, समाज सेवा, राष्ट्र सेवा और अन्तर्राष्ट्रीय अवबोध, प्रेम पर ही आधारित रहते थे। इनका तर्क था कि प्रेम के अभाव में मानव सेवा की बात तो दूर मानव सेवा का भाव भी जागृत नहीं हो सकता। मानव सेवा को गुरूदेव ईश्वर सेवा मानते थे।

14.4.1 टैगोर के जीवन दर्शन में विभिन्न दार्शनिक विचारधाराओं का संश्लेषण

(Synthesis of Various Philosophical View in the Philosophy of Life of Tagore)

दार्शनिक सिद्धान्त (Philosophical Principles)

टैगोर के जीवन में विभिन्न दार्शनिक विचारधाराओं के दर्शन हमे होते हैं। जैसे- 1. आदर्शवाद (Idealism), 2. प्रकृतिवाद (Naturalism), 3. यथार्थवाद (Realism), 4. प्रयोजनवाद (Pragmatism)] 5. लोकतंत्रवाद (Democratic)] 6. मानवतावाद (Humanism), 7. विश्ववाद (Universalism)। टैगोर के जीवन दर्शन में पाई जाने वाली इन सभी विचारधाराओं पर संक्षेप में प्रकाश डाल रहे हैं:-

1. आदर्शवाद (Idealism) :- अपनी आदर्शवादी भावना से प्रेरित होकर टैगोर ने भौतिकवादी प्रगति के संबंध में खेद प्रकट करते हुए कहा है कि मनुष्य भौतिक वस्तुओं को पाने के लिए व्याकुल है। जिससे कि वह अमर सत्य को पाने में असमर्थ हो गया है। इनका विचार है कि ईश्वर की विश्व में रहकर प्राप्ति की जाती है।

एक दूसरे स्थान पर टैगोर ने कहा है कि प्रत्येक समय के साथ हमें सदैव इस बात का अनुभव होना चाहिए कि हमारी शक्ति में ईश्वर का वास है। हमारे देश पर पश्चिमी सभ्यता का इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि वह ईश्वर का त्यागा हुआ देश बन गया। टैगोर का विश्वास है कि हम पुनः आध्यात्मिक संस्कृति एवं जीवन का सृजन कर देते हैं। इसके लिए उन्होंने आत्मा की पूर्ण स्वतंत्रता और उसकी अभिव्यक्ति के लिए अनुकूल परिस्थितियों पर बल दिया।

2. प्रकृतिवाद (Naturalism):- टैगोर प्रारंभ से ही प्रकृति एवं प्राकृतिक सौन्दर्य के उपासक रहे हैं। वे जब अप्राकृतिक वातावरण से युक्त विद्यालय में गये तो उन्हें उसकी अस्वाभविकता अनुभव हुई और वे उसके विरूद्ध प्रतिक्रियाशील हो उठे और रूसो की भांति पुकार उठे-'प्रकृति की ओर चलो।' अपने प्रकृतिवादी दर्शन में प्रकृति को महान शिक्षक (Great Teacher) माना है। उन्होंने मानव प्रकृति को समझने एवं अपने आपको सामाजीकृत करके आगे बढ़ाने के लिए संदेश दिया है। टैगोर ने प्रकृति को एक ऐसा केन्द्रबिन्दु बताया है जहां पर सभी मनुष्यों की इच्छाएं, आकांक्षाएं एवं अभिलाषाएं एक होती हैं।

इस प्रकार टैगोर ने प्रकृति संबंधी विचारों के आधार पर मानव एकता की ओर संकेत किया है। टैगोर का विचार है कि प्रकृति में आरंभ से परिपूर्ण सादा जीवन होता है, जहां पर अत्यधिक स्थान शुद्ध वायु एवं गम्भीर शान्ति होती है। प्रकृति में मनुष्य आगामी शाश्वत जीवन के लिए पूर्ण विश्वास से रहता है।

3. यथार्थवाद (Realism):- टैगोर ने अपने जीवन में भारतीय यथार्थवाद एवं पाश्चात्य यथार्थवाद के बीच अद्वितीय समन्वय स्थापित किया है। इस समन्वय के आधार पर उन्होंने भारत के लिए एक

ऐसी संस्कृति के विकास के लिए बल दिया है, जिसमें एक ओर नैतिक, चारित्रिक एवं शाश्वत मूल्य एवं सत्यों का समावेश हो। टैगोर ने इस यथार्थवाद को सामने रखते हुए कि भारत एक ग्रामीण देश है और किसी देश की जनता तभी प्रगति कर सकती है जबकि उसे देश में जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए वस्तुओं एवं साधनों का अत्यधिक उत्पादन किया जाये। प्रत्येक ग्राम में ऐसे शिक्षा संस्थान स्थापित किये जायें, जहां पर सामान्य शिक्षा के अतिरिक्त कृषि एवं ग्रामीण उद्योगों का विकास करने के लिए विज्ञान की सहायता ली जाये।

4. प्रयोजनवाद (Pragmatism):- टैगोर एक आदर्शवादी दार्शनिक होते हुए भी उनका प्रयोजनवादी दृष्टिकोण था। उनका यह विचार कि भौतिकवादी आदर्शो का अंधानुकरण न करके उन्हें तभी स्वीकृत किया जाय जबकि उनकी परख कर ली जाए, उनके प्रयोजनवादी दृष्टिकोण की पुष्टि करता है। सुप्रसिद्ध प्रयोजनवादी दार्शनिक श्री डी.वी. की भांति टैगोर भी शिक्षा को जीवन से संबंधित करने के पक्ष में थे। वे शिक्षा एवं शिक्षालयों को समाज व समुदाय से संबंधित रखना चाहते थे। उनका विचार है, ‘शिक्षा का लक्ष्य केवल एक अच्छा क्लर्क या एक तकनीशियन बनाना नहीं है, बल्कि यह तो एक पूर्ण मनुष्यत्व के अनुभव को पूर्णता द्वारा विकसित करना है।’

5. लोकतंत्रवाद (Democratic) :- टैगोर के दार्शनिक विचारों में लोकतंत्रवाद की भी एक झलक मिलती है। वे जमींदार होते हुए भी जनता के प्रति भ्रातृत्व भाव भी रखते थे, और उनकी स्वतंत्रता पर बल देते थे। टैगोर ने बताया कि एक देश की सुख-सम्पन्नता जन-साधारण की शिक्षा पर निर्भर करती है। टैगोर इस बात को अच्छी तरह समझते थे कि जब तक जन-साधारण के लिए शिक्षा की व्यवस्था नहीं की जाती तब तक भारत में जनतंत्र की कल्पना करना निरर्थक है। अतः टैगोर ने सार्वभौमिक शिक्षा एवं जन-साधारण की शिक्षा के लिए मांग की। इसके लिए स्वयं प्रयास भी किये। टैगोर ने लोकतंत्रीय समाज की स्थापना करने के लिए ग्रामोद्धार की योजना पर सबसे पहले विचार प्रस्तुत किये। इसलिए यह कहा जाता है कि आधुनिक भारत में सामुदायिक विकास आन्दोलन एवं सर्वोदय आन्दोलन की प्रेरणा टैगोर से प्राप्त हुई। टैगोर भारत में केवल राजनैतिक दृष्टि से ही लोकतंत्र की स्थापना नहीं करना चाहते थे, बल्कि वे आर्थिक, शैक्षिक एवं सामाजिकता से भी सच्चे लोकतंत्र की स्थापना पर बल देते थे। अतः टैगोर का जीवन-दर्शन मानवतावाद का पुष्ट पोषक है।

6. मानवतावाद (Humanism):- टैगोर के जीवन-दर्शन में मानवतावाद की अत्यधिक झलक मिलती है। उनके लेख मानवतावादी विचारों से ओत-प्रोत हैं। टैगोर के मानवतावाद की एक अन्य उल्लेखनीय प्रवृत्ति सामान्य एवं सरल मानव जीवन के आनन्द की खोज है। अपनी इस धारणा के परिणामस्वरूप टैगोर ने अपनी कविता ‘कवि कलम’ में लिखा हैः-‘मैं तो मानवतावाद के हृदय में वास करने का अत्यंत इच्छुक हूँ।’ अपनी इस इच्छा की पूर्ति करने के लिए टैगोर ने लोक-शिक्षा की योजना तैयार की और इसके लिए विभिन्न केन्द्र स्थापित किये, ताकि बहुत से स्त्री-पुरूष मानवीकृत किये जा सकें। टैगोर ने कहा मानवता के सार्वभौमिक हृदय एवं अन्तर में ईश्वर का वास है।

7. विश्ववाद (Universalism) :- टैगोर भारतीय दर्शन, विशेषकर औपनिषदीप दर्शन से प्रभावित होकर विश्ववाद की तरफ भी उन्मुख हुए। उन्होंने सृष्टि की समस्त वस्तुओं को विश्ववाद एवं मानवतावादी दृष्टिकोण से देखना शुरू किया। टैगोर ने अपने विश्ववाद को सभ्यताओं के एकीकरण के रूप में व्यक्त किया है। अपनी विश्ववाद की इस धारणा के आधार पर टैगोर ने विश्व भारती की स्थापना की।

14.4.2 शिक्षा के उद्देश्य (Aims of Education)

1. शिक्षा का मुख्य उद्देश्य बालक की जन्मजात शक्तियों का विकास कर उसके व्यक्तित्व का चर्तुमुखी तथा सर्वांगीण विकास करना होना चाहिए।

2. शिक्षा का कार्य केवल बालकों को अच्छा क्लर्क, निपुण किसान, शिल्पी या वैज्ञानिक बना देना नहीं है। बल्कि उन्हें अनुभव की पूर्णता द्वारा पूर्ण मनुष्य के रूप में विकसित करना भी है।

3. बालकों के प्रकृति के घनिष्ट संपर्क में रहकर शिक्षा देने की व्यवस्था होनी चाहिए, क्योंकि प्रकृति के साथ घनिष्ट संपर्क स्थापित करने में आनन्द का अनुभव होता है।

4. विद्यार्थियों को नगरों की अनैतिकता, भीड़ और गन्दगी से दूर प्रकृति के शान्त तथा सायेदार एकान्त स्थान में रखना चाहिए।

5. शिक्षा राष्ट्रीय होनी चाहिए एवं उसमें भारत के भूत एवं भविषय का ध्यान रखना चाहिए।

6. भारतीय शिक्षा एवं भारतीय विद्यालयों के पाठ्यक्रमों में भारतीय दर्शन के प्रमुख विचारों को स्थान दिया जाना चाहिए।

7. सभी विद्यार्थियों को भारतीय विचारधारा एवं भारतीय समाज की पृष्ठभूमि का स्पष्ट रूप से ज्ञान करना चाहिए।

8. प्रत्येक बालक एवं बालिका में संगीत, चित्रकला और अभिनय की योग्यताओं का विधिपूर्वक विकास करना चाहिए।

9. मातृभाषा शिक्षा का माध्यम होना चाहिए, क्योंकि उनके द्वारा ही संपूर्ण राष्ट्र को अच्छे प्रकार से शिक्षित किया जा सकता है।

10. सच्ची शिक्षा बालकों को स्वतंत्र प्रयासों से ही प्राप्त की जानी चाहिए।

11. अनन्त मूल्यों की प्राप्ति विदेशी भाषा से संभव नहीं है। अतः मातृभाषा का प्रयोग करना चाहिए।

12. विद्यार्थियों को पुस्तकों के बजाय प्रत्यक्ष स्रोतों से ज्ञान प्राप्त करने का अवसर देना चाहिए।

13. बालकों को उत्तम भोजन, जिससे मानसिक विकास हो, भोजन प्रदान करना चाहिए।

14. शिक्षण पद्धति का आधार जीवन की वास्तविक बातें तथा प्राकृतिक होनी चाहिए।

15. विद्यार्थियों के सामाजिक आदर्शो, परम्पराओं, प्रथाओं और रीति-रिवाजो को पाठ्यक्रम में स्थान दिया जाना चाहिए।

16. बालकों को इस प्रकार की शिक्षा दी जाय, जो उन्हें आध्यात्मवाद की ओर अग्रसर होने का अवसर प्रदान करे।

17. बालक का जन्म प्रकृति एवं मनुष्य दोनों के संसार में होता है। अतः दोनों संसार के लिए उनका आकर्षण बनाये रखना चाहिए।

18. शिक्षा द्वारा बालकों में उच्चकोटि की धार्मिक भावना जागृत करनी चाहिए, जिससे उनमें मानवता का कल्याण करने की क्षमता का विकास हो।

14.4.3 पाठ्यक्रम (Curriculum)

टैगोर के अनुसार शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य पूर्ण जीवन की प्राप्ति करने के लिए मनुष्य का पूर्ण विकास करना है। शिक्षा के इस व्यापक उद्देश्य की पूर्ति के लिए टैगोर ने व्यापक तथा विस्तृत पाठ्यक्रम संबंधी विचार प्रस्तुत किये हैं। उनके अनुसार-शिक्षा तभी अपने मुख्य उद्देश्य की प्राप्ति कर सकती है, जबकि पाठ्यक्रम से मानव जीवन के विभिन्न पक्षों यथा-शारीरिक, मानसिक, भावात्मक, सामाजिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक विकास को स्थान दिया जाय।

टैगोर ने अपने शान्ति निकेतन और बाद में विश्व भारती में विषयों के साथ-साथ विभिन्न क्रियाओं को भी पाठ्यक्रम में महत्वपूर्ण स्थान दिया है। ये विषय, क्रियाएं तथा पाठान्तर क्रियाएं निम्नलिखित हैं:-

अ. विषय (Subject) - इतिहास, भूगोल, विज्ञान, प्रकृति विज्ञान, साहित्य आदि।

ब. क्रियाएं **(Activities) -** बागवानी, भ्रमण, अभिनय, ड्राइंग, क्षेत्रीय अध्ययन, प्रयोगशाला कार्य, अजायब घर के लिए वस्तुओं का संग्रह आदि।

स. पाठान्तर क्रियाएं **(Extra Curricular Activities)** - समाज सेवा, छात्र स्वशासन, खेलकूद आदि।

टैगोर का पाठ्यक्रम विषय प्रधान न होकर क्रिया प्रधान रहा है। डॉ. एल.वी. मुखर्जी ने कहा है कि ‘इस दृष्टि से टैगोर की शिक्षा संस्थाओं में लागू किया जाने वाला पाठ्यक्रम क्रिया प्रधान पाठ्यक्रम रहा है।’

अपनी उन्नति जानिए (Check your Progress)

प्र. 1 'प्रकृति की ओर चलो, प्रकृति एक महान शिक्षक है।' यह कथन है-

(अ) विवेकानन्द (ब) अरविन्दो (स) रवीन्द्रनाथ टैगोर (द) महात्मा गांधी

प्र. 2 रवीन्द्रनाथ टैगोर की 'कवि कलम' क्या है?

(अ) कहानी (ब) कविता (स) लेख (द) उपन्यास

प्र. 3 'मानवतावाद में मानवता के सार्वभौमिक ह्रदय एवं अंतह में ईश्वर का वास है।' यह कथन है-

(अ) रूसो (ब) महात्मा गांधी (स) डॉ. भीमराव अंबेडकर (द) रवीन्द्रनाथ टैगोर

प्र. 4 'शिक्षा राष्ट्रीय होनी चाहिए एवं उसमें भारत के भूत एवं भविषय का ध्यान रखना चाहिए।' यह कथन है-

(अ) डॉ. भीमराव अंबेडकर (ब) विवेकानन्द (स) रवीन्द्रनाथ टैगोर (द) अरविन्दो

प्र. 5 'विद्यार्थियों को पुस्तकों की बजाय प्रत्यक्ष स्रोतों से ज्ञान प्राप्त करने का अवसर देना चाहिए।' यह कथन है-

(अ) डॉ. राधाकृष्णन् (ब) रवीन्द्रनाथ टैगोर (स) डॉ. भीमराव अंबेडकर

(द) स्वामी विवेकानन्द

भाग-तीन (Part-III)

14.5 शिक्षण पद्धति (Method of Teaching)

1. शिक्षण विधि वास्तविकताओं पर आधारित होनी चाहिए।

(Education should be based on realities)

टैगोर का विचार है कि शिक्षण विधि जीवन की वास्तविक परिस्थितियों, समाज के वास्तविक जीवन तथा प्रकृति के वास्तविक तथ्यों पर आधारित होनी चाहिए। प्राकृतिक विज्ञानों का अध्ययन प्रकृति का निरीक्षण करके किया जाए। सामाजिक विज्ञानों का अध्ययन सामाजिक समस्याओं, घटनाओं एवं संस्थाओं के निरीक्षण से किया जाये।

2. शिक्षण विधि जीवन से पूर्ण होनी चाहिए। (Method of teaching should be full of life)

शिक्षण पद्धति जीवन से पूर्ण होनी चाहिए। प्रचलित विद्यालय शिक्षा के केन्द्र न होकर शैक्षणिक फैक्ट्रियां होती हैं, जो बालकों के जीवन की आवश्यकताओं, रूचियों तथा अभिवृत्तियों पर ध्यान दिये बिना एक ही सी सामग्री उत्पन्न करती है। अतः इन विद्यालयों में बालकों के पूर्ण जीवन का विकास नहीं हो पाता है। अतः शिक्षण पद्धति बालकों की स्वाभाविक आवश्यकताओं, रूचियों तथा आवेगों के अनुसार होनी चाहिए।

3. स्व-प्रयास एवं स्वचिन्तन द्वारा सीखना (Learning by self efforts and self thinking)

टैगोर का विचार है कि वही ज्ञान स्थाई रूप से बालकों के मस्तिष्क में रह सकता है जो उनके स्वयं के प्रयत्नों तथा चिन्तन से प्राप्त हुआ है।

4. क्रिया द्वारा सीखना (Learning by doing)

टैगोर का विचार था कि मनुष्य मन-शारीरिक प्राणी है। अतः हम शरीर और मस्तिष्क को एक-दूसरे से अलग नहीं रख सकते हैं। मनुष्य जो शारीरिक क्रिया करता है, उसका प्रभाव शरीर और मस्तिष्क दोनों पर पड़ता है। अतः बालकों को क्रिया द्वारा सीखने का अवसर देना चाहिए। शारीरिक क्रिया पर महत्व देने के कारण टैगोर ने बालकों को नृत्य तथा अभिनय सीखने पर बल दिया है।

5. भ्रमण द्वारा सीखना (Learning by walking)

टैगोर का विचार है कि भ्रमण के समय पढ़ना, शिक्षण की सर्वोत्तम विधि है। इसके उन्होंने दो कारण बताए हैं। प्रथम-भ्रमण के समय हमें अनेक वस्तुओं को प्रत्यक्ष रूप से देखकर उनका अध्ययन करने का अवसर प्राप्त होता है। द्वितीय-भ्रमण द्वारा हमारी मानसिक शक्तियां सतर्क रहती हैं, जिसमें हम प्रत्यक्ष की जाने वाली बातों को सरलता से सीख लेते हैं।

6. वाद-विवाद एवं प्रश्नोत्तर विधि (Discussion and question answer method)

टैगोर का विचार है कि वास्तविक शिक्षा पुस्तकों पर आधारित न होकर जीवन एवं समाज पर आधारित होनी चाहिए। इस शिक्षा के लिए उन्होंने वाद-विवाद तथा प्रश्नोत्तर विधि को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। उनका विचार है कि प्रश्नों के द्वारा बालकों के समक्ष दैनिक जीवन की समस्याओं को रखा जाये। वे सब उन पर वाद-विवाद करें और उनके हल करने के तरीके बताएं।

14.5.1 अनुशासन (Discipline)

अनुशासन का तात्पर्य स्वाभाविक अनुशासन से है। टैगोर ने अनुशासन को एक मूल्य या आदर्श माना है। अतः यह व्यक्ति के नैतिक विकास के लिए अति आवश्यक है। अनुशासन से टैगोर का

तात्पर्य स्वाभाविक अनुशासन (Natural Discipline) से है, जिसे वे आत्म-अनुशासन (Self Discipline) अथवा आन्तरिक अनुशासन (Inter Discipline) भी कहते हैं। टैगोर के अनुसार अनुशासन न तो अंधी आज्ञाकारिता है और न ही वाह्य व्यवस्था।

14.5.2 टैगोर के शिक्षा दर्शन का मूल्यांकन व योगदान

(Estimation of Contribution of Tagore's Philosophy of Education)

टैगोर और उनके शिक्षा दर्शन का शिक्षा के क्षेत्र में अत्यधिक योगदान है, जिसके कारण न केवल भारतीय शिक्षा के इतिहास में बल्कि विश्व की शिक्षा के इतिहास में उनका नाम अमर हो गया। शिक्षा के क्षेत्र में टैगोर का योगदान निम्नलिखित हैः-

1.शिक्षा का व्यापक एवं पूर्ण अर्थ **(**Wider and complete meaning of education)**:-**

टैगोर ने शिक्षा की अवधारणा को विस्तृत एवं पूर्ण रूप प्रदान किया। प्रायः कहा जाता है कि स्पेन्सर ने अपनी पुस्तक शिक्षा में दार्शनिक जीवन की पूर्णता पर विचार प्रकट किये हैं, किन्तु शिक्षा के संबंध में टैगोर ने जो दृष्टिकोण अपनाया है वह स्पेन्सर से कहीं अधिक व्यापक एवं पूर्ण है। टैगोर ने शिक्षा के लिए जो योजना तथा विधान बनाया है, वह भारतीय एवं पश्चिमी दोनों जीवन को छूता है और जिसमें आध्यात्मिक एवं भौतिक दोनों प्रकार के तत्वों का मेल है।

2. भारतीय संस्कृति का विस्तार (Extension of Indian culture) :-

टैगोर ने भारतीय संस्कृति के अध्यापकों के प्रति देश-विदेश के लोगों को आकृष्ट कर उनका विश्व में प्रचार किया। उन्होंने भारतीय संस्कृति के आधार पर राष्ट्रीय शिक्षा की नींव डाली और व्यापक दृष्टिकोण को लेकर पश्चिम को एक ऐसा संदेश दिया, जिसने पूर्व एवं पश्चिम के आदर्शों में समन्वय स्थापित किया।

3. विश्वव्यापी शिक्षा का प्रतिपादन एवं प्रसार (Propagation and diffusion of universal education):-

मानवतावादी भावना पर आधारित विश्व-बंधुत्व एवं विश्व-शान्ति के विचार को साकार रूप प्रदान करने के लिए टैगोर ने सर्वप्रथम विश्वव्यापी शिक्षा का प्रतिपादन एवं प्रसार किया।

4. शिक्षा में प्रकृति को महत्व देना (Giving importance of nature in education):-

रवीन्द्रनाथ टैगोर एक कवि थे। अतः प्रकृति का एवं प्रकृति की भावना उनके अंग-प्रत्यंग में आचार-विचार से भरी हुई है। उन्होंने अपनी प्रकृतिवादी शिक्षा में प्रकृति को सबसे बड़ा शिक्षक माना है।

टैगोर ने अपनी सूक्ष्म एवं भावना प्रधान बुद्धि के द्वारा प्रकृति के सौन्दर्य एवं आनन्द, शक्ति एवं ओज, स्वतंत्रता तथा आत्म-प्रेरणा को देखा।

5. सौन्दर्य के साक्षात्कार की शिक्षा देना (Giving education for the realization of beauty):-

उन्होंने अपनी शिक्षा योजना में सौन्दर्य के साक्षात्कार की शिक्षा देने का सुझाव दिया है। सौन्दर्य बोध हेतु ललित कलाओं जैसे-संगीत, पेंटिंग, नृत्य, अभिनय, कला आदि को शिक्षा में विशेष स्थान दिया। विश्व भारती में कला भवन इस प्रकार की शिक्षा का एक विश्व प्रसिद्ध प्रभाग है।

6. निजी शिक्षा दर्शन एवं सिद्धान्तों की रचना (Construction of own philosophy of education and principles):-

टैगोर उन महान शिक्षा शास्त्रियों में से हैं, जिन्होंने अपना निजी शिक्षा दर्शन तैयार किया है। साथ ही साथ उसके पृथक-पृथक सिद्धान्तों का निर्माण किया है। उन्होंने शिक्षा के विभिन्न अंगों यथा-उद्देश्य, पाठ्यक्रम, शिक्षण विधि, शिक्षक, शिक्षार्थी, विद्यालय आदि का जीवन की वास्तविक परिस्थितियों को ध्यान में रखकर संगठन किया है।

7. नवीन शिक्षा की भूमिका (Introduction of new education)

टैगोर ने अपने शिक्षा दर्शन संबंधी जिन क्रियाओं को बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में प्रस्तुत किया, उन्हें बाद में भारत की शिक्षा हेतु स्वीकार किया गया। सेडलर कमीशन 1917, बेसिक शिक्षा 1937, मुदालियर कमीशन 1952, एवं समाज शिक्षा 1948 में जो विचार हमें मिलते हैं, उनकी भूमिका हमें टैगोर के विचारों में हमें बहुत पहले मिलती है।

8. विश्व भारती की स्थापना (Establishment of Vishva Bharati)

टैगोर ने अपने जीवन दर्शन तथा शिक्षा दर्शन को साकार रूप प्रदान करने के लिए जिस शिक्षा संस्था की स्थापना की, वह आज विश्व भारती के नाम से एक विश्व प्रसिद्ध विश्वविद्यालय है।

अपनी उन्नति जानिए (Cheque your Progress)

प्र. 1 ‘अनुशासन न तो अंधी आज्ञाकारिता है और न ही वाह्य व्यवथा।’ यह कथन है-

(अ) भीमराव अंबेडकर (ब) डॉ. राधाकृष्णन् (स) डॉ. राजेन्द्र प्रसाद (द) रवीन्द्रनाथ टैगोर

प्र. 2 टैगोर ने किस संस्था की स्थापना की थी?

प्र. 3 विश्व भारती क्या है?

(अ) एक कॉलेज (ब) एक डीम्ड विश्वविद्यालय

(स) एक केन्द्रीय विश्वविद्यालय (द) एक राज्य विश्वविद्यालय

प्र. 4 1915 में भारत सरकार ने रवीन्द्रनाथ टैगोर को किस सम्मान से सम्मानित किया ?

14.6 सारांश (Summary)

उपरोक्त शब्दों में हमने क्रमशः टैगोर के जीवन दर्शन एवं शिक्षा दर्शन पर प्रकाश डाला, जिससे पता चलता है कि टैगोर केवल एक महान कवि एवं साहित्यकार ही नहीं थे, बल्कि वे एक महान दार्शनिक, शिक्षा शास्त्री तथा समाज सुधारक भी थे। इसलिए उन्हें शिक्षा के इतिहास में अद्वितीय स्थान दिया जाता है।

सुप्रसिद्ध प्रयोजनवादी शिक्षाशास्त्री प्रो. किलपैट्रिक ने लिखा हैं। अपने व्यक्तिगत अध्ययन एवं चिन्तन में अपने निजी विचार में टैगोर ने यहां वहीं उत्तर विचारों का गहन स्थान शिक्षा विषय के संबंध में लिखा है।

डॉ. सुरेन्द्र नाथ ने लिखा है- टैगोर की प्रतिभा संपन्नता अद्वितीय एवं अतुलनीय थी और अन्यत्र कहीं भी यह प्रतिभा परिश्रय से संबंधित नहीं पायी जाती।

महात्मा गांधी ने लिखा है कि टैगोर ने शान्ति निकेतन के रूप में अपनी विरासत पूरे राष्ट्र को वस्तुतः पूरे विश्व को दी है।

कलकत्ता विश्व विद्यालय के सिंडीकेट में टैगोर की महानता के संबंध में लिखा है- 'रवीन्द्रनाथ टैगोर द्वारा भारत ने मानव जाति को अपना संदेश दिया और साहित्य दर्शन और शिक्षा तथा कला के क्षेत्रों में उनकी अद्भबुत उपलब्धियों ने उनके लिए अमर यज्ञ प्राप्त किया तथा भारत का पद विश्व की सृष्टि से ऊंचा उठाया। भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद एवं सर्वपल्ली राधाकृष्णन् ने टैगोर की महानता या उनके अद्वितीय स्थान पर विस्तृत प्रकाश डाला है।

14.7 शब्दावली/कठिन शब्द (Difficult Words)

आत्म शिक्षा:- आत्म शिक्षा आत्म साक्षात्कार पर आधारित है। आत्म-साक्षात्कार की प्रक्रिया शिक्षा की प्रक्रिया के समान आजीवन चलती रहती है। शिक्षा की प्रक्रिया में वे सब क्रियाएं सहायक हो सकती हैं, जिनमें आनन्द की स्वाभाविक अनुभूति मिलती है।

पूर्णता:- शिक्षा का एक मात्र लक्ष्य बालक के व्यक्तित्व का पूर्ण विकास है। यह पूर्ण विकास तभी संभव है जबकि व्यक्तित्व के सभी पहलुओं पर समुचित जोर दिया जाए, न कि किसी पर आवश्यकता से अधिक बल दिया जाए।

विश्वबोध दर्शन की तत्व मीमांसा:- ईश्वर द्वारा निर्मित यह जगत उतना ही सत्य है, जितना ईश्वर अपने आप में सत्य है। इनके अनुसार बीज रूप में वह निराकार है और सृष्टि रूप में साकार है।

14.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer of Practice Questions)

भाग-एक (Part-I)

उत्तर- 1 1861

उत्तर- 2 गीतांजली

उत्तर- 3 1901

उत्तर- 4 गुरूदेव के सभी कार्यक्रम ग्राम सेवा, समाज सेवा, राष्ट्र सेवा, प्रेम और अन्तर्राष्ट्रीय अवबोध पर आधारित थे।

भाग-दो (Part-II)

उत्तर- 1 (स) रवीन्द्रनाथ टैगोर

उत्तर- 2 (ब) कविता

उत्तर- 3 (द) रवीन्द्रनाथ टैगोर

उत्तर- 4 (स) रवीन्द्रनाथ टैगोर

उत्तर- 5 (ब) रवीन्द्रनाथ टैगोर

भाग-तीन (Part-III)

उत्तर- 1 (द) रवीन्द्रनाथ टैगोर

उत्तर- 2 विश्व भारती

उत्तर- 3 (स) केन्द्रीय विश्व विद्यालय

उत्तर- 4 नाईट 2

14.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Reference Books)

गुप्त, रा. बा. (1996). *भारतीय शिक्षा शास्त्री.* आगरा: रतन प्रकाशन मंदिर.

सिंह (डॉ.), वी. प्र. (1999) *प्रतिनिधि, राजनीतिक विचारक*, दिल्ली: नवप्रभात प्रिंटिंग प्रेस.

14.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री (Useful BOOKS)

1. पाण्डे, (डॉ) रा. श. *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक.* आगरा: अग्रवाल प्रकाशन.

2. सक्सेना, (डॉ) स. *शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार.* आगरा: साहित्य प्रकाशन.

3. मित्तल, एम.एल. (2008). *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक.* मेरठ: इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस.

4. शर्मा, रा. ना. व शर्मा, रा. कु. (2006). *शैक्षिक समाजशास्त्र.* नई दिल्ली: एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स.

डिस्ट्रीब्यूटर्स।

5. सलैक्स, (डॉ) शी. मै. (2008). *शिक्षा के सामाजिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्षय.* नई दिल्ली: रजत प्रकाशन.

6. गुप्त, रा. बा. (1996). *भारतीय शिक्षा शास्त्र.* आगरा: रतन प्रकाशन मंदिर.

14.11 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

प्रश्न-1 रवीन्द्रनाथ टैगोर के जीवन दर्शन के प्रमुख सिद्धान्तों की विवेचना कीजिए।

प्रश्न-2 रवीन्द्रनाथ टैगोर के अनुसार शिक्षा के क्या उद्देश्य हैं ?

प्रश्न-3 टैगोर के शैक्षिक विचारों का मूल्यांकन कीजिए।

प्रश्न-4 शिक्षा के क्षेत्र में टैगोर के प्रमुख योगदान की आलोचनात्मक समीक्षा कीजिए।

प्रश्न-5 रवीन्द्रनाथ टैगोर के विश्वबोध दर्शन की व्याख्या कीजिए।

प्रश्न-6 रवीन्द्रनाथ टैगोर के शिक्षण पद्धति व पाठ्यक्रम की व्याख्या कीजिए।

इकाई - 15 : श्री अरविन्द (Sri Aurobindo)

15.1 प्रस्तावना
15.2 उद्देश्य
15.3 श्री अरविन्द के दार्शनिक विचार
  15.3.1 तत्वमीमांसा
  15.3.2 ज्ञानमीमांसा
  15.3.3 मूल्य मीमांसा
15.4 श्री अरविन्द के शैक्षिक विचार
  15.4.1 शिक्षा का प्रत्यय
  15. 4.2 शिक्षा के उद्देश्य
15.5 शिक्षा का पाठ्यक्रम
  15.5.1 शिक्षण विधियाँ
  15.5.2 अनुशासन, शिक्षक, शिक्षार्थी, विद्यालय
  15.5.3 श्री अरविन्द के शैक्षिक विचारों का मूल्यांकन
15.6 सारांश
15.7 शब्दावली
15.8 स्वमूल्याँकन हेतु प्रश्नों के उत्तर
15.9 सन्दर्भ ग्रंथ सूची
15.10 निबंधात्मक प्रश्न

15.1 प्रस्तावना Introduction

श्री अरविन्द अधुनिक भारत के महान ऋषि कहे जाते सकते है, उन्होंने भारत में 'राष्ट्रवादी आन्दोलन' को प्रेरणा प्रदान की, वे भारत में पुनर्जागरण आन्दोलन के सूत्रधार भी माने जाते हैं। अरविन्द ने पूर्वी और पश्चिमी सभ्यताओं का समुचित समन्वय करके और उनके बीच कोई प्रतिद्वन्दता पैदा किये बिना अपना लक्ष्य पूरा कर दिखाया।

श्री अरविन्द एक दार्शनिक के रूप में अधिक प्रसिद्व हैं। परन्तु शिक्षा के क्षेत्र में इनका योगदान अधिक सराहनीय है। इस इकाई में आप श्री अरविन्द के दार्शनिक एंव शैक्षिक विचारों का अध्ययन करगें तथा आधुनिक शिक्षा प्रणाली में उसकी उपयोगिता के विषय में जान सकेंगें। श्री अरविन्द ने पूर्वी और पश्चिमी दर्शन, धर्म, साहित्य तथा मनोविज्ञान को अपने लेखन में संश्लेषित किया।

15.2 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपः

1.श्री अरविन्द के दार्शनिक विचारों को स्पष्ट कर पायेगें।

2.श्री अरविन्द के अनुसार शिक्षा के संप्रत्यय का वर्णन कर सकेंगे।

3.श्री अरविन्द के शैक्षिक विचारों को अपने शब्दों को व्यक्त कर सकेंगे।

4.श्री अरविन्द के शैक्षिक विचारों का मूल्यांकन कर सकेंगे।

5.श्री अरविन्द की एकीकृत शिक्षा की विशेषताएँ लिख सकेंगे।

15.3 श्री अरविन्द के दार्शनिक विचार (Philosophical Thoughts of Sri Aurobindo)

श्री अरविन्द का जन्म 15 अगस्त, 1872 मे कोलकता के एक सम्पन्न परिवार में हुआ। उनके पिता, कृष्णघना घोष एक प्रसिद्व डॉक्टर थे तथा पश्चिमी संस्कृति के प्रशंसक थे। वे स्वभाव से बहुत दयालु थे। श्री अरविन्द ऐसे परिवार में जन्में व पले हुये थें।

श्री अरविन्द श्रीमद् भागवत गीता के बहुत बड़े उपासक थें। उन्होंने गीता के ‘कर्म योग, व ध्यान योग का वैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया। उनके विचार से मानव व दैवीय शक्ति का संश्लेषण योग है। दूसरे शब्दो में योग वह माध्यम है जिसके द्वारा मनुष्य दैवीय शक्ति का अनुभव करता है।

श्री अरविन्द मनुष्य को अपने भीतर के स्व के तत्व का अनुभव कर ब्रहम में आत्मसात हो ज़ाना नहीं सिखाते बल्कि वे समस्त मानवजाति को अज्ञान, अंधकार व मृत्यु से ज्ञान, प्रकाश व

अमरत्व की ओर ले जाना चाहते हैं। अतः उनकी विचारधारा सर्वांग योग दर्शन (Sarvang Yoga Darshan) कहलाती है।

15.3.1 श्री अरविन्द के सर्वांग योग दर्शन की तत्वमीमांसा

Metaphysics of Sri Aurobindo’s Sarvang Yoga Darshan

श्री अरविन्द के अनुसार ईश्वर इस ब्रह्माण्ड का निर्माता है। उनके अनुसार ईश्वर ने विकास सिद्धांत(Theory of Evolution) के आधार पर जगत का निर्माण किया है। इनके मतानुसार विकास की दो दिशाएँ हैं- अवरोहण(Descent) और आरोहण (Ascent), ब्रह्म अवरोहण द्वारा वस्तु जगत का रूप धारण करता है। उन्होंने अवरोहण के सात सोपान बताये हैं। सत-चित-आनन्द-अतिमानस-मानस-प्राण-द्रव्य ।

श्री अरविन्द के अनुसार इस जगत में मनुष्य अपने द्रव्य रूप से आरोहण द्वारा सत की ओर बढ़ता है। उन्होंने आरोहण के भी सात सोपान बताये हैं। द्रव्य-प्राण-मानस-अतिमानस-आनन्द-चित-सत। ब्रह्मा को ये सत और ईश्वर को सत-चित-आनन्द के रूप में स्वीकार करते हैं। अरविन्द ने आत्मा को गीता के पुरूष के रूप में लिया है। उनके विचार से आत्मा में परमात्मा की दो विशेषतायें होती हैं-आनन्द और चित, और ये विभिन्न योनियों से होती हुई मनुष्य योनि में प्रवेश करती है, तथा इस शरीर के माध्यम से सत की ओर बढ़ती है। अरविन्द के अनुसार मानव जीवन का परम उद्देश्य सत+ चित+आनन्द = ईश्वर की प्राप्ति है।

अरविन्द का मानना है कि पदार्थ, द्रव्य का ज्ञान मनुष्य के शारीरिक विकास के लिये आवश्यक है तथा यह ज्ञान ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। मनुष्य के आध्यात्मिक विकास के लिये स्वयं का ज्ञान आवश्यक है जो कि योगिक क्रियाओ द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। इन योगिक क्रियाओं के लिये अरविन्द ने शिक्षा की आवश्यकता को समझा।

15.3.2 श्री अरविन्द के सर्वांग योग दर्शन की ज्ञानमीमांसा

Epistemology of Sri Aurobindo’s Sarvang Yoga Darshan

श्री अरविन्द के अनुसार भौतिक एंव आध्यात्मिक दोनो तत्वो में मूल तत्व ब्रह्म है। अतः भौतिक तथा आध्यात्मिक तत्वों के मध्य भेद को जानना ही सच्चा ज्ञान है। उपयोगिता के दृष्टिकोण से अरविन्द ने ज्ञान को दो भागों में बाँटा है-

द्रव्यज्ञान (Material Knowledge/Worldly Knowledge)

आत्मज्ञान/ आत्मिक ज्ञान (spiritual Knowledge)

अरविन्द द्रव्य ज्ञान को (संसारिक ज्ञान) साधारण ज्ञान मानते हैं और आत्मिक ज्ञान को उच्च ज्ञान मानते हैं। उनके दृष्टिकोण से पदार्थ जगत (द्रव्य जगत) का ज्ञान, ज्ञानन्द्रियों द्वारा प्राप्त किया जाता है, और आध्यात्मिक तत्व का ज्ञान भीतरी-स्व (अन्तःकरण) द्वारा प्राप्त होता है। आत्मिक तत्व के ज्ञान के लिये इन्होंने यौगिक क्रियायों (यम, नियम, आसन, प्रणायाम, प्रत्याहार, धारणा,ध्यान एंव समाधि) को आवश्यक माना है।

15.3.3 श्री अरविन्द के सर्वांग योग दर्शन की मूल्य मीमांसा

Axiology and Ethics of Sri Aurobindo’s Sarvang Yoga Darshan

अरविन्द के अनुसार मनुष्य जीवन का परम उद्देश्य सत+ चित + आनन्द की प्राप्ति है। इसके लिये उन्होंने गीता के कर्म योग एंव ध्यान योग को साधन बताया हैं जिसमें योगी संसार (कर्म का क्षेत्र) से दूर नहीं भागता बल्कि सत, चित, आनन्द में चित लगाकर निष्काम भाव से अपने कर्तव्य का पालन करता है। ऐसे कर्मयोगी व ध्यानयोगी के लिये आवश्यक है एक स्वस्थ शरीर, स्वस्थ मन तथा नियंत्रित जीवन और उसके लिये अरविन्द के यौगिक क्रियाओं को महत्व दिया है।

15.4 श्री अरविन्द के शैक्षिक विचार (Educational Thoughts of Sri Aurobindo)

श्री अरविन्द के दार्शनिक के रूप में अधिक प्रसिद्ध हैं। परन्तु उन्होंने एक विशेष प्रकार की शिक्षा की आवश्यकता को समझा। जिससे कि उनके दार्शनिक सिद्वान्तो को मानव जीवन में उतारा जा सके । दूसरी ओर, प्रचलित शिक्षा राष्ट्र के हित के लिये उपयुक्त नहीं थी। इस लिये उन्होंने शिक्षा की राष्ट्रीय योजना प्रस्तुत की, उन्होंने अपनी शिक्षा सबंधी विचार मुख्यतः अपनी दो पुस्तको में व्यक्त किये।

नेशनल सिस्टम ऑफ एजुकेशन, ऑफ ऐजुकेशन

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1.श्री अरविन्द के अनुसार इस ब्रह्माण्ड का सृजनकर्ता कौन है?

2.श्री अरविन्द ब्रह्म को किस रूप में स्वीकार करते हैं?

3.श्री अरविन्द आत्मा को किस रूप में स्वीकार करते हैं?

15. 4.1 शिक्षा का प्रत्यय Concept of Education

श्री अरविन्द का मानना था कि मनुष्य ‘मानस‘ की स्थिति में आने के लिये ‘द्रव्य‘ एंव ‘प्राण‘ दो सोपानो को पार करता है। जन्म के पश्चात उसको ‘अतिमानस‘ के चरण में पहुँचना होता है। फिर वहाँ से ‘आनन्द‘, आनन्द से चित, और चित से सत।

यदि हम उसे इस विकास की ओर ले जाना चाहते है। तो हमें ऐसी शिक्षा देनी होगी जिससे कि वह इन सोपानो को जान सके तथा इन चरणों को प्राप्त करने की विधियाँ जान सके। श्री अरविन्द के अनुसार, यह कार्य केवल शिक्षा द्वारा ही किया जा सकता है, वह शिक्षा जो मनुष्य में शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक विकास ला सके। श्री अरविन्द ने इसे ‘एकीकृत शिक्षा’ (Integral Education) कहा। अरविन्द के अनुसार-

“शिक्षा -मानव के मास्तिष्क और आत्मा की शक्तियो का निर्माण करती है। ज्ञान चरित्र और संस्कृति का उत्कर्ष करती है।”

“Education is the building g of the power of human mind and spirit. It is the evoking of Knowledge, character and culture.”

15.4.2 शिक्षा के उद्देश्य Aims of Education

श्री अरविन्द के अनुसार शिक्षा के दो प्रमुख कार्य है-

मनुष्य को उसके विकास की प्रक्रिया से परिचित कराना।

मनुष्य में सत के सोपान तक पहुँचने की शक्ति का विकास करना।

श्री अरविन्द ने शैक्षिक उद्देश्यों को विकास की प्रक्रिया के क्रम में प्रस्तुत किया है-

1. **शारीरिक विकास (Physical Development)-** इस ब्रह्मण्ड व मनुष्य के विकास का पहला पद द्रव्य (matter) है, श्री अरविन्द मनुष्य को इस द्रव्य जगत, पदार्थ जगत से परिचित कराना चाहते हैं तथा उसे अपनी शरीर की रक्षा तथा विकास से जुडी क्रियाओं मे प्रशिक्षित करना चाहते हैं इसको उन्होने दूसरे शब्दों में शारीरिक विकास का उद्देश्य कहा है। अरविन्द के अनुसार, सत, चित, आनन्द की प्राप्ति, एक स्वस्थ शरीर द्वारा ही सम्भव है, अतः शिक्षा का सर्वोपरि उद्देश्य मानव का शारीरिक विकास है। उनका विश्वास था- “शरीरम् खलू घर्म साधनम्”, अर्थात शरीर के माध्यम से ही धर्म की साधना होती है, अतः उन्होंने बालक के शारीरिक विकास पर ही बल नहीं दिया अपितु इस के अन्तर्गत शारीरिक

शुद्वि को भी सम्मिलित किया और बताया कि शरीर के उचित विकास के बिना मानव का आध्यात्मिक विकास नहीं हो सकता।

2. **प्राणिक विकास (Pranic Development)** - मनुष्य के विकास का दूसरा चरण, प्राण है प्राण से तात्पर्य उस उर्जा से है जिसके कारण ब्रह्मांड में परिवर्तन होते हैं। श्री अरविन्द के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य इस प्राण का विकास करना है। उनके अनुसार, मनुष्य के प्राण को सही दिशा निर्देशित करने के लिए, उसका नैतिक व चारित्रिक विकास आवश्यक है तथा उसके आत्मबल को दृढ़ करना भी आवश्यक है। यह विकास तभी सम्भव है जब कि ज्ञानेन्द्रियों को असत् से सत् की ओर पुनः निर्देशित किया जाए। अतः ज्ञानेन्द्रियों का विकास, शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिए।

3. **मानसिक विकास (Mental Development)**-मानव विकास का तीसरा चरण,मानस अतःमन है। मानस हमारे अस्तित्व का सबसे सक्रिय भाग है। अतः शिक्षा को मनुष्य के मानसिक विकास को प्रभावित करना चाहिये,उनका मत है कि मानसिक शक्तियो के विकास के क्षेत्र में सर्वप्रथम आवश्यकता ध्यान एकाग्र करने की है। मानसिक विकास से उनका तात्पर्य स्मृति, चिन्तन, तर्क, कल्पना तथा निर्णय शक्ति आदि से है। इस सब के विकास को बढ़ाने के लिये उन्होने योगिक क्रियाओं पर बल दिया।

4. **अन्तः करण का विकास (Development of Inner Self)**- अतिमानस व अन्तःकरण मानव विकास का चौथा चरण है, श्री अरविन्द के अनुसार शिक्षा का महत्वपूर्ण उद्देश्य अन्तःकरण का विकास करना है। उनके अनुसार अन्तःकरण के चार स्तर हैं-चित्त (हृदय), मानस बुद्वि एंव आत्मज्ञान,आध्यात्मिक विकास तभी सम्भव है जबकि व्यक्ति का अन्तःकरण शुद्व हो और उसकी आत्मा का पूर्ण विकास हुआ हो, इसके लिये व्यक्ति के शारीरिक विकास को अत्यन्त महत्व प्रदान किया है क्योंकि स्वस्थ शरीर में ही पवित्र आत्मा का निवास हो सकता है। अन्तःकरण के विकास के लिये, श्री अरविन्द ने योगिक विधि को महत्वपूर्ण माना है।

आध्यात्मिक विकास (Spiritual Development) - श्री अरविन्द आदर्शवादी विचारक थे, उन्होंने शिक्षा में आध्यात्मवाद को विशेष रूप से शामिल किया। उनका मानना था कि शिक्षा का मुख्य उद्देश्य आध्यात्मिक विकास करना है। चूँकि प्रत्येक व्यक्ति में ईश्वरीय अंश होता है। अतःशिक्षा का कार्य है इस ईश्वरीय अंश का विकास करना। इसके लिये श्री अरविन्द ने योगिक क्रियाओ को महत्वपूर्ण माना है। श्री अरविन्द के अनुसार, आघ्यात्मिक विकास ही शिक्षा का अन्तिम उद्देश्य है।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

4.श्री अरविन्द ने अपने शिक्षा सबंधी विचार मुख्यतः किन पुस्तको में व्यक्त किये?

5. श्री अरविन्द के अनुसार शिक्षा के दो प्रमुख कार्य क्या हैं?

6. श्री अरविन्द के अनुसार शिक्षा का अन्तिम उद्देश्य क्या है?

7. श्री अरविन्द के अनुसार मनुष्य ‘मानस‘ की स्थिति में आने के लिये किन दो सोपानो को पार करता है?

15.5 शिक्षा का पाठ्यक्रम Curriculum of Education

श्री अरविन्द ने शिक्षा के पाँच उद्देश्य वर्णित किये हैं-शारीरिक, प्राणिक, मानसिक, अन्तःकरण और आध्यात्मिक विकास। उनके विचार से इस सभी उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये समग्र रूप से प्रयास करने होंगें और इसके उन्होंने एक विस्तृत एवं एकीकृत पाठ्यक्रम प्रस्तुत किया है।

भौतिक विकास के लिये उन्होंने पाश्चात्य विज्ञान एंव प्रौद्योगिकी को आवश्यक माना है। अतः उन्होंने इसे पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया। लेकिन उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया कि सबसे महत्वपूर्ण है, हमारी अपनी संस्कृति, जो कि योग की संस्कृति है। और इसके अभाव में हम, विज्ञान एवं औद्योगिकी का दुरूप्रयोग कर सकते है।

श्री अरविन्द बालक की समस्त शक्तियों को विकसित करने के लिये स्वतन्त्र वातावरण के पक्षधर हैं। उन्होंने पाठ्यक्रम में बालक की रूचियों के अनुसार, उन सभी विषयों को सम्मिलित करने का सुझाव दिया जिनमें शैक्षिक अभिव्यक्ति तथा क्रियाशीलता के गुण हों।

श्री अरविन्द ने बालक के पूर्ण विकास हेतु शिक्षा के विभिन्न स्तरो पर पाठ्यक्रम के अन्तर्गत निम्नलिखित विषयों को सम्मिलित किया है-

प्राथमिक स्तर (Primary Level)- मातृ भाषा, अग्रंजी फ्रेंच, सामान्य विज्ञान, गणित, सामाजिक अध्ययन, खेल-कूद, व्यायाम, बागवानी, चित्रकला तथा भक्तिगीत।

माध्यमिक स्तर (Secondary Level)- मातृ भाषा, अग्रेजी, फ्रेंच, गणित, भौतिक विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, रसायन विज्ञान, प्राणी विज्ञान, स्वच्छता, भूविज्ञान, सामाजिक अध्ययन, व्यायाम,बागवानी कृषि, चित्रकला, अन्य हस्तशिल्प, ध्यान तथा योग।

विश्वविद्यालय स्तर/उच्च स्तर (University Level/ Higher Level)- अंग्रजी साहित्य, फ्रेंच साहित्य,गणित, भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, प्राणी विज्ञान, विज्ञान का इतिहास, सभ्यता का इतिहास, जीव-विज्ञान, समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, भारतीय एंव पाश्चात्य् दर्शन, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध तथा विश्व-एकीकरण तथा कृषि।

व्यवसायिक शिक्षा (Vocational education)- शिल्पकारी,चित्रकारी, फोटोग्राफी, सिलाई, कुटीर उद्योग, टंकन, आशु-लिपि, काष्ठ कला, संगीत, सिविल, मैकेनिकल तथा इलैक्ट्रीकल इंजीनियरिंग, अभिनय तथा नृत्य।

15.5.1 शिक्षण विधियाँ (Teaching Methods)

शिक्षण विधियो के विषय में श्री अरविन्द के विचार पूर्णतः स्पष्ट नही है। यह सत्य है कि वे प्राचीन विधियों में नवीनता लाना चाहते थे। उन्होनें उपदेश, व्याख्यान एंव मौखिक विधियों को स्वीकृत किया, परन्तु इस शर्त पर कि बच्चो को रट कर सीखने के लिये बाध्य नहीं किया जायेगा, बल्कि वे अपने स्वयं के प्रयासों द्वारा आत्मसात करके सीखेंगे। प्राथमिक स्तर पर उन्होंने कहानी-कथन विधि की बात कही। उन्होंने पाठ्यपुस्तक विधि का भी समर्थन किया। परन्तु इस सम्बन्ध में उनका मत था कि बालक को स्वंय ज्ञान की खोज करने के लिये प्रेरित करना चाहिये तथा उसके पश्चात उसे पुस्तकें पढ़ने को कहा जाये। बालक रट कर पुस्तकों से ना सीखें, किन्तु उन्हें सहायक तथा सन्दर्भ पुस्तकों की तरह उपयोग करे। उनके विचार से योग सीखने की अधिक उपयुक्त विधि है। किन्तु उनके विचार से स्व-गतिविधि चिंतन एंव तर्क, ये सभी इसके आधार है। उनके शिक्षण से संबन्धित विचारो के विश्लेषण के पश्चात आप निम्नलिखित तथ्यों को जान पायेंगें।

1. बच्चो को पढ़ाते समय, उनके शारीरिक मानसिक क्षमता एंव रूचियों को ध्यान में रखना चाहिये।
2. रटने द्वारा सीखने के स्थान पर समझ कर सीखने पर बल देना चाहिये।
3. बालकों को क्रिया करने के अधिकतम अवसर प्रदान करने चाहिये और स्वानुभव द्वारा सीखने की अनुमति प्रदान करनी चाहियें।
4. बालकों को अपनी ज्ञानेन्द्रियो को नियंत्रित रखने के लिय प्रशिक्षित करना।
5. बालकों के साथ प्यार एवं सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करना चाहिये।
6. मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम होना चाहिये।

पाठ्यक्रम रोचक हो।

15.5.2 अनुशासन (Discipline), शिक्षक (Teacher), शिक्षार्थी (Student), विद्यालय (School)

अनुशासन (Discipline)

श्री अरविन्द की दृष्टि से स्वेच्छा से कर्तव्य पालन ही अनुशासन है। उनके अनुसार शिक्षा के क्षेत्र में अनुशासन का बहुत महत्व है। उन्होंने अनुशासन को भावनाओं से सम्बन्धित किया और भावनाओं को नैतिकता से संबन्धित किया। उन्होंने शिक्षा में कठोर और दमनात्मक अनुशासन का घोर विरोध किया। वे प्रभावात्मक अनुशासन के समर्थक रहे। उनके अनुसार यह शिक्षक का कर्तव्य है कि वह बच्चो के मन में ऐसे भावों को उत्पन्न करें जिससे कि वे भलाई की ओर बढ़ें, नैतिकता का पालन करें तथा एकाग्र होकर अध्ययन करें। श्री अरविन्द के अनुसार शिक्षक को बालकों के समक्ष आदर्श आचरण प्रस्तुत करना चाहिये, जिससे कि वे भी सही आचरण सीखें व आदर्श नागरिक बने।

शिक्षक (Teacher)

श्री अरविन्द ने शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षक को बच्चों के लिये एक पथ प्रदर्शक एवं सहायक शिक्षक के रूप में स्वीकार किया है। शिक्षक के स्थान के सम्बन्ध में श्री अरविन्द ने स्वयं ही लिखा है-

‘‘शिक्षक निर्देशक अथवा स्वामी नहीं है अपितु वह केवल सहायक तथा पथ-प्रदर्शक है। उसका कार्य सुझाव देना है न कि ज्ञान को थोपना। अरविन्द के अनुसार शिक्षक बालकों को ज्ञान प्रदान नही करता अपितु उनमें ज्ञान को स्वयं उत्पन्न करने कि क्षमता का विकास करने में सहायता करता है।

शिक्षक को चाहिये कि वे बतायें कि ज्ञान कहाँ है और उसे किन साधनो से प्राप्त करना चाहिये शिक्षक का यह कर्तव्य है कि वह अपने छात्रो को ज्ञानेन्द्रियों के सही प्रयोग करने का मार्ग दर्शन करे।

श्री अरविन्द के अनुसार शिक्षक को मानव की आत्मा को आगे बढ़ाना चाहिये अर्थात उसका विकास करना चाहिये यह कार्य उसी व्यक्ति या शिक्षक द्वारा किया जा सकता जिसको कि आध्यात्मिक विषय का स्पष्ट ज्ञान हो और वह योगिक क्रियाओ में प्रशिक्षित हो, श्री अरविन्द शिक्षक को इस रूप में देखना चाहते हैं।

शिक्षार्थी (Student)

श्री अरविन्द शिक्षार्थी को शिक्षा का केन्द्र मानते हैं। उनके अनुसार प्रत्येक बालक निश्चित सामान्य क्षमताओं कुछ विशिष्ट योग्यताओं और प्रतिभाओं के साथ जन्म लेता है। प्रत्येक बालक में व्यक्तिगत क्षमताये तथा विलक्षणतायें होती है। श्री अरविन्द के अनुसार बालकों की क्षमताओं और योग्यताओ के आधार पर उनको शिक्षा प्रदान करनी चाहिये प्रत्येक बालक की व्यक्तिगत रूचियों, अभिवृत्ति एवं योग्यताओ को ध्यान में रखते हुये शिक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिये जिससे उसके व्यक्तित्व का पूर्ण विकास हो सके। श्री अरविन्द के अनुसार ज्ञान आत्मा में अन्तर्निहित है और इस

संम्पूर्ण ज्ञान को वही प्राप्त कर सकता है जो कि ब्रह्चार्य का पालन करे। श्री अरविन्द ,विद्यार्थी से यही अपेक्षा करतें है कि वह ब्रह्चर्य का पालन कर वास्विक ज्ञान की प्राप्ति करे। इस सम्बन्ध में श्री अरविन्द स्वयं लिखतें है-

‘‘बालक को माता-पिता अथवा शिक्षक की इच्छानुकूल ढालना अन्धविश्वास तथा जंगलीपन है‘‘माता-पिता इससे बडी भूल नही कर सकते कि वे पहले से ही इस बात की व्यवस्था करें कि उनके पुत्र में विशिष्ट गुणों , क्षमताओ तथा विचारों का विकास होगा। प्रकृति को स्वयं अपने धर्म का त्याग करने के लिये बाध्य करना उसे स्थायी हानि पहुँचाना है। उसके विकास को व्युत्कृत करना है तथा उसकी पूर्णता को दूषित करना है।”

“The idea of hammering the child into shape desired by the parent or teacher is a barbarous and ignorant superstition. There can be no great error than for the parent to arrange before hand that his son shall develop particular qualities and capacities. To force the nature to abandon its own Dharma is to do it permanent harm, mutilate its growth and deface its perfection.”

श्री अरविन्द व्यक्तिगत भिन्नता के सिद्वान्त को मानते हैं। उनकी कल्पना है कि शिक्षार्थी को विनय, परोपकार, स्वाध्याय, एकाग्रता सेवा आदि गुणों को अपने अन्दर निहित करना चाहिये।

श्री अरविन्द ने बालक पर वातावरण के प्रभाव को भी स्वीकार किया है। उनका मत है कि वातावरण बालक के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, उनका मानना है कि बालको को उच्च वातावरण में रखना चाहिये जिसमें कि उनके अनुभूति के अंगो का विकास एवं प्रशिक्षण हो सके और वे सत्य की खोज की ओर अग्रसर हो सकें।

विद्यालय (School)

श्री अरविन्द के अनुसार विद्यालय को बच्चो के भौतिक एवं आध्यात्मिक विकास में सहायक होना चाहिये उनके अनुसार विद्यालय का वातावरण विश्व-बन्धुत्व की भावना से पूर्ण होना चाहिये। श्री अरविन्द ने बालक के भौतिक विकास के लिये भाषा, साहित्य सभ्यता एवं संस्कृति गणित एवं विज्ञान पर बल दिया और आध्यात्मिक विकास हेतु मानव सेवा कर्तव्य पालन एवं ध्यान आदि को महत्वपूर्ण स्थान दिया। इस प्रकार उन्होंने बालक के सम्पूर्ण विकास के लिये भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनो पक्षों पर समान बल दिया।

श्री अरविन्द के अनुसार विद्यालयों को भौतिक प्रगति एवं योग साधना का केन्द्र होना चाहिये जिससे कि एक बालक का सम्पूर्ण विकास हो सके।

श्री अरविन्द ने मानव और मानव के बीच कोई भेदभाव नहीं रखा उन्होंने जाति, धर्म, आर्थिक स्थिति ,रंग आदि किसी भी आधार पर भेदभाव को स्वीकार नहीं किया वे सभी बालको को समान अवसर प्रदान करने के पक्षधर हैं उन्होंने विद्यालय में विश्व-बन्धुत्व के वातावरण को विकसित करने की बात कही।

श्री अरविन्द "अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा केन्द्र" जिसकी स्थापना श्री अरविन्द द्वारा पाँडेचेरी में की गयी है, वह इसी प्रकार का शिक्षा का केन्द्र है।

15.5.3 श्री अरविन्द के शैक्षिक विचारों का मूल्यांकन (Evaluation of Sri Aurobindo's Educational Thought)

श्री अरविन्द के अनुसार शिक्षा भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनो पक्षों का विकास करती है।

उन्होंने ने शिक्षा को एक बहुउद्देशीय प्रक्रिया माना जिसके द्वारा बालको को शारीरिक, मानसिक, सांस्कृतिक,आध्यात्मिक, नैतिक विकास होता है।

श्री अरविन्द ने स्वयं द्वारा शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु एक विस्तृत पाठयक्रम प्रस्तुत किया साथ ही साथ उन्होंने शिक्षा के विभिन्न स्तरों के लिये विभिन्न पाठयक्रम भी प्रस्तुत किया।

यदि श्री अरविन्द द्वारा प्रस्तुत पाठयक्रम का विश्लेषण किया जाये तो यह बात तो स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है कि उन्होने एक व्यापक पाठ्यक्रम प्रस्तुत किया है। परन्तु प्रारम्भ से ही मातृ-भाषा के साथ अन्य विदेशी भाषा पढाने का कोई तर्क समझ नही आता। अन्तराष्ट्रीय महत्व पर अधिक बल दिया गया है। सामान्यतया इसकी आवश्यकता इतनी नही है।

श्री अरविन्द ने शिक्षा को आधुनिक रूप प्रदान करने का हर सम्भव प्रयास किया है। उन्होंने भारतीय एवं पाश्चात्य सभी उपयोगी ज्ञान को पाठ्यक्रम में स्थान दिया।

श्री अरविन्द के शिक्षण विधियों को लेकर विचार स्पष्ट नही है। कभी वे प्राचीन विधियों का समर्थन करते है और कभी आधुनिक विधियों का, उन्होने पूर्ण रूप से रट कर सीखने का विरोध किया। उन्होंने योग को सीखने की उत्तम विधि माना है।

योग को सीखने की उत्तम विधि मानने का उनका मत उत्तम है। परन्तु अभी वर्तमान समय में योग को मन को एकाग्र करने के रूप में लिया जा सकता है ना कि कर्म योग की तरह।

श्री अरविन्द के अनुसार स्वेच्छा से कर्तव्य पालन ही अनुशासन है, उनके अनुसार अनुशासन स्थापित करने के लिये तो शिक्षक को आदर्श व्यवहार प्रस्तुत करना चाहिये और यदि बालक

अनुशासन का पालन न करें तो उन्हें प्यार व स्नेह द्वारा समझाना चाहिये। उन्होंने दण्ड को अमानवीय माना है।

इसमें दो मत नहीं हैं कि अध्यापक द्वारा आदर्श व्यवहार, अनुशासन स्थापित करने के लिये आवश्यक है परन्तु केवल स्नेह द्वारा बालकों को अनुशासित रखना सफल नहीं हो सकता, कभी-कभी दण्ड भी आवश्यक है, परन्तु यह दण्ड सीमित हो।

श्री अरविन्द शिक्षक को ज्ञान प्रदान करने वाले की भूमिका में नहीं देखते वरन एक पथ-प्रदर्शक एवं निर्देशक के रूप में ही मानते हैं जो कि बालक के स्वतन्त्र विकास में सहायता प्रदान करता है।

बालक के स्वतन्त्र विकास की बात का समर्थन करना सही प्रतीत होता है परन्तु औपचारिक शिक्षा इस रूप में प्रदान नहीं की जा सकती। शिक्षक को योगी बना देना व्यवहारिक नहीं है। यह एक शिक्षक के ओर से पर्याप्त नहीं है।

श्री अरविन्द बालक की वैयक्तिकता का सम्मान करतें है। उन्होंने बालको की वैयक्तिक भिन्नताओं को ध्यान में रखते हुये शिक्षा की व्यवस्था की, उन्होंने बालक के भौतिक एवं आध्यात्मिक विकास पर बल दिया और इन दोनो पक्षों के विकास हेतु उन्होंने ब्रह्मचर्य पालन को महत्व दिया। श्री अरविन्द ने भौतिक एवं आध्यात्मिक विकास के लिये ब्रह्मचर्य को महत्तवपूर्ण माना है।

जहाँ तक ब्रह्मचर्य पालन का प्रश्न है। यह उचित प्रतीत होता है। परन्तु सत्य की खोज हेतु ध्यान आज के आधुनिक परिदृश्य में व्यवहारिक नहीं है।

श्री अरविन्द का तर्क है कि विद्यालय योग साधना का केन्द्र हो यह सब को स्वीकार्य नहीं हो सकता । परन्तु मनुष्य को वास्तविक खुशी और शान्ति की प्रप्ति हेतु इसका पालन करना चाहिये। विद्यालयों को बालकों के भौतिक एवं आध्यात्मिक विकास हेतु प्रयत्न करने चाहिये जिससे कि बालको के व्यक्तित्व का सन्तुलित विकास हो सके। एक दार्शनिक के रूप में श्री अरविन्द ने भारतीय दर्शन को एक वैज्ञानिक पुट देने का प्रयास किया। वे विश्व बन्धुत्व मे विश्वास करते हैं।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

8 श्री अरविन्द ने पाठ्यक्रम किन विभिन्न स्तरों में बाँटा?

9 श्री अरविन्द के अनुसार सीखने की अधिक उपयुक्त विधि क्या है?

10 श्री अरविन्द ……………… अनुशासन के समर्थक हैं।

11 श्री अरविन्द ने शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षक को किस रूप में स्वीकार किया है

12 श्री अरविन्द .... को शिक्षा का केन्द्र मानते थे।

13 श्री अरविन्द ने अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा केन्द्र की स्थापना में कहाँ की?

15.6 सारांश (Summary)

श्री अरविन्द अधुनिक भारत के महान ऋषि कहे जाते सकते है, उन्होंने भारत में ‘राष्ट्रवादी आन्दोलन‘ को प्रेरणा प्रदान की, वे भरत में पुनर्जागरण आन्दोलन के सूत्रधार भी माने जाते हैं।

शिक्षा के क्षेत्र में इनका योगदान अधिक सराहनीय है। श्री अरविन्द ने अपने पूर्वी और पश्चिमी दर्शन, धर्म, साहित्य तथा मनोविज्ञान को अपने लेखन में संश्लेषित किया।

श्री अरविन्द श्रीमद् भागवत गीता के बहुत बड़े उपासक थें। उन्होने गीता के ‘कर्म योग, व ध्यान योग का वैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया।

श्री अरविन्द मानवजाति को अज्ञान, अंधकार व मृत्यु से ज्ञान, प्रकाश व अमरत्व की ओर ले जाना चाहते हैं। अतः उनकी विचारधारा सर्वांग योग दर्शन कहलाती है। श्री अरविन्द के अनुसार ईश्वर इस ब्रह्माण्ड का निर्माता हैं। इनके मतानुसार विकास की दो दिशाएँ हैं- अवरोहण और आरोहण। श्री अरविन्द के अनुसार भौतिक एंव आध्यात्मिक दोनो तत्वो में मूल तत्व ब्रह्म है। अतः भौतिक तथा आध्यात्मिक तत्वों के मध्य भेद को जानना ही सच्चा ज्ञान है। श्री अरविन्द के अनुसार मनुष्य जीवन का परम उद्देश्य सत+ चित + आनन्द की प्राप्ति है। श्री अरविन्द ने शिक्षा की राष्ट्रीय योजना प्रस्तुत की। श्री अरविन्द ने शिक्षा के पाँच उद्देश्य वर्णित किये हैं-शारीरिक, प्राणिक, मानसिक, अन्तःकरण और आध्यात्मिक विकास। उनके विचार से इस सभी उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये समग्र रूप से प्रयास करने होंगें और इसके उन्होंने एक विस्तृत एंव एकीकृत पाठ्यक्रम प्रस्तुत किया है। एक दार्शनिक के रूप में श्री अरविन्द ने भारतीय दर्शन को एक वैज्ञानिक पुट देने का प्रयास किया। वे विश्व बन्धुत्व में विश्वास करतें हैं

15.7 शब्दावली (Glossary)

तत्वमीमांसा- वास्तविकता का विज्ञान

ज्ञानमीमांसा- ज्ञान का विज्ञान

मूल्यमीमांसा- मूल्य का विज्ञान

अवरोहण- उच्च स्तर से निम्न स्तर की ओर जाना

आरोहण- निम्न स्तर से उच्च स्तर की ओर जाना

एकीकृत-

स्वमूल्याँकन हेतु प्रश्नों के उत्तर

1.ईश्वर

2.सत

3.चित + आनन्द

4.नेशनल सिस्टम ऑफ एजुकेशन, ऑफ ऐजुकेशन

4.श्री अरविन्द के अनुसार शिक्षा के दो प्रमुख कार्य है-

5.मनुष्य को उसके विकास की प्रक्रिया से परिचित कराना।

6.मनुष्य में सत के सोपान तक पहुँचने की शक्ति का विकास करना।

7.श्री अरविन्द के अनुसार, आध्यात्मिक विकास ही शिक्षा का अन्तिम उद्देश्य है।

8.श्री अरविन्द का मानना था कि मनुष्य 'मानस' की स्थिति में आने के लिये 'द्रव्य' एंव 'प्राण' दो सोपानो को पार करता है।

9.श्री अरविन्द ने पाठयक्रम को इन स्तरों में बाँटा-

10.प्राथमिक स्तर, माध्यमिक स्तर, विश्वविद्यालय स्तर, व्यवसायिक शिक्षा

11.श्री अरविन्द के अनुसार योग सीखने की अधिक उपयुक्त विधि है।

प्रभावात्मक अनुशासन

श्री अरविन्द ने शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षक को बच्चों के लिये एक पथ प्रदर्शक एवं सहायक शिक्षक के रूप में स्वीकार किया है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची (Reference Books)

1.लाल एण्ड पलोड, *एजुकेशनल थॉट एण्ड प्रैक्टिस*, मेरठ: आर0लाल प्रकाशन ,

2.पाण्डा, अ. कु. (2011). *शिक्षा दर्शन*. कानपुर: साहित्य रत्नालय्,

3.सक्सेना, एन0आर0 स्वरूप., शिखा, च. (2010). *उदीयमान भारतीय समाज मे शिक्षक,* मेरठ: आर लाल प्रकाशन.

4.एलैक्स, शी. मै. (2008). *शिक्षा दर्शन*. नई दिल्ली: रजत प्रकाशन.

5.ओड, एल. के. *शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि*. राजस्थान ग्रंथ अकादमी.

15.10 निबंधात्मक प्रश्न (Long Answer Questions)

1.श्री अरविन्द के अनुसार शिक्षा का अर्थ क्या है? श्री अरविन्द के अनुसार शिक्षा के उद्देश्यों को वर्णित कीजिए।

2.श्री अरविन्द के शैक्षिक विचारों का मूल्यांकन कीजिए?

3.श्री अरविन्द के अनुसार शिक्षा के पाठ्यक्रम को स्पष्ट कीजिए।

4.अनुशासन के बारे में श्री अरविन्द का क्या कहना है? संक्षेप में लिखिए।

इकाई16 : स्वामी विवेकानन्द का शिक्षा दर्शन (Educational Philosophy of Swami Vivekananda)

16.1 प्रस्तावना Introduction
16.2 उद्देश्य Objectives
भाग-एक Part - I
16.3 स्वामी विवेकानन्द का शिक्षा दर्शन Education Philosophy of Swami Vivekananda
16.3.1 शिक्षा का अर्थ Meaning of Education
16.3.2 स्वामी विवेकानन्द का नव्य वेदान्त
16.3.3 स्वामी विववेकानन्द के जीवन दर्शन के आधारभूत सिद्धान्त या आवश्यक तत्व Fundamental Principles or Essential feature of the Philosophy of life of Swami Vivekananda
अपनी उन्नति जानिए Check your progress
भाग-दो Part - II
16.4 शिक्षा के उद्देश्य Aims of Education
16.4.1 पाठ्यक्रम Curriculum
16.4.2 शिक्षण पद्धति Method of Teaching
16.4.3 शिक्षक एवं शिक्षार्थी, विद्यालय एवं अनुशासन Teacher and Students, School and Discipline
अपनी उन्नति जानिए Check your Progress
भाग-दो Part II
16.5 स्त्री शिक्षा Women Education
16.5.1 स्वामी विवेकानन्द के कार्य Work of Swami Vivekanand
16.5.2 स्वामी विवेकानन्द के शिक्षा दर्शन का मूल्यांकन व योगदान Estimate of Contributions of Swami Vivekananda
अपनी उन्नति जानिए Check your Progress
16.6 सारांश Summary
16.7 कठिन शब्द Difficult Words
16.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर Answer of practice Questions
16.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची Reference books
16.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री Useful books

16.11 निबन्धात्मक प्रश्न Essay Type Question

16.1 प्रस्तावना (Introduction)

समकालीन भारत में अंग्रेजों द्वारा चलायी हुई शिक्षा प्रणाली के विरूद्ध विद्रोह करके राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली की स्थापना का बीड़ा उठाने वाले दार्शनिकों में स्वामी विवेकानन्द नाम प्रमुख है। गांधी और अरविन्द के समान उन्होंने भारत पर पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली लागू करने का विरोध किया और भारत की संस्कृति के अनुरूप शिक्षा प्रणाली अपनाने का समर्थन किया। विवेकानन्द का जन्म कलकत्ता के एक सम्पन्न परिवार में 12 जनवरी सन् 1863 ई. में हुआ था। उनका असली नाम नरेन्द्र नाथ दत्त था। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा सवागी शिक्षा थी। बचपन में ही उन्होंने अपनी माता की निगरानी में हिन्दू शास्त्रों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना आरम्भ किया।

स्वामी रामकृष्ण परमहंस से 1881 ई. में उनकी भेंट हुई। इस भेंट ने उनके जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाया। वैसे शुरू में अपनी संशयवादी दृष्टि के अनुसार उन्होंने परमहंस की बातों को भी संशय की ही दृष्टि से देखा, लेकिन प्रारम्भिक संशय, उलझन एवं प्रतिवाद के बाद उन्होंने स्वामी रामकृष्ण के प्रति पूर्ण समर्पण किया तथा उन्हें ही अपना पूर्ण गुरू एवं मार्गदर्शक के रूप में स्वीकार किया। रामकृष्ण वेदान्त की परम्परा को मानने वाले संत थे। वेदांत का मूल सिद्धांत है कि एक ही ब्रह्मा सब जगह भिन्न-भिन्न रूपों मे दिखलाई पड़ता है। अस्तु , रामकृष्ण ने अपने उद्देश्यों में सभी धर्मों की एकता पर जोर दिया। उनके इसी उपदेश को विवेकानन्द ने दूर-दूर तक फैलाया। एक ओर जहां विवेकानन्द पर प्राचीन भारतीय वेदान्त दर्शन का प्रभाव था, वहीं दूसरी ओर वे पाश्चात्य वैज्ञानिक प्रगति से भी कम प्रभावित न थे। इसलिए उन्होंने कोरे निवृत्तिवाद का भी खंडन किया है और प्रवृत्ति तथा निवृत्ति का समन्वय करने का प्रयास किया है। मोक्ष को जीवन का लक्ष्य मानते हुए भी वे इस लोक में प्रवृत्ति की अवहेलना नहीं करते। इसके लिए एक स्थान पर उन्होंने यहां तक कह दिया कि ''भारत को वेदान्त भुलाने की आवश्यकता है।'' सबसे पहले युवकों को सबल बनाना चाहिए। धर्म तो बाद की चीज है। गीता के अध्ययन की तुलना में तुम फुटबाल के द्वारा स्वर्ग के अधिक निकट पहुचोगे। जब तुम्हारा शरीर तुम्हारे पैरों पर दृढ़ रूप में खड़ा होगा और तुम अपने को मुनष्य के रूप में अनुभव करोगे तब तुम उपनिषदों और आत्मा की महत्ता को अधिक अच्छी तरह समझोगे। इस प्रकार स्वामी विवेदानन्द ने शिक्षा में समन्वयात्मक दृष्टिकोण उपस्थित किया।

16.2 उद्देश्य Objectives

1. स्वामी विवेकानन्द के शिक्षा दर्शन को समझ सकेंगे।

2. स्वामी विवेकानन्द के नव्य वेदान्त के बारे में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

3. स्वामी विवेकानन्द के आधारभूत सिद्धान्तों का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
4. स्वामी विवेकानन्द की शिक्षा के उद्देश्य, पाठयक्रम, शिक्षा पद्धति का अध्ययन कर सकेंगे।
5. शिक्षक एवं शिक्षार्थी के सम्बंध व स्त्री शिक्षा के सम्बंध में विचारों को जान सकेंगे।
6. स्वामी विवेकानन्द के बारे में अपनी जिज्ञासा को शांत कर सकेंगे।

भाग-एक Part I

16.3 स्वामी विवेकानन्द का शिक्षा दर्शन (Swami Vivekanand’s Philosophy of Education)

सन् 1885 में स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने नरेन्द्र नाथ को अपना उत्तराधिकारी सौंप दिया। इसके बाद वे पूर्ण सन्यासी के रूप में तपस्या करने लगे।

सन् 1886 से 1892 ई. तक भारत में सामाजिक, धार्मिक क्रियाओं के सम्पन्न करने का काल- सन् 1886 से 1892 ई. तक वराह नगर के गढ़ को केन्द्र बनाकर स्वामी विवेकानन्द ने अपने गुरू रामकृष्ण परमहंस द्वारा सौंपे हुए कार्यों को अपने ही देश भारत मे आगे बढ़ाया। रामकृष्ण परमहंस के वेदान्ती अनुभवों को पूरे भारत में फैलाया। इसी बीच उन्हें सिद्धि प्राप्ति की अभिष्ट अभिलाषा हुई और वे अपने गुरू पत्नी से आशीर्वाद प्राप्त करने लगे।

श्री शारदा मां ने कहा ‘‘ बेटा मैं हृदय से आशीर्वाद देती हूं कि तुम सिद्ध काम होकर वापस लौटो, तुम्हारे भीतर ही तो रामकृष्ण निवास करते हैं। अत्यधिक कठिन तपस्या के बाद उन्होंने अनुभव किया कि ‘‘ आज मैंने क्षुद्र ब्रह्माण्ड और विराट ब्रह्माण्ड की एकात्मकता को अनुभव किया है। ब्रह्माण्ड में जो कुछ है सभी इस क्षुद्र शरीर के भीतर विद्यमान है। मैंने देखा कि प्रत्येक परमाणु के भीतर विश्व ब्रह्माण्ड विद्यमान है। प्राणीमात्र की सेवा करना ही ईश्वर की वास्तविक सेवा है। दक्षिण भारत में भ्रमण करते समय उन्हें शिकागो में होने वाले विश्व धर्म सम्मेलन की सूचना प्राप्त हुई और वे वहां जाने के लिए प्रयत्नशील होने लगे।

1893 से सन् 1902 तक-

पाश्चात्य देशों में सामाजिक आर्थिक क्रियाओं के सम्पन्न करने का काल- 31 मई 1893 ई. को अमेरिका के लिए प्रस्थान किया और धर्मप्रचार करते रहे। 21 सितम्बर 1893 को वह विश्वधर्म सम्मेलन में भाग लेने के लिए शिकागो पहुंचे, जहां वेदान्त पर उनका भाषण इतना अधिक प्रभावशाली हुआ कि उन्हें उक्त सम्मेलन में सर्वोच्च आसन पर प्रतिष्ठित किया गया। सम्पूर्ण विश्व में उनके भाषणों ने हलचल मचा दी।

सन् 1895 में स्वामी विवेकानन्द अमेरिका से इग्लैंड पहुंचे और फिर यूरोप के इटली, जर्मनी, फ्रांस, स्विट्जरलैण्ड आदि देशों में भ्रमण किया। वहां वेदान्त धर्म का खूब प्रचार किया। 1898 ई. मैसूर स्थान पर रामकृष्ण मठ की स्थापना की।

16.3.1 शिक्षा का अर्थ Meaning of Education

(अ) शिक्षा ज्ञान संग्रह नहीं बल्कि सर्वांगीण विकास के लिए ज्ञानार्जन है। (Education is not the collection of knowledge but acquiring knowledge for harmonious development.)

स्वामी विवेकानन्द ने शिक्षा का संकुचित अर्थ न लेकर व्यापक एवं व्यावहारिक अर्थ लिया है। उन्होंने स्पष्ट कहा है कि ''शिक्षा शब्द से मैं यथार्थ कार्यकारी ज्ञानार्जन समझता हूँ। केवल पुस्तक तक की शिक्षा से काम नहीं चलेगा। हमारा प्रयोजन उस शिक्षा से है जिसके द्वारा चरित्र गठन हो, मन का बल बढे, बुद्धि का विकास हो, मनुष्य स्वावलंबी हो सके। अर्थात् शिक्षा ऐसी हो जो व्यक्ति का शारीरिक, मानसिक, भावात्मक एवं आर्थिक विकास में योगदान करे।''

(ब) शिक्षा मनुष्य में पहले से उपस्थित पूर्णता की अभिव्यक्ति है।(Education is the manifestation of the perfection already present in man.)

शिक्षा व्यक्ति में निहित पूर्णता का ज्ञान और अनुभूति है। अर्थात् शिक्षा मनुष्य में पहले से ही उपस्थित पूर्णता की अभिव्यक्ति है। किन्तु अज्ञानतावश मनुष्य अपने वास्तविक स्वरूप के प्रति पूर्णरूपेण सचेत नहीं रहता। वह अपना आध्यात्मिक परिचय अपनी आत्मा जो चित और आनन्द है, से नहीं कर पाता। शिक्षा का तात्पर्य है व्यक्ति को अपनी सत, चित, आनन्द स्वरूप आत्मा को पहचानना।

16.3.2 स्वामी विवेकानन्द का नव्य वेदान्त --

स्वामी विवेकानन्द वेद एवं उपनिषदों के ज्ञाता थे। इन्होंने देवी के अनन्य भक्त श्री रामकृष्ण परमहंस का सत्संग किया था। इसके साथ-साथ इन्होंने राजयोग से सत्य ज्ञान की अनुभूति की थी। ये शंकर के अद्वैत वेदान्त के समर्थक थे, परन्तु इन्होंने इस वेदान्त को आधुनिक परिप्रेक्ष्य में देखने-समझने और उसे जीवन में उतारने का स्तुत्य प्रयास किया है। यही इनके वेदान्त का नयापन है और इसी आधार पर उसे नव्य वेदानत की संज्ञा दी गई है।

नव्य वेदान्त की तत्व मीमांसा---

नव्य वेदान्त ब्रह्म को मूल में रखकर जगत की कल्पना करता है। यह ब्रह्म निराकार, सर्वशक्तिमान और सर्वज्ञ है। यह वस्तु जगत ब्रह्म की माया शक्ति के द्वारा निर्मित है परन्तु ये माया और जगत को असत्य नहीं मानते थे। इनकी दृष्टि से माया और जगत भी सत्य है। भला सत्य से असत्य की उत्पत्ति

कैसे हो सकती है। हॉ, यह बात अवश्य है कि ये माया एवं जगत के मूल तत्व ब्रह्म को अंतिम सत्य मानते थे। आत्मा ब्रह्म का अंश होती है इसलिए वह भी अपने में पूर्ण होती है और यही आत्मा मनुष्य के शरीर में प्रवेश कर जीवात्मा का रूप धारण कर लेती है और यह जीवात्मा ही कर्मो के फल का भोक्ता होती है। लेकिन मानव जीवन का अंतिम उद्देश्य मुक्ति है।

नव्य वेदान्त की ज्ञान मीमांसा---

विवेकानन्द ने जानकारी को दो हिस्सों में विभक्त किया है-आत्मतत्व का ज्ञान और वस्तु जगत का ज्ञान। इनके अपने विचार से ये दोनों प्रकार के ज्ञान सत्य हैं और मनुष्य को इन दोनों प्रकार के ज्ञान को प्राप्त करना चाहिए। वस्तु जगत के ज्ञान के लिए इन्होंने प्रत्यक्ष विधि पर बल दिया है और आत्मतत्व के ज्ञान के लिए अध्ययन एवं सत्संग पर। एकाग्रता को ये इन दोनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त करने की सर्वोत्तम विधि मानते थे।

नव्य वेदान्त की आचार मीमांसा---

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार आत्मानुभूति, ईश्वरोप्राप्ति अथवा मोक्ष सभी एक ही हैं। इनकी दृष्टि से इस आत्मतत्व की अनुभूति ज्ञान योग, कर्म योग, भक्ति योग अथवा राज योग, किसी के भी द्वारा की जा सकती है, परन्तु ये इस बात पर बहुत बल देते थे कि मनुष्य को सर्वप्रथम अपने आत्मतत्व की अनुभूति करनी चाहिए, फिर दूसरों के आत्मतत्व की अनुभूति करनी चाहिए और फिर अपने दूसरों में अद्वैत की अनुभूति करनी चाहिए और यह तभी संभव है जब एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को ईश्वर का मंदिर माने, उसकी सेवा करे। स्वामी जी मानव सेवा को सबसे बड़ा धर्म मानते थे। इनकी दृष्टि से मनुष्य को मन, वचन और कर्म से शुद्ध होना चाहिए, अपनी जीविका ईमानदारी से कमानी चाहिए, दीन-हीनों की सेवा करनी चाहिए और इस प्रकार अपने को शुद्ध एवं निर्मल बनाकर योग मार्ग द्वारा आत्मानुभूति करनी चाहिए। योग साधना के लिए इन्होंने सात सोपानों-शम-दम, तितिक्षा, उत्तरति, श्रद्धा, समाधान, मुमुक्षत्व और नित्यानित्य विवेक के मार्ग का समर्थन किया है।

16.3.3 स्वामी विववेकानन्द के जीवन दर्शन के आधारभूत सिद्धान्त या आवश्यक तत्व - Fundamental principals or Essential Feature of the life of Swami Vivekanand -

स्वामी विवेकानन्द का जीवन दर्शन उनके परम गुरू रामकृष्ण परमहंस के विचारों पर आधारित है। जो स्वयं एक महान वेदान्ती दर्शन के समर्थक एवं प्रचारक थे। स्वामी विवेकानन्द पर अपने गुरू रामकृष्ण परमहंस का इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि वे वेदान्त दर्शन के महान समर्थक एवं व्याख्यादाता हो गये।

डॉ. मिहिर मुकर्जी- ''विवेकानन्द एक वेतान्ती थे और जीवन में उनका वेदान्त एक जीवन सिद्धान्त था।''

विभिन्न सिद्धान्त एवं तत्वों को निम्न रूप (जीवन दर्शन) के रूप में जान सकते हैं -

1. ईश्वर या ब्रह्मा (God or Brahma) :- स्वामी विवेकानन्द ने ईश्वर को निराकार एवं साकार दोनों रूप में माना है। उनके अनुसार सगुण ईश्वर क्षूद्र मानव मात्र है और निर्गुण ईश्वर मनुष्य, पशु, देवता और अन्य वह सब है, जिसे हम देख नहीं पाते। ''हम सब एक ही केन्द्र अर्थात् उस परमात्मा से आये हैं। ईश्वर से अद्धबुत ऊंचे से ऊंचे और नीचे से नीचे सभी प्राणी अन्त में उस परमपिता के पास लौट जायेंगे, जहां से सब प्रकट हुए हें, जिसमें सब विलिम होंगे वही परमेश्वर है।

2. जगत (World):- ईश्वर एवं जगत दोनों में एकता है। ईश्वर एवं जगत में कार्य कारण संबंध है, इसलिए ईश्वर को जगत नियन्ता भी कहा जाता है। जिस प्रकार शरीर है और उसमें निहित आत्मा है, उसी प्रकार विश्व के भीतर जितनी आत्माएं हैं वे सभी ईश्वर या ब्रह्मा के शरीर हैं और उनके भीतर ब्रह्मा का वास है। स्वामी विवेकानन्द ने जगत के दो रूप बताए हैं:-

(I) बहिर्जगत (External World) : यह जगत अनन्त काल से चला आ रहा है, और यदि इसका नाश होता है तो वह पुनः अपने कारण उसी रूप में लौट आता है। अर्थात् ईश्वर में विलय हो जाता है। समस्त प्रकृति-मानवीय एवं जड़ प्रकृति में संकोचन एवं क्रम विकास की क्रिया अनन्तकाल से चली आ रही है। यहां पर हमें विवेकानन्द का वैज्ञानिक आध्यात्मवाद (Scientific spiritualism) दिखायी देता है।

(II) अन्तर्जगत (Internal Word) : अंतर्जगत का एक क्रम होता है। वह सूक्ष्म से सूक्ष्म रूप में पाया जाता है। अंतर्जगत अवस्थित आत्म, स्वःप्रकाश, सचिदानन्द, चिन्तनमय एवं मुक्त है। उनका न जन्म होता है और न मृत्यु। अपितु, वह धीरे-धीरे नीची अवस्था से उच्चावस्था को प्रकाशित होती है। मनुष्य को आत्मा का ज्ञान न होने के कारण वह बन्धन अनुभव करता है। इस भ्रम को वेदान्त की भाषा में माया व अज्ञान कहा जाता है। माया या अज्ञान से बन्धन होना उचित नहीं और इसलिए आत्मा का स्वभाव ही है अपने आप को अज्ञान से मुक्त रखना। ताकि उसे शुद्ध ब्रह्म चैतन्य की प्राप्ति हो।

3. मानव (Human Being) :- एक सच्चे वेदान्ती की भांति स्वामी विवेकानन्द ने मानव में विश्वास प्रकट किया है। चूंकि उनके अनुसार सम्पूर्ण जगत ब्रह्मय है। अतः जगत के सभी मानव ब्रह्मय और आत्मावान हैं। प्रत्येक मानव में आत्म विश्वास, शुद्धता, पवित्रता, ज्ञान, विवेक, क्रियाशीलता, प्रेम, स्वाधीनता आदि गुण पाये जाते हैं। प्रत्येक प्राणी एक मंदिर है। किन्तु मनुष्य सबसे श्रेष्ठ मंदिर है। वह मंदिरों में ताजमहल है। यदि ये उसमें पूजा नहीं कर सकता तो अन्य मंदिरों में बैठकर पूजा करने में कोई लाभ नहीं। स्वामी विवेकानन्द मानव जीवन का लक्ष्य आत्मज्ञान, आत्मानुभूति (Self Knowledge and self Realization) मानते हैं, लेकिन इस अवस्था पर पहुंचने के लिए अनेक सीढ़ियों को पार करना पड़ता है।

(i) शम दम: मन पर नियंत्रण रखना

(ii) तितिक्षा: सहनशीलता

(iii) उत्तरति: जो मिला, खा लिया, पहन लिया

(iv) श्रद्धा: धर्म एवं ईश्वर पर अटूट विश्वास

(v) समाधान: ईश्वर में चित को निरन्तर करने का अभ्यास

(vi) मुमुक्षत्वः मोक्ष प्राप्ति की उत्कृष्ण अभिलाषा

(vi) नित्यानित्य विवेक: चार योग बताए हैं- कर्मयोग, भक्ति योग, मानयोग एवं राजयोग

4. अध्यक्षात्मक विश्वेकता (Spiritual Universalism) :- स्वामी विवेकानन्द आध्यात्मिक विश्व एकता पर बल देते हैं और इस संदर्भ में लिखा है कि अगर आप ईश्वर को मनुष्य के चेहरे में नहीं देख सकते तो आप उसको बादलों में कहां देख सकेंगे। आप उसे निर्जीव पत्थर की मूर्ति में कैसे देख सकेंगे। मनुष्य समस्त प्राणियों में ब्रह्मा का दर्शन करता है। इस स्थिति में संपूर्ण विश्व में एकता की भावना आती है। जहां तक छोटी सी आत्मा मनुष्य में है, वहां तक विश्वात्मा समस्त विश्व में व्याप्त है। इस प्रकार विश्व में एकरूपता विद्यमान है। जिसके कारण विश्व बंधुत्व की भावना पाई जाती है।

5. सत्य ज्ञान (Truth Knowledge):- स्वामी विवेकानन्द के अनुसार जो कुछ भी पूर्णता के लिए होता है, वह सत्य है। जैसे-प्रेम सत्य है, प्रेम बांधता है और प्रेम एकता लाता है, प्रेम ही अस्तित्व है, ईश्वर स्वयं है, और यह जो कुछ प्रकट करता है, केवल उसी प्रेम का रूप है, जो कम या अधिक है, अभिव्यक्त होता है। इसी प्रकार सत्य ही प्रेम है, प्रेम ही ईश्वर है। अतः ईश्वर ही सत्य है।

अपनी उन्नति जानिए (Check Your Progress)

प्र. 1 विवेकानन्द का जन्म किस वर्ष में हुआ था?

(अ) 1861 (ब) 1863 (स) 1881 (द) 1883

प्र. 2 स्वामी विवेकानन्द की भेंट स्वामी रामकृष्ण से किस वर्ष में हुई थी ?

(अ) 1881 (ब) 1882 (स) 1863 (द) 1891

प्र. 3 योग साधना के सात सोपानों- शम-दम, तितिक्षा, उत्तरति, श्रद्धा, समाधान, मुमुक्षत्व और नित्यनित्य विवेक के मार्ग का समर्थन किया है:-

(अ) डॉ. राधाकृष्ण (ब) स्वामी रामकृष्ण (स) रामकृष्ण मूर्ति (द) स्वामी विवेकानन्द

प्र. 4 ''प्रेम सत्य है, प्रेम बांधता है और प्रेम एकता लाता है, प्रेम ही अस्तित्व है, ईश्वर स्वयं है और यह जो कुछ प्रकट करता है, केवल उसी प्रेम का रूप है।'' यह कथन है:-

स्वामी विवेकानन्द (ब) स्वामी दयानन्द (स) स्वामी रामकृष्ण (द) स्वामी रामानन्द

प्र. 5 विवेकानन्द वैज्ञानिक आध्यात्मवाद पर बल देते हैं:-

(अ) सत्य (ब) असत्य

भाग-दो - Part II

16.4 शिक्षा के उद्देश्य (Aims of Education)

''तमसो मा ज्योतिर्गमय, असतो मा सद्गमय, मृत्योर्मामृत गमय।''

आन्तरिक पूर्णता का बाह्य प्रकाश (External Expression of Internal Perfection) :- स्वामी विवेकानन्द- शिक्षा मनुष्य में पहले से उपस्थित पूर्णता की अभिव्यक्ति है। अर्थात् शिक्षा का प्रथम उद्देश्य व्यक्ति की आन्तरिक पूर्णता को बाह्य जगत में प्रकट करना है, जिससे कि वह अपने आपको अच्छी तरह समझ सके। अपने आपको जानने का तात्पर्य मनुष्य का उस परम आत्मा से है जिनका कि वह अंश है, पूर्ण संबंध स्थापित करना है।

2. व्यक्तित्व में मनुष्यत्व का विकास (Development of Humanism Personality) :- स्वामी विवेकानन्द ने शिक्षा का द्वितीय उद्देश्य मानव व्यक्तित्व में मनुष्य तत्व का विकास करना बताया है। मनुष्यत्व का तात्पर्य उन लौकिक एवं आलौकिक सद्गुणों का धारण करना है, जिससे धारणकर्ता अर्थात् मनुष्य पुरूष बनता है। ये सद्गुण हैं: 1. आत्मविश्वास (Self Confidence) 2. आत्मश्रद्धा (Self Faith) 3. आत्मनिष्ठता (Self Control) 4. आत्मनिर्भरता (Self Dependence) 5. आत्म प्रेम (Self Love) । यदि मनुष्य को अपनी आत्मा में विश्वास उत्पन्न हो जाता है तो वह निःसंदेह आगे बढने का प्रयास करता है। ''उठो, जागो, तब तक न रूको, जब तक कि परम लक्ष्य (Supreme Goal) की प्राप्ति न कर लो।''

3. मानव एवं समाज की सेवा (Service of Humanity and Society) :- शिक्षा का तृतीय उद्देश्य मानव एवं समाज की सेवा करना है। उपयुक्त गुणों की प्राप्ति का वास्तविक लाभ तभी हो पाता है जबकि उनका मानव एवं समाज की सेवा में अभ्यास किया जाये। उनके इस प्रकार अभ्यास से ही उनकी बुद्धि एवं उनका विकास होता है। यथार्थ शिक्षा का लक्ष्य मानव सेवा द्वारा ईश्वर की सेवा करना है।

4. शारीरिक विकास (Physical Development) :- स्वामी विवेकानन्द ने शिक्षा का चतुर्थ उद्देश्य शारीरिक विकास बताया है। उन्होंने शारीरिक विकास व स्वास्थ्य के महत्व के संदर्भ में कहा है कि संसार में यदि कोई पाप है तो वह है दुर्बलता। उपनिषद -''आज ऐसे बलिष्ठ मनुष्यों की आवश्यकता है, जिनकी पेशियां लोहे के समान दृढ एवं स्नायु फौलाद के समान कठिन हों। '' अतः व्यायाम, योगाभ्यास आदि उनके नित्य कर्मो में से थे।

5. जीविकोपार्जन का उद्देश्य (Vocational Aims) :- स्वामी विवेकानन्द ने शिक्षा का पांचवा उद्देश्य जीविकोपार्जन को माना है। जब तक शिक्षा द्वारा भौतिक सुखों को प्राप्त नहीं किया जाता, तब तक लोगों का आध्यात्मिक विकास भी संभव नहीं है। शिक्षा का कार्य इस प्रकार होगा कि प्रत्येक व्यक्ति को इतनी क्षमता प्रदान करना कि वह अपने कर्तव्यों को समझे और अपनी आवश्यकता को पूरा करने का प्रयास करें।

6. विश्वबंधुत्व व विश्व चेतना का विकास (Development of World Brotherhood, World Consciousness):- स्वामी विवेकानन्द के अनुसार शिक्षा का अंतिम उद्देश्य विश्वबंधुत्व एवं विश्व चेतना का विकास करना है। वही व्यक्ति शिक्षित है, जिसमें विश्वबंधुत्व की भावना पायी जाती है, जो विश्व के प्रति चेतन है। ये गुण शिक्षा के द्वारा ही प्राप्त किये जा सकते हैं। ऐसे विश्वबंधुत्व एवं विश्व चेतना के लिए उपयुक्त वातावरण और साधन की आवश्यकता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए स्वामी विवेकानन्द ने मानव सेवा के लिए बल दिया है।

16.4.1 पाठ्यक्रम Curriculum

पाठ्यक्रम के बारे में हमारे निम्न विचार हैं:-

पाठ्यक्रम निर्माण का आधार (Bases of the Construction of Curriculum)

उनके पाठ्यक्रम संबंधी विचारों में आध्यात्मिकता की झलक मिलना स्वाभाविक है। फिर भी उन्होंने पाठ्यक्रम के अंतर्गत लौकिक जीवन से संबंधित विषयों की उपेक्षा नहीं की है, क्योंकि स्वामी जी शिक्षा को पूर्ण मानव (Complete Man) बनाना चाहते थे।

(ब) पाठ्यक्रम के अंतर्गत विषयों का निर्धारण (Determination of Subjects in Curriculum)

पाठ्यक्रम को दो भागों में बांटा गया है:-

1. लौकिक पाठ्यक्रम (Worldly Curriculum)
2. आध्यात्मिक पाठ्यक्रम (Spiritual Curriculum)

1. लौकिक पाठ्यक्रम (Worldly Curriculum) : 1. भाषा संस्कृत मातृभाषा या प्रादेशिक भाषा अंग्रेजी 2. विज्ञान, 3. मनोविज्ञान, 4. गृह विज्ञान, 5. तकनीकी शास्त्र 6. उद्योग कौशल 7. कला 8. व्यवसायों की शिक्षा, 9. गणित 10. खेलकूद तथा राष्ट्र सेवा।

2. आध्यात्मिक पाठ्यक्रम (Spiritual Curriculum) : 1. धर्म एवं दर्शन, विशेषकर हिन्दूधर्म एवं वेदान्त एवं उपनिषदों का ज्ञान, 2. पुराण, 3. उपदेश श्रवण, 4. कीर्तन, 5. धर्म गीत, 6. साधु संगति।

16.4.2 शिक्षण पद्धति (Method of Teaching)

(i) धर्म एवं योग विधि (Dharma or yoga Method)

(ii) केन्द्रियकरण विधि (Method of Centralization Method)

(iii) उपदेश विधि (Method of Preaching)

(iv) अनुकरण विधि (Imitation Method)

(v) व्यक्तिगत निर्देशन एवं परामर्श विधि (Personal Guidance and Counseling Method)

(vi) क्रियात्मक एवं व्यावहारिक विधियां (Active and Practical Methods)

(i) धर्म एवं योग विधि (Dharma or Yoga Method) : इस विधि का लक्ष्य युक्त करना या एकीकरण करना है। योग की अनेक सीढ़ियां या स्वरूप हैं। जैसे-

(a) कर्म योग: अर्थात् क्रिया द्वारा ईश्वर से एकीकृत करना।

(b) भक्ति योग: अर्थात् प्रेम, श्रद्धा आदि भावों की अनुभूति द्वारा एकीकरण करना।

(C) ज्ञान योग: अर्थात् आत्म ज्ञान (Self Knowledge) द्वारा एकीकरण करना।

(D) राज योग: अर्थात् मन की शक्तियों को नियंत्रित करके एकीकरण करना।

इस प्रकार के अभ्यास के अंतर्गत श्रवण, कीर्तन, स्मरण, मनन और निदिध्यासन की क्रियाएं आती हैं।

(ii) केन्द्रियकरण विधि (Method of Concentration): इस विधि में निदिध्यासन के आधार पर व्यक्ति को अपने मन को एकाग्र व केन्द्रित करना पड़ता है। ऐसा करने से एक ओर मन की चंचलता दूर हो जाती है तो दूसरी ओर मनुष्य सही ढंग से चिन्तन-मनन करने लग जाता है।

(iii) उपदेश विधि (Preaching Method) : वास्तव में भारत में गुरू के निवास पर 25 वर्ष की आयु तक शिक्षा ग्रहण करने की पुरानी परिपाटी थी, जिसे स्वामी जी पुनर्जीवित करना चाहते थे। गुरूकुल में छात्र गुरू के चारों ओर बैठते थे तथा विचार-विमर्श, तर्क-वितर्क, शंका एवं समाधान तथा शास्त्रार्थ करते थे।

(iv) अनुकरण विधि (Preaching Method) : स्वामी विवेकानन्द ने अनुकरण विधि पर भी अपने विचार प्रस्तुत किये हैं। ''छात्र अपनी बाल्यावस्था से ही ऐसे गुरू के साथ रहे जिसका चरित्र जाज्वल्यमान हो और छात्र के सामने उच्च्तम त्याग का उदाहरण हो।'' यदि अध्यापक विभिन्न गुणों से संपन्न होंगे तो निश्चित तौर पर छात्र भी अध्यापक के गुणों, चरित्र एवं ज्ञानोपदेश का अनुकरण करके अपना जीवन भी उसी तरह बनायेंगे।

(v) **व्यक्तिगत निर्देशन एवं परामर्श विधि (Personal Guidance and Counselling Method) :-** स्वामी विवेकानन्द द्वारा प्रयोग किये जाने वाला व्यक्तिगत निर्देशन व परामर्श शिक्षा या पूर्णता की अनुभूति के लिए एक विधि है। गुरू के आध्यात्मिक रूप से परिपक्व व्यक्तित्व का छात्र के अपरिपक्व व्यक्तित्व पर प्रभाव पड़ता था।

(vi) क्रियात्मक एवं व्यावहारिक विधियां (Active and Practical Method) : इसके अंतर्गत साधु संगत, भ्रमण, सेवा कार्य, खेलकूद, शारीरिक शिक्षा, उद्योग, शिल्प एवं कौशलों की शिक्षा आदि क्रियात्मक व व्यावहारिक विधियां हैं।

16.4.3 शिक्षक एवं शिक्षार्थी, विद्यालय एवं अनुशासन

(Teacher and Students, School and Decipline)

शिक्षक (Teacher) : स्वामी जी के शिक्षक संबंधी विचारों पर प्राचीन भारतीय आदर्शवाद का गहरा प्रभाव परिलक्षित होता है। शिक्षा योजना में शिक्षक का महत्वपूर्ण स्थान है। शिक्षक का चरित्र, उसका व्यक्तित्व, उसके गुण, सभी बालकों के निर्माण में पथ-प्रदर्शक व सहायक होते हैं। शिक्षक को महान बनने के लिए उसमें बहुत से गुणों की अपेक्षा की जाती है। जैसेः-

1. शिक्षक में आध्यात्मिक एवं दिव्यता होनी चाहिए ताकि वह छात्रों में आध्यात्मिक एवं दिव्यता देख सके और उसका विकास कर सके।

2. शिक्षक मन, वचन एवं कर्म से धार्मिक होना चाहिए।

3. धार्मिक ज्ञान के अतिरिक्त शिक्षक में लौकिक एवं व्यावहारिक ज्ञान भी हो।

4. वह ब्रह्मचर्यपूर्ण, निष्पाप, पवित्रतापूर्ण, शक्तिवान, सहृदय, धैर्यवान, परोपकारी, क्षमाशील और

बलवान होना चाहिए।

5. शिक्षक को एक सफल मनोवैज्ञानिक (Successful Psychologist) होना चाहिए ताकि वह अपने छात्रों की आत्मा, प्रकृति, रूचि, आवश्यकता एवं सुझाव को समझ कर तदनुकूल शिक्षा प्रदान कर सके।

6. उसे त्याग, साहस, उत्साह, विश्वबंधुत्व, शक्ति, शालीनता आदि गुणों से विद्यार्थियों को समाज में आगे बढाना चाहिए।

शिक्षार्थी (Students)

1. शिक्षक के समान शिक्षार्थी में धर्मपरायण, कर्तव्यनिष्ठ एवं जिज्ञासु बनने के कुछ गुणों की अपेक्षा की है।

2. शरीर और मन से बलवान, ब्रह्मचर्य का पालन।

3. सत्य को जानने की प्रबल जिज्ञासा, चित को एकाग्र करने की क्षमता।

4. विद्यार्थी में विद्या प्रेम, विवेकशीलता, विचारशीलता, स्वप्रत्यत्नशीलता, कर्तव्यनिष्ठता, गुरू के लिए श्रद्धा भक्ति।

विद्यालय (School)

विद्यालय व्यक्ति के शारीरिक, बौद्धिक, भावात्मक एवं आध्यात्मिक विकास के केन्द्र के रूप में है। उन्होंने शिक्षा को गुरू-गृहवास बताया है। विद्यालय निश्चय ही गुरू-गृह होगा। यदि अध्यापक पवित्र, शुद्ध ह्रदय एवं उच्च विचार वाला, अच्छा आचरण वाला, योग्य विद्वान है तो उसका वास निश्चित रूप से उन गुणों से परिपूर्ण होगा, जिसमें इन गुणों का विकास हो सके। शुद्ध वायु से पूरित शान्ति, सुखद एवं सुरम्य स्थल में तथा आध्यात्मिक विकास में सहायक वातावरण विद्यालय का होना चाहिए।

अनुशासन (Discipline) :

शिक्षक बालकों के आत्ममसद्धि को स्वतंत्र रूप से विकसित होने और उसे समझने का अवसर प्रदान करे। स्वामी जी यह भी चाहते थे कि विद्यार्थी में ब्रह्मचर्य पालन, ज्ञानेन्द्रियों एवं कमैन्द्रियों पर पूर्णनिष्ठता, गुरू आज्ञा पालन, नम्रता से शीश झुकाना आदि गुणों का समावेश होना चाहिए।

अपनी उन्नति जानिए (Check Your Progress)

प्र. 1. ‘‘उठो जागो, तब तक न रूको, जब तक कि परम लक्ष्य (Supreme Goal) की प्राप्ति न कर लो।’’ यह कथन है-

(अ) स्वामी दयानन्द (ब) स्वामी विवेकानन् (स) स्वामी बालकृष्ण (द) स्वामी रामकृष्ण

प्र. 2. ‘‘शिक्षा का लक्ष्य मानव सेवा द्वारा ईश्वर की सेवा करना है।’’ यह कथन है-

(अ) स्वामी रामकृष्ण (ब) स्वामी दयानन्द (स) अरविन्द (द) स्वामी विवेकानन्द

प्र. 3. ‘‘आज ऐसे बलिष्ठ मनुष्यों की आवश्यकता है, जिनकी पेशियां लोहे के समान दृढ़ एवं स्नानु फौलाद के समान कठिन हों।’’ यह कथन है -

(अ) स्वामी दयानन्द (ब) रवीन्द्रनाथ टैगोर (स) स्वामीनित्यानन्द (द) स्वामी विवेकानन्द

प्र. 4. साधु संगत, भ्रमण, सेवा कार्य, खेलकूद, शारीरिक शिक्षा, उद्योग, शिल्प एवं कौशलों की शिक्षा है-

(अ) क्रियात्मक एवं व्यायवहारिक (ब) परामर्श विधियां

(स) केन्द्रीयकरण विधियां (द) उपदेश की विधि

भाग तीन – Part III

16.5 स्त्री शिक्षा (Women Education)

वास्तव में यदि गंभीरता के साथ देखा जाय तो यही ज्ञात होगा कि भारत के पतन और अवनति का एक प्रमुख कारण स्त्रियों की अशिक्षा है। इसका अनिवार्य फल यह हुआ कि जो जाति सभी प्राचीन जातियों में सर्वश्रेष्ठ थी वही आज पृथ्वी की समस्त जातियो में तुच्छ समझी जाने लगी। यथार्थ शक्ति पूजा का आविष्कार तथा विवेचन सर्वप्रथम हमारे देश के ही पूर्वजों ने किया था, आज हम लोग स्त्रियों के अनादर के प्रत्यक्ष दृष्टांत स्वरूप हो गये हैं। प्रत्येक भारतीय को चाहिए कि अपने समस्त ज्ञान को स्त्री और पुरूष में समान रूप से वितरित करे। स्त्री-शिक्षा से ही मानव जाति का महान लाभ संभव है। क्योंकि विस्तार ही जीवन है तथा संकीर्णता ही मृत्यु है। प्रेम ही जीवन है और घृणा ही मृत्यु है। अतः प्रत्येक भारतीय को जीवित रहने के लिए यह आवश्यक है कि वह अपने सीमित ज्ञान को असीमित लोगों में प्रचार करे। बाल्यावस्था के लड़के-लड़की को यह भी ज्ञान नहीं होता कि वे समाज के भावी निर्माता हैं किसी अबोध बालिका पर मातृत्व का भार डालना ही क्या धर्म है। स्त्री-पुरूष का विवाह ज्ञान, आत्मविश्वास, परिश्रम आदि मानवीय गुणों के विकास के बाद ही

अधिक उचित रहता है। लड़कों तथा लड़कियों दोनों को ही पुस्तकीय शिक्षा के अलावा चरित्र की भी शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए, जिससे समाज में सदाचार का वातावरण सदैव बना रहे। इससे उनके मानसिक बल की वृद्धि होकर बौद्धिक विकास होता है तथा उन्हें अपने दावों पर खड़े होने की भी शक्ति प्राप्त होती है।

भारतीय नारी की पवित्रता तथा सतीत्व बहुमूल्य निधि है जो उसे अतीत काल से प्राप्त हुई है। इसीलिए वह उसे स्वभावतः समझती है। सर्वप्रथम हमको इनमें इस आदर्श के प्रति प्रगाढ़ श्रद्धा एवं भक्ति उत्पन्न करनी चाहिए। यदि वे इस आदर्श पर दृढ़ हो गई तो इसके परिणामस्वरूप उनका चरित्र इतना बलवान तथा ़दृढ़ होगा कि वे उसके प्रभाव से अपने प्राणों की आहुति देकर भी अपनी पवित्रता की तथा सतीत्व की रक्षा करना अपना धर्म समझेंगी। जहां तक ब्रह्मचर्य व्रत का प्रश्न है, स्त्री प्रत्यक्ष उदाहरण से एवं राष्ट्रीय आदर्श का पालन करके ब्रह्मचर्य व्रत को भी निभा सकती है। उसके उच्च प्रयत्नों को देखकर लोगों के विचारों एवं आकांक्षाओं में महान क्रान्ति उपस्थित होगी। वास्तव में यदि हम वर्तमान विचारधारा के प्रवाह को बदल सकें, तो जनता में फिर उस पुरातन श्रद्धा के जाग्रत होने की कुछ आशा की जा सकती है। यदि हम सभी नवयुवक और युवतियां विवाह देरी से करने का व्रत पालन करें तो हम जान सकते हैं कि हममें कितना आत्मविश्वास होगा। श्रद्धा, आत्मविश्वास एवं आत्मबल जगाने का उपाय केवल यही है कि प्रत्येक नवयुवक और युवती सुशिक्षित तथा सुसंस्कृत बने। जनता इस प्रकार शिक्षित होने पर स्वयं ही अपना हानि-लाभ समझकर कुरीतियों को निकालकर बाहर करेंगी। वैसे, इस समय तो भारतीय सरकार ने भी बाल-विवाह, बहु-विवाह आदि पर कानूनी रोक लगा दी है।

स्त्री शक्ति की सजीव प्रतिमा है। मनु ने कहा है- ''जहां स्त्रियों का आदर होता है, वहां देवता प्रसन्न रहते हैं और जहां उनका आदर नहीं होता वहां सारे कार्य और प्रयत्न निष्फल हो जाते हैं।'' स्त्रियों की अनेक समस्याओं का समाधान शिक्षा द्वारा ही हो सकता है। स्त्रियों की शिक्षा का केन्द्र कर्म हो। धार्मिक शिक्षा-चरित्र गठन और ब्रह्मचर्य पालन-इन्हीं पर अधिक ध्यान देना चाहिए। भारतीय स्त्री का आदर्श सीता का चरित्र होना चाहिए। उन्हें त्याग की शिक्षा दी जाए।

आधुनिक युग में नारियों को आत्मरक्षा के उपायों को भी सीखना चाहिए। संघमित्रा, लीला, अहिल्याबाई, मीराबाई, झांसी की रानी के आदर्शो को अपनाकर स्त्रियों को पवित्रता, निर्भयता और ईश्वर परायणता के गुणों का अभ्यास करना चाहिए। समय आने पर उन्हें आदर्श माता बनना चाहिए। शिक्षित और धार्मिक माताओं के ही घर में महापुरूष जन्म लेते हैं। स्त्रियों की उन्नति से संस्कृति, ज्ञान, शक्ति और भक्ति का देश में जागरण हो जायेगा।

स्त्रियों को शिक्षा-कार्य भी अपने हाथ में लेना चाहिए। स्वामी जी कहते हैं- ''सुशिक्षिता और सच्चरित्रवती ब्रह्मचारिणियां शिक्षा-कार्य का भार अपने ऊपर लें। ग्रामों और शहरों में केन्द्र खोलकर स्त्री-शिक्षा के प्रचार का प्रयत्न करें। ऐसी सच्चरित्र निष्ठावान उपदेशिकाओं के द्वारा देश में स्त्री-शिक्षा

का यथार्थ प्रचार होगा। इतिहास और पुराण, गृह-व्यवस्था और कला कौशल, गृहस्थ जीवन के कर्तव्य और चरित्र-गठन के सिद्धान्तों की शिक्षा देनी होगी, और दूसरे विषय जैसे- सीना-पिरोना, गृह-कार्य, नियम, शिशु पालन आदि भी सिखाये जायेंगे। जप, पूजा और ध्यान शिक्षा के अनिवार्य अंग होंगे। दूसरे गुणों के साथ उन्हें शूरता और वीरता के भाव भी प्राप्त करने होंगे।

16.5.1 स्वामी विवेकानन्द के कार्य (Work of Swami Vivekanand)

स्वामी विवेकानन्द एक अद्वितीय एवं दिव्य व्यक्तित्व वाले व्यक्ति थे जो वास्तव में धर्म प्रचार एवं मानव कल्याण के लिए इस संसार में अवतरित हुए थे। स्वामी जी के आदर्शो एवं सिद्धान्तों को क्रियान्वित रूप प्रदान करने के लिए रामकृष्ण मिशन देश-विदेश में अनेक कार्य करता है, जिनमें से अग्रलिखित प्रमुख हैं:-

1. चिकित्सालय स्थापना एवं चिकित्सकीय सेवा
2. विद्यालयों की स्थापना एवं शिक्षा प्रचार
3. मातृत्व सुरक्षा एवं कल्याण कार्य
4. पिछड़े वर्गो एवं श्रमिकों के उद्धार एवं उत्थान का कार्य
5. जनसमूह में संपर्क रखना, जैसे-चिकित्सालयों में मरीजों से मिलना, पुस्तकालय एवं वाचनालय चलाना आदि।
6. सहायता सेवा कार्य
7. विदेशों में प्रचार कर सिद्धान्तों को फैलाना तथा आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक उन्नति के साधन-मार्ग को बताना।

प्रमुख रचनाएं:- 1. राजयोग, 2. ज्ञान योग, 3. भक्ति योग, 4. प्रेम योग, 5. कर्म योग, 6. देववाणी, 7. पत्रावली, 8. कर्म विज्ञान, 9. हिन्दू कर्म, 10. आत्मानुभूति तथा उसके कार्य, 11. मेरे गुरूदेव, 12. भारतीय व्याख्यान, 13. शिक्षा, 14. कर्म रहस्य आदि।

16.5.2 स्वामी विवेकानन्द के शिक्षा दर्शन का मूल्यांकन व योगदान

(Estimate of Contribution of swami Vivekanand'sPhilosophy Education)

1. वेदान्त के सिद्धान्तों का व्यावहारिक जीवन में प्रयोग
2. शिक्षा के प्रचार पर अत्यधिक बल

3. राष्ट्रीय शिक्षा की योजना प्रस्तुत करना

4. शिक्षा की आध्यात्मिक विधि का प्रतिपादन

5. शिक्षा के आत्मानुभूति या आत्म साक्षात्कार उद्देश्य पर बल

6. भारतीय ज्ञान संस्कृति एवं महानता को विदेशों के समक्ष वास्तविक रूप में रखना।

अपनी उन्नति जानिए(Check your Progress)

प्र. 1. ''प्रत्येक भारतीय को चाहिए कि अपने समस्त ज्ञान को स्त्री और पुरूष में समान रूप से वितरित करे।'' यह कथन है-

(अ) स्वामी विवेकानन्द द्वारा स्त्रियों के संबंध में

(ब) स्वामी विवेकानन्द द्वारा गरीब व्यक्तियों के संबंध में

(स) स्वामी विवेकानन्द द्वारा ईसाईयों के संबंध में

(द) स्वामी विवेकानन्द द्वारा शिक्षकों के संबंध में

प्र. 2. ''भारतीय नारी की पवित्रता तथा सतीत्व बहुमूल्य निधि है, जो उसे अतीत काल से प्राप्त हुई है।'' यह कथन है-

(अ) स्वामी दयानन्द (ब) रवीन्द्रनाथ टैगोर (स) अरविन्दो द) स्वामी विवेकानन्द

प्र. 3. स्वामी जी ने जिस धर्मसभा में भाग लिया था, वहां कहां हुई थी ?

(अ) बंगाल में (ब) दक्षिण भारत में (स) इंलैण्ड में(द) अमेरिका में

प्र. 4. स्वामी जी के अनुसार आध्यात्मिक सत्य पर किसका अधिकार होना चाहिए ?

(अ) धार्मिक व्यक्तियों का (ब) पण्डितों का (स) जनसाधारण का (द) राजनीतिज्ञों का

प्र. 5. राजयोग, ज्ञान योग, भक्ति योग, प्रेम योग, कर्म योग आदि किसकी रचनाएं हैं?

(अ) स्वामी विवेकानन्द (ब) स्वामी दयानन्द (स) श्री अरविन्दो (द) महात्मा गांधी

16.6 सारांश (Summary)

इस प्रकार विवेकानन्द ने स्त्री-पुरूष, धनी-निर्धन सभी में शिक्षा के प्रसार पर जोर दिया है। उनकी शिक्षा-प्रणाली भारत की दार्शनिक और आध्यात्मिक परम्परा के अनुरूप थी। वे स्वदेशी के जबर्दस्त हिमायती थे और पाश्चात्य संस्कृति के अन्धानुकरण के विरूद्ध थे। जहां उन्होंने एक ओर भारत को पाश्चात्य विज्ञान और प्रवृत्तिवाद अपनाने के लिए कहा वहां उन्होंने दूसरी ओर ब्रह्मचर्य और आध्यात्म के प्राचीन आदर्शो को शिक्षा में सबसे प्रमुख स्थान दिया। युवक-युवतियों के लिए पाठ्यक्रम निर्धारित करते समय उन्होंने साहस, आत्म-विश्वास, एकाग्रता, अनाशक्ति तथा उच्च नैतिक चरित्र के गुण निर्माण करने पर विशेष रूप से ध्यान दिया। उन्होंने शिक्षकों को शिक्षा देने के कार्य को व्यवसाय बनाकर एक मिशन के रूप में लेने की सलाह दी। उन्होंने सब कहीं संतुलित और समन्वयवादी दृष्टिकोण रखा। वे अंग्रेजी और पाश्चात्य संस्कृति के विरूद्ध नहीं थे। ऐसा होता तो पश्चिम में उनका इतना जोरदार स्वागत न होता। परन्तु, दूसरी ओर उन्होंने पश्चिम से जो कुछ ग्रहण किया उसको भारतीय संस्कृति का ऐसा जामा पहनाया कि वे कहीं भी स्वदेशी के आदर्श से नहीं हटते। महान् आदर्शवादी होते हुए भी उनके शिक्षा संबंधी विचार अत्यधिक व्यावहारिक और यर्थाथवादी हैं। उन्होंने तत्कालीन भारत की परिस्थितियों के अनुसार शिक्षा-प्रणाली की ऐसी रूपरेखा उपस्थित की जिससे देश स्वतंत्रता प्राप्त करके प्रगति के मार्ग में आगे बढ़े। उनके शिक्षा संबंधी विचार आज भी समकालीन शिक्षा-प्रणाली के सुधार के लिए मार्ग निर्देशक का कार्य कर सकते हैं।

16.7 कठिन शब्द (Difficult Words)

बहिर्जगत (External Words) :- यह जगत अनन्त काल से चला आ रहा है और यदि इसका नाश होता है तो वह पुनः अपने कारण उसी रूप में लौट आता है। अर्थात् ईश्वर में विलय हो जाता है।

अन्तर्जगत (Internal Words) :- अन्तर्जगत का एक क्रम होता है। वह सूक्ष्म से सूक्ष्मतम रूप में पाया जाता है। अन्तर्जगत अवस्थित, आत्म, स्वप्रकाश, सचिदानन्द, चिन्तमय एवं मुक्त है। उनका न जन्म होता है और न मृत्यु। अपितु वह धीरे-धीरे नीची अवस्था से उच्चावस्था को प्रकाशित होती है।

अध्यक्षात्मक विश्वेकता (Spiritual Universalism):- यदि आप ईश्वर को मनुष्य के चेहरे में नहीं देख सकते हैं तो उसको आप बादलों में कहां देख सकोगे। आप उसे निर्जीव पत्थर की मूर्ति में कैसे देख सकेंगे। मनुष्य समस्त प्राणियों में ब्रह्मा का दर्शन करता है। इस स्थिति में संपूर्ण विश्व में एकता की भावना आती है। जिसके कारण समाज में विश्वबंधुत्व की भावना दिखाई देती है।

16.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer of Practice Questions)

भाग-एक

उत्तर-1 (ब) 1863

उत्तर-2 (अ) 1981

उत्तर-3 (द) स्वामी विवेकानन्द

उत्तर-4 (अ) स्वामी विवेकानन्द

उत्तर-5 (अ) सत्य

भाग-दो

उत्तर-1 (ब) स्वामी विवेकानन्द

उत्तर-2 (द) स्वामी विवेकानन्द

उत्तर-3 (द) स्वामी विवेकानन्द

उत्तर-4 (अ) क्रियात्मक व व्यावहारिक विधियां

भाग-तीन

उत्तर-1 (अ) स्वामी विवेकानन्द द्वारा स्त्रियों के संबंध में

उत्तर-2 (द) स्वामी विवेकानन्द

उत्तर-3 (द) अमेरिका में

उत्तर-4 (स) जन-साधारण का

उत्तर-5 (अ) स्वामी विवेकानन्द

16.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Reference Books)

1. पाण्डे, (डॉ) रा. श. *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*. आगरा: अग्रवाल प्रकाशन.

2. सक्सेना, (डॉ) सरोज. *शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार*. आगरा: साहित्य प्रकाशन.

3. मित्तल, एम.एल. (2008). *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*. मेरठ: इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस.

4. शर्मा, रा. ना. व शर्मा, रा. कु. (2006). *शैक्षिक समाजशास्त्र*. नई दिल्ली: एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स.

5. सलैक्स, (डॉ) शी. मै. (2008). *शिक्षक के सामाजिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्षय*. नई दिल्ली: रजत प्रकाशन.

6. गुप्त, रा. बा. (1996). *भारतीय शिक्षा शास्त्र*. आगरा: रतन प्रकाशन मंदिर.

16.10 सहायक/उपयोगी सहायक ग्रन्थ (Useful Books)

1. पाण्डे, (डॉ) रा. श. *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*. आगरा: अग्रवाल प्रकाशन.

2. सक्सेना, (डॉ) सरोज. *शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार*. आगरा: साहित्य प्रकाशन.

3. मित्तल, एम.एल. (2008). *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*. मेरठ: इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस.

4. शर्मा, रा. ना. व शर्मा, रा. कु. (2006). *शैक्षिक समाजशास्त्र*. नई दिल्ली: एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स.

16.11 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Types Question)

प्र. 1. स्वामी विवेकानन्द के अनुसार शिक्षा के क्या उद्देश्य होने चाहिए ?

प्र. 2. स्वामी विवेकानन्द के अनुसार पाठ्यक्रम और शिक्षण विधि का वर्णन कीजिए।

प्र. 3. नारी शिक्षा के संबंध में स्वामी जी के विचारों का वर्णन कीजिए।

प्र. 4. शिक्षक व शिष्य के संबंध में स्वामी जी के विचारों का वर्णन कीजिए।

प्र. 5. स्वामी विवेकानन्द के अनुसार शिक्षा का लक्ष्य क्या है और उसे किस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है ?

इकाई –17 : रूसो (Rousseau)

17.1 प्रस्तावना
17.2 उद्देश्य
17.3 रूसो का जीवन परिचय
    17.3.1रूसो के दार्शनिक विचार (तत्वमीमांसा, ज्ञानमीमांसा,मूल्यमीमांसा)
    17.3.2 रूसो के शैक्षिक विचार
17.4 शिक्षा का संप्रत्यय
    17.4.1 शिक्षा का उद्देश्य
    17.4.2 शिक्षा का पाठ्यक्रम
17.5 शिक्षण विधियाँ
    17.5.1 अनुशासन , शिक्षक, विद्यार्थी , विद्यालय
    17.5.2 रूसो के शैक्षिक विचारों का मूल्यांकन
17.6 सारांश
17.7 शब्दावली
17.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
17.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
17.10निबंधात्मक प्रश्न

17.1 प्रस्तावना

इससे पहले की इकाइयों में अपने विभिन्न पाश्चात्य दार्शनिकों के दर्शन का अध्ययन किया तथा उनके शैक्षिक दर्शन का विस्तारपूर्वक अध्ययन किया। इस इकाई में आप प्रकृतिवादी दार्शनिक जीन जैक्स रूसो के विभिन्न दार्शनिक पहलुओं का अध्ययन करेंगे।

जीन जेक्स रूसो को एक महान शिक्षा सुधारक, समाज सुधारक, युग-प्रवर्तक, राजनैतिक आधुनिक प्रजातन्त्रवाद के जनक तथा प्रकृतिवादी के रूप में जाना जाता है। रूसो ने तत्कालीन समाज व राजनीति का चित्र खींचा, उन्होंने समाज में व्याप्त बुराइयों का अपने लेखनी द्वारा विरोध किया तथा प्रकृति को अपने दर्शन का केन्द्र बनाया, रूसो ने आधुनिक युग में सबसे ज्यादा जोरदार शब्दों में अपने प्रभावशाली विचार प्रकट किए। रूसो ने प्रकृतिवाद को शिक्षा का आधार बनाया। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप रूसो के दार्शनिक एवं शैक्षिक विचारों से अवगत होंगे तथा

शिक्षा के प्रसंग में रूसो के दार्शनिक विचारों को जान पायेंगे। वर्तमान परिदृष्य मे रूसो द्वारा प्रदत्त शैक्षिक विचारों की प्रासंगिकता को समझ सकेंगे।

17.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप:

1.रूसो एक प्रकृतिवादी दार्शनिक के जीवन से परिचित होगें।

2.रूसो के शैक्षिक विचारों का वर्णन कर सकेंगें।

3.रूसो के अनुसार, शिक्षा के पाठ्यक्रम का अध्ययन कर पायेंगे।

4.रूसो के अनुसार विभिन्न शिक्षण विधियों से परिचित हो पायेंगे।

5.रूसो द्वारा प्रतिपादित निषेधात्मक शिक्षा की व्याख्या कर पायेंगे।

6.शिक्षण की विभिन्न विधियों का वर्णन कर पायेंगे।

7.रूसो के अनुसार विद्यायल, अनुशासन, शिक्षक एवं शिक्षार्थी, कैसा हो? इसको स्पष्ट कर पायेगें।

8.रूसो के शिक्षा के क्षेत्र में योगदान को अपने शब्दों में व्यक्त कर पायेंगे।

17.3 रूसो का जीवन परिचय

“रूसो उन अनेक व्यक्तियों का अग्रदूत था, जिन्होंने उन पद चिन्हों पर कार्य किया जो उनके द्वारा दिखाए गये थे। आज वे पद-चिन्ह सामान्य जनता के लिए आम मार्ग बन गए है।” **पॉल मुनरो**

महान युग-नेता व आधुनिक शिक्षा-पद्धति के जनक ‘जीन जेक्स रूसो’ का जन्म 25 जून, 1712 ई0 को यूरोप के जिनेवा नगर में हुआ था। जन्म के समय ही इनकी माता का देहान्त हो गया और इनका लालन पालन उनकी चाची द्वारा किया गया। इनके पिता घड़ी बनाने वाले कारीगर के रूप में काम किया करते थे।

वह सदैव खुले वातावरण में घूमा करते थे जिसके फलस्वरूप व प्रकृति के उपासक बन गए। मात्र 6 वर्ष की आयु में ही उसने धार्मिक और ऐतिहासिक पुस्तकों के साथ ही उपन्यासों का अध्ययन करना भी प्रारम्भ कर दिया, जिससे उनकी मूल प्रवृत्तियों और आत्माभिव्यक्ति की भावना के विकास को बल मिला। विद्यालय की शिक्षा कठोर एवं कृत्रिम होने के कारण उन्हें इस ओर आकर्षित नहीं कर सकी। बचपन से ही वे प्रकृति-सौदर्य के प्रशंसक थे और उनका यह प्रकृति प्रेम बराबर बढ़ता गया जो कि बाद में उनके शिक्षा-सम्बन्धी सिद्धान्तों में दिखलाई पड़ता है। 21 वर्ष की आयु तक उनका

जीवन इसी प्रकार अनिश्चित रूप से चलता रहा। इसके बाद उन्हें एक झूठे आरोप में कठोर दण्ड भुगतना पड़ा, जिससे उनके हृदय को बड़ी ठेस पहूँची । इन सब बातों से वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि जब व्यक्ति को सामाजिक नियमों, बाहा आडम्बरों, उपदेशों और दण्ड के द्वारा प्रकृति से दूर रखा जाता है तभी उसके मन में विचार पैदा होता है और उसकी स्वाभिविकता नष्ट हो जाती है।

25 वर्ष की आयु में रूसो फिर से साहित्य की ओर मुड़े और उन्होंने अध्ययन प्रारम्भ किया। अनेक लेखकों के संपर्क में आने से उन्होंने लिखना शुरू किया अपने विचारों को क्रमबद्ध रूप देने लगे। उस समय फ्रांस में पन्द्रहवें लुई का शासन था। वह अत्यधिक विलासी, निर्दयी और कठोर था। निम्न वर्ग के व्यक्तियों का शोषण हो रहा था। रूसो ने दु:खी और पीड़ित जनता के प्रति सहानुभूति दिखाई। रूसो ने अपनी लेखनी द्वारा पन्द्रहवें लुई के विरूद्ध आवाज उठाई और अपने लेखों द्वारा शोषण का विरोध किया।

रूसो ने समाज में व्याप्त बुराइयों को देखकर अपनी प्रतिक्रिया इस प्रकार व्यकत की "प्रत्येक वस्तु जैसी की वह प्रकृति के सृष्टा के हाथ से आती है, अच्छी होती है, परन्तु मनुष्य के हाथों में आकर प्रत्येक वस्तु पतित हो जाती है।"

रूसो के इस वाक्य से उनका समाज के प्रति विरोध और प्रकृति के प्रति प्रेम स्पष्ट रूप से झलकता है। सन् 1750 ई0 तक रूसो की रचनाएँ विधिवत प्रकाशित होने लगीं। उनकी रचनाओं में मुख्य हैं-

The Discourse of Arts and Science- द डिस्कोर्स ऑफ आर्ट्स एंड साइंस

The Origin of Inequality among Men- द ओरिजन ऑफ इनिक्वेलिटी अमंग मैन

The New Heloise- द न्यू हिल्वाइज़

The Social Contract-द सोशल कॉन्ट्रेक्ट

Emile एमिल

'Social Contract' में रूसो ने अपने सामाजिक एवं राजनैतिक विचार प्रकट करते हुए वैयक्तिक दासता का विरोध किया है और तात्कालीन समाज और राजनीति का चित्र खींचा है। इस पुस्तक में रूसो ने स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि "मनुष्य जन्म से स्वतंत्र है, लेकिन सर्वत्र जंजीरो से जकड़ा हुआ है।"

एमिल (Emile) क्रन्तिकारी शिक्षा सम्बन्धी विचारों से युक्त है। इसमें रूसो ने बालक के विकास की विभिन्न अवस्थाओं व शिक्षा सम्बन्धी प्रावधानों पर प्रकाश डाला है। वास्तव 'एमिल' शिक्षा सम्बन्धी 'शोध ग्रन्थ' है।

17.3.1 रूसो के दार्शनिक विचार Philosophical Thoughts of Rousseau

प्रत्येक विचारक के अपने विशिष्ट दार्शनिक विचार होते है। रूसो एक ऐसा विचारक है जिसने अपने दार्शनिक विचारों को क्रम बद्ध तरीके से प्रस्तुत नहीं किए। हमें उसके दार्शनिक विचारों का ज्ञान उसके आचरण, कथनों व लेखों से मिलता है। उसके आचरण, कथनों व लेख बड़े विविध है। कुछ स्थानों में वह आदर्शवादी प्रतीत होता है तो कुछ में प्रकृतिवादी। परंतु मानव जीवन को सुखी बनाने रूसो का विचार पुर्ण रूप से प्रकृतिवादी है। वे किसी अंतिम उद्देश्य को नहीं मानते।

रूसो के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति का अपना अनूठा व्यक्तित्व होता है, उसकी अपनी विशेष इच्छाएँ रूचि व आवश्यकताएँ होती है, परन्तु समाज उन्हें स्वतंत्रता पूर्वक रहने नहीं देता, रूसो मनुष्य को सामाजिक बन्धनों से मुक्त रखने पर बल देता है।

रूसो के दार्शनिक विचारों की तत्वमीमांस

Metaphysics of Philosophical Thoughts of Rousseau

रूसो से ब्रहमाण्ड के सृजन के बारे में कुछ नहीं लिखा है, ना ही उसे ईश्वर और आत्मा का विश्लेषण किया है। लेकिन वह ईश्वर पर विश्वास करता है, उसने ईश्वर एवं आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार किया है तथा पादरियों का विरोध किया है।

रूसो के दार्शनिक विचारों की ज्ञानमीमांसा

Epistemology and Logic of Philosophical thoughts of Rousseau

रूसो के अनुसार प्रकृति का ज्ञान ही सच्चा ज्ञान है। प्रकृति से तात्पर्य दो प्रकार की प्रकृति से है-

1.एक वह प्रकृति जो मानव के प्रयास के बिना बनी है।

2.दूसरी प्रकृति वह है जो मनुष्य को जन्म से मिली है और जिसमें उसने दखल नहीं दिया है।

रूसो, सभ्यता एवं विकास को सभी कष्टों का कारण मानता है। इसलिए इनके ज्ञान को वह आवश्यक नहीं मानता। रूसो के अनुसार वही ज्ञान सत्य है जो कि स्वयं के अनुभव द्वारा सीखा गया हो।

रूसो के दार्शनिक विचारों की मूल्यमीमांसा(Axiology and Ethics of Philosophical thoughts of Rousseau)

रूसो ने मनुष्य को ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ कृति माना है। वह यह जानता था कि ईश्वर ने मनुष्य को जन्म से अच्छा बनाया है। यही कारण है कि वह मनुष्य को हर प्रकार के सामाजिक, राजनैतिक तथा धार्मिक नियमों से स्वतंत्र रखना चाहता है।

17.4 रूसो के शैक्षिक विचार (Educational Thoughts of Rousseau)

रूसो से प्रकृतिवाद को शिक्षा का आधार बनाया। तत्कालीन नियमित आडम्बरपूर्ण और कृत्रिम प्रणाली का घोर विरोध किया।

रूसो के शैक्षिक विचार निम्न विचारों पर अधारित है-

1. प्रकृति शुद्ध, सहज, सुन्दर और सुखमय है।
2. मनुष्य की प्रकृति भी स्वतंत्र, शुद्ध, सहज, सुन्दर तथा सुखमय है। वह स्वतंत्रतापूर्वक रहना चाहता है, परन्तु फिर भी उसका जन्मजात स्वभाव है एक दूसरों से प्यार करना, एक-दूसरे का सहयोग करना तथा एक दूसरों को प्रसन्न करना।
3. समाज कई दोषो से भरा पड़ा है और प्रकृतिपूर्ण रूप से शुद्ध है।
4. हम सही ज्ञान प्रकृति से प्राप्त कर सकते है ना कि समाज से।
5. मनुष्य की इन्द्रियॉ ज्ञान का प्रवेश द्वारा है।
6. इन्द्रियों द्वारा शिक्षा, सच्ची शिक्षा है।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. रूसो किस वाद के समर्थक हैं?

2. रूसो की किन्हीं दो रचनाओं के नाम लिखिए।

3. रूसो की किस पुस्तक में उसके मुख्यतः शिक्षा सम्बन्धी विचार मिलते हैं?

4. रूसो ने अपनी किस पुस्तक में अपने सामाजिक एवं राजनैतिक विचार प्रकट किए हैं?

5. रूसो, सभ्यता एवं विकास को सभी कष्टों का कारण मानते हैं। (सत्य/असत्य)

17.4 शिक्षा का संप्रत्यय Concept of Education

रूसो के समय में शिक्षा चर्च के हाथों में थी। वर्ग अन्तर अपने चरम पर था। गरीबों की शिक्षा के लिए कोई उचित व्यवस्था नहीं थी और जन शिखा को देय दृष्टि से देखा जाता था। रूसो ने इस सब के प्रति अपनी आवाज उठाई।

रूसो ने कहा कि शिक्षा एक प्रकृतिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा बच्चे की अंतर्निहित शक्तियों स्वभाविक रूप से विकसित किया जाता है, अत: सभी बालकों को प्राकृतिक विकास के लिए उचित अवसर मिलने चाहिए। रूसो ने ज्ञान देने के स्थान पर ज्ञान के विकास पर बल दिया। बच्चे को सच से परिचित कराना आवश्यक नहीं है बल्कि उसे सत्य की खोज करने के लिए सक्षम बनाना है। उसने सूचना के स्थान पर अनुभव पर बल दिया, और यह अनुभव इन्द्रियों द्वारा अर्जित किया जाए इस बात पर भी जो दिया।

रूसो ने इन्द्रियों को प्रशिक्षित कर उस अनुभव द्वारा प्राप्त ज्ञान के आधार पर सत्य की वास्तविक खोज पर बल दिया। रूसो ने इसको निषेधात्मक शिक्षा कहा।

इस प्रकार, रूसो के अनुसार, दो प्रकार की शिक्षा है-

निषेधात्मक शिक्षा – Negative Education

सकारात्मक शिक्षा निश्चयात्मक शिक्षा- Positive Education

रूसो के अनुसार- “”मैं निश्चयात्मक शिक्षा उसे कहता हूँ जो समय से पहले ही मस्तिष्क को परिपक्व बनाना चाहती है और बालक को प्रौढ़ मनुष्य के कर्तव्यों को करने का निर्देश देती है।””

“I call positive education one that tends to form mind prematurely and instruct the child in the duties that belong to man.”

निषेधात्मक शिक्षा Negative Education

बालक की प्राकृतिक शक्तियों और प्रवृत्तियों के अनुसार शिक्षा देना तथा ज्ञानेन्द्रियों का विकास करना ही निषेधात्मक शिक्षा का उद्देश्य है। रूसो के अनुसार- “शिक्षा सदगुण नहीं प्रदान करती, यह दुगुर्णो से बचाती है, यह सत्य बोलना नही सिखलाती, यह झूठ बोलने से बचाती है। यह बालक को उस ओर अन्मुख बनाती है जो उसे सत्य की ओर ले जाएगा और जब वह समझ सकने की अवस्था में पहुँचेगा तो वह इसे प्रेम करने की शक्ति प्राप्त कर लेगा।”

निषेधात्मक शिक्षा में रूसो ने निम्न बिन्दुओं पर बल दिया है-

इन्द्रिय प्रशिक्षण पर बल- Stress on training of sense organs.

पुस्तकीय ज्ञान के स्थान पर, अनुभव द्वारा सीखना- Learning by experience, in place of bookish Knowledge.

अपनी प्रकृति के अनुसार इसमें बच्चे बाध्य नहीं हैं, वे प्राकृतिक वातावरण में बाध्य नहीं हैं, वे प्राकृतिक वातावरण में अपने विकास के लिए स्वतंत्र हैं, बच्चों को मौखिक निर्देश नहीं दिये जाते बल्कि वे स्वयं काम करके सीखते हैं।

इन्द्रियों को प्रशिक्षित कर उस अनुभव द्वारा प्राप्त ज्ञान के आधार पर सत्य की वास्तविक खोज ही निषेधात्मक शिक्षा है। रूसो निषेधात्मक शिक्षा को ही वास्तविक शिक्षा मानता है। रूसो के अनुसार बच्चे की शिक्षा प्रारम्भ में निषेधात्मक ही होनी चाहिए।

17. 4.1 शिक्षा के उद्देश्य Aims of Education

रूसो ने समाज से अधिक महत्व व्यक्ति को दिया, अत: उसने शिक्षा द्वारा मनुष्य के व्यक्तिगत विकास पर बल दिया। मनुष्य के विकास का एक निश्चित क्रम है, वह कई अवस्थाओं से होकर आता है- शैशवावस्था, बाल्यावस्था, किशोरावस्था तथा युवावस्था और फिर प्रौढ़ बनता है। उसकी शारिरिक व मानसिक स्थिति विभिन्न अवस्थाओं में अलग-अलग होती है। रूसो ने विभिन्न अवस्थाओं के लिए विशिष्ट शैक्षिक उद्देश्य दिए है।

शैशवावस्था (Infancy)- जन्म से 05 वर्ष तक की अवस्था को शैशवावस्था कहते है। इसमें शिक्षा का मुख्य उद्देश्य शारीरिक विकास है। रूसो बच्चे को प्रारम्भ से ही स्वस्थ और शक्तिशाली बनाने के पक्ष में है। रूसो ने कहा- "समस्त दुष्टता निर्बलता से आती है। बालक को सबल बनाना चाहिए, जिससे कि वह कुछ ऐसा नहीं करेगा जो कि बुरा हो।"

Rousseau said: - "All wickedness comes from weakness. The child should be made strong so that he will do nothing which will be made."

रूसो के अनुसार, शिशु की शिक्षा का मुख्य उद्देश्य शारीरिक विकास को प्रभावित करना ही होना चाहिए। अन्य अवस्थाओं में भी इस उद्देश्य के पक्ष में प्रयास किये जाने चाहिए। बालक को खेलने-कूदने, सोचने-समझने के काम में पूरी स्वतन्त्रता दी जानी चाहिए। बच्चे को उसके प्रवृत्तियों के स्वाभाविक विकास हेतु स्वतंत्रता दी जानी चाहिए।

बाल्यावस्था (5 से 12 वर्ष तक) Childhood- ये 5 से 12 वर्ष तक की अवस्था है। इस अवस्था में शिक्षा का मुख्य उद्देश्य बालक की जानेन्द्रियों का विकास करना है। बाल्यावस्था में शारीरिक विकास के साथ-साथ जानेन्द्रियों का विकास भी शिक्षा के मुख्य उद्देश्य हैं।

किशोरावस्था (12 से 15 वर्ष) Adolescence – 12-15 वर्ष तक किशोरावस्था में ऐसी शिक्षा दी जानी चाहिए जो उसके व्यक्तित्व के विकास में सहायक हो। इस अवधि में बालक को परिश्रम,निर्देश और अध्ययन के लिए अवसर मिलना चाहिए। शिक्षा का उद्देश्य बालक को उपयोगी तथा जीवन का व्यावहारिक ज्ञान प्रदान करना ही होना चाहिए। किशोर बालक को ऐसे अवसर प्रदान करने चाहिए जिनका उपयोग कर वह परिश्रम व अध्ययन द्वारा स्व-अनुभव से ज्ञान की खोज व विकास करें।

युवावस्था (15 से 20) Youth- यह काल 15 से 20 वर्ष तक माना जाता है। रूसो के अनुसार इससे पहले की तीन अवस्थाओं तक शरीर, ज्ञानेन्द्रियों व बुद्धि का विकास हो चुका हो तब युवकों के हृदय पक्ष का विकास जरूरी है। इस अवस्था में युवक की भावनाओं को समुचित रूप से जागरूक करना ही शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य है। रूसो के अनुसार, “हमने उसके शरीर, ज्ञानेन्द्रियों एवं बुद्धि का विकास कर लिया है, अब उसे केवल हृदय प्रदान करना शेष है।”

According to Rousseau- “We have formed his body, his senses and intelligence, it remains to give him a heart”

बालक की अन्तर्निहित प्रवृत्तियों, इच्छाओं तथा भावनाओं का समयानुसार स्वतन्त्र तथा स्वाभाविक विकास में सहायता करना ही शिक्षा का मुख्य उद्देश्य है। रूसो के अनुसार जीवन का उद्देश्य आनन्द प्राप्ति है। जो शिक्षा बालको के भावी सुखों के लिए वर्तमान के आनन्द का बलिदान करती है ऐसी शिक्षा नहीं दी जानी चाहिए।

इस प्रकार रूसो के अनुसार शिक्षा के प्रमुख उद्देश्य थे-

शारीरिक विकास

ज्ञानेन्द्रियों का प्रशिक्षण

बौद्धिक विकास

भावात्मक विकास

व्यवहारिक ज्ञान प्रदान करना

प्रवृत्तियों का स्वतंत्र एवं स्वाभाविक विकास करना

17.4.2 शिक्षा का पाठ्यक्रम Curriculum of Education

रूसो ने मानव विकास की मनोवैज्ञानिक अवस्थाएँ प्रस्तुत की और प्रत्येक अवस्था को ध्यान में रखते हुए विभिन्न उद्देश्य व पाठ्यक्रम निर्धारित किए। वह बच्चे पर कुछ भी थोपने के पक्ष में बिल्कुल नहीं था, उसके प्रकृति के अनुसार वातावरण सृजित करने की बात कही, अत: उसने विभिन्न आयु वर्ग की मनोवैज्ञानिक परिस्थितियों के अनुसार पाठ्यक्रम विकसित किया। रूसो ने विभिन्न अवस्थाओं के अनुसार प्रत्येक अवस्था के लिए विशिष्ट पाठ्यक्रम किया है।

1.शैशवावस्था—Infancy:- इस अवस्था में बालक को खेल-कूद, व्यायाम, दौड़ना, घूमना, प्राकृतिक पदार्थ का अवलोकन करना, प्राकृतिक वातावरण का अनुभव करना इत्यादि, इस प्रकार की गतिविधियों के अवसर प्रदान करने चाहिए। रूसो किसी प्रकार के निर्देश एवं पुस्तकीय ज्ञान का विरोध करता है। इस आयु में बालक को प्रकृति की गोद में छोड़ देना चाहिए और मिट्टी, धूल में खेलने का अवसर देना चाहिए। इस आयु में बालक में किसी प्रकार की आदत डालने का प्रयास उचित नहीं है। रूसो का कहना था -"बालक को एक मात्र यही आदत विकसित करने की अनुमति दी जानी चाहिए कि उसमें कोई आदतें न हों।"

"The only habit the child should be allowed to contract is that of having no habit."

2.बाल्यावस्था-Childhood

बाल्यावस्था में भी रूसो का पाठ्यक्रम पुस्तकें नहीं है। उसकी शिक्षा निषेधात्मक शिक्षा पर आधारित है। बालक को पुस्तकीय ज्ञान के स्थान पर अनुभव द्वारा सीखने पर बल। इस अवस्था के पाठ्यक्रम में सम्मिलित हैं- निषेधात्मक शिखा, खेलना-कूदना, तैरना, देखना, सुनना, ज्ञानेन्द्रियों का स्वतंत्र प्रयोग करना, अनुभव प्राप्त करना, बच्चे की प्रकृति, भाषा, गणित एवं भुगोल की शिक्षा देनी चाहिए। उन्हें स्व-अनुभव द्वारा सीखना है।

3.किशोरावस्था Adolescence

इस अवस्था में शारीरिक एवं मानसिक विकास हो चुका है और अब किशोर अपनी गतिविधियों को समझ कर उनका मूल्यांकन करना प्रारम्भ कर देते हैं। वे नई खोज करने में रूचि दिखते है तथा उनके भीतर नया करने की प्रबल इच्छा होती है, अत: उन्हें प्राकृतिक विज्ञान की शिक्षा प्रदान की जानी चाहिए जिससे की उनके भीतर अनुसंधान और आत्म-शिक्षा की शक्ति बढ़े। बालक को प्रकृतिक विज्ञान, भाषा, गणित, लकड़ी, काम, चित्रकला, सामाजिक जीवन और व्यवसाय संबंधी शिक्षा दी जानी चाहिए। किशोरावस्था में शिक्षा क्रियाओं और व्यवहार पर आधारित होनी चाहिए।

4.युवावस्था –Youth

युवावस्था के पाठ्यक्रम में नैतिक और धार्मिक शिक्षा को विशेष महत्व दिया है। रूसो वास्तव में इस अवस्था में निश्चयात्मक/ सकारात्मक शिक्षा देना चाहता है। बालक को सामाजिक जीवन के पाठ पढ़ाना, इसके लिए पौराणिक कथाएं, सामाजिक शिक्षा, साहित्य, दर्शन आदि पाठ्यक्रम में सम्मिलित किए जिससे कि प्रेम, सहानुभूति, सहयोग, दया, क्षमा जैसे गुणों का विकास हो। नैतिक और धार्मिक शिक्षा के अतिरिक्त रूसो ने युवावस्था के पाठ्यक्रम में शारीरिक शिक्षा, संगीत, कला और काम शिक्षा को भी स्थान दिया है।

5.स्त्री शिक्षा के लिए पाठ्यक्रम

Curriculum for Women Education

रूसो ने स्त्री-पुरूष को एक जैसा नहीं माना है। वह स्त्री को पुरूष का पूरक मानता है और उसका कोई स्वतन्त्र व्यक्तित्व नहीं मानता। उसने अपनी पुस्तक 'एमील' में अपनी काल्पनिक स्त्री पात्र 'सोफी', एमील की पत्नी को पढ़ा-लिखा, सभ्य महिला न बनाकर, उसे गृह कार्य की शिक्षा प्रदान की। जैसे- पाक कला, सिलाई, कढ़ाई, बुनाई, बच्चों का लालन-पालन आदि। उन्हें नाचना गाना तथा ललित कलाएँ भी सिखाई जानी चाहिए, किन्तु रूसो स्त्रियों को दर्शन, कला और विज्ञान की शिक्षा देना नहीं चाहता, क्योंकि उसका कहना है कि इसकी उन्हें कोई आवश्यकता नहीं है।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

6.रूसो के अनुसार, शिक्षा कितने प्रकार की है?उनके नाम लिखिए।

7.निषेधात्मक शिक्षा क्या है?

8.रूसो के अनुसार शिक्षा के प्रमुख उद्देश्य लिखिए।

9.रूसो ने शिक्षा की अवधि को कितने भागों में बाँटा?

17.5 शिक्षण की विधियाँ Methods of Teaching

शिक्षा व्यवस्था और पाठ्यक्रम के समान शिक्षण-विधियों में भी रूसो प्रकृतिवादी है। उसने शिक्षा की प्रक्रिया में निम्नलिखित विधियों को महत्व दिया ।

1.स्वानुभव द्वारा सीखना (Learning by Experience)- रूसो के अनुसार बच्चों को स्वानुभव द्वारा सीखने के अवसर प्रदान करने चाहिए। पुस्तक से ज्ञान अस्थायी होता है। अत: बच्चे स्वयं अपने अनुभव द्वारा ज्ञान प्राप्त करना चाहिए।

2.ज्ञानेन्द्रियों द्वारा शिक्षा- रूसो ज्ञानेन्द्रियों को ज्ञान का प्रवेश द्वारा मानता है, उसके अनुसार सबसे पहले ज्ञानेन्द्रियों का विकास होना चाहिए, जिससे कि ज्ञान का विकास स्वत: ही हो जाएगा। रूसो ने शिक्षण के समय ज्ञानेन्द्रियों के अधिक-अधिक उपयोग पर बल दिया है।

3.करके सीखना (Learning by doing)- रूसो ने रटने के स्थान पर क्रिया द्वारा सीखने का समर्थन किया, जहॉं बालक स्वयं कार्य करके, परीक्षण करके और ज्ञान का प्रयोग करके सीखता है। यह ज्ञान स्थायी एवं उपयोगी होता है।

रूसो ने पुस्तक से पढ़ाने की विधि को त्रुटिपूर्ण माना तथा उसके साथ पर करके सीखने, स्वानुभव द्वारा सीखने पर बल दिया। उसने यह भी कहा कि बच्चे को उसकी स्वयं की प्रकृति के अनुसार सीखने के अवसर प्रदान करने चाहिए तथा उसने बच्चे पर किसी भी प्रकार के बहाय दबाव का विरोध किया।

रूसो के इन्हीं सिद्धान्तों के आधार पर आगे चलकर कई मनोवैज्ञानिक विधियॉं विकसित हुई, जैसे- निरीक्षण विधि, अन्वेषण विधि, डाल्टन विधि आदि।

17.5.1 अनुशासन, शिक्षक, विद्यार्थी , विद्यालय

अनुशासन Discipline

प्रकृतिवादी रूसो बालक को अनुशासित करने के लिए उसे अधिक स्वतंत्रता देना चाहता है। रूसो बालक की स्वतंत्रता का समर्थक है और उस पर किसी प्रकार का बाहा नियन्त्रण नहीं चाहता है। रूसो के अनुशासन संबंधी विचार निम्न सिद्धान्तों पर आधारित हैं।

1.प्राकृतिक परिणामों का सिद्धान्त- Law of Natural Consequences

रूसो मुक्तात्मक अनुशासन का समर्थक है, बालक को मुक्त रखना चाहिए, उस पर किसीभी प्रकार का नियंत्रण नहीं होना चाहिए, वह सदा उनकी गलती के स्वाभाविक परिणाम के रूप में आना चाहिए, यह प्राकृतिक दण्ड की व्यवस्था है। यह प्राकृतिक अनुशासन है, जिसका अर्थ प्रकृति के नियमों का पालन है, यदि कोई इन नियमों का उल्लंघन करता है तो उसे प्रकृति द्वारा स्वयं तुरन्त दण्ड मिलता है। इस प्रकार स्वाभाविक दण्ड मिलने पर स्वयं समझ जाता है कि कौन सा कार्य अच्छा है और कौन सा बुरा।

2.स्वतंत्रता का सिद्धान्त- Principle of Freedom

स्वतंत्रता का अर्थ है कि बालक अपनी स्वयं की प्रकृति के अनुसार कार्य करे बिना किसी बाहा बन्धन के अपना विकास करे। स्वतन्ता पूर्ण वातावरण में बालक के नैसर्गिक गुणों को स्वतन्त्र रूप से

विकसित होने का अवसर मिलता है। इससे बालक को आत्मानुभूति एवं आत्म नियंत्रण का अवसर मिलता है। अगर बालक को अनियन्त्रित छोड़ दिया जाए तो वह अधिक अनुशासित हो सकेगा।

शिक्षक (Teacher)

समाज के विरोध में, रूसो ने शिक्षक को दोषायुक्त सामाजिक प्राणी माना है और रूसो शिक्षक को बच्चे की शिक्षा से हटाना चाहता है। उसने शिक्षक को गौण स्थान एवं शिक्षार्थी को प्रमुख स्थान दिया है। रूसो के अनुसार शिक्षक को कोई निर्देश नहीं देने चाहिए बल्कि उसे बच्चे के विकास के लिए उपयुक्त वातावरण सृजित करना चाहिए। शिक्षक केवल एक दार्शनिक है जिसको केवन बालक के व्यवहार और अध्ययन के तरीके को देखना है। उसका कार्य बालक को नियंत्रित करना नहीं बल्कि उसे सहायता प्रदान करना है।

विद्यार्थी (Student)

रूसो मनुष्य की वैयक्तिकता का सम्मान करता है तथा उसके वैयक्तिक विकास कि लिए स्वतंत्रता देने के पक्ष में है। इसी वैयक्तिकता को महत्व देते हुए रूसो ने शिक्षा में बालक को महत्वपूर्ण स्थान दिया। उसकी शिक्षा बाल-केन्द्रित है। उसने शिक्षा को बालक की क्षमता, अभिवृद्धि तथा अवश्यकता के अनुसार बनाया है। रूसो ने बालक की प्रवृत्तियों तथा उसे विकास की अवस्थाओं के अनुसार शिक्षा को बनाने का प्रयास किया।

विद्यालय (School)

रूसो अपने समय के समाज एवं सामाजिक संस्थानों से पूर्ण रूप से असन्तुष्ट था। उसने अपने समय के विद्यालयी व्यवस्था को त्रुटिपूर्णमाना तथा उनका विरोध किया। उसने 'प्रकृति की ओर लौटो' Back to Nature का नारा दिया। उसने कहा कि समाज और उसकी सभ्यता ही सभी बुराईयों की जड़ है, अत: बच्चों को इसके कुप्रभावों से दूर रखना चाहिए तथा उन्हें प्रकृति की गोद में शिक्षा प्रदान करनी चाहिए। वे समाज से दूर, प्रकृति की गोद में विद्यालय स्थापित करने के थे। उन्होंने विद्यालय में बच्चों को पूर्ण स्वतंत्रता देने पर बल दिया, उन पर किसी प्रकार का नियंत्रण नहीं किया जाना चाहिए। रूसो ने समय सारिणी को भी एक बंधन के रूप में माना और यह कहा कि बच्चो को किसी भी समय कोई भी गतिविधि करने के लिए स्वतंत्रता रखना चाहिए। शिक्षक को विद्यालय का वातावरण सरल व शुद्ध बनाना चाहिए जिससे की बच्चे अपने प्राकृतिक विकास को प्रभावित कर सकें।

17.5.2 रूसों के शैक्षिक विचारों का मूल्य (Evaluation of Educational thought of Rousseau)

हर महान पुरूष अपने समय की देन होता है, उसके बनने मे समकालीन परिस्थियों का प्रभाव होता है। यही बात रूसो पर भी लागू होती है। रूसो फ्रांस की क्रांति का अग्रदूत और आधुनिक प्रजातंत्र का जनक माना जाता है।

जहां जक शिक्षा के क्षेत्र में रूसो के योगदान की बात है, प्लेटो और कॉमिनियस के बाद पाश्चात्य् जगत में रूसो का ही नाम लिया जाता है। एक समय ऐसा था जब रूसो के शैक्षिक विचारों ने शैक्षिक जगत में तरंगे उत्पन्न कर दी थी। परन्तु जिस तीव्रता के साथ रूसो के शैक्षिक विचारों को स्वीकारा गया। उसी तीव्रता के साथ उन्हें अस्वीकृत भी किया गया।

अब हम वर्तमान संदर्भ में रूसो के शैक्षिक विचारों का मूल्यांकन करेंगे।

रूसो ने शिक्षा को प्राकृतिक क्रिया माना, उन्होंने स्पष्ट किया की सीखना मनुष्य की जन्मजात प्रकृति है, अत: उसने स्वयं अपनी प्रकृति के अनुसार सीखने की अनुमति देनी चाहिए, जिसमें की किसी व्यक्ति या समाज का काई हस्तक्षेप न हो।

यह स्पष्ट है कि मनुष्य में सीखने की इच्छा और शक्ति जन्म से ही होती है, परन्तु वह सीखता तभी है जब उसके और शिक्षक के मध्य परस्पर बात-चीत होती है। शिक्षा एक क्रियाशील एवं गतिशील प्रक्रिया है। यह समाज द्वारा निर्धारित की गई एक सामाजिक प्रक्रिया है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिससे एक समाज अपनी सभ्यता एवं संस्कृति का निरंतर विकास करता है।

1.रूसो ने शिक्षा की अवधि को चार स्तरों में बॉटा और हर स्तर के भिन्न शैक्षिक उद्देश्य निर्धारित किए। रूसो द्वारा निर्धारित शैक्षिक उद्देश्यो में, वर्तमान संदर्भ में कुछ दोष परिलक्षित होते है। रूसो ने एक स्तर में एक ही उद्देश्य की प्राप्ति पर बल दिया, जबकि शिक्षा एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है और किसी भी उद्देश्य की प्राप्ति में सहायक है।

2.रूसो मनुष्य को जन्म से सरल और शुद्ध निर्दोष मानता है और उसके प्राकृतिक विकास में बल देता है। जबकि तथ्य यह है कि मनुष्य जन्म से ही एक उच्च पशु है और उसे एक मनुष्य बनाने के लिए उसका सामाजिक विकास आवश्यक है।

3.रूसो ने राजनीतिक व्यवस्था और नागरिकता की शिक्षा को महत्व नहीं दिया जबकि वर्तमान परिप्रेक्ष्य में यह अत्यन्त आवश्यक है।

4. रूसो ने मानव विकास की मनोवैज्ञानिक अवस्थाएं प्रस्तुत की। उन्होंने हर अवस्था के लिए भिन्न शैक्षिक उद्देश्य एवं पाठ्यक्रम रखा। यह बात हमें रूसो से भी सीखने को मिली कि पाठ्यक्रम का निर्माण बालक की शारीरिक एवं मानसिक योग्यताओं के आधार पर करना चाहिए।

5.शिक्षा से कत्रिमता को दूर रखने के रूसो के प्रयास सराहनीय हैं। वे बालक को समाज के दोषों से दूर प्रकृति की गोद में रखना चाहते हैं।

6. बालक के प्राकृतिक विकास हेतु उसे पूर्ण स्वतंत्रता देना और बालक को उसकी रुचि,आवश्यकता एवं योग्यता के आधार पर शिक्षा देना, रूसो के इन विचारों का समर्थन आज भी किया जाता है।

7.सब रूसो के इस विचार से सहमत है कि बालकों को अपनी ज्ञानेन्द्रियों द्वारा सीखने, स्वानुभव द्वारा सीखने के अवसर प्रदान करने चाहिए। परन्तु समाज से दूर प्रकृति की गोद में बालक को रखना असमान्य है तथा किसी को भी स्वीकार्य नहीं है।

रूसो ने अनुशासन के दो सिद्धान्त दिए-

1.पूर्ण स्वतंत्रता का सिद्धान्त (Complete Freedom)

2.प्राकृतिक परिणाम (Natural Consequences)

पूरी तरह से स्वतंत्रता का सिद्धान्त एक त्रुटिपूर्ण सिद्धान्त है। यह बच्चों को उच्छृंखल बनाने की संभावना भी अपने अन्दर छिपाए हुए है। यह अव्यवस्था को जन्म देगा। स्वतंत्रता को एक सीमा में बॉधना भी लाभप्रद होता है। रूसो के अनुसार प्राकृतिक परिणाम (दण्ड) स्वयं ही अनुशासन प्रदान करते हैं। यह सिद्धान्त उचित नहीं है।

शिक्षक की भूमिका को लेकर रूसो के विचारों में विरोधाभास है। एक तरफ रूसो शिक्षक को बुराइयों से लिप्त मानता है और बालक को शिक्षक एवं बुराईयों से दूर प्रकृति के नजदीक रखना चाहता है और दूसरी ओर वह शिक्षक से अपेक्षा करता है कि वह बालक को प्राकृतिक रूप से सीखने में सहायता प्रदान करें।

शिक्षक का कार्य केवल सहायता प्रदान करने तक ही सीमित नहीं है। यह उसका कर्तव्य है कि वह बालक को में ऐसे गुणों का संचार करे जिससे कि उनका संपूर्ण विकास हो और वे प्रगति की ओर अग्रसर हो।

रूसो समकालीन समाज और सामाजिक संस्थाओं से पूर्ण रूप से असंतुष्ट था। वे विद्यालय द्वारा बालकों पर थोपे गए नियंत्रण का असमर्थन करते है और बालक को स्वतंत्रता देने के पक्षधर हैं। उन्होंने तो विद्यालय की समय सारिणी का भी विरोध किया।

विद्यालय का निर्माण दूषित समाज से दूर प्राकृति की गोद में करने के रूसी के विचार से सभी सहमत है। समाज को दोष रहित करने का काम शिक्षा का है अत: विद्यालय का वातावरण आदर्श होना चाहिए।

रूसो विद्यालय में समय सारिणी का विरोध करता है, परन्तु यदि विद्यालय में समय सारिणी ना हो और विद्यालय की कार्य प्रणाली निर्धारित ना हो तो शिक्षक को अपनी कार्य व्यवस्था में कठिनाई का सामना करना होगा। एक व्यवस्थापित एवं अनुशासित कार्य प्रणाली हेतु समय सारिणी का महत्व होता है। बिना समय सारिणी का पालन कर हम बालक को पशु बनाएगें जबकि मनुष्य कि विशेषता है कि वह पूर्णरूप से नियोजित होकर कार्य करता है और बिना नियोजन एवं समयबद्धता के मनुष्य विकास की ओर अग्रसर नहीं हो सकता।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

10.युवावस्था के पाठ्यक्रम में _____ और _____ शिक्षा को विशेष महत्व दिया है।

11.रूसो ने किन शिक्षण विधियों को महत्व दिया?

12.रूसो के अनुशासन संबंधी विचार किन सिद्धान्तों पर आधारित हैं।

13. रूसो ने शिक्षक को ______ स्थान एवं शिक्षार्थी को ______ स्थान दिया है।

14.रूसो ने ____ की ओर लौटो का नारा दिया|

15.रूसो ने विद्यालय में समय सारिणी को एक बंधन के रूप में माना है। (सत्य/असत्य)

17.6 सांराश (Summary)

रूसो के शिक्षा सम्बन्धी विचार प्रकृतिवादी की श्रेणी में आते हैं। रूसो के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति का अपना अनूठा व्यक्तित्व होता है, उसकी अपनी विशेष इच्छाएँ रूचि व आवश्यकताएँ होती है, परन्तु समाज उन्हें स्वतंत्रता पूर्वक रहने नहीं देता, रूसो मनुष्य को सामाजिक बन्धनों से मुक्त रखने पर बल देते हैं। रूसो के अनुसार प्रकृति का ज्ञान ही सच्चा ज्ञान है। रूसो के अनुसार वही ज्ञान सत्य है जो कि स्वयं के अनुभव द्वारा सीखा गया हो।

रूसो ने मनुष्य को ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ कृति माना है।वह यह जानता था कि ईश्वर ने मनुष्य को जन्म से अच्छा बनाया है। यही कारण है कि वह मनुष्य को हर प्रकार के सामाजिक, राजनैतिक तथा धार्मिक नियमों से स्वतंत्र रखना चाहता है।

रूसो से प्रकृतिवाद को शिक्षा का आधार बनाया। तत्कालीन नियमित आडम्बरपूर्ण और कृत्रिम प्रणाली का घोर विरोध किया। रूसो ने कहा कि शिक्षा एक प्रकृतिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा बच्चे की अंतर्निहित शक्तियों स्वभाविक रूप से विकसित किया जाता है। रूसो ने इन्द्रियों को प्रशिक्षित कर उस अनुभव द्वारा प्राप्त ज्ञान के आधार पर सत्य की वास्तविक खोज पर बल दिया।

रूसो ने समाज से अधिक महत्व व्यक्ति को दिया, अत: उसने शिक्षा द्वारा मनुष्य के व्यक्तिगत विकास पर बल दिया। रूसो ने मानव विकास की मनोवैज्ञानिक अवस्थाएँ प्रस्तुत की और प्रत्येक अवस्था को ध्यान में रखते हुए विभिन्न उद्देश्य व पाठ्यक्रम निर्धारित किए। शिक्षा व्यवस्था और पाठ्यक्रम के समान शिक्षण-विधियों में भी रूसो प्रकृतिवादी है। शिक्षा व्यवस्था और पाठ्यक्रम के समान शिक्षण-विधियों में भी रूसो प्रकृतिवादी है। रूसो बालक को अनुशासित करने के लिए उसे अधिक स्वतंत्रता देना चाहता है। रूसो बालक की स्वतंत्रता का समर्थक है और उस पर किसी प्रकार का बाहा नियन्त्रण नहीं चाहता है। रूसो शिक्षक को गौण स्थान एवं शिक्षार्थी को प्रमुख स्थान दिया है। उसने कहा कि समाज और उसकी सभ्यता ही सभी बुराईयों की जड़ है, अत: बच्चों को इसके कुप्रभावों से दूर रखना चाहिए तथा उन्हें प्रकृति की गोद में शिक्षा प्रदान करनी चाहिए।

17.7 शब्दावली Glossary

1.तत्वमीमांसा- वास्तविकता का विज्ञान

2.ज्ञानमीमांसा- ज्ञान का विज्ञान

3.मूल्यमीमांसा- मूल्य का विज्ञान

4.निषेधात्मक शिक्षा- इन्द्रियों को प्रशिक्षित कर उस अनुभव द्वारा प्राप्त ज्ञान के आधार पर सत्य की वास्तविक खोज ही निषेधात्मक शिक्षा है।

5.सकारात्मक शिक्षा /निश्चयात्मक शिक्षा- जो समय से पहले ही मस्तिष्क को परिपक्व बनाना चाहती है और बालक को प्रौढ़ मनुष्य के कर्तव्यों को करने का निर्देश देती है।

17.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नो के उत्तर

1.प्रकृतिवाद

2.रूसो की किन्हीं दो रचनाओं के नाम हैं-

I द डिस्कोर्स ऑफ आर्ट्स एंड साइंस

II द ओरिजन ऑफ इनिक्वेलिटी अमंग मैन

3.एमिल

4. द सोशल कॉन्ट्रेक्ट

5.सत्य

6. रूसो के अनुसार दो प्रकार की शिक्षा है-

I निषेधात्मक शिक्षा

II सकारात्मक शिक्षा निश्चयात्मक शिक्षा-

7. इन्द्रियों को प्रशिक्षित कर उस अनुभव द्वारा प्राप्त ज्ञान के आधार पर सत्य की वास्तविक खोज ही निषेधात्मक शिक्षा है।

8. रूसो के अनुसार शिक्षा के प्रमुख उद्देश्य हैं-

शारीरिक विकास

ज्ञानेन्द्रियों का प्रशिक्षण

बौद्धिक विकास

भावात्मक विकास

व्यवहारिक ज्ञान प्रदान करना

प्रवृत्तियों का स्वतंत्र एवं स्वाभाविक विकास करना

9.रूसो ने शिक्षा की अवधि को दो भागों में बाँटा है।

10.नैतिक और धार्मिक

11.रूसो ने इन शिक्षण विधियों को महत्व दिया-

स्वानुभव द्वारा सीखना, ज्ञानेन्द्रियों द्वारा शिक्षा, करके सीखना

12.रूसो के अनुशासन संबंधी विचार इन सिद्धान्तों पर आधारित हैं-

प्राकृतिक परिणामों का सिद्धान्त

स्वतंत्रता का सिद्धान्त

13.गौण , प्रमुख

14.प्रकृति

15. सत्य

17.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची (Reference Books)

1.लाल एण्ड पलोड, *एजुकेशनल थॉट एण्ड प्रैक्टिस*, मेरठ: आर0लाल प्रकाशन ,

2.पाण्डा, अ. कु. (2011). *शिक्षा दर्शन*. कानपुर: साहित्य रत्नालय्,

3.सक्सेना, एन0आर0 स्वरूप., शिखा, च. (2010). *उदीयमान भारतीय समाज मे शिक्षक,* मेरठ: आर लाल प्रकाशन.

4.एलैक्स, शी. मै. (2008). *शिक्षा दर्शन*. नई दिल्ली: रजत प्रकाशन.

5.ओड, एल. के. *शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि*. राजस्थान ग्रंथ अकादमी.

17.10 निबन्धात्मक प्रश्न (Long Answer Questions)

1 रूसो के शैक्षिक विचारों के बारे में आप क्या जानते हैं? शिक्षा के अर्थ, उद्देश्य एवं पाठ्यक्रम के सन्दर्भ में विचारों की व्याख्या कीजिए।

2. रूसो के शैक्षिक विचारों का मूल्यांकन कीजिए।

3. शिक्षण विधियों के सन्दर्भ में रूसो के क्या विचार हैं?स्पष्ट कीजिए।

4. निषेधात्मक शिक्षा पर एक टिप्पणी लिखिए।

इकाई 18: प्लेटो (Plato)

18.1 प्रस्तावना (Introduction)

18.2 उद्देश्य (Objectives)

भाग-एक (Part-I)

18.3 प्लेटो शिक्षा दर्शन (Education Philosophy of Plato)

18.3.1 प्लेटो का आदर्शवादी दर्शन (Idealistic Philosophy of Plato)

18.3.2 एथेन्स व स्पार्टा की शिक्षा प्रणाली (Education System of Athence and Sparta)

18.3.3 शैक्षिक पर्यावरण

अपनी उन्नति जानिए (Check your Progress)

भाग-दो 18.4 शिक्षा का अर्थ (Meaning of Education)

18.4.1 शिक्षा के कार्य तथा उद्देश्य (Function and Aims of Education)

18.4.2 पाठ्यक्रम (Curriculum)

18.4.3 शिक्षा के विभिन्न स्तर (Different Stages of Education)

अपनी उन्नति जानिए (Check your Progress)

भाग-तीन (Part-III)

18.5 शिक्षण विधि (Method of Teaching)

18.5.1 स्त्री शिक्षा (Women Education)

18.5.2 दासों की शिक्षा (Education of Slaves)

अपनी उन्नति जानिए (Check your Progress)

18.6 सारांश (Summary)

18.7 कठिन शब्द (Difficult Words)

18.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer of Practice Questions)

18.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Reference Books)

18.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री (Useful Books)

18.11 निबन्धात्मक प्रश्न ; (Essay Type Questions)

18.1 प्रस्तावना (INTRODUCTION):

प्लेटो के शिक्षा-दर्शन संबंधी विचार उसकी दो प्रमुख कृतियों ‘रिपब्लिक’ तथा ‘लॉज’ में प्रकट हुए हैं। अन्य संवादों में भी छुटपुट विचार मिलते हैं, किन्तु उपर्युक्त दो पुस्तकों में तो शिक्षा पर विषद विवेचन किया गया है। शिक्षा के इतिहास की दृष्टि से ‘रिपब्लिक’ शिक्षा संबंधी विचारों पर संचार में सबसे पहली पुस्तक है। ‘रिपब्लिक’ पहले लिखी गयी और ‘लॉज’ बाद में। दोनों पुस्तकों को पढ़ने से यह विदित होता है कि प्लेटो के शिक्षा संबंधी विचारों में एकरूपता नहीं है। ‘रिपब्लिक’ में वह नितान्त आदर्शवादी होकर हमारे समक्ष आता है और स्पष्ट घोषणा करता है कि अज्ञानता ही सारी बुराईयों की जड़ है, किन्तु ‘लॉज’ में वह अज्ञानता को इतना बुरा नहीं मानता। ‘रिपब्लिक’ की रचना प्लेटो ने अपने यौवन काल में की थी, ‘लॉज’ वृद्धावस्था में रची गई पुस्तक है। ज्यों-ज्यों प्लेटो के विचार परिपक्व होते गये त्यों-त्यों वह शिक्षा संबंधी विचारों में परिवर्तन करता गया। किन्तु अपने सभी संवादों में प्लेटो शिक्षा की क्षमता को स्वीकार करता है और वह समाज के कल्याण का आधार शिक्षा को ही मानता है।

18.2 उद्देश्य (OBJECTIVES):

1. प्लेटो के शैक्षिक दर्शन व आदर्शवादी दर्शन का ज्ञान कराना।
2. तत्कालीन एथेन्स व स्पार्टा की शिक्षा प्रणाली से परिचित कराना।
3. शिक्षा का अर्थ, कार्य व उद्देश्यों से परिचित कराना।
4. शैक्षिक पाठ्यक्रम व शिक्षा के विभिन्न स्तरों का ज्ञान प्रदान कराना।
5. स्त्री शिक्षा व दासों की शिक्षा व्यवस्था से परिचित कराना

भाग-एक (PART-I)

18.3 प्लेटो शिक्षा दर्शन (EDUCATION PHILOSOPHY OF PLATO)

प्लेटो ने दो प्रकार के संसार की कल्पना की। एक तो प्रत्ययों का संसार और दूसरा इन्द्रियों में अनुभव होने वाला संसार। प्रत्ययों के जगत् को वह अमानवीय जगत् बताता है। सामान्य मनोवैज्ञानिकों की धारणा है कि प्रत्ययों का निर्माण चेतना के अंदर होता है और इन प्रत्ययों का स्रोत दृष्ट-जगत है, किन्तु प्लेटो का विचार इससे भिन्न है। वह प्रत्ययों के जगत् की वस्तुनिष्ठ सत्ता मानता है। दृष्ट-जगत् के पदार्थ प्रत्ययों के जगत् की नकल है। विशेष में कोई न कोई अपूर्णता रह जाती है,

इसी से एक विशेष पदार्थ दूसरे विशेष पदार्थ से भिन्न होता है। प्रत्यय पूर्ण होता है, विशेष उस प्रत्यय की अपूर्ण नकल होते हैं। प्रत्यय विशेष पदार्थो पर आधारित नहीं, वह तो उन विशेषों की रचना का आधार है। प्रत्यय कभी व्यक्ति का सूचक नहीं होता, वह श्रेणी का सूचक होता है। घोड़ा, हाथी, मनुष्य आदि के प्रत्यय इस या उस घोड़ा, हाथी या मनुष्य के प्रत्यय नहीं हैं प्रत्यय सदा पूर्ण होता है। दूसरे शब्दों में-प्रत्यय ही आदर्श होता है।

प्लेटो के अनुसार ज्ञान व्यक्ति वह है जो दृष्ट-जगत् से दृष्टि हटाकर प्रत्ययों की दुनिया का चिन्तन करता है। प्रत्ययों की दुनिया का ज्ञान ही सच्चा ज्ञान है। ज्ञान के संबंध में बतलाते हुए प्लेटो ज्ञान को तीन रूपों में बांटता है-इन्द्रियजन ज्ञान, सम्मतिजन्य ज्ञान तथा चिन्तनजन्य ज्ञान। इन्द्रियजन ज्ञान तथा सम्मतिजन ज्ञान अपूर्ण, अवास्तविक तथा मिथ्या ज्ञान है। चिन्तनजन्य ज्ञान ही सच्चा ज्ञान है। प्रत्ययों की दुनिया का ज्ञान इन्द्रियातीत है। यह चिन्तन का ही विषय है। विशेष पदार्थों का ज्ञान निम्न कोटि का होता है। एक पदार्थ किसी को हरा तो किसी को सफेद दिखाई पड़ सकता है। यह ज्ञान है ही नहीं। पदार्थो के रूप व परिमाण के विषय में लोग भिन्न सम्मलियां रख सकते हैं। अतः यह भी ज्ञान कहलाने का पात्र नहीं है। इससे ऊंचा ज्ञान रेखागणित में होता है। एक त्रिकोण की एक भुजा दो अन्य भुजाओं के योग से छोटी है। यह बोध सम्मति का विषय नहीं है, क्योंकि सभी त्रिकोणों की बाबत यही सत्य है। गणित के सत्य से भी ऊंचे स्तर पर तत्व ज्ञान है। प्लेटो की दृष्टि में तत्वज्ञान ही सही ज्ञान है।

प्लेटो के अनुसार संसार सत् और असत्-दोनों का संयोग है। प्रत्ययों की नकल होने के कारण सांसारिक पदार्थ सत् है और एकता व स्थिरता के अभाव के कारण असत् है। जहां तक दृष्ट जगत् की उत्पत्ति का संबंध है, प्लेटो यह मानता है कि यह स्रष्टा की क्रिया का फल है। स्रष्टा की क्रिया के पहले प्रकृति आकार-रहित एवं भेद रहित होती है। स्रष्टा इस अभेद प्रकृति को प्रत्ययों का रूप प्रदान करता है।

18.3.1 प्लेटो का आदर्शवादी दर्शन (Idealistic Philosophy of Plato)

दर्शन के क्षेत्र में प्लेटो को आदर्शवादी विचारधारा का समर्थक माना गया है। वस्तुतः प्लेटो ने अपने शैक्षिक विचारों में आदर्शवादी दृष्टिकोण का समावेश करने का प्रयत्न किया है। प्लेटो मानता था कि वास्तविक जगत् विचारों का जगत् होता है। (The real world is that of ideas only) उसके अनुसार यदि कोई वस्तु सत्य है तो वह केवल विचार (ideas) हैं। भौतिक जगत् का अस्तित्व केवल विचारों पर निर्भर है। उसके अनुसार केवल ब्रह्म ही सत्य है तथा जगत् मिथ्या है। यही पूर्ण है, शेष अपूर्ण है। व्यक्ति अपूर्ण है, जबकि ईश्वर पूर्ण है। प्लेटो के अनुसार, विचारों को शाश्वत, पूर्ण, अपरिवर्तनशील व निरन्तर (Eternal, perfect, unchangeable and everlasting) कहा जाता है। प्लेटो के आदर्शवादी दृष्टिकोण के अनुसार, जगत् दो हैं। प्रथम तो विचारों का जगत् है तथा दूसरा-उन वस्तुओं का जगत् है जो संसार में हैं तथा जिनका संपर्क विभिन्न वस्तुओं से होता है।

विचारों के जगत् का अस्तित्व स्थायी होता है और इन्द्रिय-ज्ञात वस्तुओं का जगत् अस्थायी होता है तथा विचारो के द्वारा ही उनका स्वरूप निर्धारित होता है। इन्द्रिय जगत् स्थूल व नश्वर है। वस्तुतः विचार का आधार पाकर स्थूल जगत् की वस्तुओं का अस्तित्व होता है। स्थूल व स्थिर जगत् में स्थायित्व की कमी होती है। इस जगत् में वस्तुओं का संबंध स्थान व समय से होता है। इनके बदलने से ये वस्तुएं भी परिवर्तित हो जाती हैं, नष्ट हो जाती हैं। भारतीय दर्शन में भी यही विचार पाए जाते हैं। अर्थात् स्थूल जगत् एवं मानव शरीर नाशवान है और उन पर विश्वास नहीं किया जाना चाहिए, क्योंकि ये माया है। सच्चा जगत् तो विचार जगत् है। विचार जगत् मानसिक, सूक्ष्म व निरपेक्ष है। विचार जगत् को हम ईश्वर का मन (mind of God) भी कह सकते हैं। विचार आध्यात्मिक प्रकृति वाले होते हैं तथा वे अपने आप में शुद्ध एवं पूर्ण होते हैं। विचार का संबंध आत्मा से होता है। प्लेटो के अनुसार, आत्मा अमर व अनश्वर है। मनुष्य की देह में आत्मा होती है जो ज्ञानमुक्त होती है। शरीर नष्ट होने पर भी उसका अस्तित्व रहता है, क्योंकि वह परम तत्व का अंश होती है। अच्छे विचारों से युक्त जीवन होने के कारण मृत्यु के बाद आत्मा का निवास आनन्द लोक में होता है, जबकि इसके विपरीत बुरे कार्यो से अशुद्ध विचार होते हैं और इससे आत्मा उच्च श्रेणी मे न होकर निम्न श्रेणी के जीवों में प्रवेश करती है। इस तरह मनुष्य की उन्नति व अवनति से आत्मा को सुख व दुःख भोगना पड़ता है। प्लेटो का पुनर्जन्म में भी विश्वास था। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्लेटो के दार्शनिक विचारों पर भारतीय दर्शन की छाप स्पष्ट दिखाई देती है।

प्लेटो के अनुसार, आत्मा के निर्माण में तीन तत्व प्रमुख हैं:-

1. तृष्णा (Appetite)

2. इच्छा शक्ति (Will Power)

3. विवेक Wisdom)

विवेक मनुष्य के मस्तिष्क में, इच्छा-शक्ति हृदय में और तृष्णा नाभि में विद्यमान है। प्लेटो के अनुसार-तृष्णा का गुण संयम, इच्छा-शक्ति का धैर्य और विवेक का ज्ञान है। इन्हीं तीनों तत्वों व उनके गुणों से ही मनुष्य उन्नति करता है और आत्मा उच्च श्रेणी को प्राप्त करती है। इन्हीं गुणों के आधार पर प्लेटो ने मनुष्य जाति को तीन भागों में विभाजित किया है। तृष्णा की विशेषता वाला तीसरा वर्ग है जो उद्योगपति, व्यापारी, दुकानदार व किसान आदि का वर्ग है। इन्हें व्यवसायी कहा जा सकता है। इच्छा-शक्ति की विशेषताएं वाला वर्ग दूसरा है, जो सैनिकों का है तथा जिनका कर्तव्य सुरक्षा, युद्ध व्यवस्था, शान्ति स्थापना व नियम पालन आदि है। प्रथम वर्ग में दार्शनिक व शासक वर्ग आता है। इन लोगों की विशेषात है-ज्ञान एवं न्याय से युक्त विवेक या तर्क रखना। प्लेटो ने इस वर्ग को सबसे अधिक जिम्मेदारी दी है। इस वर्ग का विभाजन उसने जाति के ऊपर निर्भर न करके बुद्धि व ज्ञान पर किया है।

प्लेटो के अनुसार, यद्यपि सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् जीवन के उच्च मूल्य हैं, किन्तु सबसे उच्च वास्तविकता शिवम् की है। उनके अनुसार, नैतिकता के लिए कुछ सद्गुणों का विकास आवश्यक है और ये सद्गुण शिवम् से संबंधित होते हैं। उदारता, संयम, आत्म-नियंत्रण, धैर्यशीलता, साहस और ज्ञान ये समस्त शिवम् की ओर ले जाते हैं।

18.3.2 एथेन्स व स्पार्टा की शिक्षा प्रणाली

(Education System of Athence and Sparta)

प्लेटो से पहले यूनान में दो प्रकार की शिक्षा-प्रणाली प्रचलित थीं-एक तो एथेन्स की शिक्षा प्रणाली और दूसरे स्पार्टा की शिक्षा प्रणाली। एथेन्स की शिक्षा-प्रणाली पर राज्य का कोई नियंत्रण नहीं था और वह व्यक्तिगत प्रयास पर निर्भर थी। उसमें संपूर्ण शिक्षा तीन भागों में विभाजित थी-प्राथमिक, माध्यमिक और सैनिक अथवा उच्च शिक्षा। प्राथमिक शिक्षा में केवल साधारण अक्षर ज्ञान और अंकगणित सम्मिलित था। वह शिक्षा चौदह वर्ष की आयु तक पूरी होती थी। इसके बाद माध्यमिक शिक्षा का विधान था, जिस पर धनिकों का विशेषाधिकार था। इसके बाद उच्च शिक्षा के रूप में सैनिक शिक्षा दी जाती थी। इस प्रकार सैनिक शिक्षा को सर्वोच्च स्थान दिया गया था। एथेन्स की शिक्षा अत्यन्त व्ययसाध्य थी। वह व्यापक थी और उसके परिणामस्वरूप अच्छे नागरिकों का निर्माण होता था। उस पर राज्य का नियंत्रण नहीं था।

स्पार्टा की शिक्षा प्रणाली

स्पार्टा की शिक्षा प्रणाली एथेन्स की शिक्षा-व्यवस्था से बिल्कुल भिन्न थी। सात वर्ष की आयु के बाद स्पार्टा में बालकों पर राज्य का अधिकार माना जाता था और वही उनकी शिक्षा-दीक्षा की व्यवस्था करता था। संम्पूर्ण शिक्षा का आधार सैनिक प्रशिक्षण थ। कलात्मक विद्याओं के अध्ययन पर कोई जोर नहीं दिया जाता था। एकमात्र कला युद्ध-कला ही सिखायी जाती थी। सैनिक अनपढ़ हुआ करते थे। उनका दृष्टिकोण संकीर्ण और अनुदार होता था। उनके व्यक्तित्व का समुचित विकास नहीं हो पाता था, यद्यपि वे कुशल सैनिक होते थे।

दोनों का समन्वय

प्लेटो ने इन दोनों प्रचलित प्रणालियों के गुण-दोषों का सूक्ष्म अध्ययन किया और इनकी विशेषताओं को लेकर एक नई शिक्षा-प्रणाली उपस्थित की। जहां एक ओर वह एथेन्स की शिक्षा-प्रणाली की व्यापकता तथा अच्छे नागरिक पैदा करने की क्षमता की प्रशंसा करता था वहीं दूसरी ओर वह शिक्षा-व्यवस्था को व्यक्तिगत प्रयास पर छोड़ देने के विरूद्ध था। स्पार्टा की भांति प्लेटो शिक्षा पर राज्य का नियंत्रण चाहता था और वह चाहता था कि शिक्षा-व्यवस्था अच्छे नागरिकों के साथ-साथ

अच्छे सैनिकों का भी निर्माण करे, किन्तु फिर वह स्पार्टा के सैनिकों की भांति अपने सैनिकों का दृष्टिकोण संकीर्ण और अनुदार नहीं बनाना चाहता था। अस्तु, उसने एक ऐसी शिक्षा-प्रणाली उपस्थित की जो कि अधिक सर्वांग थी और जिसमें एथेन्स और स्पार्टा दोनों की शिक्षा-प्रणालियों की विशेषताएं सम्मिलित थीं।

18.3.3 शैक्षिक पर्यावरण Educational Environment

प्लेटो के अनुसार मानव-मस्तिष्क सदैव सक्रिय रहता है। मनुष्य अपने चारों ओर के परिवेश में जो कुछ देखता है, उसी की ओर दौड़ता है। बालक की इसी शक्ति का लाभ उठाकर अध्यापक को उसे शिक्षा देनी चाहिए। उसे बालक के परिवेश की वस्तुओं पर ध्यान देना चाहिए। बालक के आसपास सुन्दर वस्तुएं हों, उसमें स्वभावतया उनकी ओर आकर्षण हो और उसकी जिज्ञासा को प्रोत्ससाहन मिले। इस प्रकार परिवेश की वस्तुओं की ओर मस्तिष्क की प्रतिक्रिया से ही शिक्षा की प्रक्रिया आगे बढ़ती है। सुन्दर परिवेश मस्तिष्क को उत्तम खाद्य देता है, जिससे मस्तिष्क का विकास होता है, इसलिए बालक को बराबर सुन्दर परिवेश में रखा जाना चाहिए। बाल्यावस्था में ही नहीं बल्कि जीवन भर मनुष्य को सुन्दर परिवेश की अवश्यकता होती है, क्योंकि प्लेटो के अनुसार मनुष्य की शिक्षा आजीवन चलती रहती है। प्लेटो ने अपनी शिक्षा में मस्तिष्क के विकास को अत्यन्त उच्च स्थान दिया है।

अपनी उन्नति जानिए (Check your Progress)

प्र. 1 प्लेटो ने दो प्रकार के संसार की कल्पना की, एक तो प्रत्ययों का संसार और दूसरा-

(अ) इन्द्रियों में अनुभव होने वाला संसार

(ब) समाज में अनुभव होने वाला संसार

(स) मन में अनुभव होने वाला संसार

(द) विद्यालय में अनुभव होने वाला संसार

प्र. 2 प्लेटो ज्ञान को कितने रूपों में बांटता है ? उनके नाम लिखिए।

प्र. 3 ‘गणित के सत्य से भी ऊंचे स्तर पर तत्व ज्ञान है’-यह कथन है-

प्र. 4 'The Republic' और 'The Laws' किसके द्वारा रचित पुस्तक है ?

प्र. 5 प्लेटो के अनुसार आत्मा के निर्माण में तीन प्रमुख तत्व हैं:-

प्र. 6 प्लेटो ने सम्पूर्ण शिक्षा को कितने भागों में विभाजित किया है ?

प्र. 7 स्पार्टा में एक मात्र कला कौन सी सिखाई जाती थी ?

भाग-दो Part II

18.4 शिक्षा का अर्थ (Meaning of Education)

प्लेटो ने शिक्षा को नैतिक प्रशिक्षण की एक प्रक्रिया माना है। क्या नैतिकता की शिक्षा दी जा सकती है? दूसरे शब्दों में, क्या सद्गुण को सिखाया जा सकता है? इस प्रश्न ने प्राचीन यूनान के सभी दार्शनिकों का ध्यान आकृष्ट किया था। सुकरात ने सद्गुण को ज्ञान के रूप में देखा। उसके अनुसार ज्ञान ही सद्गुण है। प्लेटो ने सुकरात के विचारों को आगे बढ़ाते हुए ज्ञान और सद्गुण में भेद किया। प्लेटो के विचार के भेद में निम्नलिखित चार अंश सम्मिलित हैं:-

1. दर्शन संबंधी ज्ञान
2. विज्ञान
3. ललित कला
4. बुद्धि द्वारा निर्दोष समझी जाने वाली श्रेष्ठ तृप्ति

सद्गुण के संबंध में विचार करते हुए प्लेटो कहता है कि प्रमुख सद्गुण चार हैं:- बुद्धिमता, साहस, संयम और न्याय। यूनानियों की दृष्टि में अच्छा आदमी अच्छे राष्ट्र का अच्छा नागरिक होता है। शिक्षा का कार्य अच्छे राष्ट्र के अच्छे नागरिक तैयार करना है। राष्ट्र में कम से कम तीन वर्ग होने चाहिए। एक तो राष्ट्र के संरक्षक होने चाहिए। दूसरे, उन संरक्षकों के सहायक सैनिक होने चाहिए और संरक्षकों एवं सैनिकों के अतिरिक्त संम्पत्ति का उत्पादक-वर्ग भी होना चाहिए। प्रत्येक वर्ग को अपना निश्चित कार्य करना चाहिए। राष्ट्र में इस प्रकार की व्यवस्था हो कि प्रत्येक वर्ग अपना कार्य करे और दूसरे वर्ग को अपना कार्य करने दे। प्लेटो ने इस व्यवस्था को 'सामाजिक न्याय' नही कहा जा सकता है। क्योकि मूल भारतीय जिन्हे उसने शुद्र् कहा है उनके लिय उसने शिक्षा की व्यावसथा न करके अन्याय किया है क्योकि सामाजिक न्याय की स्थापना जिस प्रक्रिया द्वारा की जाती है वह शिक्षा ही है। जो गुण समाज के लिए आवश्यक हैं, वही सभी व्यक्तियो के लिए भी आवश्यक हैं। प्रत्येक व्यक्ति में इन चारों गुणों का संतुलित विकास होना चाहिए। सामाजिक न्याय की व्याख्या करते हुए प्लेटो कहता है कि राष्ट्र के अन्य दो वर्गो को संरक्षकों के अधीन रहना चाहिए। ठीक इसी प्रकार व्यक्ति में भी बुद्धि का शासन होना चाहिए। व्यक्ति के जीवन यही न्याय है।

नवीन काल में प्रसिद्ध जर्मन दार्शनिक शापनहार ने प्लेटो की इस सूची का विरोध किया है। वह कहता है कि बुद्धिमता और साहस जीवन के लिए आवश्यक तो हैं, किन्तु इन्हें सद्गुण का पद नहीं दिया जा सकता। बहुत से बुद्धिमान एवं साहसी व्यक्ति अपनी बुद्धि अथवा साहस का दुरूपयोग

करते हैं। संयम का पथ भी निश्चित नहीं है। जो पथ मेरे लिए संयम का है, वह अत्यधिक शीत-प्रधान टुण्ड्रावासी के लिए संयम का पथ नहीं हो सकता। कुछ भी हो, प्लेटो स्पष्ट रूप से कहता है कि बुद्धिमता, साहस, संयम और न्याय मौलिक सद्गुण हैं एवं इनमें प्रशिक्षित करने की प्रक्रिया ही शिक्षा है। अपनी अंतिम पुस्तक 'राजनियम' (लॉज) में वह कहता है-'शिक्षा से मेरा अभिप्राय उस प्रशिक्षण से है जो शिशुओं में उचित आदतों के निर्माण के द्वारा सदगुणों को उत्पन्न करता है। इस प्रशिक्षण से हमें यह योग्यता प्राप्त हो जाती है कि हम उस वस्तु से सदा घृणा करें, जिससे हमें घृणा करनी चाहिए और उस वस्तु से प्रेम करें, जिससे वास्तव में प्रेम करना चाहिए। मेरी दृष्टि में इसके प्रशिक्षण को ठीक ही शिक्षा कहा है।'

प्लेटो के अनुसार संयम तथा साहस का विकास अभ्यास से होता है। ये दोनों गुण आदतजन्य हैं। प्रारंभिक जीवन के उचित नियंत्रण से ही आदत तथा अभ्यास संभव है। आदत एवं अभ्यास के ही आधार पर बाद में बुद्धि-तत्व विकसित होता है। इसी बुद्धि-तत्व पर बुद्धिमता एवं न्याय के सद्गुण आधारित हैं। शिक्षा द्वारा इन्हीं सद्गुणों का विकास किया जाता है।

18.4.1 शिक्षा के कार्य तथा उद्देश्य (Function and Aims of Education)

प्लेटो ने शिक्षा को समूची सृष्टि की प्रक्रिया का एक आवश्यक कार्य माना है। शिक्षा की असीम शक्ति को प्लेटो स्वीकार करता है। प्लेटो के अनुसार शिक्षा के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं:-

1. शिक्षा का प्रथम उद्देश्य नागरिकता के गुणों का विकास करना है। अच्छे राष्ट्र के निर्माण के लिए अच्छे नागरिकों की आवश्यकता होती है, अतः अच्छे नागरिक के गुणों का विकास करना शिक्षा का एक मुख्य कार्य है। इस दिशा में कार्य करने के लिए युवकों में संयम, साहस एवं सैनिक कुशलता प्रदान करना चाहिए।

2. शिक्षा का द्वितीय उद्देश्य राज्य की एकता की रक्षा करना है। सोफिस्टो ने यूनान में व्यक्तिवाद को प्रमुखता दी थी। प्लेटो ने व्यक्ति एवं राज्य के संबंध का सुन्दर दार्शनिक विवेचन किया और स्पष्ट किया कि व्यक्ति राज्य के लिए है। इकाई का अस्तित्व पूर्ण के लिए होता है। राज्य की स्थिति पूर्णता की है। अतः व्यक्ति को राज्य की वेदी पर अपने स्वार्थो को निछावर करने को तैयार रहना चाहिए। अतः शिक्षा का यह प्रमुख कार्य है कि वह बालकों में सहयोग की भावना उत्पन्न करे, समुदाय के प्रति विश्वास जगाए एवं भ्रातृत्व के भाव का विकास करे। इससे यह विदित होता है कि प्लेटो एथेन्स से अधिक स्पार्टा की ओर झुका हुआ था। किन्तु प्लेटो के समाजवाद में शिवम् निहित था तथा बुद्धि-तत्व प्रमुख था, जबकि स्पार्टा के समाजवाद में इनका अभाव था।

3. शिक्षा के तीसरे उद्देश्य के रूप में सत्यम्, शिवम् एवं सुन्दरम् के प्रति आस्था उत्पन्न करना है। जन्म के समय शिशु इन्द्रियों का दास होता है। धीरे-धीरे उसमें सत्यम्, शिवम् एवं सुन्दरम् के प्रति प्रेम उत्पन्न करना चाहिए।

4. सुकरात ने कहा था कि सद्गुण के विकास के लिए ज्ञान आवश्यक है। प्लेटो ने बुद्धिमता को सद्गुण का पद दिया है। प्लेटो के अनुसार विवेक ही सामाजिक व्यवस्था की नींव है। यह विवेक प्रत्येक शिशु में सुप्तावस्था में विद्यमान रहता है। अतः शिक्षा का एक यह भी उद्देश्य है कि इस गुप्त विवेक को जागृत किया जाए। विवेक से ही जीवन नियंत्रित हो सकता है। जब तक विवेक जागृत न हो जाए तब तक शिशु को बाड़ों के ही नियंत्रण में रखा जाए।

5. प्लेटो सामाजिक वर्गो का पक्षपाती था। उसके अनुसार समाज में तीन वर्ग मुख्य हैं। एक वर्ग संरक्षकों का है, दूसरा सैनिकों का, तथा तीसरा व्यवसायियों का। यूनानी समाज में उस समय दास-प्रथा प्रचलित थी और यूनान में अनेक दास विद्यमान थे। प्लेटो ने इन दासों की स्थिति को यथावत् स्वीकार कर लिया था। इस प्रकार प्राचीन भारतीय समाज की भांति प्लेटो भी चार वर्णो में विश्वास करता था। भारतीय एवं प्लेटो की विचारधाराओं में इस अद्धबुत साम्य के विषय में कुछ लोगों का कहना है कि प्लेटो भारत आया था और उसके विचारों पर भारतीय वर्ण-व्यवस्था की छाप पड़ी थी। प्लेटो के अनुसार शिक्षा का कार्य प्रत्येक व्यक्ति को इस योग्य बनाना है कि वह अपने अनुकूल सामाजिक वर्ग का सक्षम सदस्य बन सके।

6. शिक्षा का छठवां उद्देश्य मानव-शिशु को मानव बनाना है। उसमें मानवता के गुणों का विकास करना है।

7. शिक्षा का सातवां उद्देश्य अच्छे व्यक्तित्व का निर्माण करना है। अच्छा व्यक्तित्व संतुलित होता है तथा वह 'स्व' के नियंत्रण में रहता है। स्व-नियंत्रित व्यक्ति विभिन्न परिस्थितियों के अनुकूल आचरण करने की योग्यता रखता है। समंजन की यह योग्यता शिक्षा के द्वारा ही संभव है।

8. प्लेटो के अनुसार जीवन में अनेकानेक विरोधी तत्व विद्यमान रहते हैं। इन विरोधी तत्वों को पहचानना एवं इनमें संतुलन स्थापित करना शिक्षा का एक प्रमुख कार्य है।

18.4.2 पाठ्यक्रम (CURRICULUM)

प्लेटो ने पाठ्यक्रम की रूपरेखा निर्धारित करने में बालक की क्रियाओं का ध्यान रखा है। पाश्चात्य शिक्षा के इतिहास में प्लेटो ही प्रथम व्यक्ति था, जिसने पाठ्यक्रम पर कुछ व्यवस्थित विचार प्रकट किये।

प्लेटो के अनुसार जीवन के प्रथम 10 वर्षो में छात्रों को अंकगणित, रेखागणित, संगीत तथा नक्षत्र विद्या की कुछ बातें सिखानी चाहिए। अंकगणित तथा रेखागणित आदि का अध्ययन गिनती करना सीखने के लिए ही नहीं वरन् इन विषयों में निहित श्वाश्वत संबंधों को जानने के लिए करना चाहिए।

माध्यमिक स्तर के छात्रों के लिए कविता, गणित, खेलकूद, कसरत, सैनिक प्रशिक्षण, शिष्टाचार, संगीत तथा धर्मशास्त्र आदि की शिक्षा का विधान होना चाहिए। प्लेटो के विचार में तत्कालीन

यूनानी समाज में खेलकूद की शिक्षा अनुपयुक्त हो गयी थी। प्लेटो के अनुसार खेलकूद की शिक्षा का उद्देश्य प्रतियोगिताओं में भाग लेना न होकर मनोरंजन तथा शारीरिक गठन की प्राप्ति होना चाहिए। इससे आत्मा का उन्नयन भी संभव है। प्लेटो के शिक्षाक्रम में कसरत, नृत्य तथा खेलकूद का स्थान बड़ा ऊंचा था। ये तीनों एथेनी शिक्षा में पहले से ही विद्यमान थे। प्लेटो ने भी इन्हें उपयुक्त समझा। कसरत तथा खेलकूद से शारीरिक सौन्दर्य बढ़ता है। किन्तु कसरत तक खेलकूद आत्मा को भी प्रभावित करते हैं। संगीत और कसरत का यदि संयोग कर दिया जाए तो व्यक्तित्व का चतुर्मुखी विकास होता है। कसरत विहीन संगीतज्ञ कायर होगा, जबकि संगीत विहीन कसरती पहलवान आक्रामक पशु हो जाएगा। प्लेटो ने नृत्य की शिक्षा पर भी बल दिया है। नृत्य को उसने कसरत का ही एक अंग माना है। नृत्य युद्धकाल तथा शान्तिकाल दोनों के लिए उपयोगी है।

प्लेटो ने काव्य तथा साहित्य की शिक्षा पर भी बल दिया है। काव्य को उसने बौद्धिक जीवन का मूल स्रोत माना है। गणित का भी वह समर्थक था। आदर्श प्रत्यय ईश्वर की प्राप्ति के लिए तर्क आवश्यक है। इसका ज्ञान हमें गणित से प्राप्त होता है। गणित व्यावहारिक, सैनिक, राजनीतिक तथा कलात्मक जीवन के लिए आवश्यक है।

प्लेटो के पाठ्यक्रम में दर्शन का स्थान सर्व प्रमुख था। इसका अध्ययन उच्च श्रेणी के विद्यार्थी करें- ऐसा उसका प्रस्ताव था। उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रम में नीतिशास्त्र, दर्शन, मनोविज्ञान, अध्यात्मशास्त्र, प्रशासन, कानून की शिक्षा को स्थान मिलना ही चाहिए। प्लेटो ने 'डाइलेक्टिक' शब्द का प्रयोग वस्तुतः इन सभी विषयों के सम्मिलित ज्ञान के लिए किया है। डाइलेक्टिक में ये सभी विषय सम्मिलित है।। 'डाइलेक्टिक' का अध्ययन सत्य की खोज के लिए होता है।

18.4.3 शिक्षा के विभिन्न स्तर

(Different Stages of Education)

प्लेटो ने मानव के शारीरिक एवं मानसिक विकास के आधार पर भिन्न प्रकार की शिक्षा का समर्थन किया है। प्लेटो के अनुसार विभिन्न स्तरों के लिए निम्नलिखित ढंग से शिक्षा होनी चाहिए:-

1. शैशव काल - जन्म से 3 वर्ष की अवधि शैशव-काल है। इस काल में उसे पुष्टिकारक भोजन मिलना चाहिए। उसका लालन-पालन ठीक से होना चाहिए। इस काल में बालकों को सुख-दुःख की परिस्थितियों से यथासंभव बचाना चाहिए।

2. नर्सरी - यह समय 3 से 6 वर्ष की अवस्था का है। इस काल में शिक्षा प्रारम्भ कर देनी चाहिए। शिक्षा की दृष्टि से यह काल बड़ा महत्वपूर्ण है। इस काल में खेलकूद, परियों की कहानियों और सामान्य मनोरंजन की शिक्षा देनी चाहिए।

3. प्रारम्भिक विद्यालय का स्तर - बालकों की स्कूली शिक्षा इसी स्तर से प्रारम्भ होनी चाहिए। यह स्तर 6 वर्ष की आयु से 13 वर्ष की आयु तक का है। बालक तथा बालिकाओं की शिक्षा अलग-अलग होगी। ये छात्र द्वारा संचालित शिविरों मे रखे जाने चाहिए। इस अवस्था में शिक्षा के दो कार्य हैं-एक तो बालकों व बालिकाओं की अनियंत्रित क्रियाओं को नियंत्रित करना, दूसरे उनमें सामंजस्य स्थापित करना। इसके लिए संगीत, नृत्य तथा काव्य की शिक्षा दी जानी चाहिए। धर्म तथा गणित की भी शिक्षा इस अवस्था में प्रारम्भ कर देनी चाहिए।

4. माध्यमिक शिक्षा - यह काल 13 से 16 वर्ष की अवधि का का है। 'रिपब्लिक' के अनुसार प्रारम्भिक स्तर पर ही अक्षर-ज्ञान प्रारम्भ कर देना चाहिए, किन्तु 'राज नियम' (लॉज) के अनुसार अक्षरों की शिक्षा को 13 वर्ष की अवस्था पर प्रारम्भ करना चाहिए। 13 से 16 वर्ष की अवस्था में गायन एवं वादन पर बल देना चाहिए। धार्मिक श्लोकों का गायन, कविता-पाठ तथा गणित के सिद्धान्तों की शिक्षा इस स्तर पर विशेष महत्व रखती है।

5. जिमनैस्टिक काल - यह काल 16 से 20 वर्ष की अवस्था का काल है। यह काल दो भागों में विभक्त रहना चाहिए-(क) 16-18 वर्ष की अवस्था का काल और (ख) 18-20 वर्ष की आयु का समय। पहली अवधि में शरीर को सबल बनाने के लिए भांति-भांति के शारीरिक व्यायाम करने चाहिए। यह सैनिक प्रशिक्षण की पृष्ठभूमि है और आगे की अवधि अर्थात् 18-20 वर्ष की अवधि पूरी तरह से सैनिक प्रशिक्षण में लगानी चाहिए। दूसरी अवधि में छात्रों को घुड़सवारी,, शस्त्र संचालन, सैन्य-संचालन, व्यूह रचना आदि की शिक्षा मिलनी चाहिए।

6. उच्च शिक्षा - उच्च शिक्षा की अवधि 20 से 30 वर्ष की अवस्था तक होगी। इस शिक्षा को ग्रहण करने की पात्रता सिद्ध करना प्रत्येक छात्र के लिए आवश्यक है। 20 वर्ष की अवस्था में छात्रों के ज्ञान की जांच होनी चाहिए। जॉच में जो छात्र उत्तीर्ण हों, वे ही उच्च शिक्षा के अधिकारी समझे जायें। इस काल में युवकों को अंकगणित, रेखागणित, संगीत, नक्षत्र विद्या आदि वैज्ञानिक विषयों का ज्ञान प्राप्त कराना चाहिए। इस काल में युवकों में विज्ञान के व्यवस्थित करने की क्षमता प्रदान करना है।

7. उच्चतम शिक्षा - 30 वर्ष की अवस्था में पुनः चुनाव होगा। तीस वर्ष की अवस्था में उच्च शिक्षा प्राप्त युवकों की परीक्षा की जायेगी और उत्तीर्ण युवक 5 वर्ष तक अग्रिम अध्ययन करेंगे। जो युवक अनुत्तीर्ण हो जायेंगे, वे शासन में कनिष्ठ अधिकारी होंगे। उत्तीर्ण युवक 5 वर्ष तक 'डाइलेक्टिक' का अध्ययन करेंगे। 'डाइलेक्टिक' के अध्ययन से युवक सच्चे ज्ञान को प्राप्त करेंगे और वे सत्य का दर्शन करने में समर्थ होंगे। सत्य के ज्ञान से युवकों में सद्गुण उत्पन्न होगा। 35 वर्ष की अवस्था में समाज में लौटेंगे और समाज के हितों के संरक्षक बनेंगे। 15 वर्ष तक ये दार्शनिक समाज के संरक्षक के रूप में प्रशिक्षित होंगे और उन्हें व्यावहारिक अनुभव प्राप्त होगा। 50 वर्ष की अवस्था में वे पदमुक्त हो सकते हैं और पद से निवृत्त होने के पश्चात् वे अपना जीवन चिन्तन, मनन एवं ध्यान में लगायेंगे तथा शिवम् का जीवन व्यतीत करेंगे।

अपनी उन्नति जानिए (Cheque your Progress)

प्र. 1. प्लेटो के अनुसार सद्गुण कितने हैं ? उनके नाम लिखो।

प्र. 2. ‘‘प्रत्येक वर्ग अपना कार्य करे और दूसरे वर्ग को अपना कार्य करने दे।’’ प्लेटो ने इस व्यवस्था को क्या कहा है ?

प्र. 3. ‘‘शिक्षा का अंतिम उद्देश्य मानव-शिशु को मानव बनाना है, उसमें मानवता के गुणों का विकास करना है।’’ यह कथन है-

प्र. 4. प्लेटो के अनुसार फिलासाफर (दार्शनिक) अर्थात् ज्ञान प्रेमी कितने वर्ष की आयु पर पदमुक्त हो सकते हैं ?

(अ) 45 वर्ष (ब) 50 वर्ष

(स) 55 वर्षं (द) 60 वर्ष

भाग-तीन (Part-III)

18.5 शिक्षण विधि (Method of Teaching)

प्लेटो के अनुसार, शिक्षा का उद्देश्य चूंकि ज्ञान की खोज है, अतः शिक्षण विधि भी तद्रूप होनी चाहिए। प्लेटो ने शिक्षा की योजना में सर्वप्रमुख विषय ‘तर्क’ है अर्थात् विचारशील व्यक्तियों का वाद-विवाद। इस प्रकार शिक्षण विधि का प्रथम रूप है-तर्क विधि।

द्वितीय विधि के रूप में प्लेटो ने प्रश्नोत्तर विधि को स्थान दिया है। इस विधि का सूत्रपात सुकरात ने किया था। इसके तीन चरण हैं- उदाहरण, परिभाषा तथा निष्कर्ष। उदाहरण वार्तालाप से प्रारम्भ होता हे, फिर सामान्य गुणों का निर्धारण होता है ओर अन्त में निष्कर्ष निकाल लिया जाता है।

तृतीय विधि है, वार्तालाप विधि। इस विधि का आगे चलकर इतना प्रचार हुआ कि यह उच्च शिक्षा का माध्यम बन गई और इसे व्याख्यान विधि (Lecture Method) के नाम से पुकारा जाने लगा।

18.5.1 स्त्री शिक्षा (WOMEN EDUCATION)

प्लेटो ने स्त्री के महत्व को स्वीकार करते हुए बताया है कि पुरूष और स्त्री में कोई मौलिक भेद नहीं है। जो कार्य पुरूष कर सकते हैं, वह कार्य स्त्रियां भी कर सकती हैं। यह बात दूसरी है कि पुरूष अधिक बलवान होते हैं और स्त्रियों से कुछ शक्तिशाली होते हैं। पर ये भेद गुण का न होकर मात्रा का

है। अतः स्त्रियों और पुरूषों को एक-सी शिक्षा मिलनी चाहिए। खेलकूद, व्यायाम, घुड़सवारी, सैन्य संचालन आदि की शिक्षा केवल पुरूषों को ही नहीं वरन् स्त्रियों को भी मिलनी चाहिए।

विश्वास किया जाता है कि प्लेटो ही सर्वप्रथम ऐसे शिक्षा शास्त्री थे जिन्होंने शिक्षा को एक विधिवत् आकार प्रदान किया। उसने 'एकेडमी' स्थापित कर अपने विचारों एवं सिद्धान्तों को कार्य रूप में प्रस्तुत कर उसकी व्यावहारिकता सिद्ध करने का सफल प्रयास किया। उसका आदर्शवाद कोरा सिद्धान्त नहीं है। उदार शिक्षा की रूपरेखा निश्चित करने में आज भी प्लेटो के सिद्धान्तों का आश्रय लेते हैं। उसने स्त्री-शिक्षा के विषय में जो विचार व्यक्त किये, वे विचार आज दो हजार तीन सौ वर्ष बाद भी नवीन लगते हैं। उसके सिद्धान्तों में जीवन के शाश्वत मूल्यों की झलक मिलती है। प्लेटो का पाश्चात्य सभ्यता पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा। ज्ञान के क्षेत्र में तो कुछ समय तक प्लेटो के सिद्धान्तों की व्याख्या करना ही ज्ञान-प्राप्ति का लक्ष्य बन गया। प्लेटो कई सौ वर्षो तक पश्चिमी धर्म, राजनीति, दर्शन, शिक्षा आदि पर छाया रहा और उसके मतों का समर्थन अथवा सिद्धान्तों का आलोचन ही विद्वता का लक्षण बना रहा। आज भी प्लेटो के विचार प्रेरणा के स्रोत हैं।

18.5.2 दासों की शिक्षा (Education of Slaves)

जैसा पहले कहा जा चुका है, प्राचीन यूनान में दासों की संख्या बहुत अधिक थी और उनके अस्तित्व को प्लेटो ने स्वीकार किया था। प्लेटो ने दासों को नागरिक नहीं माना। उसके अनुसार दास राज्य के नागरिक नहीं हो सकते और न वे राज्य के किसी सार्वजनिक कार्य में भाग ले सकते हैं। अतः प्लेटो ने दासों को शिक्षा से भी विमुख रखा। दासों के लिए उसने कहा कि उन्हें अपने परिवार का पेशा अपनाना चाहिए और घरेलू कामों मे ही लगे रहना चाहिए।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्लेटो ने शिक्षा पर बड़े विस्तार से विचार किया है। उसके व्यक्तित्व में यूनान की विद्वता का चरमोत्कर्ष मिलता है। स्थूल और सूक्ष्म का जिस सुन्दर ढंग से उसने समन्वय किया है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। उसने शिक्षा का जो रूप प्रस्तुत किया, वह आदर्शवादी शिक्षा का प्रमुखतम रूप है।

प्लेटो की शिक्षा-योजना में कुछ दोष भी समझ पड़ते हैं। उसके आलोचकों ने जिन बातों के लिए उसकी आलोचना की है, उनमें प्रमुख निम्नलिखित हैं:-

1. प्लेटो का मनोविज्ञान का ज्ञान दोषपूर्ण था। उसने व्यक्तित्व को तीन वर्गो में रखा, जो आधुनिक खोजों के विपरीत है।

2. उसके सिद्धान्त प्रजातन्त्रात्मक सिद्धान्तों से मेल नहीं खाते।

3. उसने दास प्रथा के विरूद्ध एक भी शब्द नहीं कहा, उलटे उसने इसे मान्यता प्रदान की।

4. उसने व्यावसायिक एवं प्राविधिक शिक्षा की उपेक्षा की।

5. उसने अपने सिद्धान्तों के व्यावहारिक पक्ष की ओर कम ध्यान दिया।

इन दोषों के होते हुए भी प्लेटो के सिद्धान्त उच्च कोटि के थे। वह प्रथम व्यक्ति था जिसने शिक्षा पर विधिवत् विचार किया और शिक्षा की एक योजना प्रस्तुत की। उसका आदर्शवाद कोरा सिद्धान्त नहीं है। उदार शिक्षा की रूपरेखा निश्चित मायने में आज भी लोग प्लेटो के सिद्धान्तों का आश्रय लेते हैं। उसने स्त्री-शिक्षा के विषय में जो विचार व्यक्त किये, वे विचार आज दो हजार तीन सौ वर्ष बाद भी नवीन लगते हैं। उसके सिद्धान्तों में जीवन के शाश्वत मूल्यों की झलक मिलती है।

अपनी उन्नति जानिए (Cheque your Progress)

प्र. 1. प्लेटो के अनुसार शिक्षण-विधि का प्रथम रूप क्या है ?

प्र. 2. प्लेटो के अनुसार शिक्षण-विधि का द्वितीय रूप क्या है ?

प्र. 3. तृतीय विधि, वार्तालाप विधि के दूसरे किस नाम से जाना जाता है ?

प्र. 4. 'पुरूष अधिक बलवान होते हैं और स्त्रियों से कुछ शक्तिशाली, पर, ये भेद गुण का न होकर मात्रा का है'। यह कथन है –

(अ) सुकरात (ब) रूसो (स) प्लेटो द) आगस्टीन

प्र. 5. प्लेटो ने मूल भारतीय अर्थात् दासों को शिक्षा से वंचित रखा। यह कथन है -

(अ) सत्य (ब) असत्य

18.6 सारांश (SUMMARY)

प्लेटो एक महान राजनीतिज्ञ, दार्शनिक एवं समाजशास्त्री ही नहीं अपितु एक महान शिक्षाशास्त्री और आदर्श शिक्षक भी था। उसका शिक्षा जगत में विशेष योगदान है-

1. शिक्षा के नैतिक एवं आध्यात्मिक पक्ष को स्वीकारते हुए छात्रों में चारित्रिक एवं नैतिक गुणों के विकास को महत्व दिया, जो हमेशा उपयोगी सिद्ध होगा।

2. शिक्षण कला के क्षेत्र में अनेक सुझाव दिये यथा-प्रारम्भिक शिक्षा आकर्षक हो, रोचक विधियों का उपयोग किया जाए, शिक्षा में खेल का महत्व, आसान से कठिन की ओर, बच्चे को शिक्षण प्रक्रिया में महत्व देकर उसका अग्रिम शिक्षा के लिए चयन अथवा बहिष्कार हेतु जांच प्रणाली।

3. मानव जीवन के चरम उद्देश्य आत्मानुभूति का प्रमुख साधन शिक्षा को स्वीकार किया।

4. शिक्षा को लोकव्यापी बनाने के उद्देश्य से निःशुल्क एवं आवश्यक शिक्षा का विचार प्रस्तुत किया।

5. प्लेटो ने शिक्षा द्वारा व्यक्तित्व के विकास के साथ-साथ सामाजिक विकास के पक्ष को भी शामिल किया तथा आदर्श नागरिक बनाने पर जोर दिया।

6. नागरिकों को योग्य तथा उपयोगी बनाने हेतु उनकी शिक्षा का दायित्व राज्य को सौंपा।

7.प्लेटो ने पुरूष और नारी के लिए समान शिक्षा करने को कहा।

8. प्लेटो ने शैशवकाल से लेकर सम्पूर्ण जीवनकाल हेतु एक सुविचारित, सुव्यवस्थित आदर्श शिक्षा योजना तैयार की।

9. बालक के शरीर, मन और आत्मा के विकास को महत्व देकर बालक के व्यक्तित्व के पूर्ण विकास को महत्वपूर्ण माना।

10. शिक्षक को न केवल शिक्षा प्रक्रिया में ही बल्कि समाज में भी श्रेष्ठ स्थान प्रदान किया, साथ ही उसके आदर्श गुणों और कर्तव्यनिष्ठा की अपेक्षा की।

18.7 कठिन शब्द (Difficult Words)

आदर्शवादी दृष्किोण के अनुसार जगत्:- जगत् दो हैं, प्रथम तो विचारों का जगत् है तथा दूसरा उन वस्तुओं का जगत् है जो संसार में हैं तथा जिनका सम्पर्क विभिन्न वस्तुओं से होता है। विचारों के जगत् का अस्तित्व स्थायी होता है और इन्द्रिय-ज्ञात वस्तुओं का जगत् अस्थाई होता है।

दार्शनिक:- जिनके पास ज्ञान Knowledge का गुण है।

सद्गुण:-सद्गुण चार हैं:- बुद्धिमता, साहस, संयम और न्याय।

डाइलेक्टिक:- प्लेटो ने डाइलैक्टिक शब्द का प्रयोग वस्तुतः इन सभी विषयों के सम्मिलित (नीतिशास्त्र, दर्शन शास्त्र, मनोविज्ञान, अध्यात्मशास्त्र, प्रशासन, कानून) ज्ञान के लिए किया है। डाइलैक्टिक का अध्ययन सत्य की खोज के लिए किया है।

जिमनैस्टिक काल:- यह काल 16 से 20 वर्ष की अवस्था का काल है। यह काल दो भागों में विभक्त रहना चाहिए- (ए) 16 से 18 वर्ष की अवस्था का समय (बी) 18 से 20 की आयु का समय

18.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer of Practice Questions)

भाग-एक (PART-I)

उत्तर-1 इन्द्रियों में अनुभव होने वाला संसार

उत्तर-2 प्लेटो ज्ञान को तीन रूपों में बांटता है-इन्द्रियजन्य ज्ञान, सम्मतिजन्य ज्ञान व चिन्तनजन्य ज्ञान

उत्तर-3 प्लेटो का

उत्तर-4 प्लेटो की

उत्तर-5 प्लेटो के अनुसार आत्मा के निर्माण में तीन प्रमुख तत्व हैं- तृष्णा (Appetete), इच्छा शक्ति (Will power), विवेक (Wisdom).

उत्तर-6 प्लेटो ने सम्पूर्ण शिक्षा को तीन भागों में बांटा है- प्राथमिक, माध्यमिक, सैनिक तथा उच्च शिक्षा

भाग-दो (PART-Ii)

उत्तर-1 प्लेटो के अनुसार सद्गुण चार हैं- बुद्धिमता, साहस, संयम और न्याय

उत्तर-2 सामाजिक न्याय

उत्तर-3 प्लेटो का

उत्तर-4 डाइलैक्टिक शब्द का प्रयोग सभी विषयों के सम्मिलित ज्ञान व सत्य की खोज के लिए किया जाता है।

उत्तर-5 पदमुक्त (Retirement) की आयु 50 वर्ष बतायी है

भाग-तीन (PART-III)

उत्तर-1 शिक्षण विधि का प्रथम रूप तर्क विधि है

उत्तर-2 शिक्षण विधि का द्वितीय रूप प्रश्नोत्तर विधि है

उत्तर-3 शिक्षण विधि का तृतीय रूप वार्तालाप विधि/व्याख्यान विधि है

उत्तर-4 प्लेटो का

उत्तर-5 सत्य

18.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Reference BOOKS)

1. पाण्डे, (डॉ) रा. श. *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*. आगरा: अग्रवाल प्रकाशन.

2. सक्सेना, (डॉ) सरोज. *शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार*. आगरा: साहित्य प्रकाशन.

3. मित्तल, एम.एल. (2008). *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*. मेरठ: इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस.

4. शर्मा, रा. ना. व शर्मा, रा. कु. (2006). *शैक्षिक समाजशास्त्र*. नई दिल्ली: एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स.

5. सलैक्स, (डॉ) शी. मै. (2008). *शिक्षक के सामाजिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्षय*. नई दिल्ली: रजत प्रकाशन.

6. गुप्त, रा. बा. (1996). *भारतीय शिक्षा शास्त्र*. आगरा: रतन प्रकाशन मंदिर.

18.10 सहायक/उपयोगी सहायक ग्रन्थ (USEFUL BOOKS)

1. पाण्डे, (डॉ) रा. श. *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*. आगरा: अग्रवाल प्रकाशन.

2. सक्सेना, (डॉ) सरोज. *शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार*. आगरा: साहित्य प्रकाशन.

3. मित्तल, एम.एल. (2008). *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*. मेरठ: इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस.

4. शर्मा, रा. ना. व शर्मा, रा. कु. (2006). *शैक्षिक समाजशास्त्र*. नई दिल्ली: एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स.

5. सलैक्स, (डॉ) शी. मै. (2008). *शिक्षक के सामाजिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्षय*. नई दिल्ली: रजत प्रकाशन.

6. गुप्त, रा. बा. (1996). *भारतीय शिक्षा शास्त्र*. आगरा: रतन प्रकाशन मंदिर.

18.11 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

प्र. 1. प्लेटो के दर्शन से आप क्या समझते हैं ? प्लेटो के शिक्षा दर्शन की विवेचना कीजिए।

प्र. 2. प्लेटो के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य क्या है? व्याख्या कीजिए।

प्र. 3. प्लेटो के अनुसार शिक्षा के विभिन्न स्तर कौन से हैं? व्याख्या कीजिए।

प्र. 4. प्लेटो के शिक्षा दर्शन पर टिप्पणी लिखें।

प्र. 5. स्त्री शिक्षा के संबंध में प्लेटो के विचारों का वर्णन कीजिए।

प्र. 6. 'प्लेटो द्वारा दास प्रथा का समर्थन करना एक गलत सोच का नतीजा है।'-इस कथन की व्याख्या कीजिए।

इकाई-19: जॉन डीवी (John Dewey)

19.1 प्रस्तावना
19.2 उद्देश्य
19.3 जॉन डीवी के दार्शनिक विचार
  19.3.1 तत्वमीमांसा
  19.3.2 ज्ञानमीमांसा
  19.3.3 मूल्यमीमांसा
19.4 जॉन डीवी के शैक्षिक विचार
  19.4.1 शिक्षा का संप्रत्यय
  19.4.2 शिक्षा के उद्देश्य
19.5 शिक्षा का पाठ्यक्रम
  19.5.1 शिक्षण विधियॉ
  19.5.2 अनुशासन, शिक्षक ,शिक्षार्थी ,विद्यालय
  19.5.3 डीवी के शैक्षिक विचारों का मूल्यांकन
19.6 सांराश
19.7 शब्दावली
19.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नो के उत्तर
19.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
19.10 निबंधात्मक प्रश्न

19.1 प्रस्तावना

सबसे पहले की इकाइयों में आपने भारतीय तथा पाश्चात्य दर्शन एवं दार्शनिकों का अध्ययन किया, इसी क्रम में इस इकाई में आप, पाश्चात्य दर्शन के प्रयोजनवादी दार्शनिक जॉन डीवी के दार्शनिक विचारों, शैक्षिक विचारों का अध्ययन करेंगें। जॉन डीवी ने शिक्षा को निरन्तर चलने वाले समायोजन की प्रक्रिया माना है। वे उसी शिक्षा को उपयोगी मानते है जो कि जीवन की समस्याओं के समाधान में सहायक हो और साथ ही मनुष्य को समाज का उपयोगी सदस्य बनायें।

जॉन डीवी का आधुनिक शिक्षा में बहुत बड़ा योगदान है। इस इकाई में आप डीवी के शिक्षा में योगदान का अध्ययन भी करेंगे तथा उसकी उपयोगिता के विषय में जानेंगे।

19.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप-

1. जॉन डीवी एक प्रयोजनवादी दार्शनिक के जीवन से परिचित होगें।
2. जॉन डीवी के शैक्षिक विचारों का वर्णन कर सकेंगें।
3. जॉन डीवी के अनुसार, शिक्षा के पाठ्यक्रम का अध्ययन कर पायेंगे।
4. जॉन डीवी के अनुसार विभिन्न शिक्षण विधियों से परिचित हो पायेंगे।
5. शिक्षण की विभिन्न विधियों का वर्णन कर पायेंगे।
6. डीवी के अनुसार विद्यायल, अनुशासन, शिक्षक एवं शिक्षार्थी, कैसा हो? इसको स्पष्ट कर पायेगें।
7. डीवी के शिक्षा के क्षेत्र में योगदान को अपने शब्दों में व्यक्त कर पायेंगे।

19.3 जॉन डीवी के दार्शनिक विचार (Philosophical Thoughts of John Dewey)

अमेरिका के ख्याति प्राप्त प्रयोजनवादी दार्शनिक और महान शिक्षाशास्त्री जॉन डीवी का जन्म न्यू इंग्लैण्ड में स्थित वरमॉण्ट नगर के बरलिंगटन नामक शहर में सन् 1859 में हुआ। अपनी प्राथमिक शिक्षा पूर्ण करने के पश्चात, अपने परिवार की प्रथा के विरूद्ध जाकर उन्होंने उच्च शिक्षा की ओर कदम बढ़ाया। उन्होंने बी0ए0 की डिग्री वरमॉण्ट विश्वविद्यालय से प्राप्त की ।

डीवी, दर्शन के अच्छे विद्यार्थी थे। उन्होंने विभिन्न दार्शनिकों एवं दर्शनों का गहन अध्ययन किया। उन्होंने मुख्यत: प्लेटो, हीगल, काण्ट तथा डार्विन के दार्शनिक विचारों का अध्ययन किया। उन्होंने काण्ट के दार्शनिक विचारों पर अध्ययन कर पी0एच0डी0 की उपाधि प्राप्त की।

डीवी के जीवन एवं लेखों का अध्ययन करने पर पता चलता है कि उनके दार्शनिक विचारों में परिवर्तन आता गया।

डीवी ने दर्शनशास्त्र में अनेक पुस्तके लिखीं। जॉन डीवी द्वारा किये गए प्रमुख कार्य निम्न है-

1. दि स्कूल एंड सोसाइटी

The School and Society, 1899

2. दि स्कूल एंड दि चाईल्ड

The School and the Child

3. स्कूल ऑफ टुमोरो

School of Tomorrow

4. एजुकेशन ऑफ टुडे

Education of Today

5. दि चाइल्ड एंड दि करिक्युलम

The Child and Curriculum

6. माई पेडागॉजिक क्रीड

My Pedagogic Creed

7. हाऊ वी थिंक

How we think, 1910

8. इन्टरेस्ट् एंड एफर्ट्स इन एजुकेशन

Interest and Efforts in Education, 1913

9. डेमोक्रेसी एंड ऐजुकेशन

Democracy and Education, 1930

10 रिकन्सट्रक्सन इन फिलॉसफी

Reconstruction in Philosophy, 1920

11 सोर्सेज ऑफ ए साइंस ऑफ एजुकेशन

Sources of a science of Education

12 एक्सपीरियंस एंड ऐजुकेशन

Experience and Education

डीवी, प्रयोजनवादी दार्शनिक था, प्रयोजनवाद को फलवाद एवं अनुभववाद के नाम से भी जाना जाता है, डीवी की दार्शनिक विचारधारा व्यवहारिक है।

19.3.1 जॉन डीवी के दार्शनिक विचारों की तत्वमीमांसा

(Metaphysics of Philosophical Thoughts of John Dewey)

जेम्स की तरह, डीवी ने भी अपना समय आत्मा एंव परमात्मा के विश्लेषण में उपयोग न करके, मूर्त जगत एवं उसकी गतिविधियों के विश्लेषण में लगाया। डीवी कतिपय यह नहीं मानते कि इस जगत का सृजन दैवीय हैं, उनके अनुसार ये विभिन्न गतिविधियों के फलस्वरूप निर्मित है तथा सदैव परिवर्तनशील है। डीवी किसी प्रकार के शास्वत सत्य एवं मूल्यों पर विश्वास नहीं करता। उसके अनुसार जगत निरंतर परिवर्तनशील है तथा ऐसे परिवर्तनशील जगत में अपरिवर्तित सत्य एंव मूल्य निर्धारित नहीं किए जा सकते हैं। बदलते समाज के साथ मूल्य भी निरंतर बदलते रहते है। जॉन डीवी के अनुसार दर्शन का कार्य इस परिवर्तनशील संसार में सत्य एवं मूल्यों की खोज करना होना चाहिए।

19.3.2 डीवी के दार्शनिक विचारों की ज्ञानमीमांसा (Epistemology and Logic of Philosophical thoughts of Dewey)

डीवी के अनुसार ज्ञान तो कर्म का परिणाम है। अनुभव ज्ञान का स्त्रोत है, सम्पूर्ण ज्ञान अनुभव पर आधारित है, साधारण रूप से लोगों का विचार है कि कर्म के बिना भी ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है और ज्ञान एक स्वतंत्र अस्तित्व रखता है, किन्तु डीवी इस बात से सहमत नहीं है। उनका कथन है कि बिना कर्म के ज्ञान उत्पन्न नहीं हो सकता। किसी न किसी प्रकार इसका किसी कर्म से सम्बन्ध अवश्य होता है। डीवी ने क्रियाओं को ज्ञान का आधार माना है। सभी ज्ञान व्यक्तियों की उन क्रियाओं के फलस्वरूप प्राप्त होता है, जो वे अपने अस्तित्व के लिये संघर्ष करने में करते हैं। जब मनुष्य किसी प्रकार की समस्या का सामना करता है तो वह उस समस्या के समाधान की ओर चिन्तन आरम्भ कर देता है। इस प्रकार डीवी चिन्तन को क्रिया का ही एक स्वरूप समझते हैं। डीवी द्वारा प्रतिपादित चिंतन के निम्न पाँच पद है-

किसी शंका, हिचकिचाहट, कठिनाई अथवा समस्या का अनुभव करना।

(Experience of Problem or difficulty)

1. सम्पूर्ण परिस्थिति पर दृष्टिपात करके उसके विभिन्न रूपों का विश्लेषण करना और तदुपरान्त समस्या के वास्तविक रूप को समझना।

(Clarification of the problem)

2.सुझावों का मस्तिष्क में उठना और यथोचित हल पाने के लिए उन सुझावों का अनुसरण करना।

(Formulation of Hypotheses)

3.प्रत्येक हल का परिणाम तथा सबसे अधिक सम्भव हल का परीक्षण करना।

(Testing the hypotheses by experiments)

4.उस हल को स्वीकृत अथवा अस्वीकृत करने के उद्देश्य से आगे निरीक्षण व परीक्षण करना।

(Observation of outcomes and drawing of inferences)

19.3.3 डीवी के दार्शनिक विचारों की मूल्यमीमांसा
Axiology and Ethics of Philosophical thoughts of Dewey

डीवी आध्यात्मिक जगत में विश्वास नहीं रखते, वह मनुष्य को एक सामाजिक प्राणी मानते है और उसको इसी जगत के लिए तैयार करना चाहते है। डीवी ने वास्तविक उपयोगिता पर बल दिया है। डीवी मनुष्य को मूलभूत आवश्यकताओं के साथ-साथ सामाजिक समस्याओं के समाधान हेतु भी तैयार करना चाहते हैं। डीवी के अनुसार वही मनुष्य इस संसार में खुशी से जीवन व्यतीत कर सकता है जो कि समस्याओं का समाधान सफलतापूर्वक खोज सके, डीवी मनुष्य और मनुष्य के मध्य अन्तर नहीं करते। वह प्रत्येक मनुष्य को उचित स्वतंत्रता देने के पक्षधर है ताकि वे अपनी रूचियों, अभिवृद्धि एवं क्षमताओं के अनुसार विकास कर सके। उन्होंने किसी भी मनुष्य पर किसी भी प्रकार के आदर्शो को नहीं थोपा, वह चाहता था कि हर कोई सत्य की खोज स्वयं करे। परन्तु वे किसी भी मनुष्य को इतनी स्वतंत्रता देने के पक्षधर नहीं है जिससे कि समाज के कल्याण में बाधा उत्पन्न हो। उन्होंने समाज और मनुष्य दोनों के विकास कि बात कही, इस प्रकार जॉन डीवी प्रजातंत्र का समर्थक था।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. डीवी की किन्हीं दो रचनाओं के नाम लिखिए।

2. डीवी द्वारा प्रतिपादित चिंतन के पदों के नाम लिखिये।

3. जॉन डीवी किस वाद के समर्थक हैं?

19.4 जॉन डीवी के शैक्षिक विचार (Educational Thoughts of John Dewey)

जॉन डीवी एक प्रयोजनवादी दार्शनिक एवं विचारक है। वह शास्वत सत्य एवं मूल्यों पर विश्वास नहीं करता। डीवी ने सत्य उसी को माना है जिसका की जीवन में वास्तविक महत्व हो, उसके अनुसार विश्व परिवर्तनशील है और इस परिवर्तनशील विश्व में अपरिवर्तित होने वाले सत्यों एवं मूल्यों की कल्पना भी करना उचित नहीं है। वह मनुष्य को इस परिवर्तनशील समाज में कुशलतापूर्वक जीना सिखाना चाहता है।

19.4.1 शिक्षा का संप्रत्यय Concept of Education

डीवी ने शिक्षा को एक सामाजिक प्रक्रिया के रूप में स्वीकार किया। उसने स्पष्ट किया कि मनुष्य कुछ जन्मजात शक्तियों के साथ जन्म लेता है और इन शक्तियों का विकास, सामाजिक चेतना में भागीदारी के फलस्वरूप होता है ।

जॉन डीवी ने इनको शिक्षा मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक आयाम कहा है।

डीवी के अनुसार,“ “समस्त शिक्षा व्यक्ति द्वारा प्रजाति की सामाजिक चेतना में भाग लेने से आगे बढ़ती है।”

“All education proceeds by the participation of the individual in the social consciousness of race.”

डीवी का मानना है कि शिक्षा स्वयं जीवन है। डीवी ने अपनी पुस्तक ‘डेमोक्रेसी एण्ड एजुकेशन’ में बताया है कि जीवन के लिए शिक्षा बहुत आवश्यक है अत: शिक्षा ही जीवन है।

डीवी के अनुसार- “शिक्षा, अनुभवों के सतत् पुनर्निमाण द्वारा जीवन की प्रक्रिया है। यह व्यक्ति की उन समस्त क्षमताओं का विकास है, जो उसको अपने वातावरण को नियन्त्रित करने एवं सम्भावनाओं को पूर्ण करने के योग्य बनाती है।”

“Education is the process of living through a continuous reconstruction of experiences. It is the development of all those capacities in the individual which will enable him to control his environment and fulfill his possibilities.”

19.4.2 शिक्षा के उद्देश्य Aims of Education

जॉन डीवी एक बड़े दार्शनिक एवं प्रयोजनवादी थे जो किसी पूर्ण निश्चित शिक्षा के उद्देश्य में विश्वास नहीं करते।

उनका कथन है-"शिक्षा का सदैव तात्कालिक उद्देश्य होता है और जहाँ तक शिक्षा प्राप्य होती है, वहाँ तक शिक्षा उस साध्य को प्राप्त करती है।"

"Education has all the time an immediate end and so for as activity is educative it reaches that end."

डीवी जीवन के किसी परम उद्देश्य में विश्वास नहीं रखते, उनके अनुसार शिक्षा जीवन पर्यन्त चलने वाले, गत्यात्मक प्रक्रिया है, अत: शिक्षा के निश्चित उद्देश्यों को वह नहीं मानते। डीवी के अनुसार यदि शिक्षा का कोई उद्देश्य है तो वह मनुष्य में ऐसे गुणों और संम्भावनाओं का विकास करना है जिससे की वह अपने वर्तमान जीवन को सफलतापूर्वक जी सके तथा भविषय के मार्ग पर अग्रसर हो सकें। डीवी के विचारों को शिक्षा के उद्देश्यों के संदर्भ में निम्न प्रकार से क्रमबद्ध किया जा सकता है-

1.अनुभवों का पुनर्निमाण (Reconstruction of Experiences):- डीवी ने सपष्ट कर दिया कि मानव जीवन गत्यात्मक व परिवर्तनशील है अत: शिक्षा भी गत्यात्मक एवं परिवर्तनशील है। अत: अनुभवों के निमाण एवं पुनर्निमाण की प्रक्रिया भी निरन्तर चलती रहती है। इस प्रकार शिक्षा का उद्देश्य अनुभवों का पुनर्निमाण है।

2.वातावरण के साथ समायोजन (Adjustment with environment):- शिक्षा का उद्देश्य है बालक को अपने वातावरण के साथ समायोजन करने के लिए योग्य बनाना जिसके द्वारा बालक का जीवन उसके सामाजिक वातावरण के अनुकूल होकर विकसित हो सकें।

डीवी का कथन है- "शिक्षा की प्रक्रिया समायोजन की एक निरन्तर प्रक्रिया है, जिसका प्रत्येक अवस्था में उद्देश्य होता है- विकास को हुई क्षमता प्रदान करना।"

"The process of education is a continuous process of adjustment having as its aim at every stage and added capacity to growth."

3.सामाजिक कुशलता का विकास (Development of Social Efficiency):- मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और समाज से बाहर रहकर उसका विकास नहीं हो सकता। सामाजिक जीवन में सभी का विकास होता है, इसलिए शिक्षा का उद्देश्य सामाजिक जीवन में दक्षता प्राप्त करना है। सामाजिक कुशलता प्राप्त करना है।

डीवी के अनुसार- “शिक्षा का कार्य असहाय प्राणी को सुखी, नैतिक एवं कार्य कुशल बनाने में सहायता देना है।”

According to Dewey, “The function of education is to help growing to helpless young animal in to a happy, moral and efficient human being.”

4.लोकतांत्रिक जीवन में प्रशिक्षण (Training in Democratic life):- डीवी लोकतांत्रिक समाज का बड़ा समर्थक था। डीवी शिक्षा द्वारा ऐसे समाज का निर्माण करना चाहता है जिसमें व्यक्ति-व्यिक्त में कोई भेद न चाहता है, सभी पूर्ण स्वतनत्रता और सहयोग से काम करें। प्रत्येक मनुष्य को अपनी स्वाभाविक प्रवृत्तियों, इच्छाओं और आकांक्षाओं के अनुसार विकसित होने का अवसर मिले, सभी को समान अधिकार दिए जायें। ऐसा समाज तभी बन सकता है, जबकि व्यक्ति और समाज के हित में कोई अन्तर न माना जाए, शिक्षा द्वारा मनुष्य में परस्पर सहयोग और सामजस्य की स्थापना होनी चाहिए। विद्यालय लोकतांत्रिक समाज का एक सूक्ष्म रूप है। उसमें बालक में लोकतांत्रिक गुणों का विकास किया जाना चाहिए।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

4.डीवी ने शिक्षा को एक सामाजिक _______ के रूप में स्वीकार किया।

5.डीवी के अनुसार शिक्षा के उद्देश्यों को लिखिए।

6.डीवी शास्वत सत्य एवं मूल्यों पर विश्वास नहीं करते हैं। (सत्य/असत्य)

19.5 शिक्षा का पाठ्यक्रम (Curriculum of Education)

डीवी ने परंपरागत विषय-केन्द्रित पाठ्यक्रम को दूषित माना है। उन्होंने इस बात पर बल दिया है कि पाठ्यक्रम को कृत्रिमता से दूर होना चाहिए तथा वास्तविक जीवन की गतिविधियों पर आधारित होना चाहिए। डीवी के अनुसार समाज गत्यात्मक है परिवर्तनशील है अत: पाठ्यक्रम में भी समय और समाज की माँग के अनुसार परिवर्तित होने का गुण होना चाहिए। डीवी ने कोई निश्चित पाठ्यक्रम निर्धारित नहीं किया है, परन्तु उन्होंने पाठ्क्रम निर्धारित नहीं किया है, परन्तु उन्होंने पाठ्यक्रम निर्माण के कुछ सिद्धान्त अवश्य निर्धारित किए है। डीवी के अनुसार पाठ्यक्रम निर्माण के निम्नलिखिति सिद्धान्त हैं-

1.बाल केन्द्रित पाठ्यक्रम (Child Centered Curriculum)– जॉन डीवी ने परंपरागत विषय केन्द्रित पाठ्यक्रम का विरोध किया और बालक के मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक वातावरण व

उसकी आवश्यकताओं को केन्द्र बिन्दु बनाने पर बल दिया। डीवी ने यह सपष्ट कर दिया कि बालक की अपनी रूचियॉ, योग्यता, अभिवृत्ति और क्षमताऐं होती हैं। वे विशिष्ट प्रकार के अनुभव प्राप्त करता है अत: पाठ्यक्रम बालक के अनुभव के अनुकूल होना चाहिए जिसमें वह स्वयं नवीन अनुभव प्राप्त कर सकें।

2.उपयोगिता का सिद्धान्त (Principle of Utility)- शिक्षा में पाठ्यक्रम निर्माण वास्तविक उपयोगिता के आधार पर होना चाहिए। जिसमें बालक की सामान्य समस्याएं और उपयोग सम्बन्धित घटनाएं हो। बालक की इन्हीं समस्याओं का समाधान करने के लिए उपयुक्त विषयों एवं क्रियाओं को पाठ्यक्रम में स्थान देना चाहिए। अत: पाठ्यक्रम में ऐसे विषयों को सम्मिलित करना चाहिए जिससे बालक को ऐसी क्रियाओं को करने के लिए अभिप्रेरणा व अवसर प्रदान हों।

3.रूचि का सिद्धान्त (Principle of Interest):- डीवी के अनुसार बालक की शिक्षा उसकी क्षमताओं, रूचियों व आदतों आदि मनोवैज्ञानिक अध्ययन के पश्चात् प्रारम्भ करनी चाहिए। डीवी के निम्न चार प्रकार की रूचियों का वर्णन किया है-

विचारों के आदान-प्रदान में रूचि

खोज परीक्षण में रूचि

सृजन में रूचि

कलात्मक अभिव्यक्ति में रूचि

डीवी के अनुसार शैक्षिक पाठ्यक्रम इन्हीं रूचियों पर आधारित होना चाहिए। इस दृष्टिकोण से डीवी से भाषा, गणित, इतिहास, भुगोल, विज्ञान, सिलाई, गृहकार्य, बढ़ईगिरी, संगीत एंव व्यवसायिक कार्य आदि विषयों को पाठ्यक्रम में स्थान देने की बात कही है।

4.सानुबन्धिता का सिद्धान्त (Principle of Correlation) :- जीवन अपने आप में एक पूर्ण इकाई है, जॉन डीवी का मानना है कि संपूर्ण ज्ञान व उससे जुड़ी क्रियाऐं भी अपने आप में पूर्ण है। डीवी के अनुसार बालक के जीवन की पूर्णता के लिए एकीकृत ज्ञान या अनुभव बालक को होना चाहिए। डीवी ने इस बात पर बल दिया कि जो भी विषय व क्रियाऐं पाठ्यक्रम में सम्मिलित की जाएं वे सभी एकीकृत हो। इसलिए पाठ्यविषयों का अलग-अलग प्रदान न करके विषयोंको सानुबन्धित करके एकीकृत रूप से पढ़ाया जाना चाहिए।

5.लचीलेपन का सिद्धान्त (Principle of Flexibility):- डीवी ने परमपरागत पाठ्यक्रम का विरोध किया, उसने कहा कि विभिन्न बालकों की भिन्न भिन्न रूचियॉ, अभिवृत्ति और क्षमताऐं होती है, उनका मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक वातावरण भिन्न होता है तदनुसार उनकी आवश्यकताएँ

भी इसी प्रकार भिन्नता होनी चाहिए। पाठ्यक्रम मे रूढ़िवादिता न होकर लचीलापन होना चाहिए जिससे बालक अपनी इच्छानुसार कोई भी विषय या क्रिया को चुन सकता है।

19.5.1 शिक्षण विधियॉं Teaching Methods

डीवी ने मनुष्य को एक सामाजिक प्राणी माना है और कहा है कि उसका विकास सामाजिक चेतना में भागीदारी से ही हुआ है।

डीवी के अनुसार शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है। और मनुष्य तभी कुछ सीख सकता है जब उसकी सामाजिक चेतना जागृत हो और वह सक्रिय हो, डीवी ने क्रिया को ही सीखने का आधार माना। डीवी के अनुसार शिक्षण की निम्न विधियाँ है।

1. प्रयोग द्वारा सीखना (Learning by Experiment)– डीवी किसी पूर्वनिर्धारित ज्ञान, तथ्य व सिद्धान्त को स्वीकार करने के पक्ष में नहीं था। इन्हें स्वीकार करने से पहले डीवी ने उन्हें परीक्षण कर के देखा। डीवी के विचार से प्रयोगविधि सीखने के सर्वोत्तम विधि है। इस विधि में अवलोकन , क्रिया, स्वानुभव, तर्क तथा सामान्यीकरण और परीक्षण सम्मिलित है। डीवी ने सीखने को इस विधि पर आधारित करने की बात कही।

2. कर के सीखना (Learning by doing)– डीवी के अनुसार क्रियाओं को केन्द्र बनाकर शिक्षादी जानी चाहिए। विभिन्न क्रियाओं को पाठ्यक्रम विषयों के साथ सम्बन्धित कर दिया जाए ताकि बालक स्वयं कर के सीखे व ज्ञान प्राप्त कर सकें।

डीवी के अनुसार- "सभी प्रकार का सीखना कार्यो (क्रियाओं) की गौण उपज के रूप में होना चाहिए न कि स्वयं सीखने के लिए।"

"All learning must come as a byproduct of actions and never as something learned directly for its own sake"

3. सहसंबंध विधि (Correlation Method)- डीवी, ज्ञान को एक पूर्ण इकाई के रूप में मानता है, उसका तर्क है कि मनुष्य का जीवन भी अपने आप में एक पूर्ण इकाई है। इसी प्रकार विभिन्न विषयों व क्रियाओं की प्रक्रिया होते हुए भी शिक्षा भी एक पूर्ण इकाई है। इस आधार पर वह सभी विषयों व क्रियाओं को एकीकृत, सहसंबंधित करने के पक्ष में है।

4. योजना विधि (Project Method)- उपरोक्त सिद्धान्तों को ध्यान में रखकर डीवी के शिष्य किल पैट्रिक ने योजना विधि का आविष्कार किया। योजना विधि में सभी विषयों का ज्ञान व सभी क्रियाओं का परीक्षण एक योजना की सहायता से, एक इकाई के रूप में दिया जाता है।

19.5.2 अनुशासन Discipline, शिक्षक Teacher, विद्यार्थी Student विद्यालय School

अनुशासन (Discipline) :- बालकों को किसी दण्ड के भय से सही व्यवहार करने को अनुशासन नहीं मानता, उसने यह स्पष्ट किया कि जब एक शिक्षक भय व दण्ड के द्वारा अनुशासन स्थापित करता है तो तो बालकों के मन में अपने प्रति घृणा व विरोध की भावना ही उत्पन्न करता है और जब यह भावना तीव्र व प्रबल हो जाती है तो बालक इस अनुशासन को तोड़ देते हैं फिर हम यह कहते है कि बालक अनुशासनहीन है।

डीवी के अनुसार, अनुशासन एक भीतरी शक्ति है जो कि मनुष्य सामाजिक मानकों के अनुसार व्यवहार करने के लिए प्रेरित करती है। उसी प्रकार की शक्तियों व गुणों का विकास करने के लिए डीवी ने लोकतांत्रिक वातावरण की आवश्यकता पर बल दिया।

लोकतांत्रिक वातावरण की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता है – स्वतंत्रता, ऐसे वातावरण में बालक बिना किसी दबाव के अपनी रूचि के अनुसार क्रियाओं का चयन कर अपनी आवश्यकताओं के अनुसार स्वतंत्रतापूर्वक सीखता है। डीवी ने स्पष्ट किया है कि ऐसे स्वतंत्र व लोकतांत्रिक वातावरण में बालक के अनुशासनहीन होने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता बल्कि बालक में ऐसी शक्तियों का विकास होता है जिससे वो सामाजिक कल्याण के बारे में सोचता है। डीवी इसको स्वानुशासन कहता है। उसके अनुसार स्वानुशासन ही सच्चा अनुशासन है।डीवी के अनुसार, अनुशासन का एक उद्देश्य एक ऐसे सामाजिक व्यक्ति का सृजन करना है जो कि सामाजिक कल्याण में अपना योगदान दे सकें।

उनके अनुसार - "कार्य को करने से कुछ परिणाम निकलते है। यदि इन कार्यों को सामाजिक तथा सहकारी ढंग से किया जाए तो उनसे एक प्रकार का अनुशासन उत्पन्न होगा।"

शिक्षक (Teacher)

डीवी ने जनतांत्रिक आदर्शों का समर्थक है, वे मनुष्य की वैयक्तिकता का आदर करते हैं। शिक्षक को आदर देते हुए, वह यह कहते है कि शिक्षक को अपने आदर्शो को विद्यार्थियों पर नहीं थोपना चाहिए। डीवी ने शिक्षक को शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान देते हुए एक समाज सेवक के रूप में माना है। उसने कहा कि शिक्षक का कार्य, विद्यालय में ऐसा वातावरण का निर्माण करना है, जिसमें की बालक अपनी समस्याओं का समाधान स्वयं खोजने के योग्य बन सके, बालक के सामाजिक व्यक्तित्व का विकास हो सके और वह जनतंत्र का एक योग्य नागरिक बन सके, डीवी के मतानुसार ऐसे वातावरण में भागीदारी कर के बालक के ऐसे कौशलों का विकास होगा जिनका की वास्तविक जीवन में उपयोग हो, इसको डीवी ने सामाजिक कुशलता (Social Efficiency) कहा है। डीवी के शिक्षक को एक पथ प्रदर्शक और निरीक्षक के रूप में स्वीकार किया है।

विद्यार्थी (Student)

डीवी, मनुष्य को वैयक्तिकता को महत्व देते हुए, उसका आदर करते हुए प्रत्येक बालक को उसके प्राकृतिक विकास के लिए स्वतंत्रता देने के पक्षधर हैं, वह बालक को उसकी रूचि, अभिवृत्ति व आवश्यकता के अनुसार पूर्ण स्वतंत्रता देकर उसके सामाजिक व मनोवैज्ञानिक विकास के पक्ष पर जोर देता है। उसने यह नारा दिया कि प्रत्येक बालक को अपनी क्षमताओं के अधिकतम विकास करने के अवसर प्रदान करना चाहिए जिससेकि वह अपना समाज का हित कर सकें।

विद्यालय (School)

डीवी के अनुसार शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है। बालक समाज में रहकर ही वस्तुओं, भाषा व क्रियाओं का ज्ञान प्राप्त करता है। डीवी का कहना है कि सीखने की प्रक्रिया को सुचारू रूप से चलाने के लिए उपयुक्त सामाजिक वातावरण की आश्यकता होती है। ऐसे उपयुक्त के सृजन के लिए उसने विद्यालय को आवश्यक माना है। डीवी विद्यालय को समाज के लघु रूप में देखते है। इसलिए वो चाहते है कि विद्यालय का वातावरण सामाजिक वातावरण के समान हो।

डीवी ने शिक्षा के दो ध्रुव निर्धारित किए है- मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक, डीवी के अनुसार विद्यालय को बालकों की मनोवैज्ञानिक व सामाजिक आश्यकताओं की पूर्ति करनी चाहिए।

डीवी, विद्यालयों को ज्ञान की दुकान के रूप में स्वीकार नहीं करते वरन उन्हें प्रयोगशाला के रूप में लेते है।

19.5.3 जॉन डीवी के शैक्षिक विचारों का मूल्यांकन (Evaluation of Educational thought of John)

जॉन डीवी दर्शन के छात्र थे, प्रारंभ में डीवी आदर्शवाद से प्रभावित रहे फिर उनका झुकाव प्रकृतिवाद की ओर रहा और अन्त में वे जेम्स के प्रयोजनवाद से प्रभावित हुए और फिर उन्होंने अपनी विचारधारा प्रस्तुत की।

डीवी किसी वस्तु या क्रिया को नहीं मानते थे जिसकी वास्तविक उपयोगिता ना हो, उन्होंने ईश्वर और आत्मा की कोई वास्तविक उपयोगिता का नहीं माना। उन्होंने आत्मा और परमात्मा को सम्मिलित न करके इस जगत का अपूर्ण विश्लेषण प्रस्तुत किया, डीवी के अनुसार जिसका अनुभव किया जाए वही सत्य है। यदि हम डीवी के इस कथन या विचार का समर्थन करते है तो यह कहना गलत नहीं होगा उनका स्वयं का अनुभव भी विस्तृत नहीं था। परन्तु शिक्षा के क्षेत्र में डीवी का महत्वपूर्ण योगदान रहा। उन्होंने शिक्षा पर गहन चिन्तन किया एवं लिखा भी।

अब आप शैक्षिक जगत में जॉन डीवी के शैक्षिक विचारों के मूल्यांकन का अध्ययन करेंगे-

जॉन डीवी ने लिखा है कि शिक्षा न तो साधन है और न साध्य, यह मनुष्य के सामाजिक जीवन की प्रक्रिया है। जॉन डीवी शिक्षा को मानव जीवन का अभिन्न अंग मानते हैं और वे शिक्षा को एक सामाजिक, गतिशील एवं विकासात्मक प्रक्रिया मानते है। डीवी के उस विचार से सभी शिक्षाविद सहमत है। परन्तु डीवी इस विचार से कोई सहमत नहीं है कि शिक्षा का कार्य वातावरण को नियंत्रित कर संम्भावनाओं को पूर्ण करना ही है।

डीवी जीवन को परिवर्तनशील मानते है और उनका मानना था कि परिवर्तनशील जीवन के अपरिवर्तनशील उद्देश्य नहीं हो सकते। परन्तु डीवी ने स्वयं कुछ शैक्षिक उद्देश्य प्रस्तुत किए। एक ओर डीवी पुर्वनिर्धारित शैक्षिक उद्देश्यों को नहीं चाहते और वहीं दूसरी ओर वे लोकतांत्रिक जीवन में प्रशिक्षण की बात करते हैं। ये परस्पर विरोधाभास है।

किसी समाज एवं देश के शैक्षिक उद्देश्य निर्धारित होने चाहिए। औपचारिक शिक्षा निश्चित उद्देश्यों के आभाव में सुचारू रूप से नही चल सकती।

1. डीवी ने किसी प्रकार का पाठ्यक्रम निर्धारित नहीं किया, परन्तु उनहोंने पाठ्यक्रम निर्माण के सिद्धान्त के लिए शिक्षा के क्षेत्र में डीवी का यह सर्वश्रेष्ठ योगदान है। आज भी किसी भी देश में पाठ्यक्रम का निर्माण इन सिद्धान्तों के आधार पर होता है।

पाठ्यक्रम में डीवी ने धर्म और नैतिकता को कहीं स्थान नहीं दिया। डीवी के अनुसार धर्म और नैतिकता की मानव जीवन में कोई वास्तविक उपयोगिता नहीं है। जबकि धर्म एंव नैतिकता के पालन में मनुष्य जीवन शांतिपूर्वक, आनन्दमयी व्यतीत होता है।

2. शिक्षण विधियों में भी डीवी का महत्वपूर्ण योगदान है, डीवी ने सीखने की वास्तविक परिस्थियों के विकास पर बल दिया- स्वयं करके सीखना, स्वानुभव द्वारा सीखना, उनके विचार से प्रयोग विधि पढ़ाने की सबसे अच्छी विधि है। डीवी के सिद्धानतों के आधार पर उनके शिष्य किलपैट्रिक ने परियोजना विधि (Project Method) का निर्माण किया।

3. जॉन डीवी ने शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षक एवं शिक्षार्थी दोनों को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। उनके अनुसार शिक्षक को विद्यालय में ऐसे वातावरण का निर्माण करना चाहिए जिससे की बालक अपनी समस्याओं का स्वयं समाधान खोज सकें। वे शिक्षक को बच्चों पर अपने विचार एंव आदर्श थोपने की अनुमति नहीं देते। ज्यादातर शिक्षाविद, शिक्षक एवं शिक्षार्थी दोनों को समान महत्व देते है परन्तु वे डीवी के इस तर्क से सहमत नहीं है कि शिक्षक का कार्य केवल ऐसा वातावरण का निर्माण करना है जिसमें भाग लेकर बालक सीखे। उनका मत है कि बालक सब कुछ स्वानुभव द्वारा नहीं सीख सकता, हमें दूसरे अनुभवों से भी सीख सकते हैं।

4. डीवी जनतंत्रात्मक प्रणाली या व्यवस्था में विश्वास करते हैं । वे व्यक्ति की वैयक्तिकता का सम्मान करते हैं तथा उसको एक समाजीकृत व्यक्ति बनाने पर बल देते हैं। विश्व में जहॉ भी प्रजातांत्रिक व्यवस्था है, वहॉ बालकों को ऐसे नि:शुल्क अवसर प्रदान किए जा रहें है जिससे कि वे अपनी रूचियों, योग्यता एवं क्षमता के अनुसार विकास कर सकें । यह जॉन डीवी का शिक्षा पर प्रत्यक्ष प्रभाव है।

5. डीवी विद्यालय को लघु समाज के रूप में मानते हैं। वे समाज का सरल रूप प्रस्तुत करना चाहते हैं ना कि जटिल रूप। वे व़िद्यालय को ज्ञान की दुकान के रूप में स्वीकार नहीं करते। विद्यालय और समाज के मध्य संबंध की स्पष्ट कर डीवी ने शैक्षिक श्रेत्र में सामाजिक सहयोग को प्रोत्साहन दिया और इससे शिक्षा को प्रसार मिला।

परन्तु डीवी ने विद्यालय को समाज का लघु रूप कह कर मिथ्या धारणा प्रस्तुत की। डीवी के अनुसार, विद्यालय को वास्तविक जीवन से जुड़ी गतिविधियों को विद्यालय में संचालित करना चाहिए। यदि हम विद्यालय में भी वही सिखाएगें जो बाहर समाज में है तो विकास कैसे संभव है ? हमें नई परिस्थितियों का सृजन करना होगा जिससे हम विद्यालय में समाज से भी उत्तम वातावरण का निर्माण कर सकें।

एक दार्शनिक विचारक के रूप में, डीवी ने एक प्रगतिशील समाज के निर्माण में सराहनीय योगदान दिया है। डीवी ने व्यक्ति की वैयक्तिकता को महत्व दिया। डीवी से पहले शिक्षा आदर्शवादी थी, डीवी उसे वास्तविकता में लाए, रूसो ने शिक्षा को मनोवैज्ञानिक आधार प्रदान किया और डीवी ने मनोवैज्ञानिक आधार के साथ- साथ सामाजिक आधार भी प्रदान किए, उन्होंने शिक्षा को समाज-केन्द्रित बनाया। आधुनिक शिक्षा में वैज्ञानिक और सामाजिक प्रवृत्ति डीवी क योगदान है।

डीवी का सबसे बड़ा योगदान है प्रगतिशील शिक्षा और प्रगतिशील समाज।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

7. डीवी के अनुसार पाठ्यक्रम निर्माण के सिद्धातों को लिखिए।

8. डीवी ने किन चार प्रकार की रूचियों का वर्णन किया है?

9. डीवी के अनुसार शिक्षण विधियों के नाम लिखिए।

10 डीवी के शिष्य का नाम क्या है?

11 योजना विधि का आविष्कार किसने किया?

12 डीवी के शिक्षक को किस रूप में स्वीकार किया है?

13. डीवी विद्यालय को समाज के ________ रूप में देखते हैं।

14. डीवी विद्यालयों को _______ के रूप में स्वीकार करते है।

19.6 सांराश (Summary)

डीवी ने अपना समय आत्मा एंव परमात्मा के विश्लेषण में उपयोग न करके, मूर्त जगत एवं उसकी गतिविधियों के विश्लेषण में लगाया। डीवी कतिपय यह नहीं मानते कि इस जगत का सृजन दैवीय हैं, उनके अनुसार ये विभिन्न गतिविधियों के फलस्वरूप निर्मित है तथा सदैव परिवर्तनशील है। डीवी के अनुसार ज्ञान कर्म का परिणाम है। अनुभव ज्ञान का स्त्रोत है, सम्पूर्ण ज्ञान अनुभव पर अधारित है। जॉन डीवी के अनुसार दर्शन का कार्य इस परिवर्तनशील संसार में सत्य एवं मूल्यों की खोज करना होना चाहिए। डीवी आध्यात्मिक जगत में विश्वास नहीं रखता वह मनुष्य को एक सामाजिक प्राणी मानता है और उसको इसी जगत के लिए तैयार करना चाहता है। डीवी ने वास्तविक उपयोगिता पर बल दिया है। उसके किसी भी मनुष्य पर किसी भी प्रकार के आदर्शो को नहीं थोपा, वह चाहता था कि हर कोई सत्य की खोज स्वयं करे। परन्तु वह किसी भी मनुष्य को इतनी स्वतंत्रता देने का पक्षधर नहीं है जिससे कि समाज के कल्याण में बाधा उत्पन्न हो।

डीवी ने शिक्षा को एक सामाजिक प्रक्रिया के रूप में स्वीकार किया। डीवी के अनुसार,“ समस्त शिक्षा व्यक्ति द्वारा प्रजाति की सामाजिक चेतना में भाग लेने से आगे बढ़ती है। डीवी जीवन के किसी परम उद्देश्य में विश्वास नहीं रखते, उनके अनुसार शिक्षा जीवन पर्यन्त चलने वाले, गत्यात्मक प्रक्रिया है, अत: शिक्षा के निश्चित उद्देश्यों को वह नहीं मानते। डीवी के अनुसार यदि शिक्षा का कोई उद्देश्य है तो वह मनुष्य में ऐसे गुणों और संम्भावनाओं का विकास करना है जिससे की वह अपने वर्तमान जीवन को सफलतापूर्वक जी सके तथा भविषय के मार्ग पर अग्रसर हो सकें।

डीवी ने लोकतांत्रिक वातावरण की आवश्यकता पर बल दिया। डीवी के अनुसार, अनुशासन एक भीतरी शक्ति है जो कि मनुष्य को सामाजिक मानकों के अनुसार व्यवहार करने के लिए प्रेरित करती है। डीवी के अनुसार, अनुशासन का एक उद्देश्य एक ऐसे सामाजिक व्यक्ति का सृजन करना है जो कि सामाजिक कल्याण में अपना योगदान दे सकें।

एक दार्शनिक विचारक के रूप में, डीवी ने एक प्रगतिशील समाज के निर्माण में सराहनीय योगदान दिया है। डीवी ने व्यक्ति की वैयक्तिकता को महत्व दिया। उन्होंने शिक्षा को समाज-केन्द्रित बनाया। आधुनिक शिक्षा में वैज्ञानिक और सामाजिक प्रवृत्ति डीवी क योगदान है।

19.7 शब्दावली (Glossary)

1. तत्वमीमांसा- वास्तविकता का विज्ञान

2. ज्ञानमीमांसा- ज्ञान का विज्ञान

3. मूल्यमीमांसा- मूल्य का विज्ञान

4. प्रयोजनवाद- ऐसा वाद जिसमें सत्य का आधार प्रयोजन(वास्तविक उपयोगिता) को माना जाता है।

5. फलवाद- ऐसा वाद जिसमें सत्य को परिणाम(फल) के आधार पर सुनिश्चित किया जाता है।

6. अनुभववाद- ऐसा वाद जिसमें सत्य को अनुभव के आधार पर सुनिश्चित किया जाता है।

19.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नो के उत्तर

1. डीवी की किन्हीं दो रचनाओं के नाम

I दि स्कूल एंड सोसाइटी The School and Society, 1899

Ii दि स्कूल एंड दि चाईल्ड The School and the Child

2. डीवी द्वारा प्रतिपादित चिंतन के पदों के नाम हैं-

I किसी शंका, हिचकिचाहट, कठिनाई अथवा समस्या का अनुभव करना।

Ii सम्पूर्ण परिस्थिति पर दृष्टिपात करके उसके विभिन्न रूपों का विश्लेषण करना और तदुपरान्त समस्या के वास्तविक रूप को समझना।

Iii सुझावों का मस्तिष्क में उठना और यथोचित हल पाने के लिए उन सुझावों का अनुसरण करना।

Iv प्रत्येक हल का परिणाम तथा सबसे अधिक सम्भव हल का परीक्षण करना।

V उस हल को सवीकृत अथवा अस्वीकृत करने के उद्देश्य से आगे निरीक्षण व परीक्षण करना।

3.जॉन डीवी प्रयोजनवाद के समर्थक हैं।

4. प्रक्रिया

5. डीवी के अनुसार शिक्षा के उद्देश्यों निम्न हैं-

I अनुभवों का पुनर्निमाण

Ii वातावरण के साथ समायोजन

Iii सामाजिक कुशलता का विकास

Iv लोकतांत्रिक जीवन में प्रशिक्षण

6. सत्य

7. डीवी के अनुसार पाठ्यक्रम निर्माण के सिद्धांत निम्न हैं-

I बाल केन्द्रित पाठ्यक्रम

Ii उपयोगिता का सिद्धान्त

Iii रूचि का सिद्धान्त

Iv सानुबन्धिता का सिद्धान्त

V लचीलेपन का सिद्धान्त

8. डीवी ने निम्न चार प्रकार की रूचियों का वर्णन किया है-

I विचारों के आदान-प्रदान में रूचि

Ii खोज परीक्षण में रूचि

Iii सृजन में रूचि

Iv लात्मक अभिव्यक्ति में रूचि

9. डीवी के अनुसार शिक्षण विधियों के नाम हैं-

I प्रयोग द्वारा सीखना

Ii कर के सीखना

Ii सहसंबंध विधि

Ii योजना विधि

10. डीवी के शिष्य का नाम किल पैट्रिक है।

11 डीवी के शिष्य किल पैट्रिक ने योजना विधि का आविष्कार किया।

12 डीवी के शिक्षक को एक पथ प्रदर्शक और निरीक्षक के रूप में स्वीकार किया है।

13 लघु

14 प्रयोगशाला

19.9संदर्भ ग्रन्थ सूची (Reference Books)

1.लाल एण्ड पलोड, *एजुकेशनल थॉट एण्ड प्रैक्टिस*, मेरठ: आर0लाल प्रकाशन ,

2.पाण्डा, अ. कु. (2011). *शिक्षा दर्शन*. कानपुर: साहित्य रत्नालय्,

3.सक्सेना, एन0आर0 स्वरूप., शिखा, च. (2010). *उदीयमान भारतीय समाज मे शिक्षक,* मेरठ: आर लाल प्रकाशन.

4.एलैक्स, शी. मै. (2008). *शिक्षा दर्शन*. नई दिल्ली: रजत प्रकाशन.

5.ओड, एल. के. *शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि*. राजस्थान ग्रंथ अकादमी.

19.10 निबन्धात्मक प्रश्न (Long Answer Questions)

1. जॉन डीवी के शैक्षिक विचारों के बारे में आप क्या जानते हैं? शिक्षा के अर्थ, उद्देश्य एवं पाठ्यक्रम के सन्दर्भ में विचारों की व्याख्या कीजिए।

2. जॉन डीवी के शैक्षिक विचारों का मूल्यांकन कीजिए।

3. जॉन डीवी द्वारा प्रतिपादित पाठ्यक्रम निर्माण के सिद्धांतों की व्याख्या कीजिए।

4. शिक्षा के उद्देश्यों के सन्दर्भ में जॉन डीवी के क्या विचार हैं?स्पष्ट कीजिए।

इकाई 20 : ज्याँ पाल सार्त्र (Jean Paul Sartre)

20.1 प्रस्तावना
20.2 उद्देश्य
20.3 जीवन परिचय Life Sketch)
  20.3.1 अस्तित्ववाद व ज्याँ पाल सार्त्र
    अपनी अधिगम प्रगति जानिए
20.4 अस्तित्ववाद की अवधारणा (स्वरूप)
20.4.1 अस्तित्ववाद की मूल अवधारणा
    अपनी अधिगम प्रगति जानिए
20.5 ज्याँ पाल सार्त्र के दार्शनिक विचार
20.5.1ज्याँ पाल सार्त्र के शैक्षिक विचार
20.5.1 ज्याँ पाल सार्त्र के शैक्षिक दर्शन की प्रासंगिकता
    अपनी अधिगम प्रगति जानिए
20.6 सारांश
20.7 शब्दावली
20.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नो के उत्तर
20.9 सन्दर्भ ग्रंथ/पठनीय पुस्तकें
20.10 निबन्धात्मक प्रश्न

20.1 प्रस्तावना:

ज्याँ पाल सार्त्र एक फ्रांसीसी अस्तित्ववादी (Existentialist) दार्शनिक, नाटककार, उपन्यासकार, चलचित्र के लिए कथानक लिखनेवाला, राजनीति कार्यकर्ता, जीवनी लेखक और साहित्यिक आलोचक था। उसका जन्म 21 जून 1905 को हुआ तथा देहावसान 15 अप्रैल 1980 को हुआ। 20 वीं सदी के फ्रेंच दर्शन और मार्क्सवाद में उनका योगदान सराहनीय रहा है। सार्त्र का अस्तित्ववादी दर्शन समस्त विश्व के शैक्षिक जगत को प्रभावित किया और एक नए शिक्षा दर्शन की शुरूआत हुई। प्रस्तुत इकाई में आप ज्याँ पाल सार्त्र की जीवनी, उनके दार्शनिक विचार व शैक्षिक दर्शन के विभिन्न पक्षों का अध्ययन करेंगे।

20.2 उद्देश्य:

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप-

- ज्याँ पाल सार्त्र के जीवन वृत्त का वर्णन कर सकेंगे।
- ज्याँ पाल सार्त्र के दार्शनिक विचारों की व्याख्या कर सकेंगे।
- उनके शैक्षिक दर्शन के विभिन्न पक्षों का वर्णन कर सकेंगे।
- ज्याँ पाल सार्त्र के शैक्षिक दर्शन का मूल्यांकन कर सकेंगे।
- ज्याँ पाल के मुख्य दार्शनिक विचारों को स्पष्ट कर सकेंगे।
- ज्याँ पाल सार्त्र के शैक्षिक विचारों को शिक्षण प्रक्रिया में अन्तर्निहित मुख्य बिंदुओं की व्याख्या कर सकेंगे।
- अस्तित्ववाद दर्शन में ज्याँ पाल सार्त्र के मुख्य योगदान का वर्णन कर सकेंगे।
- अस्तित्ववाद दर्शन की मूल अवधारणाओं का विवेचन कर सकेंगे।

20.3 जीवन परिचय Life Sketch):

बीसवीं सदी के सर्वाधिक चर्चित विचारक और लेखकों में से एक सार्त्र का जन्म 21 जून 1905 को पेरिस में हुआ। 1934 में सार्त्र ने बर्लिन में फ्रेंच इंस्टीट्यूट में एक वर्ष रहकर जर्मन दर्शन का गहन अध्ययन किया। उन्होंने कई वर्ष अध्यापन कार्य भी किया। दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान सार्त्र जर्मनी के फासीवादी हमलावरों की कैद में रहे और घूमने के बाद उन्होंने प्रतिरोध आंदोलन में बढ़ चढ़कर हिस्सा लिया। इसके बाद अध्ययन कार्य छोड़कर वे पूरी तरह से लेखन कार्य में जुट गये। यद्पि समय-समय पर उन्होंने जनता की मुक्ति के समर्थन में राजनीतिक कार्यवाईयों में भाग लिया। उन्होंने प्रसिद्ध फ्रांसीसी पत्रिका ‘लेंस टेंप्स मॉडर्नेस’ का संपादन भी किया।

सार्त्र को अस्तित्ववादी दार्शनिक के रूप में जाना जाता है और इस दृष्टि से उन्होंने महत्वपूर्ण कार्य किया था। लेकिन अंततः उन्होंने अपने को मार्क्सवादी घोषित किया। उनका विचार था कि अस्तित्ववादी और कुछ नही मार्क्सवाद का ही अंत:क्षेत्र है। मार्क्सवाद जो उनके समय की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विचारधारा थी।

सार्त्र सिर्फ विचारक ही नहीं थे बल्कि इस सदी के महान साहित्यकारों में से एक थे। उनके उपन्यासों और नाटकों ने फ्रांस के बाहर भी व्यापक लोकप्रियता अर्जित की। ‘नाउसिया’ (उबकाई) (Nausea) उनका सबसे प्रसिद्ध उपन्यास है। इसके अलावा ‘द एज़ ऑफ रिजन’ (The Age of Region), ‘द रिप्राइव’ (The Reprieve), ‘आईरन इन द सॉल’(Iron in the Soul), उपन्यास: ‘लेस माउचेस’, ‘लेस

मेन्स सेल्स' (Less Men's Sales), निक्रासोव (Necrasov), आदि नाटक भी काफी लोकप्रिय हुए। उनकी दार्शनिक कृतियों में 'बीइंग एंड नथिंगनेस' (Being and Nothingness) को विशिष्ट स्थान हासिल है। 'द वर्डस (The Words) नाम से उन्होंने अपनी बचपन की स्मृतियों को प्रस्तुत किया है।

सार्त्र को उनके महान साहित्यिक **अवदान** के लिए नोबेल पुरस्कार के लिए चुना गया था, लेकिन उसे लेने से उन्होने इन्कार कर दिया था। 75 वर्ष की आयु में 15 अप्रैल को 1980 को उनका निधन हो गया।

20.3.1 अस्तित्ववाद व ज्याँ पाल सार्त्र:

ज्याँ पाल सार्त्र के दर्शन व शैक्षिक दर्शन को समझने से पूर्व आपको अस्तित्ववाद की मूल अवधारणा को समझना होगा| यहाँ पर अस्तित्ववाद की मूल अवधारणा को आपके समक्ष रखा गया है|

अस्तित्ववाद एक पद्धतिवाद दर्शन नहीं है जो कि दर्शन की परम्पराओं से जुड़ा हो परन्तु उसकी विशेषता यह है कि उसके अन्तर्गत भिन्न-भिन्न दर्शन के विषय उभरते हैं जिसे अस्तित्ववाद के दार्शनिकों ने उसे अपने तरीकों से इंगित किये हैं। सत्य तो यह है कि सम्पूर्ण अस्तित्ववाद के दार्शनिकों ने अपने अपने तरीकों से उन्नति किये हैं। सत्य तो यह है कि सम्पूर्ण अस्तित्ववाद एक दार्शनिक विचारधारा की तरह है जिसमें समय-समय पर नये-नये विचार उभरे और मुख्य धारा में सम्मिलित हो गये। इस विचारधारा से प्रमाणित अथवा इस विचारधारा को विकसित करने वाले अधिकतर जर्मन दार्शनिक थे जो ईश्वरवादी या अनीश्वरवादी व्यक्ति के अस्तित्ववाद की खोज में चिन्तित थे। किर्कार्ड के अलावा हस्सेर्ल, नीत्शे, हाइडेगर, जैसपर्स, मार्सल, बेबर, ज्यॉ पाल सार्त्र इस धारा के प्रमुख दार्शनिक हैं जिन्होंने किसी न किसी प्रकार से अस्तित्ववाद की दिशा को प्रभावित किया और विभिन्न विषयों पर चर्चा की है।

अस्तित्ववाद की स्थापना यह है कि व्यक्ति का अस्तित्व समिष्ट के समक्ष कुछ नहीं के रूप में है अत: व्यष्टि को समष्टि से जूझना है। विश्वजनीन उपकरणता के विरूद्ध अस्तित्वमय होना व संघर्ष करना है। साहित्य व कलाएं उस संघर्ष को व्यक्त करती है अत: कला कृति का स्वरूप अस्तित्व मूलक है। इसलिए अस्तित्ववाद साहित्य में भी चिन्तन का विषय बन गया है। व्यक्ति के लिए यह संभव नहीं है कि वह कोई कार्य करते समय उसके सम्पूर्ण उत्तरदायित्व से स्वयं को मुक्त रखे। इसलिए व्यक्ति वरण के द्वारा समूची मानवीयता को सम्बद्ध कर लेता है। यही व्यक्तिगत उत्तरदायित्व का बोध और मानवीय कर्तव्य चेतना, अस्तित्ववाद का मूल सार तत्व है।

अपनी अधिगम प्रगति जानिए:

1. सार्त्र का जन्म 21 जून 1905 को ....में हुआ।

2. ....ज्यॉ पाल सार्त्र का सबसे प्रसिद्ध उपन्यास है।
3. अस्तित्ववाद को विकसित करने वाले अधिकतर दार्शनिक................ के थे|
4. सार्त्र को उनके महान साहित्यिक अवदान के लिए..................... के लिए चुना गया था, लेकिन उसे लेने से उन्होने इन्कार कर दिया था।
5. अस्तित्ववाद की स्थापना यह है कि व्यक्ति का अस्तित्व .... के समक्ष कुछ नहीं के रूप में है।

20.4 अस्तित्ववाद की अवधारणा (स्वरूप):

अस्तित्ववाद आधुनिक युग का बहुचर्चित एवं सर्वाधिक प्रतिष्ठित मतवाद है। अस्तित्ववाद में मानवीय जीवन और मानवीय नियति का वास्तविक चिन्तन उपलब्ध होता है। अस्तित्ववाद को कई विद्धानों ने अपने-अपने ढ़ंग से परिभाषित किया है। एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका में अस्तित्ववाद की व्याख्या इस प्रकार है- "अस्तित्ववाद एक दार्शनिक स्कूल के बजाय एक प्रवृति या संस्थित भाव है। अस्तित्ववाद दर्शन चिन्तन का रास्ता है जो सम्पूर्ण पार्थिव ज्ञान का उपयोग करता है, उसे इस क्रम में परिवर्तित करता है जिससे मानवजन स्वयं जैसे बन सकें।"

ज्याँ पाल सार्त्र ने अपने ग्रंथ 'Existentialism' में अस्तित्ववाद की व्याख्या करते हुए कहा है कि अस्तित्ववाद अनीश्वर और अनास्थात्मक सह-जीवन परिस्थितियों के परिणामों की प्रस्तुत करने के प्रयास के सिवाय और कुछ नहीं है। 'द एडविंचर ऑफ क्रिटिसिज्म (The Adventure of Criticism)' में अस्तित्ववाद को अन्ध-समानीकरण और अविशिष्टीकरण की प्रतिक्रिया कहा है। डॉ श्यामसुन्दर मिश्र ने अपनी पुस्तक 'अस्तित्ववाद कुछ नयी स्थापनाओं' में अस्तित्ववाद को अधुनातन जीवन के विभिन्न निषेधों (सामाजिक, नैतिक, आर्थिक, राजनैतिक) और सामाजिक उपलब्धियों की यांन्त्रिकता के बीच आबद्ध व्यक्ति-इकाई की आकुल चिन्ता का वैज्ञानिक और समीचीन विश्लेषण माना है। अस्तित्ववाद के सर्वप्रथम तत्वशास्त्री सॉरेन कीर्क्गार्द 'वरण की स्वतंत्रता' का उल्लेख करता है। उनके शब्दों में, अस्तित्ववाद का प्रयोग इस दावे पर जोर देने के लिए किया जाता है कि प्रत्येक व्यक्ति-इकाई अपने आप में स्वयं जैसी है| आध्यात्मिक या वैज्ञानिक प्रक्रिया के सन्दर्भ में अविश्लेषणीय है। व्यक्ति-इकाई अस्तित्वमय है, व्यक्ति स्वयं चुनाव करता है, स्वयं चिन्तन करता है। वह स्वतंत्र है और चूँकि वह स्वतंत्र है इसलिए सहन करता है कि उसका भविषय कुछ अंशों में उसके स्वतंत्र चुनाव पर निर्भर है। चयन के सम्बन्ध में सभी अस्तित्ववादी विचारकों ने विचार किया है। चयन अथवा वरण अनिवार्य मानवीय आवश्यकता है।

ज्यॉ पॉल सार्त्र के अनुसार वस्तुत: स्वतंत्रता चयन करने की स्वतंत्रता नहीं है। वरण न करना वास्तव में वरन न करने को चुनना है। परिणाम यह होता है कि चयन करना अस्तित्वमय की नींव होता है किन्तु चयन करने की नींव नहीं होता।अत: चयन इस स्तर पर स्वतंत्रता की असंगति है।

बीसवीं शताब्दी के प्रमुख दार्शनिक चिन्तकों डा0 मार्टिन हिडेगर, कार्ल यास्पर्स, ग्रैबियल मार्शल, ज्यॉ पॉल सार्त्र, फ्रेज काफ्फका और आल्वेयर कामू के चिन्तन और विचारधारा का परीक्षण करने पर प्रमाणित हो जाता है कि इस काल में दो तरह के अस्तित्ववादी विचारक हैं, जिन्हे ईश्वरवादी और अनिश्वरवादी अस्तित्ववादी चिन्तकों की संज्ञा दी जा सकती है। ज्यां पॉल सार्त्र, कार्ल यास्पर्स, और ग्रेबियल मार्शल को ईश्वरवादी अस्तित्ववादी माना जाता है तथा डॉ0 हिडेगर अपनी तथा अन्य फ्रांसीसी विचारकों एव लेखकों की गणना अनीश्वरवादी अस्तित्ववादी चिन्तकों में करता है।

ईश्वरवादी अस्तित्ववाद- इस विचारधारा के जनक कीर्केगार्ड हैं। कीर्केगार्ड मानवीय अस्तित्ववाद और उसके तनाव की व्याख्या ईसाई आस्था के सन्दर्भ में करते हैं। जीवन निर्वाह और सार्थक अस्तित्वबोध के इस संघर्ष के साथ व्यक्ति मानसिक आस्था के रूप में ईश्वरीय तत्व की सतत चेतना को हृदयंगम करने का जतन करता है। वैयक्तिक स्तर पर ग्रहीत ईश्वर बोध और तदगत अनुभूतियॉ उसकी निजी उपलब्धियॉ हैं। अत: यह आवश्यक है कि ईसाई आस्था के सन्दर्भ में नवीन संवेदनात्मक ईश्वरत्व की व्यवस्था का अनुसंधान किया जाय।

अनीश्वरवादी अस्तित्ववाद- नीत्शे परम्परागत ईश्वर की मृत्यु की उद्घोषणा द्वारा मानवीव अस्तित्व की समसामयिक विडम्बना को अभिव्यक्ति देता है। इस विचारधारा का प्रारम्भ नीत्से के ईश्वर और धर्म सम्बन्धी विचारों से होता है।

चिन्ता – चिन्ता अथवा व्यग्रता अस्तित्ववाद के लिए एक महत्वपूर्ण विषय है परन्तु अस्तित्ववाद के दार्शनिक इस विषय को अवैज्ञानिक आधार न देकर उसके बारे में चिन्तन कुछ भिन्न तरीकों से करते करते हैं। यह व्यग्रता व्यक्ति को दिशा देती है और व्यक्ति जो प्रारंभ में कुछ भी नहीं है को उसके अस्तित्व की ओर ध्यान दिलाता है। सत्य यह है कि व्यक्ति विशेषणों गुणों और मूल्यों के बिना भी रह सकता है, जी सकता है परन्तु व्यग्रता द्वारा शनै:- शनै: वह इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि उसका भी अस्तित्व होना चाहिए और धीरे-धीरे वह गुणहीन तथा मूल्य रहित अवस्था से निकल कर अपने अस्तित्व को खोजने लगता है और अर्थहीन शून्य अवस्था से निकल कर अपने अस्तित्व को अर्थ अथवा माईने देता है।

मृत्यु : मृत्यु कोई ईश्वरीय शक्ति नहीं है और न ही व्यक्ति के जीवन में वह एक महत्वपूर्ण घटना है। इस कारण वह हर व्यक्ति तक पहुँचती है मौत उतना ही सत्य है जितना कि व्यक्ति का अस्तित्व| मूल्य प्रक्रिया है जो सदा चलती रहती है। व्यक्ति के अस्तित्व में प्रारम्भ से ही यह प्रारंभ हो जाती है| जो ईश्वरवादी अस्तित्ववाद के दार्शनिक हैं उनके अनुसार मृत्यु के पश्चात् भी व्यक्ति के अस्तित्व का आभास रह जाता है। नास्तिक धारा के दार्शनिकों का मत है कि मृत्यु के पश्चात् व्यक्ति का सम्पूर्ण अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है कुछ भी शेष नहीं रहता| मृत्यु के अलावा अस्तित्वहीनता को भी बड़े रोचक ढ़ंग से उस वाद के दार्शनिकों ने परिभाषित किया है।

अस्तित्वहीनता: सार्त्र के अनुसार अस्तित्वहीनता का बहुत महत्व है क्योंकि उस अवस्था के कारण ही व्यक्ति अपने अस्तित्व को ढूंढता है| जब व्यक्ति नहीं का उपयोग करता है तब वह स्वतंत्रता की अवस्था में होता है और वह अवस्था ही उसके अस्तित्व का द्योतक है| जिसके द्वारा वह अपना अस्तित्व ही नहीं वरन् मूल्य तथा गुणों को विकसित कर पाता है। बिना स्वतंत्रता के वह आधारहीन अथवा अर्थहीन है| वह केवल हाड़ मांस का पुतला है। मौत उसके जीवन का व उसके अस्तित्व का अंग है।

स्वयं- सार्त्र के अनुसार स्वयं दो प्रकार का होता है। प्रथम स्वयं अपने में और दूसरा स्वयं अपनों के लिए| उदाहरण के तौर पर एक व्यक्ति गरीब माँ बाप के यहाँ पैदा हुआ तो वास्तव में वह स्वयं होगा और उसके बाद की चेष्टा जिसके द्वारा वह अपने परिवार के लिए धन और खुशहाली जुटायेगा वह उसका दूसरा स्वयं होगा|

स्वतंत्रता – अस्तित्ववाद के दार्शनिक व्यक्ति की स्वतंत्रता को कार्य करने की क्षमता से जोड़ते हैं जिसका पूर्व निर्धारित सिद्धांत से भी संबन्ध माना जाता है।

कार्यक्षमता- व्यक्ति की कार्य करने की क्षमता अथवा किसी कार्य को प्रारंभ करने में उसके द्वारा जो तर्क या स्वतंत्रता का सहारा लिया गया है, उस पर व्यक्ति का कार्य चुनना और पूरा करना निर्भर है। कार्य करने में संपूर्ण व्यक्ति ही सम्मिलित होता है जिसमें उसकी भावना और विचार दोनों ही सम्मिलित होते हैं। किसी भी कार्य को उसके फल से आंक नहीं सकते, ना ही उस कार्य करने की प्रक्रिया से| कार्य करने में सम्पूर्ण एकता से जुड़ा हुआ व्यक्ति अपने कार्य के द्वारा अपने आपको व्यक्त करता है। उस व्यस्तता में उसका सम्पूर्ण जुड़ाव है न केवल उसकी भावना या विचार अथवा सफलता या कार्य करने की प्रक्रिया।

20.4.1 अस्तित्ववाद की मूल अवधारणा:

1. अस्तित्ववाद मूलरूप से दर्शन का सिद्धान्त है। अस्तित्ववाद के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति के सामने विभिन्न संभावनाएं या रास्ते हैं। मनुष्य अपनी स्वतंत्रता के आधार पर इन संभावनाओं या रास्तों में से एक या अधिक का वरण करता है।
2. व्यक्ति का अस्तित्व सम्भावनापरक है अत: उसकी अन्तिम रूप से व्याख्या नहीं की जा सकती है।
3. मानवीय अस्तित्व की व्याख्या का एक ही तरीका शेष रह जाता है कि विश्व में कार्यकलापों के माध्यम से उसका विश्लेषण किया जाये। अस्तित्ववादी इस स्तर पर प्रत्येक व्यक्ति को उसके कार्यों के लिए उत्तरदायी मानता है।
4. वरण की स्वतंत्रता के परिणामस्वरूप मनुष्य अपने अस्तित्व को न केवल प्रमाणित करता है बल्कि प्रमाणिक भी बनाता है।

5. वरण के स्वतन्त्र प्रयोग के कारण उसके सार का निर्माण होता है अर्थात् सार से पूर्व अस्तित्व है। अस्तित्व के पूर्ववर्ती होने के कारण उसे अस्तित्ववाद की संज्ञा दी गई है।
6. सार्त्र व्यक्ति की आंतरिकता को शरीर में निहित मानता है अत: वैयक्तिक अस्तित्व के तीन आयाम हैं- मैं शरीर में हूँ, यह चेतना शरीर का पहला आयाम है। मेरा शरीर दूसरों के द्वारा उपयोगी और श्रेय है, यह दूसरा आयाम है। जहॉं तक मैं दूसरे के लिए हूँ दूसरा मेरे समक्ष विषय के रूप में स्पष्ट हैं; जबकि मैं उसके लिए पार्थिव वस्तु हूँ। मैं उस विश्व में स्वयं अपने लिए हूँ किन्तु दूसरे के द्वारा शरीर के रूप में माना जाता हूँ। यह व्यक्ति के शरीर का तीसरा आयाम है।
7. वैयक्तिक अस्तित्व एवं स्व-अस्तित्वमय की दिशा में उन्मुख है। स्व अस्तित्वमय एवं अवसरानुकूल आवरण है अत: स्पष्ट है कि वह स्वयं को बनाता है।

अपनी अधिगम प्रगति जानिए:

1. “अस्तित्ववाद एक दार्शनिक स्कूल के बजाय एक ………………..है।
2. ज्याँ पाल सार्त्र ने अपने ग्रंथ ……………………….. में अस्तित्ववाद की व्याख्या करते हुए कहा है कि अस्तित्ववाद अनीश्वर और अनास्थात्मक सह-जीवन परिस्थितियों के परिणामों की प्रस्तुत करने के प्रयास के सिवाय और कुछ नहीं है।
3. ईश्वरवादी अस्तित्ववाद के जनक ……………………….हैं।
4. ....से पूर्व अस्तित्व है।
5. वैयक्तिक अस्तित्व के....................... आयाम हैं|

20.5 ज्याँ पाल सार्त्र के दार्शनिक विचार (The Philosophical Thoughts of Jean Paul Sartre):

ज्याँ पाल सार्त्र मूलत: अस्तित्ववादी दार्शनिक हैं। इनके अनुसार “अस्तित्ववाद” शब्द का अर्थ एक ऐसा सिद्धांत है जो मानव जीवन को संभव बनाता है और जो मानता है कि प्रत्येक सत्य और कर्म का संबंध मानव परिवेश तथा उसकी आत्मपरकता में निहित होता है। अस्तित्ववादी दार्शनिकों को दो भागों में विभक्त किया गया है।

आस्तिक अस्तित्ववादी

नास्तिक अस्तित्ववादी

आस्तिक अस्तित्ववादी को ईश्वर के अस्तित्व में अटूट विश्वास है जबकि नास्तिक अस्तित्ववाद पूर्ण संगति के साथ यह घोषणा करता है कि यदि ईश्वर का अस्तित्व नहीं है तो भी एक सत्ता ऐसी है

जिसका अस्तित्व सत्य से पहले आता है और जो अपनी किसी भी धारणा द्वारा समझाए जाने से पूर्व ही मौजूद है। अस्तित्व सत्य से पूर्व आता है, इसका हम क्या अर्थ लेते हैं ? हम समझते हैं कि सबसे पहले मनुष्य का अस्तित्व है फिर वह स्वयं अपने से संघर्ष करता है और विश्व में अपनी जगह तलाशता है तत्पश्चात वह अपने को परिभाषित करता है। सार्त्र कहते हैं, यदि मनुष्य परिभाष्य नहीं है तो इसका कारण यह है कि आरंभ में वह कुछ भी नहीं था। बाद में भी वह कुछ नहीं होगा और वह वही बनेगा जैसा वह अपने को बनाना चाहेगा। इसलिए मानव प्रकृति जैसी कोई चीज नहीं है क्योंकि इसकी धारणा बनाने के लिए कोई ईश्वर नहीं है। सीधी बात यह है कि मनुष्य है। वह अपने बारे में जैसा सोचता है, वैसा नहीं होता बल्कि वैसा होता है जैसा वह संकल्प करता है। ज्याँ पाल के दार्शनिक विचार को निम्न बिन्दुओं के तहत समझा जा सकता है-

अस्तित्व के बाद सारतत्व आता है (Existence precedes essence.)

मेरा अस्तित्व है इसलिए में सोचता हूँ। (I exists therefore I think)

किसी विशिष्ट वस्तु होने के पूर्व सबसे पहले उसका अस्तित्व है।

मनुष्य का अस्तित्व स्वीकार करने के लिए उसे ‘चयन करने वाला अभिकरण’ मानना आवश्यक होता है।

मनुष्य को क्या बनना है इसका चुनाव करने के लिए वह पूर्णतया स्वतंत्र है।

मनुष्य का ‘सारतत्व’ यह है कि वह स्वतंत्र है, वह सृजन कर सकता है, वह चयन कर सकता है और उसके चाहे अनचाहे भी ‘कष्ट, पीड़ा तथा खतरे’ उसके उपलभ्य हैं।

सार्त्र के अनुसार, मनुष्य अनिर्णीत है तथा उसमें चुनाव करने की सामर्थ्य है, अत: वह अपने आप की प्रगति के लिए निरंतर प्रयत्नशील रहता है।

मनुष्य केवल चेतन प्राणी ही नहीं है अपितु अद्धितीय रूपेण वह आत्मचेतना से युक्त है। अत: वह केवल विचार ही नहीं करता अपितु विचार के बारे में भी विचार कर सकता है।

20.5.1 ज्याँ पाल सार्त्र के शैक्षिक विचार (Educational Thoughts of Jean Paul Sartre):

ज्याँ पाल सार्त्र के शिक्षा दर्शन के केन्द्र में मनुष्य का अस्तित्व है। इनका शिक्षा दर्शन मुख्यत: मनुष्य के स्वतंत्रता, चयन, निरंतर प्रयत्नशीलता, नियति का स्वयं नियन्ता, मूल्यों का निर्माता व व्याख्याता इत्यादि पर जोर डालता है।

ज्याँ पाल सार्त्र के शैक्षिक विचार को निम्न बिंदुओं के अंतर्गत समझा जा सकता है-

1.शिक्षा के उद्देश्य (Objectives of Education): ज्याँ पाल सार्त्र के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य निम्नलिखित अभिधारणाओं पर निर्भर करता है:

I मनुष्य एक स्वतन्त्र प्राणी है। वह जो बनना चाहे उसके लिए वह स्वतंत्र है।

Ii मनुष्य को चयन की स्वतंत्रता है।

Iii मनुष्य को अपने चयन का पूरा दायित्व स्वयं उसका है।

ज्याँ पाल सार्त्र के अनुसार, शिक्षा द्वारा बालक को स्वतंत्र मानव बनाना, जिससे कि वह अपने जीवन के संबंध में पराश्रित न रहकर स्वयं अपनी नियति का निर्धारण कर सके। प्रत्येक व्यक्ति को अपना लक्ष्य-निर्धारण करने की स्वतंत्रता होनी चाहिए और उस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रत्येक व्यक्ति अपना मार्ग स्वयं निश्चित करता है। इनके अनुसार चयनकर्ता का चयन प्रक्रिया के साथ तादात्म्य अनिवार्य है। अत: वह बालक के भावात्मक एवं सौन्दर्यात्मक पक्षों के विकास पर अधिक जोर डालता है। बालक की चयन प्रक्रिया किसी मार्गदर्शन से रहित, तर्क रहित, प्रमाण रहित होना चाहिए। परन्तु साथ ही वह दायित्वयुक्त होनी चहिए।

ज्याँ पाल सार्त्र के अनुसार, शिक्षा का एक प्रमुख उद्देश्य बालक को जीवन के अनिवार्य सतत पीड़ा के लिए तैयार करना है क्योंकि उसके लिए कोई आश्रय नहीं है, कोई सांत्वना देने वाला नहीं है। पीड़ा का भाग ही उसकी नियति है।

2.**छात्र अवधारणा (Concept of Student)-** शिक्षा की समस्त प्रक्रिया में छात्र के अस्तित्व के बारे में सोचना चाहिए। छात्र केवल व्यक्ति है जिसका इस संसार में न कोई मित्र है न हितैषी। वह किसी समूह का अंग नहीं है। उसे सामाजिक कुशलता का पाठ पढ़ाने की आवश्यकता नहीं है। समूह गत्यात्मकता सिखाने की उसे आवश्यकता नहीं है क्योंकि समूह का निर्णय उसके वैयक्तिक निर्णय से उच्चतर नहीं है। सार्त्र बालक की स्वतंत्रता का उद्धोषक है। उन्होंने शिक्षा को व्यक्ति केन्द्रित माना है। इनके अनुसार सामूहिक शिक्षा का कोई अस्तित्व है ही नहीं। बालक के अद्वितीय व्यक्तित्व की रक्षा करने के लिए यह आवश्यक है कि इस पर सामाजिक स्वीकृति लादी न जाय। उसे स्वतंत्र निर्णय के अवसर प्रदान करना आवश्यक है।

3.शिक्षक अवधारणा (Concept of Teacher)- ज्याँ पाल सार्त्र के अनुसार शिक्षक के लिए शिक्षा का दृष्टिकोण होगा ‘मृत्यु की दृष्टि में रखकर शिक्षा’। शिक्षक छात्रों में इस दृष्टिकोण का विकास करता है कि मृत्यु का सामना करना चाहिए और मृत्यु के द्वारा अशुभ, अन्याय तथा अत्याचार को नग्न रूप में प्रकट किया जा सके तथा उन्हें रोका जा सके, तो उसका स्वागत करना चाहिए। शिक्षक के द्वारा विषय सामग्री को इस प्रकार प्रस्तुत करना चाहिए जिससे कि उसमें निहित सत्य को स्वतन्त्र साहचर्य

द्वारा खोजा जा सके। शिक्षक द्वारा छात्रों के “मस्तिष्क का स्वत: संचालन” इस रूप में विकसित करना कि उसक शिष्यों में एक विशेष प्रकार का चरित्र गठन हो। ऐसा चरित्र जो स्वतंत्र, उदार तथा स्वचालित हो। उसके छात्रों की शिक्षा ऐसी हो कि वे किसी बात को इसलिए सच मानें कि उसके सच होने का उन्हें स्वयं निश्चय हो गया हो। शिक्षक से एक और महत्वपूर्ण अपेक्षा की जाती है कि वह छात्रों को उनके द्वारा चयन किए गए निर्णय के निहितार्थ की अनुभूति कराए।

4.पाठ्यक्रम (Curriculum) : ज्याँ पाल सार्त्र के अनुसार सत्य अनन्त है| अत: कोई निश्चित पाठ्यक्रम निर्धारित करना संभव नहीं है। सार्त्र मानविकी (Humanities) विषयों को पाठ्यक्रम में सबसे प्रमुख स्थान देते हैं। वैज्ञानिक विषयों को ये संदेह की दृष्टि से देखते हैं। इनके अनुसार साहित्य का अध्ययन, सामाजिक विषयों, मानव संस्कृति संबंधी विषयों का समावेश एक पाठ्यक्रम को आदर्श बनाता है। ये सभी विषय वास्तविकताओं यथा दु:ख, पीड़ा, व्यथा, प्रेम, घृणा आदि के प्रति भावनात्मक पक्ष का विकास करने में मुख्य रूप से सहायक होता है।

5.**शिक्षण विधियॉ (Teaching Methods)** : ज्याँ पाल सार्त्र के शैक्षिक दर्शन से यह स्पष्ट है कि शिक्षण विधियॉ पूर्णरूपेण व्यक्ति विशेष की योग्यताओं को विकसित करने वाली अर्थात व्यक्तिनिष्ठ (Subjective) होनी चाहिए। इस दृष्टि से “कार्य करके सीखना विधि (Learning by Doing)” को अधिक महत्वपूर्ण माना गया है। उनकी विचारधारा के अनुसार शिक्षण के उन ढंगों को ही अधिक अपनाने पर बल देना चाहिए जो छात्रों में हीन भवनायें दूर कर, उनमें स्वचेतना का भाव विकसित करे।

6.अनुशासन (Discipline)- ज्याँ पाल सार्त्र का शिक्षा- दर्शन बालक को अनुशासित करने के लिए किसी संरचित नियम-विधान को स्वीकार नहीं करता बल्कि स्वतंत्रता की बात करता है। बालकों में स्वतंत्र निर्णय एवं क्षमता का विकास किया जाय ताकि उनमें वैयक्तिक उत्तरदायित्व की भावना विकसित हो पाए। उस स्वतंत्रता की भावना से पनपने वाले नैतिक गुण से उत्तर कोई नैतिकता नहीं है।

20.5.2 ज्याँ पाल सार्त्र के शैक्षिक दर्शन की प्रासंगिकता (Relevance of the Educational Philosophy of Jean Paul Sartre):

ज्याँ पाल सार्त्र का अस्तित्वाद दर्शन शिक्षा के क्षेत्र में बहुत ही प्रासंगिक नहीं है। यूँ अस्तित्ववाद दर्शन न होकर दार्शनिक प्रवृति मात्र है। इसकी जटिलता इतनी व्यापक है कि शिक्षा के क्षेत्र में उससे निकलने वाले निहितार्थ अत्यंत कम हैं। इनके दर्शन के आधार पर किसी संगठित विद्यालय की कल्पना नहीं की जा सकती है| विद्यालय संगठन का अधारभूत तत्व यह है कि समाज अपनी सांस्कृतिक धरोहर के रक्षण, हस्तांतरण तथा विकास के लिए विद्यालयों की स्थापना करता है। समाज विद्यालयों की स्थापना इसलिए करता है कि समाज जिन मूल्यों

को वांछनीय मानता है, उन्हें नई पीढ़ी तक अनुप्रमाणित कर सके तथा युवा पीढ़ी का सांस्कृतिकरण संभव हो सके। अतः सार्त्र का शिक्षा दर्शन विद्यालय की संकल्पना के प्रति विश्वास नहीं रखता| लेकिन अन्य शिक्षा के अन्य क्षेत्रों में सार्त्र का शैक्षिक दर्शन निम्नवत् रूप में प्रांसगिक हो सकता है-

- प्रत्येक छात्र की रूचि एंव मानसिक स्तर के अनुरूप शिक्षा दी जानी चाहिए।
- छात्रों के अध्ययन विषय चुनाव की स्वतंत्रता उन्हीं पर छोड़ देनी चाहिए न कि विद्यालय या अभिभावक पर।
- छात्रों पर दबाव देकर शैक्षिक विषयों या शैक्षिक दायित्वों का अनुकरण नहीं कराना चाहिए बल्कि व्यावहारिक पद्धति से उन्हें सिखाया जाना चाहिए।
- छात्रों की स्वतंत्रता चाहे मानसिक, शारीरिक या सामाजिक हो, उस पर नियंत्रण कम किया जाना चाहिए।
- छात्रों को मूल्यों की शिक्षा के द्वारा शुभ और अशुभ या सत् अथवा असत् की पहचान करने की शिक्षा दी जानी चाहिए।

अपनी अधिगम प्रगति जानिए:

1. मेरा ……………………………….. है इसलिए में सोचता हूँ।
2. ज्याँ पाल सार्त्र के अनुसार शिक्षक के लिए शिक्षा का दृष्टिकोण होगा ………………………..।
3. सार्त्र …………………..विषयों को पाठ्यक्रम में सबसे प्रमुख स्थान देते हैं।
4. ज्याँ पाल सार्त्र शिक्षा को ……………………..केन्द्रित माना है।
5. ज्याँ पाल सार्त्र के अनुसार ……………………………………को अधिक महत्वपूर्ण माना गया है।

20.6 सारांश:

बीसवीं सदी के सर्वाधिक चर्चित विचारक और लेखकों में से एक सार्त्र का जन्म 21 जून 1905 को पेरिस में हुआ तथा देहावसान 15 अप्रैल 1980 को हुआ। सार्त्र को अस्तित्ववादी दार्शनिक के रूप में जाना जाता है और इस दृष्टि से उनका कार्य बहुत ही महत्वपूर्ण है। अंत में उन्होंने अपने आपको मार्क्सवादी भी घोषित कर लिया था। सार्त्र एक दार्शनिक विचारक के अलावा इस सदी के महान साहित्यकारों में से एक थे। उनके उपन्यासों और नाटकों ने पूरी दुनियां में व्यापक लोकप्रियता अर्जित की।

सम्पूर्ण अस्तित्ववाद एक दार्शनिक विचारधारा की तरह है जिसमें समय-समय पर नये-नये विचार उभरे और मुख्य धारा में सम्मिलित हो गये। इस विचारधारा से प्रमाणित अथवा इस विचारधारा को विकसित करने वाले अधिकतर जर्मन दार्शनिक थे जो ईश्वरवादी या अनीश्वरवादी व्यक्ति के अस्तित्ववाद की खोज में चिन्तित थे। किर्क्गार्ड के अलावा हस्सेर्ल, नीत्शे, हाइडेगर, जैसपर्स, मार्सल, बेबर, ज्यॉं पाल सार्त्र इस धारा के प्रमुख दार्शनिक थे जिन्होंने किसी न किसी प्रकार से अस्तित्ववाद की दिशा को प्रभावित किया और विभिन्न विषयों पर चर्चा की।

i. ज्याँ पाल के दार्शनिक विचार निम्नलिखित हैं-

ii. अस्तित्व के बाद सारतत्व आता है (Existence precedes essence.)|

iii. मेरा अस्तित्व है इसलिए में सोचता हूँ (I exists therefore I think)|

iv. किसी विशिष्ट वस्तु होने के पूर्व सबसे पहले उसका अस्तित्व है।

v. मनुष्य का अस्तित्व स्वीकार करने के लिए उसे ‘चयन करने वाला अभिकरण’ मानना आवश्यक होता है।

vi. मनुष्य को क्या बनना है इसका चुनाव करने के लिए वह पूर्णतया स्वतंत्र है।

vii. मनुष्य का ‘सारतत्व’ यह है कि वह स्वतंत्र है, वह सृजन कर सकता है, वह चयन कर सकता है और उसके चाहे अनचाहे भी ‘कष्ट, पीड़ा तथा खतरे’ उसके उपलभ्य हैं।

viii. सार्त्र के अनुसार, मनुष्य अनिर्णीत है तथा उसमें चुनाव करने की सामर्थ्य है, अत: वह अपने आप की प्रगति के लिए निरंतर प्रयत्नशील रहता है।

ix. मनुष्य केवल चेतन प्राणी ही नहीं है अपितु अद्वितीय रूपेण वह आत्मचेतना से युक्त है। अत: वह केवल विचार ही नहीं करता अपितु विचार के बारे में भी विचार कर सकता है।

ज्याँ पाल सार्त्र के शैक्षिक विचार के मुख्य बिंदु निम्नवत हैं-

शिक्षा के उद्देश्य: ज्याँ पाल सार्त्र के अनुसार, शिक्षा द्वारा बालक को स्वतंत्र मानव बनाना, जिससे कि वह अपने जीवन के संबंध में पराश्रित न रहकर स्वयं अपनी नियति का निर्धारण कर सके। प्रत्येक बालक को अपना लक्ष्य-निर्धारण करने की स्वतंत्रता होनी चाहिए और उस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रत्येक बालक अपना मार्ग स्वयं निश्चित करता है। उन्होंने शिक्षा को व्यक्ति केन्द्रित माना है।

छात्र अवधारणा (Concept of Student)- शिक्षा की समस्त प्रक्रिया छात्र केंद्रित है। सार्त्र बालक की स्वतंत्रता का उद्घोषक है।

शिक्षक अवधारणा (Concept of Teacher)- छात्रों को उद्देश्य चयन में शिक्षक को मदद करनी चाहिए| केवल शिक्षक के लिए शिक्षा का दृष्टिकोण होगा ‘मृत्यु की दृष्टि में रखकर शिक्षा’। शिक्षक छात्रों में इस दृष्टिकोण का विकास करता है कि मृत्यु का सामना करना चाहिए|

पाठ्यक्रम (Curriculum) : ज्याँ पाल सार्त्र के अनुसार सत्य अनन्त है| अत: कोई निश्चित पाठ्यक्रम निर्धारित करना संभव नहीं है। सार्त्र मानविकी (Humanities) विषयों को पाठ्यक्रम में सबसे प्रमुख स्थान देते हैं।

शिक्षण विधियॉ (Teaching Methods) : ज्याँ पाल सार्त्र के शैक्षिक दर्शन से यह स्पष्ट है कि शिक्षण विधियॉ पूर्णरूपेण व्यक्ति विशेष की योग्यताओं को विकसित करने वाली अर्थात व्यक्तिनिष्ठ (Subjective) होनी चाहिए। इस दृष्टि से "कार्य करके सीखना विधि (Learning by Doing)" को अधिक महत्वपूर्ण माना गया है।

अनुशासन (Discipline)- ज्याँ पाल सार्त्र का शिक्षा- दर्शन बालक को अनुशासित करने के लिए किसी संरचित नियम-विधान को स्वीकार नहीं करता बल्कि स्वतंत्रता की बात करता है।

- **सार्त्र के शैक्षिक दर्शन की प्रांसगिकता:** सार्त्र का शैक्षिक दर्शन निम्नवत् रूप में प्रांसगिक हो सकता है-
- प्रत्येक छात्र की रूचि एंव मानसिक स्तर के अनुरूप शिक्षा दी जानी चाहिए।
- छात्रों के अध्ययन विषय चुनाव की स्वतंत्रता उन्हीं पर छोड़ देनी चाहिए न कि विद्यालय या अभिभावक पर।
- छात्रों पर दबाव देकर शैक्षिक विषयों या शैक्षिक दायित्वों का अनुकरण नहीं कराना चाहिए बल्कि व्यावहारिक पद्धति से उन्हें सिखाया जाना चाहिए।
- छात्रों की स्वतंत्रता चाहे मानसिक, शारीरिक या सामाजिक हो, उस पर नियंत्रण कम किया जाना चाहिए।
- छात्रों को मूल्यों की शिक्षा के द्वारा शुभ और अशुभ या सत् अथवा असत् की पहचान करने की शिक्षा दी जानी चाहिए।

20.7 शब्दावली:

अस्तित्ववाद: अस्तित्ववाद एक दार्शनिक विचारधारा है जो व्यक्ति के अस्तित्व को महत्वपूर्ण मानता है| सार से पूर्व अस्तित्व है। अस्तित्व के पूर्ववर्ती होने के कारण उसे अस्तित्ववाद की संज्ञा दी गई है।

ईश्वरवादी अस्तित्ववाद- मानवीय अस्तित्ववाद और उसके तनाव की व्याख्या ईसाई आस्था के सन्दर्भ में करना व ईश्वरीय तत्व की सतत चेतना को हृदयंगम करने का जतन करना।

अनीश्वरवादी अस्तित्ववाद- अस्तित्ववाद में ईश्वर की मृत्य की उद्घोषणा द्वारा मानवीय अस्तित्व की व्याख्या।

चिन्ता – अस्तित्व के लिए व्यग्रता|

मृत्य: व्यक्ति के जीवन में एक महत्वपूर्ण घटना जो मानव विकास की पूर्णतम अवस्था है।

अस्तित्वहीनता: वह अवस्था जिसमें व्यक्ति अपने अस्तित्व को ढूंढता है|

20.8 अपनी अधिगम प्रगति जानिए सम्बन्धी प्रश्नों के उत्तर:

1. पेरिस 2. नाउसिया' (उबकाई) (Nausea) 3. जर्मन 4. नोबेल पुरस्कार 5. समिष्ट 6. प्रवृति या संस्थित भाव 7.'Existentialism' 8. कीर्केगार्ड 9. सार 10. तीन 11. अस्तित्व 12. 'मृत्यु की दृष्टि में रखकर शिक्षा' 13. मानविकी (Humanities) 14. व्यक्ति 15. कार्य करके सीखना विधि (Learning by Doing)"

20.9 संदर्भ ग्रंथ/ पठनीय पुस्तकें(Reference Book/Suggested Readings):

1.लाल एण्ड पलोड, *एजुकेशनल थॉट एण्ड प्रैक्टिस*, मेरठ: आर0लाल प्रकाशन ,

2.पाण्डा, अ. कु. (2011). *शिक्षा दर्शन*. कानपुर: साहित्य रत्नालय्,

3.सक्सेना, एन0आर0 स्वरूप., शिखा, च. (2010). *उदीयमान भारतीय समाज मे शिक्षक,* मेरठ: आर लाल प्रकाशन.

4.एलैक्स, शी. मै. (2008). *शिक्षा दर्शन*. नई दिल्ली: रजत प्रकाशन.

5.ओड, एल. के. *शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि*. राजस्थान ग्रंथ अकादमी.

20.10 निबंधात्मक प्रश्न:

1. ज्याँ पाल सार्त्र के शैक्षिक दर्शन की प्रासंगिकता का मूल्यांकन कीजिए|
2. ज्याँ पाल सार्त्र के अनुसार, शिक्षा के प्रमुख उद्देश्यों का वर्णन कीजिए|
3. ज्याँ पाल के मुख्य दार्शनिक विचारों को स्पष्ट कीजिए|
4. ज्याँ पाल सार्त्र के शैक्षिक विचारों को शिक्षण प्रक्रिया में अन्तर्निहित मुख्य बिंदुओं की व्याख्या कीजिए|

5. अस्तित्ववाद दर्शन में ज्याँ पाल सार्त्र के मुख्य योगदान का वर्णन कीजिए|
6. अस्तित्ववाद दर्शन की मूल अवधारणाओं का विवेचन कीजिए|
7. ज्याँ पाल सार्त्र के शैक्षिक दर्शन का मूल्यांकन कीजिए|

इकाई -21 समाजशास्त्र का अर्थ, शिक्षा और समाज मे आपसी सम्बन्ध, शैक्षिक समाजशास्त्र का अर्थ, प्रकृति और क्षेत्र (Sociology – Its Meaning, Relationship between Education and Society, Educational Sociology - Meaning nature and Scope)

21.1 प्रस्तावना (Introduction)
21.2 उददेश्य (Objectives)
भाग एक
21.3 समाजशास्त्र और शैक्षिक समाजशास्त्र (Sociology and Educational Sociology)
    21.3.1 समाजशास्त्र का अर्थ (Meaning of Sociology)
    21.3.2 समाजशास्त्र की परिभाषाये (Definition of sociology)
    21.3.3 समाजशास्त्र की विषय वस्तु (Subject Metter of Sociology)
        अपनी उन्नति जानिए (Check your Progress)
भाग दो
21.4 शिक्षा और समाज मे सम्बन्ध (Relationship Between Education and Society)
    21.4.1 इतिहास में उदाहरणों द्वारा शिक्षा तथा समाज का सम्बन्ध (Relationship Between Education and Society)
    21.4.2 ओटावे द्वारा शिक्षा व समाज के सम्बन्ध (Relationship between Education and Society)
        अपनी उन्नति जानिए (Check your Progress)
भाग तीन
21.5 शैक्षिक समाजशास्त्र (Educational Sociology)

21.5.1 शैक्षिक समाजशास्त्र का अर्थ (Meaning of Educational Sociology)
21.5.2 शैक्षिक समाजशास्त्र की प्रकृति (Nature of Education Sociology)
21.5.3 शैक्षिक समाजशास्त्र का क्षेत्र (Scope of Educational Management)
21.5.4 शैक्षिक समाजशास्त्र का उददेश्य (Aims of Educational Management)
अपनी उन्नति जानिए (Check your Progress)
21.6 सारांश (Summary)
21.7 शब्दावली (Glossary)
21.8 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर (Answer of Exercise Question)
21.9 सन्दर्भ (Reference)
21.10 उपयोगी/ सहायक ग्रन्थ (Useful Books)
21.11 दीर्घ उत्तर वाले प्रश्न (Long answer Types Question)

21.1 प्रस्तावना (Introduction)

शिक्षा समाज की सामाजिक विरासत, सभ्यता और संस्कृति को पीढी दर पीढी सुरक्षित रखने का महत्वपूर्ण साधन है। शिक्षा के द्वारा ही नयी पीढी को समाज की संस्कृति और सभ्यता से परिचित कराया जाता है। नयी पीढी इस विरासत में अपना योगदान करती है। शिक्षा का उददेश्य बालक मे ऐसी सामाजिक भावना और सामाजिक गुणों का विकास करना है। जिससे वे समाज और राष्ट्र के उपयुक्त सदस्य के रूप में अपना उत्तरदायित्व समझ सके। विद्यालय स्वयं समाज का एक छोटा रूप है। अध्यापक विद्यालय में सब प्रकार के आदर्श सामाजिक वातावरण निर्माण करके शिक्षार्थियों को समाज का सही चित्र देते है। विद्यालय से निकलकर शिक्षार्थी इसी चित्र को वास्तविक समाज से साकार करने का प्रयास करते है। शिक्षा के द्वारा व्यक्ति में समाज के आदर्श सदस्य के गुण का निर्माण होते है और जब अधिकतर सदस्य सुशिक्षित होगे तो समाज का निश्चय ही विकास होगा।

21.2 उददेश्य (Objectives)

- समाजशास्त्र का ज्ञान प्राप्त करना |
- शिक्षा का समाज पर प्रभाव व परिवर्तन |
- समाज व शिक्षा का आपसी सम्बन्ध की जानकारी |
- समाजशास्त्र की प्रकृति और क्षेत्र का ज्ञान प्राप्त कराना |
- समाज का शिक्षा पर प्रभाव |
- शैक्षिक समाजशास्त्र का ज्ञान प्राप्त कराना |

21.3 समाज शास्त्र और शैक्षिक समाजशास्त्र (Sociology and Education Sociology)

शिक्षा चैतन्य रूप मे एक नियन्त्रित प्रकिया है जिसके द्वारा व्यक्ति के व्यवहार मे परिवर्तन लाया जाता है। समाज मे शिक्षा एक सामाजिक प्रकिया है जो कि जन्म से लेकर मृत्यु तक निरन्तर चलती रहती है। बालक को सर्वप्रथम शिक्षा अपने माता पिता से प्राप्त होती है, इसके बाद विद्यालय तथा अन्य समितियॉ यह कार्य करती है। शिक्षा प्राप्त करके ही बालक समाज के आदर्शो मूल्यों तथा आचरण के नियमों का ज्ञान प्राप्त करता है। शिक्षा सामाजीकरण का एक महत्वपूर्ण साधन है। शिक्षा का अति महत्वपूर्ण कार्य समाज की सांस्कृतिक सभ्यता, प्रथा परम्परा मूल्य आदर्श आदि की रक्षा करना तथा उसे अगली पीढी को हस्तान्तारित करना है। ऐसा करने के लिए सबल माध्यम शिक्षा ही है। बालकों में सामाजिक गुणों, सामाजिक भावनाओं तथा सामाजिक दृष्टिकोण का विकास करना शिक्षा का प्रथम उददेश्य है। एक प्रजातान्त्रिक समाज में यह अत्यधिक अनिवार्य है कि वहॉ के निवासी उत्तम नागरिक हो। सामाजिकता की भावना के विकास के परिणामस्वरूप छात्र समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्वों को अच्छी प्रकार से निभा सकेंगे तथा समाज के साथ अनुकुलन उत्तम ढंग से कर सकेगें। इससे समाज और राष्ट्र का विकास होगा।

21.3.1 समाजशास्त्र का अर्थ Meaning of Sociology-

समाज का अध्ययन करने वाले विज्ञान को समाजशास्त्र कहा जाता है। यूँ तो समाज का अध्ययन किसी न किसी रूप में अति प्राचीन काल से होता जा रहा है। किन्तु आधुनिक समाजशास्त्र का जन्म उन्नीसवी शताब्दी में माना जाता है। बौद्विक दृष्टि से समाजशास्त्र के विकास पर इतिहास दर्शन और सामाजिक सर्वेक्षण का मुख्य प्रभाव पडा। समाज के विकास में भौतिक कारक औद्योगिक क्रान्ति सामाजिक क्रान्ति तथा अनेक सामाजिक परिवर्तन थे। सन् 1850 में अगस्त कॉम्टे के लेखों से समाजशास्त्र का जन्म माना जाता है। समाजशास्त्र अन्य सामाजिक विज्ञानों की तुलना में अधिक

विश्वकोषात्मक (Encyclopedia) हैं| वह विकासात्म्क और विधायक विज्ञान है वह समाज का विज्ञान है,उसमें सामाजिक सम्बन्धों का अध्ययन करता है वह सामाजिक समबन्धों के स्वरूपों और अन्तर्वस्तु दोनो का अध्ययन किया जाता है समाजशास्त्र के क्षेत्र के विषय में समाजशास्त्रियों में दो प्रमुख विचारधारायें दिखलाई पडती है। विशेषात्मक सम्प्रदाय के अनुसार समाजशास्त्र सामाजिक सम्बन्धों की अन्तर्वस्तु का नही बल्कि स्वरूपों का अध्ययन करता है यह सम्प्रदाय समाजशास्त्र के क्षेत्र को अत्यधिक सकुचित कर देता है। वास्तव में मूर्त सम्बन्धों से अलग करके अमूर्त स्वरूपों का अध्ययन किया जा सकता है।

समन्वयक सम्प्रदाय समाजशास्त्र को विशिष्ट सामाजिक विज्ञानों का एक समन्वयक अथवा एक सामान्य विज्ञान मानता है। समाजशास्त्र और अन्य सामाजिक विज्ञानों की विषय सामग्री एक है। किन्तु दृष्टिकोण भिन्न है। यह दूसरी ओर अन्य विज्ञानों का संकलन मात्र भी नही है। वह अपनी विषय सामग्री अन्य विज्ञानों से अवश्य लेता है। किन्तु उसकों ज्यों का त्यों संग्रहमात्र न करके बिल्कुल नया रूप में दे देता है। वास्तव में समाजशास्त्रीय पद्वति से अध्ययन किये जाने वाले सत्र विषय समाजशास्त्र के क्षेत्र में आते है। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण व्यावहारिक और वर्तमान है। भौतिक विज्ञानों के दृष्टिकोण की तुलना में यह अधिक गत्यात्मक है। समाजदर्शन की अपेक्षा यह अधिक तथ्यात्मक है।

21.3.2 समाजशास्त्र की परिभाषाएं Definition of Sociology –

समाजशास्त्र अन्य विज्ञानों की तुलना में एक विज्ञान है। समाजशास्त्र के अर्थ का स्पष्टीकरण विभिन्न समाजशास्त्रियों द्वारा दी गयी परिभाषाओं से स्पष्ट होता है। विभिन्न विद्वानों ने समाजशास्त्र की परिभाषा पृथक पृथक ढंग से का है विद्वानों ने समाजशास्त्र की परिभाषा इस प्रकार दी है।

ओडम (Odem)- "समाजशास्त्र समाज का विज्ञान है"
ब्लैकमार तथा गिलिन (Blackmaar and Gillin) - "समाजशास्त्र मानव जाति के सम्बन्ध से उत्पन्न समाज की घ्टनाओं का अध्ययन करता है" ।

मैक्स वेबर (Max Baber)- "समाजशास्त्र एक विज्ञान है जो सामाजिक कार्यो की व्याख्या करते हुए इनको स्पष्ट करने का प्रयत्न करता है"।

कूले और मूर (Cooley and moore)- ‘’समाजशास्त्र व्यक्ति के बहुमुखी व्यवहार का अध्ययन करता है।

“इमाइल दुर्खीय (EmileDurkhim)- ‘’समाजशास्त्र सामूहिक प्रतिनिधित्व का विज्ञान है।

“गिलीन और गिलीन (Gline and Gline) ‘’व्यापक अर्थो में समाजशास्त्र वह विज्ञान है जो मानव समूह के सयोग से उत्पन्न होने वाली अन्तक्रियाओं का अध्ययन करता है।“

उपरोक्त परिभाषा के आधार पर निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले जा सकते है

I समाजशास्त्र समाज का विज्ञान है

II समाजशास्त्र सामाजिक सम्बन्धों का अध्ययन करता है

III समाजशास्त्र सामाजिक जीवन तथा समाज में होने वाली घटनाओं का अध्ययन करता है।

III समाजशास्त्र सामाजिक सम्बन्धों के स्वरूपों का अध्ययन करता है।

21.3.3 समाजशास्त्र की विषय-वस्तु (Subject Matter of Sociology)

समाजशास्त्र की विषय वस्तु के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है परन्तु अधिकांश समाजशास्त्री सामाजिक प्रक्रियाओं (Social Processes) सामाजिक संस्थाओं (Sociol Institution) सामाजिक नियंत्रण (Social Control) एवं सामाजिक परिवर्तन (Social Change) को इसमें सम्मिलित करते है।

के0 डेविस (k.Devis) के अनुसार समाजशास्त्र की विषय वस्तु में सामाजिक संरचना सामाजिक कार्य तथा सामाजिक अन्त:क्रिया सम्मिलित है।

मैकाइवर एंड पेज (Maciver and Page) के अनुसार- ‘’समाज की विषय-वस्तु सामाजिक सम्वन्ध ही है। समाजशास्त्र के अंतर्गत्त सामाजिक सम्बन्धोंअर्थात समाज का व्यवस्थित अध्ययन किया जाता है। प्रत्येक समाज मे कुछ रीति-रिवाज, कार्य प्रणालियों, अधिकार और पारस्परिक सहायता, अनेक समूह और उनके विभाजन, मानव व्यवहार के नियंत्रनो एव स्वाधीनता की कुछ न कुछ व्यवस्था पायी जाती है। इन्ही के द्वारा समाज बनता है। जो कि समाजशास्त्र का अध्ययन विषय है। समाजशास्त्र मानव की आधारभूत विशेषताओ का अध्ययन करता है। समाजशास्त्र व्यकित के सामाजिक व्यवहारो का अध्ययन करता है और इस द्रष्टिकोण से वह समाज की संस्कृति का भी अध्ययन करता है। इसके अतिरिक्त विशेष उल्लेख्ननीय तथ्य यह है कि समाजशष्त्र मे सम्पूर्ण समाज को एक इकाई मानकर अर्थात समग्र रुप से अध्ययन किया जाता है।

अपनी प्रगति जानिए (Check your Progress)

प्र.1 समाजशास्त्र व्यक्तियो के किस व्यवहार का अध्ययन करता है ?

प्र. 2 सन 1850 मे किस विद्वान के लेखो से समाजशाष्त्र का जन्म माना जाता है

अगस्त काम्टे (ब) आगस्टीन (स) रुसो (द) आदित्य सेन

प्र.3 समाजशास्त्र समाज का विज्ञान है यह परिभाषा है
(अ) मेक्स वेबर (ब) कूले और मूरे (स) इमाईल दुर्खीम (द) ओडम

प्र.4 समाजशास्त्र मे सम्पूर्ण इकाई को क्या माना जाता है।

(अ) एक इकाई (ब) सम्पूर्ण इकाई (स) दो इकाई (द) चार इकाई

21.4 शिक्षा और समाज में संबंध (Relationship Between Education and Society)

शिक्षा तथा समाज का अटूट सम्बन्ध है। समाज में संस्कृति तथा जीवन विधि का जो रूप होता है उसी के अनुरूप उस समाज की आवश्यकतायें होती है। उन्हीं आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर उस समाज में शिक्षा की व्यवस्था की जाती है। समाज की आवश्यकताओं परिवर्तन के साथ साथ शिक्षा का स्वरूप भी परिवर्तित करने की आवश्यकता होती है। किसी भी समाज में शिक्षा का स्वरूप क्या होगा यह इस समाज की मान्यताओं मूल्यों एवं उददेश्यों पर निर्भर करता है। शिक्षा व्यक्ति को समाज के अनुरूप कार्य करने के लिए प्रेरित करती है।

21.4.1 इतिहास के उदाहरणों द्वारा शिक्षा तथा समाज का सम्बन्ध (Relationship Between Education and Society by Historical example)

I प्राचीन एवं मध्यकालीन समाज (Ancient and Medieval Society)

इस काल में शिक्षा का स्वरूप धार्मिक था क्योंकि इन समाजों में धर्म का अत्यधिक महत्व था शिक्षा के द्वारा बालको के धार्मिक तथा चारित्रिक विकास पर बल दिया जाता था और धार्मिक सिद्वान्तों का अनुसरण किया जाता था।

II आधुनिक समाज (Modern Society)

आधुनिक समाज में धर्म की अपेक्षा विज्ञान का विशेष महत्व है। अत: शिक्षा द्वारा व्यक्ति में चिन्तन तर्क तथा निर्णय आदि मानसिक शाक्तियों के विकास पर बल दिया जाता है। इसके अतिरिक्तव्यक्ति यों को यह स्वतन्त्रता निर्णय करने कर अधिकार है कि वे किस प्रकार की शिक्षा ग्रहण करें। आधुनिक समाज के कई रूप है जैसे भौतिकवादी समाज साम्यवादी समाज प्रयोगवादी समाज आदर्शवादी समाज जनतन्त्रवादी समाज आदि । प्रत्येक समाज अपने अपने आदर्शो तथा आवश्यकताओं के अनुरूप शिक्षा की व्यवस्थाओं को करता है।

III फासिस्ट समाज (Fascist Society)

जर्मनी जापान और इटली इस प्रकार के समाज के उदाहरण रहे है फसिस्ट समाज में एक ही व्यक्ति का पूर्ण अधिकार रहता है। विरोध करने वाले को कठोर दण्ड दिया जाता है। हिटलर और मुसोलिनी ऐसे ही शासक थे। इन समाजों में शिक्षा का स्वरूप शासक की इच्छा से निर्धारित किया जाता था। समाज में प्रत्येक बालक को शिक्षा प्राप्ति का समान अवसर नही मिलता था केवल प्रतिभाशाली बालकों को ही शिक्षा के लिए प्रोत्साहित किया जाता है । शिक्षा बालकों में शक्ति और राज्य के प्रति भक्ति की भावना और उसके हित के लिए स्वयं को बलिदान करने की भावना उत्पन्न करती है।

IV प्रजातान्त्रिक समाज (Democratic Society)

प्रजातान्त्रिक समाज सवतन्त्रता, समानता तथा बन्धुत्व के सिद्वान्तों पर आधारित होती है। इस प्रकार के समाज में व्यकित्त्व का विशेष सम्मान किया जाता है। प्रत्येक व्यक्ति अपना विकास व सम्मान चाहता है। प्रत्येक व्यक्ति को अपने विकास चिन्तन मनन लेखन अभिव्यक्ति तथा व्यवसाय आदि के क्षेत्र में स्वतन्त्रता होती है। अत इस समाज में शिक्षा का आधार भी प्रजातान्त्रिक होता है प्रत्येक बालक को उसकी रूचियों , योग्यताओं , रूझानों तथा क्षमताओं के अनुसार शिक्षा प्रदान करने का प्रयास किया जाता है।

V प्रयोजनवादी समाज (Pragmatic Society)

प्रयोजनवादी क्रिया तथा बुद्बि की अपेक्षा परिस्थिति को अधिक महत्व देते ही ये कहते है कि परिवर्तित परिस्थितियों में शिक्षा का स्वरूप भी परिवर्तित किया जाना चाहिए। शिक्षा के उददेश्य ज्ञान व सत्य की खोज है। समाज की नवीन परिस्थितियों में तथा नये मूल्य के अनुसार नये सत्य या नये ज्ञान की आवश्यकता होती है। जिनको शिक्षा द्वारा खोजा जा सकता है।

VI भौतिकवादी समाज (Materialistic Society)

भौतिकवादी समाज में भैतिक सुख-सुविधाओं,धन, सम्पति आदि को महत्व दिया जाता है। अत:ऐसे समाज में शिक्षा की व्यवस्था भी इस प्रकार की जाती है। जिसके द्वारा व्यक्ति अधिक धन उपर्जित् कर सके तथा भौतिक क्षेत्र में उन्नति कर सके।

VII आदर्शवादी समाज (Idealism Society)

आदर्शवादी समाज में बालक के चरित्र निर्माण तथा नैतिक विकास पर बल दिया जाता है क्योंकि इन समाजों में विचार तथा बुद्बि को महत्व दिया जाता है तथा आध्यात्मिक उन्नति को आदर्श समझा जाता है।

21.4.2 ओटावे द्वारा शिक्षा व समाज के सम्बन्ध (Relationship Between Education and Society)

I शिक्षा का संस्कृति से सम्बन्ध (Relation of Education of Culture)

बालक को शिक्षित करने का प्रथम उत्तरदायित्व मॉ बाप का होता है। इसी कारण माता पिता बालक को प्रथम शिक्षा होते है जो पग पग पर बालक को विकास की ओर उन्मुख करते है। इसी कारण सभी शिक्षा शास्त्रियों परिवार को बालक की प्रथम पाठशाला कहा है। बालक को शिक्षित करने में घर व विधालय का बहुत महत्वपूर्ण स्थान होता है परन्तु शिक्षा के साधनों को हम दो श्रेणियों में ही सीमित नही कर सकते चूँकि शिक्षा एक व्यापक प्रकिया है जो सम्पूर्ण समुदाय में संचालित होती है। शिक्षा हमें हमारे सांस्कृतिक मूल्यों से अवगत कराते हुए उसके अनुकूल व्यवहार करने को प्रेरित करती है। इसके साथ् ही समाज की संस्कृति का भी शिक्षा के उत्तर प्रभाव पडता है।

II शिक्षा संस्कृति के स्थानान्तरण के रूप में (Education as the Transmission of Culture)

शिक्षा का बहुत ही महत्तवपूर्ण कार्य होता है समाज के सांस्कृतिक मूल्यों व व्यवहार के तौर तरीकों को युवा पीढी को स्थानान्तरित करना चूँकि इससे समाज में स्थिरता आती है और इस बात की आशा करती है कि उसकी परम्परायें स्थायी रहेंगी और इस कार्य को शिक्षा के सरक्षणात्मक कार्य कहते है। आधुनिक समाज की प्रगति व विकास हेतु हमें आलोचानात्मक व रचनात्मक दृष्टि वाले व्यक्तियों की आवश्यकता है चूँकि इससे वैज्ञानिक व प्रौघोगिकी के क्षेत्र में नवीन अविष्कार खोजो को प्रोत्साहन मिलेगा।

III शिक्षा के सामाजिक निर्धारक (The Social Determinants of Education)

शिक्षा का स्वरूप उस समाज पर निर्भर करता है जिसमें उसे क्रियान्वित किया जाना है इसी कारण प्रत्येक समाज में बालको के व्यक्तितत्व में भिन्नता होती है। चूँकि प्रत्यके समाज की अपनी निजी सांस्कृतिक , सामाजिक, आर्थिक धार्मिक व राजनैतिक शक्तियाँ होती है और यही शक्तियाँ सामाजिक निर्धारक का कार्य करती है। वास्तव में देखा जाये तो शिक्षा वह प्रविधि है जैसे व्यक्ति

चैतन्य रूप से किसी उददेश्य की पूर्ति हेतु प्रयोग करता है परन्तु जैसे ही उददेश्य बदलता हैं शिक्षा में भी परिवर्तन आ जाता है।

IV सामाजिक अन्त:क्रिया (Social Interaction)

सामाजिक अन्त:क्रिया से अभिप्राय हैव्यक्ति व समूह के मध्य पाये जाने वाले सम्बन्ध जिसके फलस्वरूप उन व्यक्तियों के व्यवहार में परिवर्तन आता है जो उसमें भागीदार होते है। व्यक्ति व समूह के मध्य होने वाली अन्त:क्रिया के परिणाम स्वरूप ही बालक संस्कृति के साथ आत्मीक स्थापित करता है और अपने समूह की संस्कृति व मूल्यों की जानकारी भी प्राप्त करता है कोई भी सामाजिक अन्त:क्रिया जिसके द्वारा बालक या व्यक्ति के व्यवहार मे वांछनीय परिवर्तन आता है, शिक्षा के अर्न्तगत सम्मिलित की जाती है। व्यक्ति समाज में रहता है और समाज के सदस्यों के साथ वह अपने विचारों व भावनाओं को व्यक्त करता है। साथ ही समाज के अन्य सदस्य जब अपने विचार व भावनायें अभिव्यक्त करते हैं तो व्यक्ति उन्हें ग्रहण करता है और अपने विचारों व भावनाओं को नवीन शिक्षा प्रदान करता है। इस प्रकिया को ही सामाजिक अन्त:क्रिया कहते है।

अपनी प्रगति जानिए (Check your Progress)

प्र0 1 आधुनिक समाज के विभिन्न् रूपों के नाम लिखिए।

प्र02 किस प्रकार के समाज में एक व्यक्ति का पूर्ण निरकुंश अधिकार रहा है

(अ) आधुनिक समाज (ब) फासिस्ट समाज

(स) प्रजातान्त्रिक समाज (द) अध्यक्षात्मक समाज

प्र03 बालक को शिक्षित करने का प्रथम उत्तरदायित्व है।

प्र0 4 बालक के व्यवहार में वांछनीय परिवर्तन आता है।

(अ) शिक्षा द्वारा (ब) रीति रिवाज द्वारा

(स) संस्कार द्वारा (द) धन द्वारा

21.5 शैक्षिक समाजशास्त्र (Educational Sociology)

जार्ज पैने (George Payne) को शैक्षिक समाजशास्त्र को जन्मदाता कहा जाता है। 1928 में उनकी एक पुस्तक "शैक्षिक समाजशास्त्र के सिद्वान्त " (Principal of Education) प्रकाशित हुई जिसमें उन्होने कहा कि यह एक नवीन विज्ञान है जो समाजशास्त्र व शिक्षा को जोडता है।

जान डयूवी (John Dewey) ने अपनी पुस्तक स्कूल और समाज के अर्न्तगत इस विज्ञान पर महत्व दिया और कहा कि शिक्षा एक सामाजिक प्रकिया है। जिसके द्वारा व्यक्ति की सामाजिक भावनाओं (Social Feeling) को विकसित किया जाना चाहिए। साथ ही इस प्रकिया के द्वारा व्यक्ति के अर्न्तगत सामाजिक चेतना (Social Consciousness) का विकास भी किया जाना चाहिए और साथ ही साथ शिक्षा की प्रकिया व्यक्ति द्वारा सामाजिक चेतना में भाग लेने में विकसित होती है।

21.5.1 शैक्षिक समाजशास्त्र का अर्थ (Meaning and Definition of Education Sociology)

शैक्षिक समाजशास्त्र शिक्षा तथा समाजशास्त्र का समन्वित रूप है यह समाजशास्त्र का एक महत्तवपूर्ण अंग तथा नवीन शाखा है जो अभी पिछले कुछ ही वर्षो में विकसित हुई है। शैक्षिक समाजशास्त्र वह विज्ञान है जो समाजशास्त्र के उददेश्यों को शैक्षिक क्रिया द्वारा प्राप्त करने का प्रयास करता है अत: यह विज्ञान समाज की सम्पूण संस्थाओं जैसे परिवार, स्कूल, समुदाय , धर्म राज्य, समाचार पत्र एवं रेडियों आदि का अध्ययन करके व्यक्ति को श्रेष्ठ एवं सामाजिक प्राणी बनाने के लिए शिक्षा के उददेश्यो, पाठयक्रमों शिक्षण पद्वतियों तथा अन्य सभी भागों को निर्धारित करता है।

शैक्षिक समाजशास्त्र सामाजिक उन्नति एवं विकास के लिए सामाजिक प्रति क्रियाओं एवं सामाजिक अन्त:क्रियाओ का अध्ययन करता है क्योंकि इनके विषय में ज्ञान के आधार पर ही हम शिक्षा का स्वरूप निश्चित कर सकते है तथा शिक्षा की समस्याओं का समाधान कर सकते है। संक्षेप में शैक्षिक समाजशास्त्र वह विज्ञान है जो शिक्षा सम्बन्धित आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाली प्रक्रियाओं, जनसमूहों, संस्थाओं तथा समितियों का अध्ययन करता है। शैक्षिक समाजशास्त्र का समबन्ध व्यक्ति तथा समाज दोनों की प्रगति से है।

21.5.2 शैक्षिक समाजशास्त्र की प्रकृति (Nature of Education Sociology)

समाज,समाजशास्त्र तथा शैक्षिक समाजशास्त्र का शिक्षा से गहरा संबंध है इसलिए प्रत्येक समाज को अपनी आकांक्षाओं आवश्यकताओं तथा आदर्शो को सामने रखते हुए शिक्षा की प्रकिया को इस प्रकार से नियोजित करता है कि वह अपने आदर्शो को प्राप्त करले तथा उसके सभी व्यक्ति उपयोगी सदस्य बन जायें। यह महान कार्य उसी समय पूरा हो सकता है जब समाज के सभी व्यक्ति उसके आदर्शो के अनुसार अपने व्यवहार में परिवर्तन करते हुए उसके साथ अनुकूल कर सके शिक्षा

इस सम्बन्ध में सहायता कर सकती है। समय तथा परिस्थितियों के अनुसार समाज यह निश्चित करता है किस प्रकार की शिक्षा दी जायें जिससे वह उपयोगी और श्रेष्ठ सदस्य बनकर समाज के सबल सुदृढ तथा शक्तिशाली बना सके।

शिक्षा एक ऐसी प्रकिया है जो मानव जीवन के प्रत्यके पक्ष को प्रभावित करती है मानव समाज का एक अभिन्न अंग है। समाज से परे उसके अस्तित्व एवं विकास की कल्पना नही की जा सकती है। शिक्षा भी एक ऐसी प्रकिया है जो समाज में ही चलती रहती है। शिक्षा का स्वरूप व उसकी प्रकृति समाज के स्वरूप व प्रकृति पर निर्भर करता है और इसी कारण यह कहा जा सकता है कि शिक्षा और समाज को एक दूसरे से पृथक करना कठिन ही नही वरन असम्भव है। शिक्षा और समाज के परस्पर सम्बन्धों का अध्ययन शिक्षा के सामाजिक आधार के अन्तरगत आता है।

21.5.3 शैक्षिक समाजशास्त्र का क्षेत्र (Scope of Educational Management0

शैक्षिक समाजशास्त्र एक महत्तवपूर्ण तथा विस्तृत विज्ञान है इसके अन्तर्गत शिक्षा तथा सामाजिक समबन्धों के परस्पर प्रभावों का अध्ययन किया जाता है। शैक्षिक समाजशास्त्र के क्षेत्र या विषय वस्तु में निम्नलिखित को सम्मिलित किया जा सकता है।
1 शिक्षा की सम्पूर्ण प्रकिया पर वाहय सामाजिक व्यवस्था के प्रभाव का अध्ययन करता है |

2 स्कूल व अन्य आन्तरिक संगठनों का समाज के अन्य साधनों से सम्बन्ध का अध्ययन करना |

3 कक्षा के अंदर होने वाली सामाजिक अन्तक्रिया को समाजशास्त्रीय सिद्वान्तों व पद्वतियो के सनदर्भ में देखना |

4 व्यक्ति पर सामाजिक तथा सांस्कृतिक वातावरण का प्रभाव व्यक्ति और समाज की दृष्टि से पाठयक्रम में परिवर्तन |

5 समाज,उसकी मागें एवं आवश्यकताओं, सामाजिक प्रकिया, सामाजिक संगठन सामाजिक नियन्त्रण, सामाजिक परिवर्तन सामाजिक प्रगति आदि का अध्ययन।
6 शिक्षक,समाज में उसका स्थान, छात्रों से उसका सम्बन्ध उसको प्रभावित करने वाले सामाजिक तत्व |

7 समाचार पत्र,रेडियों , टेलीविजन,सिनेमा पुस्तकालय प्रेस आदि तथा इनका सामाजिक जीवन में स्थान है।

परिभाषा कार्टर Carter) के शब्दो में "शैक्षिक समाजशास्त्र में समाजशास्त्र के उन पहलुओं का अध्ययन है जो कि शैक्षिक प्रकिया में सीखनें के मूल्यवान कार्यक्रम और सीखने की प्रकिया के नियन्त्रण की ओर संकेत करते है।

ओटोवे(Otave) के अनुसार शैक्षिक समाजशास्त्र इस मान्यता से प्रारम्भ होता है कि शिक्षा एक क्रिया है जो कि समाज में होती है और समाज शिक्षा की प्रकृति को निर्धारित करता है।

21.5.4 शैक्षिक समाजशास्त्र के उददेश्य (Aims of Educational Sociology)

शैक्षिक समाजशास्त्र के उदेदश्य निम्नलिखित है

1 समाज के सन्दर्भ में शिक्षक के कार्य का ज्ञान प्राप्त करना और सामाजिक प्रगति के दृष्टिकोण से विद्यालय के कार्य का ज्ञान प्राप्त करना |

2 सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक प्रवृतियों को शिक्षा के साधन के रूप में समझते हुए शिक्षा के पाठ्यक्रम का सामाजिक दृष्टिकोण से नियोजन करना।

3 सामाजिक तत्वों का अध्ययन करना और व्यक्ति पर पडने वाले उनके प्रभावों को समझना |

4 प्रजातान्त्रिक विचारधाराओं को समझना |

5 उपर्युक्त उदेदश्यों की प्राप्ति के लिए अनुरूप अनुसन्धान की विधियों का उपयोग करना।

अपनी प्रोगेस जानिए (Check your Progress)

प्र 1. शैक्षिक समाजशाष्त्र का जन्मदाता किसे कहा जाता है।

प्र.2 Principal of Educational Sociology नामक पुस्तक किस विद्वान की है

प्र.3 शिक्षा और समाज के परस्पर सम्बन्धों का अध्ययन का आधार है।
(अ) सामाजिक आधार (ब) राजनैतिक आधार (स) धार्मिक आधार (द) शैक्षिक आधार

प्र.4 शिक्षा और समाज एक दूसरे को प्रभावित करते है-

(अ) नही (ब) कभी नही (स) कभी कभी (द) हॉ

21.6 सारांश (Summary)

शैक्षिक समाजशास्त्र ने शिक्षा के उददेश्यों, पाठयक्रम तथा शिक्षक विधियों को प्रभावित किया है। शैक्षिक समाजशास्त्र के अनुसार वे शिक्षण विधियॉ अच्छी मानी जाती है। शैक्षिक समाजशास्त्र के अनुसार वे शिक्षण विधियॉ अच्छी मानी जाती है। जो छात्रों को ऐसा ज्ञान प्रदान करे कि वे विभिन्न सामाजिक परिस्थितयों से करने में योग दे जो शिक्षण विधि सामाजिक व्यवहार में सहायक होगी, वे सामूहिक योजनाओं तथा प्रकियाओं को समझाने में सहायक होगी। शैक्षिक समाजशास्त्र में शिक्षा को लोक तन्त्रीय दृष्टिकोण प्रदान किया है। विद्यालय में कृतिमता को दूर रखा जाता है।

बालक का पाठयक्रम उसकी आवश्यकताओं के अनुसार किया जाना चाहिए ताकि वह अधिक से अधिक अपना व समाज का विकास कर सके। छात्र को विषय चयन में पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान की जाये ताकि वह अपनी योगयतानुसार अपना विकास कर समाज को एक नई शिक्षा प्रदान कर सके। छात्र को विषय चयन में पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान की जायें ताकि वह अपनी योगयतानुसार अपना विकास कर समाज को एक नई दिशा प्रदान कर सके।

21.7 शब्दावली (Glossary)

सामाजिक विरासत से हमारा अभिप्राय पीढी दर पीढी चले आ रहे रीति रिवाज, प्रथायें परम्परा में जो एक समाज अपने अपने वाले पीढियों को सूथानन्तरित करता हैं| परम्परागत रूप से अपनायी या प्राप्त होने वाले क्रियाओं को सामाजिक विरासत कहते है।

फासिस्ट समाज में एक व्यक्ति का शासन सत्ता व समाज पर पूर्ण अधिकार होता है। उसके मुख से निकलने वाले शब्द ही कानून आदेश है जिनका पालन करना आवश्यक है। आज्ञा के उल्लघंन पर कठोर दण्ड का प्रावधान था उदाहरण के रूप में जर्मनी जापान और इटली आदि देश है।

भौतिकवादी समाज - भौतिकवादी समाज से हमारा अभिप्राय उस समाज से है जो अपने लिए सुख सुविधाओं आने वाली पीढी के लिए भी इन साधनों में वृद्वि के लिए प्रयासरत रहता है।

21.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर निम्नलिखित है

खंड एक

उत्तर (1) सामाजिक व्यावहारो (2) आगस्त काम्टे

(3) ओडम (4) एक इकाई

खन्ड दो

उत्तर (1) भौतिकवादी समाज, साम्यवादी, प्रयोगवादी समाज, आर्दशवादी समाज, जनतंत्रवादी समाज आदि ।

(2) फ़ासिस्ट समाज ।

(3) माता-पिता

(4) शिक्षा

खन्ड तीन

उत्तर (1) जार्ज पैने (2) जार्ज पैने (3) सामाजिक आधार (5) हॉ

21.9 सन्दर्भ (Reference)

1.लाल एण्ड पलोड, *एजुकेशनल थॉट एण्ड प्रैक्टिस*, मेरठ: आर0लाल प्रकाशन ,

2.पाण्डा, अ. कु. (2011). *शिक्षा दर्शन*. कानपुर: साहित्य रत्नालय,

3.सक्सेना, एन0आर0 स्वरूप., शिखा, च. (2010). *उदीयमान भारतीय समाज मे शिक्षक,* मेरठ: आर लाल प्रकाशन.

4.एलैक्स, शी. मै. (2008). *शिक्षा दर्शन*. नई दिल्ली: रजत प्रकाशन.

5.ओड, एल. के. *शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि*. राजस्थान ग्रंथ अकादमी.

21.10 उपयोगी/ सहायक ग्रंथ

1. मिश्र, (डॉ) के.के. *आधुनिक भारत मे सामाजिक परिवर्तन.*
2. वर्मा ओ. प्र. *समाजशाष्त्रीय द्रष्टिकोण.*

3. शर्मा आर.के. *सामाजिक विज्ञान / अध्ययन शिक्षण.*
4. शर्मा. वी. एल. *सामाजिक विज्ञान शिक्षण.*

5.शर्मा रा.ना. *शैक्षिक समाजशाष्त्र*

6. सरोज स. (डॉ) *शिक्षा के दार्शनिक एव सामाजिक आधार*

7. *शोध पत्रिका*

8. *इंटरनेट*

21.11 दीर्घ उत्तर वाले प्रश्न (Long Answer Types Question)

प्र.1 समाजशाश्त्र का अर्थ लिखिय। समाजशाष्त्र और शैक्षिक समाजशाष्त्र के आपसी सम्बन्ध का विस्त्रित वर्णन किजिय।

Write the meaning of sociology .Explain in Details Interaction relation of Sociology.

प्र. 2 समाजशाष्त्र की परिभाषा लिखिय व इसके उद्देश्यो की विस्त्रत व्याख्या किजिय।
Write the definition of Sociology .Explain in details aims of Society.

प्र3. शिक्षा और समाज के सम्बन्धो की विस्त्रत रुप मे लिखिय ।

Explain in details the relationship of education and society.

प्र.4 फासिस्ट समाज व प्रजातांत्रिक समाज मे अंतर का वर्णन किजिय ।

Explain the difference fasist Society and Democrative Society.

प्र 5. शैक्षिक समाजशाष्त्र से आप क्या समझते है शेक्षिक समाजशाष्त्र के क्षेत्र का वर्णन किजिय।

What do you understand the Education Sociology. Explain the scope of Education Society.

इकाई- 22 शिक्षा और समाज, शिक्षा एक सामाजिक व्यवस्था, सामाजिक उन्नति और सुधार (Education and Society , Education as a Social System ,Role of social progress and modification)

22.1 प्रस्तावना (Introduction)
22.2 उद्देश्य (Objectives)
भाग-1
22.3 शिक्षा और समाज (Education& Society)
    22.3.1 शिक्षा का अर्थ (Meaning of Education)
    22.3.2 समाज का अर्थ (Meaning of Society)
        अपनी उन्नति जानिए (Check your Progress)
भाग-2
22.4 शिक्षा एक सामाजिक व्यवस्था (Education as social system)
    22.4.1 समाज का शिक्षा पर प्रभाव (Impact of Society on Education)
    22.4.2 शिक्षा का समाज पर प्रभाव (Impact on Education on Society)
        अपनी उन्नति जानिए (Check your Progress)
भाग-3
22.5 सामाजिक विकास की प्रक्रिया में शिक्षा की भूमिका (Role of Education in the Process of Social Development)
    22.5.1 शिक्षा के समाज के प्रति कर्तव्य (Duties of Education Towards Society)
    22.5.2 आधुनिकीकरण की प्रकृति (Nature of Modernization)
    22.5.3 सामाजिक परिवर्तन एवं आधुनिकीकरण (Social change and Modernization)
    22.5.4 आधुनिकीकरण की विशेष ताएं Elements of Characteristics of Moderization)

22.5.5 शिक्षा द्वारा आधुनिकीकरण (Modernization Through Education)

अपनी उन्नति जानिए (Check your Progress)

22.6 सारांश (Summery)

22.7 शब्दावली (Glossary)

22.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer of Exercise Question)

22.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Reference)

22.10 सहायक/उपयोगी पाठ्यक्रम (Reference Book)

22.11 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Question)

22.1 प्रस्तावना Introduction

शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जो मानव जीवन के प्रत्येक पक्ष को प्रभावित करती है। मानव समाज का एक अभिन्न अंग है समाज से परे उसके अस्तित्व की कल्पना नहीं की जा सकती है। शिक्षा भी एक ऐसी प्रक्रिया है जो समाज में ही चलती रहती है। शिक्षा का स्वरूप व उसकी प्रकृति समाज के स्वरूप व प्रकृति पर निर्भर करती है और इसी कारण यह कहा जाता है कि शिक्षा और समाज को एक दूसरे से पृथक करना कठिन ही नहीं वरन् असम्भव है। विद्यालय एक समिति है और शिक्षा एक संस्था है। इस प्रकार स्पष्ट है कि विद्यालय समाज का महत्वपूर्ण अंग है यहां पर समाज से तात्पर्य सामान्य समाज से नहीं बल्कि विशिष्ट समाज से है। विशिष्ट समाज से तात्पर्य एक विशेष देश की सीमाओं में रहने वाले मानव समाज से होता है जिसमें कि एक विशिष्ट संस्कृति पायी जाती है, विद्यालय का इसी विशिष्ट समाज से सम्बंध होता है। इसी कारण भिन्न-भिन्न देशो में शिक्षाशास्त्रियों ने शिक्षा के भिन्न-भिन्न उद्देश्य बतलाये हैं उदाहरण के लिए प्राचीन भारत में शिक्षा का उद्देश्य मोक्ष प्राप्ति था, जबकि चीन मे प्राचीन समय में विद्वता प्राप्त करना था। समय व परिस्थिति के अनुसार शिक्षा व समाज का स्वरूप बदलता रहता है। आज भारत में शिक्षा का विकास तेजी से हो रहा है, जिसके कारण हमें समाज में तेजी से परिवर्तन दिखायी दे रहे हैं। आज शिक्षा के माध्यम से कोई भी व्यक्ति किसी भी पद पर आसीन हो सकता है। सभी को पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त हो रही है, जिसके कारण समाज में समानता का भाव बढ़ रहा है।

22.2 उद्देश्य Objectives

1. शिक्षा और समाज के सम्बंधों का ज्ञान प्राप्त कराना।

2. समाज द्वारा शिक्षा पर प्रभावशीलता का अध्ययन कराना।
3. शिक्षा द्वारा समाज पर प्रभावशीलता का अध्ययन कराना।
4. सामाजिक विकास में शिक्षा की भूमिका व महत्ता का अध्ययन कराना।
5. शिक्षा द्वारा आधुनिकीकरण के लक्षणों, विशेष ताओ का अध्ययन कराना।
6. शिक्षा द्वारा आधुनिकीकरण में योगदान।

भाग-एक

22.3 शिक्षा और समाज, शिक्षा एक सामाजिक व्यवस्था, सामाजिक उन्नति और सुधार (Education and Society , Education as a Social System ,Role of social progress and modification)

समाज और पाठशाला के घनिष्ठ सम्बंध का विवेचन करते हुए शिक्षाशास्त्री टी.पी. नन ने लिखा है कि ''किसी राष्ट्र के विद्यालय उनके जीवन का एक अंग है, जिसका विषिष्ठ कार्य उसकी आध्यात्मिक शक्ति को संगठित करना, उसकी ऐतिहासिक निरन्तरता को बनाये रखना, उसे भूतकालीन कारनामों को सुरक्षित रखना है।'' विद्यालय के द्वारा राष्ट्र को अपने उन स्थायी स्रोतों से परिचित होना चाहिए जिनसे कि उनके जीवन के सर्वोत्तम क्षणों ने सदैव प्रेरणा ली है। विद्यालय को बालक राष्ट्रीय व भावात्मक एकता उत्पन्न की जानी चाहिए, जिससे उसे उचित नागरिकता का प्रशिक्षण मिल सके। साथ ही शिक्षा व्यक्ति की योग्यता का विकास इस कारण करें कि वह समाज को अपनी मौलिक देन उसके विकास के क्षेत्र में प्रदान कर सके।

संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि समाज के सभी सदस्यों को शिक्षित करना सामाजिक दायित्व है। व्यक्ति का विकास और शिक्षा का विकास शून्य में नहीं होता। यदि हम व्यक्ति को सही रूप में विकसित करना चाहते हैं तो हमे यह तय करना होगा कि हमारे विकास का आधार क्या होना चाहिए? इस प्रश्न के उत्तर में यह कहा जा सकता है कि समाज के उद्देश्य, मूल्य मानक, मान्यताओं, रीति रिवाज व परम्पराओं से अच्छा आधार शिक्षा का कोई नहीं हो सकता। इस कारण हमारे लिए यह आवश्यक है कि शिक्षा व समाज के घनिष्ठ सम्बंध को समझंने व उसे स्वीकार करें। यदि हम कोई भी उन्नति देखना चाहते हैं तो हमें उसके एक-एक सदस्य को शिक्षित करना होगा।

22.3.1 शिक्षा का अर्थ Meaning and Society

शिक्षा शब्द की व्युत्पति संस्कृत की 'शिक्ष' धातु से हुई है जिसका अर्थ है सीखना और सिखाना। इस अर्थ में हम देखें तो शिक्षा में वह सब कुछ निहित है जो हम समाज में रहकर सीखते हैं। शिक्षाशास्त्री शिक्षा शब्द का प्रयोग प्रायः तीन रूपों में करते हैं1.

1. ज्ञान knowledge
2. पाठ्यचर्या का विषय Subject of Curriculum
3. व्यवहार में परिवर्तन लाने वाली प्रक्रिया Process of Changing the Behavior

वास्तव में यदि देखा जाए तो शिक्षा का तीसरा अर्थ अधिक उचित प्रतीत होता है। समाज में रहकर व्यक्ति जो कुछ भी सीखता है उसी के परिणामस्वरूप वह स्वयं को पाशविक प्रवृतियों से ऊंचा उठाता है और सभ्य एवं सामाजिक प्राणी बनने की इच्छा रखता है। शिक्षा के द्वारा ही बालक का मार्ग दर्शन होता है, परन्तु हम शिक्षा को विद्यालय की चाहरदीवारी के अन्दर चलने वाली प्रक्रिया ही नहीं मानते वरन् इसे समाज में अनवरत चलने वाली प्रक्रिया के रूप में स्वीकार करें। मानव जीवन को सजाने व संवारने में शिक्षा की भूमिका बहुत ही महत्वपूर्ण रही है। इसके साथ ही शिक्षा के द्वारा ही समाज अपनी संस्कृति व सभ्यता की रक्षा करते हुए उसे एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को स्थानान्तरित करता है। वास्तव में शिक्षा ही वह प्रक्रिया है जो बालक को उचित प्रशिक्षण देते हुए उसका मार्गदर्शन करती है।

22.3.2 समाज का अर्थ (Meaning of Society)

सामान्य अर्थों में दो या दो से अधिक व्यक्तियों के समूह को समाज कहते हैं। परन्तु इन व्यक्तियों के मध्य अंतःक्रिया का होना आवश्यक है। प्रसिद्ध समाजशाश्त्री मैकाइवर तथा पैज ने अपनी पुस्तक 'समाज (Society) में समाज का अर्थ बताते हुए कहा है कि ''समाज सामाजिक सम्बंधों का जाल है।'' (Society is the Cobuleb of social) इस परिभाषा से यह स्पष्ट है कि समाज मनुष्यों का वह समूह है जो आपस में एक दूसरे से सम्बंधित होते हैं।

आरसी कलिगवुड (R.C Collingwood) ने समाज को परिभाषित करते हुए कहा कि ''समाज एक प्रकार का समुदाय है (अथवा समुदाय का भाग है) जिसके सदस्य अपने जीवन के तौर तरीकों के प्रति सामाजिक रूप से चैतन्य होते हैं तथा वह समान उद्देश्यो व मूल्यों के आधार पर एक दूसरे से बंधे होते हैं।''

अपनी उन्नति जानिए Check Your Progress

प्र. 1 क्या शिक्षा द्वारा सामाजिक विकास होता है?

(अ) नहीं (ब) कभी-कभी (स) हां (द) स्पष्ट नहीं।

प्र. 2 ‘‘किसी राष्ट्र के विद्यालय उनके जीवन का अंग हैं, जिसका विशिष्ट कार्य उसकी आध्यात्मिक शक्ति को

बनाये रखना है’’ यह परिभाषा किस विद्वान की है?

प्र. 3 समाज (Society) किस विद्वान की पुस्तक है?

प्र. 4 दो व्यक्तियों के एकत्रित होने को क्या हम समाज कहेंगे?

(अ) हां (ब) नहीं (स) अंतःक्रिया होने पर (द) सभी सत्य

भाग दो

22.4 शिक्षा एक सामाजिक व्यवस्था (Education as social system)

बालक के व्यक्तित्व पर स्कूल का बड़ा प्रभाव पड़ता है। बालक के लिए उसका स्कूल ही उसका समाज है, जहां उसका समाजीकरण होता है। उसके गुणों की अभिव्यक्ति होती है और उसको अपने व्यक्तित्व का अवसर मिलता है। शिक्षक व्यक्तित्व और चरित्र उसके सामने एक आदर्श के रूप में होता है। उसका सीधा प्रभाव बच्चे पर पड़ता है, क्योंकि बच्चा माता-पिता से अधिक अपने अध्यापक की बात मानता है। वह अध्यापक को अपना रोल-मॉडल मानता है। शिक्षक के साथ-साथ सहपाठियों को भी बालक के व्यक्तित्व को प्रभावित करने का मौका मिलता है। उनके समूह में उसका जो कार्य और स्थिति होती है वह आगे चलकर सामाजिक जीवन में उसके कार्य और स्थिति को निष्चित करने में बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका सिद्ध होती है। अतः शिक्षा बालक के व्यक्ति पर प्रभाव डालती है। शिक्षा बालक को समाज के अनुकूल बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। समाज अपने व्यक्तियों को जिस रूप में देखना चाहता है, शिक्षा उस कार्य में सकारात्मक भूमिका अदा करती है। समय के मांग के आधार पर शिक्षा में परिवर्तन होता रहता है, जिससे समाज तेजी से विकास की ओर उन्मुख होता है।

22.4.1 समाज का शिक्षा पर प्रभाव Impact of Social System

समाज द्वारा शिक्षा पर प्रभाव की स्थिति का वर्णन निम्न रूपों में किया जा रहा है ।

i आर्थिक दशाओ का प्रभाव Influence of Economic Conditions

समाज की आर्थिक दशाओ का शिक्षा पर गहरा प्रभाव पड़ता है। जिन समाजों की आर्थिक स्थिति अच्छी होती है, वहां शिक्षा की व्यवस्था भी उन्नत होती है। वहां शिक्षा के प्रचार करने के लिए अधिकाधिक विद्यालय खोले जाते हैं। उनके भवन इस प्रकार के होते हैं कि उनमें धूप, प्रकाश , वायु आदि के आने के लिए खिड़कियों तथा रोशनदानों की व्यवस्था समुचित होती है। विद्यालय में सभी प्रकार की शिक्षण सामग्री उपलब्ध होती है। ऐसे स्कूलों के पास फर्नीचर, प्रयोगशालाएँ, पुस्तकालय एवं वाचनालय तथा खुले खेल के मैदान भी होते हैं। साथ ही वहां के पाठ्यक्रम में उन सभी विषयों को सम्मिलित किया जाता है, जिनकी सहायता से समाज आर्थिक दृष्टि से उन्नति करता है। हमारे देश की आर्थिक स्थिति शोचनीय है। अतः हमारे यहां वैज्ञानिक, व्यवासायिक, प्राविधिक एवं कृषि, शिक्षा की व्यवस्था की जा रही है, ताकि देश आर्थिक रूप से उन्नत हो सके।

Ii राजनैतिक दशाओ का प्रभाव Influence of Political Conditions

समाज की राजनैतिक दशा का भी शिक्षा पर गहरा प्रभाव पड़ता है। प्रत्येक समाज में राजनैतिक विचारधारा जिस प्रकार की होती है, वहां उसी के अनुरूप शिक्षा की व्यवस्था की जाती है। आज भारत, चीन, अमेरिका आदि देशो में शिक्षा की व्यवस्था इन देशो की राजनैतिक विचारधाराओं के अनुसार की जाती है।

iii समाज की प्रकृति और आदर्शो का प्रभाव Influence of Social structure and ideals

समाज का स्वरूप, ढांचा, आदर्श तथा आवश्यकतायें जैसी होगी उसी प्रकार का स्वरूप निर्मित किया जाता है। यदि समाज की प्रकृति प्रजातान्त्रिक है तो शिक्षा में समानता, स्वतंत्रता, बन्धुत्व, सहयोग आदि पर बल दिया जाता है। जबकि दूसरी ओर यदि समाज की प्रकृति तानाशाही है तो शिक्षा में अनुशासन आज्ञापालन आदि बातों पर अधिक बल दिया जाता है। भारत में आज प्रत्येक बच्चे के लिए अनिवार्य एवं निशुल्क शिक्षा अधिनियम के माध्यम से सभी बच्चों के लिए शिक्षा की व्यवस्था की गयी है। शिक्षित होकर बच्चे राष्ट्र के विकास में अपनी भागीदारी करेंगे।

iv सामाजिक परिवर्तनों का प्रभाव Influence of social change

प्रत्येक समाज में समय के साथ परिवर्तन होते रहते हैं। कोई भी समाज स्थिर नहीं होता। सामाजिक परिवर्तन अनेक कारणों से होता है जैसे आर्थिक, सांस्कृतिक, प्रौद्योगिक, राजनैतिक इत्यादि। जब समाज की संरचना, स्वरूप तथा कार्य परिवर्तित हो जाते हैं तब शिक्षा में भी परिवर्तन लाने की आवश्यक्ता होती है। जैसे भारत में शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार ब्राहमण जाति व उच्च वर्ग के लोगों को था लेकिन आज सभी भारतीय अपनी योग्यता के आधार पर शिक्षा प्राप्त व प्रदान कर सकते हैं।

v सामाजिक दृष्टिकोण का प्रभाव Influence of Social change

शिक्षा को प्रभावित करने से सामाजिक दृष्टिकोण भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। जिन समाजों के व्यक्तियों का दृष्टिकोण रूढ़ीवादी है तो वहां केवल परम्परागत शिक्षा पर बल दिया जाता है तथा शिक्षा में नवीन प्रवृत्तियों को लागू करना कठिन होता है। इसके विपरीत जिन समाजों का दृष्टिकोण प्रगतिशील होता है वहां की शिक्षा में नये-नये विचारों, सिद्धांतों, प्रवृत्तियों तथा शिक्षण विधियों को स्थान दिया जाता है तथा बालक शिक्षा के क्षेत्र में चर्तुमुखी विकास करते हुए समाज का एक आदर्श व्यक्ति बनता है।

vi धार्मिक दशाओ का प्रभाव Influence of Religious Condition

समाज की धार्मिक मान्यताओं तथा विचारों का शिक्षा पर गहरा प्रभाव पड़ता है। धर्म के क्षेत्र में जिस प्रकार मान्यतायें तथा विचार होते हैं शिक्षा उसी के अनुरूप संगठित की जाती है। जैसे जिन समाजों में धर्म के प्रति कट्टरता पायी जाती है, वहां बालकों को केवल अपने धर्म की शिक्षा दी जाती है अन्य धर्मों के प्रति उनके मन में कोई सम्मान की भावना नहीं होती है। लेकिन भारत जैसे धर्मनिरपेक्ष राज्य में सभी धर्मों को समान सम्मान दिया जाता है।

22.4.2. शिक्षा का समाज पर प्रभाव Impact of Education on Society

जिस प्रकार समाज द्वारा शिक्षा पर प्रभाव डाला जाता है उसी प्रकार समयानुसार शिक्षा भी समाज को प्रभावित करती है।

i बालक का समाजीकरण Socialization of the Child

समाजीकरण की प्रक्रिया वैसे तो परिवार से प्रारम्भ होती है लेकिन बालक के समाजीकरण में विद्यालय की भी अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका है। समाजीकरण के द्वारा बालक को समूह के नियमों, आदर्शो और प्रतिमानों के अनुसार चलना सिखाया जाता है तथा उसके व्यक्तिव का निर्माण और विकास किया जाता है। विद्यालय में बालक का सम्पर्क विभिन्न परिवारों से आये हुए अपने साथियों से होता है। साथ ही शिक्षक का चरित्र उसके लिए आदर्श होता है ऐसी स्थिति में वह बहुत कुछ सीखता है।

ii सामाजिक नियन्त्रण Social Control

सामाजिक नियन्त्रण के द्वारा व्यक्ति के व्यवहार को मर्यादित किया जाता है तथा उसे समाज विरोधी कार्य करने से रोका जाता है। शिक्षा के द्वारा बालकों को विद्यालय में अनुशासन का महत्व सिखाया जाता है, नियमों का पालन करना सिखाया जाता है। अनुचित कार्य करने पर साधारण तथा कठोर दण्ड की व्यवस्था की जाती है। इससे बालक सामाजिक नियन्त्रण में रहना सीखता है।

iii सामाजिक विरासत का संरक्षण Preservation of Social Heritage

प्रत्येक समाज की अपनी एक सामाजिक विरासत अर्थात् सभ्यता, संस्कृति, रीति रिवाज, धर्म, परम्परायें, विश्वास कला आदि होती है। इस विरासत या धरोहर को प्रत्येक समाज सुरक्षित रखना चाहता है। शिक्षा के द्वारा पूर्वजों की इस धरोहर को अगली पीढ़ी को हस्तांतरित किया जाता है। इस प्रकार संस्कृति का हस्तांतरण होते रहने से यह सुरक्षित रहती है तथा समाज का अस्तित्व बना रहता है।

Iv सामाजिक भावना की जागृति Awakening of Social Feeling

व्यक्ति तथा समाज का अत्यन्त गहरा सम्बंध है। व्यक्ति समाज में रहना पसन्द करता है। यदि कोई व्यक्ति समाज में नहीं रहना चाहता है तो वह कोई मानव नहीं होगा वह या तो देवता हो सकता है या कोई पशु क्योंकि व्यक्ति ही समाज का निर्माण करता है। एक स्वस्थ समाज के निर्माण के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्तियों में परोपकर, जनकल्याण, सामाजिकता की भावना तथा अन्य सामाजिक गुणों का विकास हो। शिक्षा द्वारा इन गुणों का विकास किया जाता है।

v सामाजिक परिवर्तन Social Change

ओटावे के अनुसार ‘‘शिक्षा सामाजिक परिवर्तन लाने में महत्वपूर्ण कार्य करती है।’’ आधुनिक विज्ञान तथा प्रविधियों, (Techniques) के क्षेत्र में विभिन्न अनुसंधानों के परिणामस्वरूप आश्चर्य परिवर्तन होते रहते हैं। शिक्षा इन अनुसंधानों का ज्ञान कराती है तथा इनके द्वारा होने वाले लाभों पर प्रकाश डालती हुई जन साधारण को इनका प्रयोग करने के लिए प्रेरित करती है। इन्हीं प्रयोगों से जनसाधारण के विचारों, आदर्शो , मूल्यों तथा लक्ष्यों में परिवर्तन हो जाता है।

vi समाज का राजनीतिक विकास Political Development of Society

शिक्षित व्यक्तियों में राजनैतिक जागरूकता आनी प्रारम्भ हो जाती है। उन्हें अपने कर्तव्यों और अधिकारों का समुचित ज्ञान रहता है। इसके अतिरिक्त शिक्षा के द्वारा व्यक्ति विभिन्न प्रकार की राजनैतिक व्यवस्थाओं और विचारधाराओं का ज्ञान प्राप्त करता है। इस ज्ञान के आधार पर वह अपने देश की राजनैतिक व्यवस्थाओं और विचारधाराओं की तुलना अन्य देशो की व्यवस्थाओं से करके उसका मूल्यांकन कर सकता है। इसके अतिरिक्त शिक्षित व्यक्ति ही देश की राजनैतिक व्यवस्था की रक्षा करते हैं और यदि उनमें कोई कमी हो तो उसे सुधारने का भी प्रयत्न करते हैं। इस प्रकार शिक्षा समाज का राजनैतिक विकास करती है।

अपनी उन्नति जांचिए (Check Your Progress)

प्र.1- छात्र किसको अपना रोल मॉडल मानता है।

(अ) माता (ब) पिता (स) मित्रों (द) अध्यापक

प्र.2- अमेरिका में किस प्रकार की व्यवस्था है।

(अ) अध्यक्षात्मक (ब) लोकतन्त्रात्मक (स) फासिस्टवाद (द) प्रयोजनवादी

प्र.3- बालक के सामाजिक रण में प्रमुख भूमिका किसकी होती है।

(अ) परिवार (ब) विद्यालय (स) समाज (द) पड़ोस

प्र.4- क्या शिक्षा द्वारा समाज में परिवर्तन होता है।

(अ) नहीं (ब) हां (स) कभी नहीं (द) बहुत कम

भाग तीन

22.5 सामाजिक विकास की प्रक्रिया में शिक्षा की भूमिका (Role of Education in the Process of Social Development

सामाजिक विकास की प्रक्रिया में शिक्षा का गहरा सम्बंध है। समाज में निम्न वर्ग, मध्यम वर्ग व उच्च वर्ग पाये जाते हैं। निम्न वर्ग व मध्यम वर्ग शिक्षा के माध्यम से अपना स्तर ऊंचा करना चाहता है। शिक्षा के माध्यम से वह अपनी स्थिति में सुधार करते हुए समाज में अपना एक अच्छा स्थान प्राप्त करता है, जिससे उसका अपना व्यक्तिगत विकास तो होता ही है साथ ही सामाजिक विकास भी होता है। शिक्षा व्यक्ति को इस प्रकार तैयार करती है कि उसका विकास तेजी से ऊपर की ओर हो। यदि कोई व्यक्ति धनी व सम्पन्न होने के बावजूद शिक्षा से वंचित रहता है तो समाज द्वारा उसको अधिक सम्मान नहीं दिया जाता है। अतः शिक्षा हमारे जीवन के लिए महत्वपूर्ण है। शिक्षा के द्वारा हम अपना सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक, नैतिक स्तर को ऊंचा उठाकर अपना व राष्ट्र के विकास में भागीदारी करते हैं। यही विकास हमारा राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अपने देश को विकसित राष्ट्रों की श्रेणी के लिए तैयार करता है।

22.5.1 शिक्षा के समाज के प्रति कर्तव्य ;Duties of Education Towards Society

शिक्षा एक अमूल्य रत्न है। इसको प्रत्येक व्यक्ति को प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए। क्योंकि शिक्षा के द्वारा व्यक्तिगतम विकास तो होता ही है, वह समाज भी तेजी से विकास करता है। समाज के विकास हेतु शिक्षा के कुछ कर्तव्य निम्न प्रकार हैं

I समाज की सभ्यता एवं संस्कृति का विकास Development of Civilization and Culture

समाज की सभ्यता एवं संस्कृति के निरन्तर विकास किये जाने पर ही समाज प्रगति करता है। यह महत्वपूर्ण उदेश्य शिक्षा को ही पूरा करना चाहिए। जो शिक्षा सभ्यता और संस्कृति का संरक्षण करती है और व्यक्तियों को प्रगति करने के योग्य बनाती है, वहीं शिक्षा सर्वोत्तम होती है।

ii **समाज की सभ्यता एवं संस्कृति का संरक्षण Preservation of Civilization and Culture**

शिक्षा का सर्वप्रथम कार्य समाज की सभ्यता एवं संस्कृति का संरक्षण करना है। समाज के रीति-रिवाज, प्रथायें, मान्यतायें, भाषा और आदर्श संस्कृति के महत्वपूर्ण अंग होते हैं। अतः शिक्षा का कार्य इन सबका संरक्षण करना है।

iii सभ्यता एवं संस्कृति का पोषण Maintenance of Civilization

शिक्षा का दूसरा कार्य समाज की सभ्यता एवं संस्कृति का पोषण करना है। शिक्षा के द्वारा व्यक्तियों को उस समाज की सभ्यता एवं संस्कृति का केवल सैद्धान्तिक ज्ञान ही नहीं प्रदान किया जाना चाहिए बल्कि व्यक्तियों को इस प्रकार तैयार करना चाहिए कि वे उसे अपने जीवन में उतारते हुए इसी अनुसार व्यवहार करें।

Iv बालकों की रचनात्मक शक्तियों का विकास Development of Constructive Power

शिक्षा का एक महत्वपूर्ण कार्य बालकों की रचनात्मक और सृजनात्मक शक्तियों का विकास करना है। जब तक शिक्षा बालकों की इन शक्तियों को पूर्ण नहीं करेगी, तब तक वे समाज के विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान नहीं दे सकते हैं। इस प्रकार शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जिसके द्वारा बालकों की रचनात्मक शक्तियों का विकास हो सके।

V पाठ्यक्रम में सुधार Improvement of Social Needs

शिक्षा का कर्तव्य अपने पाठ्यक्रम में सुधार करना है। यदि समाज का स्वरूप तथा दशायें बदलती हैं तब शिक्षा का स्वरूप बदलना भी आवश्यक हो जाता है। शिक्षा के स्वरूप में परिवर्तन लाने के लिए पाठयक्रम मे सुधार किया जाना चाहिए।

vi समाज की आवश्यकताओं को पूरा करना Complet the Need of Society

शिक्षा का महत्वपूर्ण कर्तव्य समाज की आष्वयकताओं को पूरा करना है। प्रत्येक समाज की आवश्यकतायें देश काल तथा परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तित होती रहती हैं। शिक्षा का कर्तव्य है कि वह समाज की परिवर्तित आवश्यकताओं को पहचाने और व्यक्तियों को इस प्रकार से प्रशिक्षित करें कि समाज की नवीन आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके।

22.5.2 आधुनिकीकरण की प्रकृति

आधुनिकीकरण का अत्यन्त सरल व संक्षिप्त अर्थ है वह प्रयास करना या ऐसा प्रभाव डालना जिससे कि एक व्यक्ति, संस्था, समुदाय या समाज आधुनिक या नए समझे जाने वाले मूल्यों, विचारों, दृष्टिकोणों, संरचनाओं व संगठनों को अपनाने का प्रयास करें। सामान्यतया जब कभी आधुनिकीकरण की चर्चा की जाती है तो पश्चिमी प्रजातंत्रीय देशो, विशेषकर अमेरिका, इग्लैण्ड, फ्रांस आदि द्वारा प्राप्त की गई महान औद्यौगिक प्रगति तथा भौतिक सुविधाओं की प्रचुरता के संदर्भ को ध्यान में रखा जाता है। उन देशो में आधुनिक जीवन में सफलतापूर्वक रहकर काम कर सकने के लिए एक व्यक्ति मे कई गुणों का होना आवश्यक माना जाता है। एक आधुनिक समाज में प्रायः वैज्ञानिक आधारों वाली प्रौद्योगिकी (टेक्नोलोजी) तथा जटिल नौकरशाही की व्यवस्था से संचालित होने वाले कई बड़े-बड़े द्वैतियक संगठन (Secondary Organization) देखने में आते हैं। एक आधुनिक संगठन या प्रतिष्ठान में रोजगार ढूंढने वाले तथा इस प्रकार आधुनिक समाज का भाग बनने की इच्छा रखने वाले व्यक्ति के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि उसको किसी विशेष धंधे या कार्य में एक उच्च स्तर की शिक्षा या प्रशिक्षण प्राप्त हो। इसके साथ ही उसमें कई आवश्यक गुणों को व स्वयं में विकसित करे। जैसे-

- समय पर आना,
- कठोर परिश्रम करना,
- वैज्ञानिक ढंग से कार्य करना,
- स्वच्छता, ईमानदारी, निरन्तरता, दक्षता
- नई वस्तुओं परिस्थितियों तथा वैज्ञानिक प्रक्रियाओं को समझने का दृष्टिकोण रखना

- नियमों के प्रति आदर भाव रखना
- आज्ञाकारिता
- समझौता करने की कुशलता होना
- मधुर मानवीय सम्बंध रखना।

उसे विपरीत तथा नई परिस्थितियों में सही प्रकार से सामंजस्य करना आना चाहिए। उसे उपयुक्त मस्तिष्क वाला, तार्किक कर्म, विषयक अथवा निष्पक्ष दकियानूसीपन से मुक्त, समाजवादी व धर्मनिरपेक्ष प्रजातंत्र में विश्वास रखने वाला होना चाहिए। उसे वैज्ञानिक, अनुभावन्वित, सार्वभौमिक, व्यक्तिवादी तथा मानवतावादी, दृष्टिकोण रखना चाहिए। उसे अपना व्यक्तित्व गतिमान बनाना चाहिए। इसके लिए उसे उच्च स्तरीय उपलब्धियां प्राप्त करने, क्रियात्मक कल्पनाएं करने तथा दूसरों की आकाक्षांओं को समझकर व्यवहार करना चाहिए।

22.5.3 सामाजिक परिवर्तन एवं आधुनिकीकरण Social Change and Moderaziation

आधुनिकीकरण की अवधारणा भी सामाजिक परिवर्तन से सम्बंधित है। भारत में सामाजिक परिवर्तन की अवधारणा को समझने के लिए आधुनिकीकरण एक महत्वपूर्ण आधार है। आधुनिकीकरण परम्परा के ठीक विपरीत प्रवृति का द्योतक है अर्थात् परम्परा में पश्चमी परिवर्तन को महत्व नहीं दिया जाता, यथास्थिति पर बल दिया जाता है। जबकि आधुनीकरण मे परिवर्तन ही प्रमुख है। आधुनिकता शब्द कोई एक निष्चित विषय वस्तु नहीं है, अपितु विचारों व्यवहारों व क्रियाओं के लिए एक दृष्टिकोण है। समाजशाष्त्रीय आधुनिकीकरण के लक्षण के रूप में औद्यौगिकीकरण, नगरीकरण, आमदनी वृद्धि, शिक्षा स्तर में वृद्धि को स्वीकार करते हैं।

लर्नर Lernar के अनुसार ''आधुनिकीकरण ऐसी व्याकुल रचनात्मक चेतना या डिस्क्वाइटिंग पोजिटिविस्ट स्पिरिट है जो व्यापक जनसमूह, सार्वजनिक संस्थाएं और व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाओं तक व्यापक है।'' उन्होंने आधुनिकीकरण के अन्तर्गत निम्नलिखित तत्वों को सम्मिलित किया है:-

1. अर्थव्यवस्था में आत्मनिर्भरता की मात्रा का समुचित विकास
2. विभिन्न प्रकार के साधनों व विकल्पों के चुनने में प्रजातांत्रिक प्रतिनिधित्व का होना
3. संस्कृति में धर्मनिरपेक्ष तथा तार्किक मापदण्डों का होना
4. सामाजिक गतिशीलता में वृद्धि।

इन्कल्स के अनुसार आधुनिकता के अन्तर्गत व्यक्तित्व में निम्न विशेष ताऐं आती हैं:-

1. नये विचारों की स्वीकृति
2. नई पद्धति का प्रयोग
3. अपना मत देने के लिए तैयार रहना
4. समय बोध के प्रति जागरूक रहना
5. भूतकाल की अपेक्षा वर्तमान पर अधिक बल देना तथा भविषय में भी रूचि रखना
6. संसार के प्रति व्यवहारिक दृष्टिकोण अपनाना
7. विज्ञान एवं तकनीकी में आस्था
8. सामान्य न्याय प्राप्ति मे आस्था

आधुनिकीकरण ने सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया को गति भी प्रदान की है। इससे जाति व्यवस्था छुआछूत, संयुक्त परिवार तथा अनेकानेक रूढ़ियां प्रभावित हुई हैं, मूल्य बदले हैं, अन्धविश्वास दूर हुआ है, तार्किकता बढ़ी है, सामाजिक सम्बंधों के प्रतिमान बदले हैं, धर्म निरपेक्षता की भावना का क्षेत्र विस्तृत हुआ है। प्रजान्त्रिक दैनिक व्यवहार में बढ़ रही है अतः आधुनिकीरण ने सामाजिक परिवर्तन को एक नवीन एवं निष्चित दिशा दी है। पश्चिमी जगत के विकासषील देशो में तो आधुनिकीकरण के माध्यम से समझी जा सकती है। परम्परागत समाजों में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को गति देने में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका आंकी गई है। यही कारण है कि शिक्षा आयोग 1964-66 ने तो परम्परागत भारतीय समाज की शिक्षा के उद्देश्यो में आधुनिकीकरण को शामिल किया है।

22.5.4 आधुनिकीकरण की विशेष ताऐं Elements of Characteristics of Modernization

आधुनिकीकरण की निम्न विशेष ताऐ हैं-

i औद्योगिकीकरण और नगरीकरण Industrialization and Urbanization -

औद्यौगिकीकरण और नगरीकरण आधुनिकीकरण के प्रारंभिक तत्व हैं। आधुनिक समाजों को औद्योगिक समाज भी कहा जाता है। उद्योगों की स्थापना नये उत्पादन केन्द्रों को जन्म देती है, जो नगरों के रूप में विकसित हो जाते हैं। वास्तव में नगरीकरण को ही लर्नर ने आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का प्रथम चरण बताया है। ग्रामों से नगरों की ओर जनसंख्या का संक्रमण होने से नवीन परिस्थितियां उत्पन्न होती हैं। ये परिस्थतियां सहगामी जीवन को प्रोत्साहित करती हैं। शिक्षा वैज्ञानिक प्रगति, गतिशीलता , जनसंचार का विकास और राजनैतिक चेतना आदि आधुनिकीकरण

के अन्य तत्व हैं जो नगरीकरण के पश्चात विकसित होते हैं। कुछ लोग औद्योगिकरण और आधुनिकीकरण को समान मानते हैं।

ii साक्षरता Literacy - आधुनिकीकरण में शिक्षा एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। नगरों में औद्यौगिक विकास यह मांग करता है कि नगरवासी शिक्षित और तकनीकी दृष्टि से कुशल हों, उत्पादन के लिए कौशल प्रशिक्षण और शिक्षा की आवश्यक्ता होती है। शिक्षित मनुष्यों में नवीन आशय और आकाक्षाएं जन्म लेती हैं। आवागमन और संचार के साधनों का प्रयोग करने के लिए भी प्राविधिक शिक्षा की जरूरत पड़ती है। लर्नर के शब्दों में साक्षरता मानसिक गतिशीलता में वृद्धि करती है।

iii गतिशीलता Mobility - आधुनिक समाज गतिशील समाज है। आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में गतिशीलता के भौतिक और सामाजिक-सांस्कृतिक दोनों स्वरूपों का विकास होता है। लोग भौतिक दृष्टि से ग्रामीण जगत को छोड़कर नगरों तथा औद्योगिक केन्द्रों की ओर जाने लगते हैं। इन स्थानों में व्यक्तिगत योग्यता और कौशल का महत्व होता है। अतः व्यक्तिगत गतिशीलता और निरन्तर परिवर्तन आधुनिक समाजों की प्रमुख विशेषताएं बन गयी हैं। आधुनिकीकरण समाज के लोगों के दृष्टिकोण और मानसिक प्रकृतियों में परिवर्तन कर देता है। लर्नर ने इस परिवर्तन को मानसिक गतिशीलता कहा है।

iv विवेकशीलता Reasoning- आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में मुनष्यों की विवेकशीलता में वृद्धि हो जाती है। विवेकीकरण का तात्पर्य सावधानी और सतर्कतापूर्वक विचार करके लक्ष्यों और प्राप्ति के साधनों का निष्चय करना है। परम्परा यदि भाग्य पर भरोसा करती है तो आधुनिकता विवेक पर आधारित है। मनुष्य की वृद्धि और कर्तव्य को महत्व देना और इसके आधार पर पर्यावरण का नियंत्रण करके जीवन को अधिक सुविधाजनक और प्रगतिवान बनाने की इच्छा रखना ही विवकेषीलता है।

v जन-सहभागिता Participant of the People- आधुनिकीकरण का अत्यन्त महत्वपूर्ण मापदण्ड जन-सहभागिता है। जन संचार के साधन आधुनिक मनुष्यों को सामाजिक जीवन की गतिविधियों में सहभागी बनने की प्रेरणा देते हैं। आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में उन मानवीय प्रवृतियों का विकास हो जाता है, जो व्यक्ति को राजनैतिक जीवन में सहभागी बनाती है। वह राजैनतिक मामलों में सक्रिय भाग लेता है। जन संचार के साधन इस प्रकार की सहभागिता का विकास करने में सहायता प्राप्त करते हैं। लोग एक-दूसरे के निकट सम्पर्क में आते हैं। जीवन की सामान्य समस्याओं के विषय में विचारों का विनिमय होता है।

Vi विभेदीकरण तथा प्राविधिक कुशलता Differentiation &Technical Efficiency-

सामाजिक विभेदीकरण तथा मनुष्यों में प्राविधिक कुशलता और योग्यता का विकास आधुनिकीरण का दूसरा मुख्य स्रोत है। नई-नई व्यवसायिक प्रशासनिक और प्राविधिक भूमिकाओं का विकास हो जाता है और स्कूलों, विश्वविद्यालयों, चिकित्सालयों तथा नौकरशाही संस्थाओं का उदय होता है। इस प्रकार अपनी रूचि और योग्यता के अनुसार नवीनताओं का चुनाव करने की स्वतंत्रता से उत्पन्न संरचनात्मक विभेदीकरण और औद्योगिक क्षमता आधुनिकीकरण की आवश्यक दशाएं हैं।

Vii मानवीय सम्बंधों की कुशलता Efficiency of Human Relation- लेवी ने यह स्पष्ट किया है कि आधुनिक समाजों में मानवीय सम्बंधों की अभिव्यक्ति, विवेकशीलता, सार्वभौमिक नैतिकता, प्रकार्यात्मक विशिष्ता और रागात्मक व्यवस्था के आधार पर होती है, कारण कि आधुनिकीकरण शक्ति के निर्जीव स्रोतों और यंत्रों के प्रयोग में वृद्धि करता है। इस कार्य के लिए आवश्यक है कि मनुष्यों में वैज्ञानिकता और विवेकशीलता का विकास हो, यंत्रों और निर्जीव स्रोतों का प्रयोग जटिल संगठनों की स्थापना में सहायक होता है। अतः सदस्यों की भर्ती या चुनाव प्रकार्यात्क कुशलता के आधार पर सार्वभौमिक नियमों के आधार पर किया जाता है।

viii अधिकारी तंत्र का विकास Development of Official Formation - अधिकारी तंत्र ऐसा संगठन होता है जिसका निर्माण कई छोटे संगठनों से होता है। इसमें कार्य करने वाले लोगों के पद और भूमिकाएं स्पष्ट रूप से निष्चित और परिभाषित होती हैं। अधिकारी तंत्र में सत्ता का श्रेणीबद्ध (ऊंचा-नीचा) विभाजन होता है जहां लोग अवैयक्तिक उदेश्य से कार्य करते हैं तथा कार्य के स्थान से सम्बंधित वस्तुओं और पैसे का कार्य वाले व्यक्ति के निजी पैसे और वस्तुओं से कोई सम्बंध नहीं होता। आधुनिकीकरण में जटिल संगठनों की स्थापना होती है। केन्द्रियकरण बढ़ता है और भावात्मक तटस्थता के सम्बंधों का विकास हो जाता है।

ix एकांकी परिवार Nuclear Family - आधुनिक समाजों में विस्तृत या संयुक्त परिवार के स्थान पर ऐसे परिवार का विकास हो जाता है जिनमें पति-पत्नी और उनकी सन्तान रहती है। इनके ऊपर पैतृक परिवार का प्रभाव नहीं रहता है। ये स्वतंत्र रूप से अपने पारिवारिक जीवन की व्यवस्था करते हैं। आधुनिक समाजों में परिवार के कार्य सीमित हो जाते हैं।

x आर्थिक विकास Economic Development: संचार व्यवस्था आधुनिकीकरण के विकास में प्रमुख सहायक कारक है। समाचार पत्र, रेडियो आदि संचार के अनेक साधनों के विकास से विचारों का आदान प्रदान होता है। आधुनिकीकरण में कार्य कुशलता, क्षमता तथा मानवीय शक्ति के उपयोग का विशेष महत्व है। आर्थिक उन्नति और जीवन स्तर का विकास आधुनिकीकरण के केन्द्रीय तत्व माने जाते हैं।

xi पश्चिमीकरण Westernization लर्नर के विचार से आधुनिकता पश्चिमी जगत की देन है। उसके अनुसार पश्चिमीकरण को ही एक प्रकार से आधुनिकीकरण कहा जा सकता है। आधुनिकीकरण के पश्चिमी स्वरूप को एक सार्वभौमिक स्वरूप माना जा सकता है। आधुनिकीकरण की समाजशास्त्रीय व्यवस्था इसी प्रारूप को आदर्श मानकर की जा सकती है। आधुनिकीकरण के विकास में सहायक औद्योगिकरण, नगरीकरण, जनसंचार और सहभागिता आदि की प्रक्रियाएं पश्चिमी जगत में ही विकसित हुई हैं।

22.5.5 शिक्षा द्वारा आधुनिकीकरण Modernization through Education

शिक्षा द्वारा आधुनिकीकरण के लक्षण निम्न प्रकार दिखायी देते हैं

i परम्परा के विकल्प Alternative of Tradition - शिक्षा उन साधनों से परिचित कराती है जिनसे परम्परागत साधनों के विकल्पस्वरूप आधुनिक लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सकता है। यह मानसिक परिप्रेक्ष्य को व्यापक बनाती है, नये प्रयोग की ओर उन्मुख करती है।

ii समाजीकरण Socialization. समाजीकरण के साधन के रूप में शिक्षा नई प्रतिभाएं और मूल्य उत्पन्न करती है। इसे उन अभिवृतियों और व्यवहार प्रतिमानों को परिवर्तित करने के लिए प्रयोग किया जा सकता है, जो आधुनिकीकरण के मार्ग में बाधायें उत्पन्न करती हैं।

iii शिक्षित श्रेष्ठ वर्ग Educated Elite -शिक्षा व्यक्तियों के श्रेष्ठ स्तर पर पहुंचने में मदद करती है। शिक्षित व्यक्ति जनता के समक्ष एक सन्दर्भ आदर्श; Reference Mode उपस्थित करता है, जो परम्परा से दूर ले जाते हैं। शिक्षित श्रेष्ठ वर्ग आधुनिक विद्यालयों तथा विश्व विद्यालयों की ही उपज होते हैं।

iv समस्या निदान नेतृत्व Problem Solving Leadership - शिक्षा व्यवस्था ही वैज्ञानिक, कारीगर, प्रबन्धक और प्रशासक उत्पन्न करती है। बड़े पैमाने पर आधुनिकीकरण के लिए विशेष प्रकार की शिक्षा की आवश्यक्ता होती है। उसी से जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नेतृत्व प्राप्त किया जाता है।

v गतिशीलता विस्तारक Mobility Multiplier -शिक्षा विचारों के प्रत्येक क्षेत्र में गतिशीलता उत्पन्न करती है। इससे आधुनिकीकरण को प्रोत्साहन मिलता है।

vii. राष्ट्रीय चेतना National Consciousness - वैचारिक परिवर्तन के माध्यम से शिक्षा राष्ट्रीय चेतना उत्पन्न करती है। वह व्यक्तियों को अपनी आवश्यकताओं और समस्याओं को राष्ट्रीय परिपेक्ष्य में देखने को तैयार करती है। इसमें व्यापक राष्ट्रीय मुद्दों के विषय में राष्ट्रीय जनमत तैयार किया जा सकता है।

अपनी उन्नति जानिए Check your Progress

प्र. 1. क्या समय के अनुसार पाठयक्रम में परिवर्तन आवश्यक होता है?

(अ) नहीं (ब) हां (स) बहुत कम

प्र. 2. किस आयोग ने परम्परागत भारतीय समाज की शिक्षा के उद्देश्यो में आधुनिकीकरण को शामिल किया है?

(अ) कोठारी आयोग (ब) सैडलर आयोग (स) मुदालियर आयोग (द) कलकत्ता आयोग

प्र. 3. 'आधुनिकता पश्चिमीकरणकी देन है।' यह परिभाषा किस विद्वान की है?

प्र. 4. क्या संचार व्यवस्था द्वारा आधुनिकीकरण में सहयोग मिलता है?

(अ) नहीं (ब) हां (स) कभी-कभी (द) कभी नहीं

22.6 सारांश (Summary)

भारतीय समाज प्राचीन काल से ही एक श्रेष्ठ समाज रहा है। प्राचीन काल में यह समाज कबीलों मे बंटा हुआ था। कबीले के सदस्य को कबीले के मुखिया की बात को मानना आवश्यक था। उस समय शिक्षा का विकास नहीं हुआ था। कबिलाई अपने रीति रिवाजों के अनुसार अपनी जीवन की क्रियाओं का संचालित करते थे। लेकिन वर्ष 3000 ई. पूर्व के समय यहां पर आर्यों ने भारत में प्रवेश किया और यहां के भोले-भाले लोगों पर अधिकार कर उन्हें अपना दास बना लिया। इन्होंने शिक्षा का प्रसार कर अपने को भारतीयों से श्रेष्ठ बनाया। आज यह हिन्दू जाति के नाम से जानी जाती है।

शिक्षा ने समाज का रूप ही परिवर्तित कर दिया। शिक्षित व अशिक्षित व्यक्ति के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक क्रियाकलापों में भारी अन्तर आ गया। शिक्षा ने व्यक्ति के लिए जहां आर्थिक सम्पन्नता पैदा की, वहीं शिक्षा से वंचित वर्ग गरीबी व असहाय की परत में डूबता चला गया। बिट्रिश शासन व बौद्ध शासनकाल में शिक्षा का विकास तेजी से हुआ आज स्वतंत्रता के बाद भारतीय संविधान मे सभी के लिए शिक्षा प्रदान की है। इसी शिक्षा से लाभ उठाकर हम आधुनिकीकरण की ओर तेजी से बढ़े हैं। हमारे पास सभी सुविधाएं हैं। हम आज अपनी संस्कृति को भूलकर पश्चिमी संस्कृति को अपनाकर स्वयं को अन्य से श्रेष्ठ समझ रहे हैं। आधुनिकीकरण एक संस्कृति बनता जा रहा है।

22.7. शब्दावली (Glossary)

समाज- दो या दो से अधिक व्यक्तियों के बीच अन्तक्रियायें होने पर ही हम उसे समाज कहते हैं।

सामाजिक व्यवस्थाः- समय व शिक्षा के अनुसार समाज के रीति रिवाजों में परिवर्तन होने को सामाजिक व्यवस्था कहा जाता है।

समाजीकरण- बालक जन्म के समय असहाय होता है। उसे अपने माता-पिता पर निर्भर रहना होता है। समय के अनुसार वह पड़ोस, साथियों, विद्यालय व अध्यापक के द्वारा सामाजिक रीति रिवाजों को अपनाकर एक सामाजिक प्राणी बनता है। जैविक से सामाजिक होना समाजीकरण कहलाता है।

आधुनिकीकरण- शिक्षा द्वारा आज तेजी से व्यक्ति के संस्कार रीति रिवाज, रहने का तरीका तेजी से बदल रहा है। इसके पीछे नगरीकरण, पष्चिमीकरण, कम्प्यूटर, आर्थिक सम्पन्नता के माध्यम से हम आधुनिकीकरण की ओर बढ़ रहे हैं।

22.8. अभ्यास प्रश्नो के उत्तर:-

भाग-एक

उत्तर (1) हां

(2) टी.पी.नन

(3) मैकाइवर एण्ड वेज

(4) अंतक्रिया होने पर

भाग-दो

उत्तर (1) अध्यापक

(2) अध्याक्षात्मक

(3) विद्यालय

(4) हां

भाग-तीन

उत्तर (1) हां (2) कोठारी आयोग (3) लर्नर (4) हां

22.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

शर्मा, रा. ना. व शर्मा रा. कु. (2006). *शैक्षिक समाजशास्त्र*. नई दिल्ली: एटंलाटिक पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स. पृष्ठ. 280-289.

मिश्र, (डां) के.के. (1989). *आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन*. मेरठ: मीनाक्षी प्रकाशन.

कुमार, (प्रो.) आ. *सामाजिक मानवशास्त्र*. आगरा: विमल प्रकाशन मंदिर.

एलैक्स. (डां). शी. मे. *शिक्षा के सामाजिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्ष्य*. नई दिल्ली: रजत प्रकाशन. पृष्ठ 51-62.

22.10 सहायक/उपयोगी पाठ्यक्रम

1. मित्तल, एम.एल. (2008) *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*. मेरठ: इन्टरनेशनल पब्लिशिग हाउस.

2. सक्सेना, (डां) स. *शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार*, आगरा: साहित्य प्रकाशन.

3. शर्मा, रा. ना. व शर्मा रा. कु. (2006). *शैक्षिक समाजशाश्त्र,* नई दिल्ली: एटलांटिक पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीव्यूटर्श.

4. मिश्र, (डां) के.के. *आधुनिक भारत के सामाजिक परिवर्तन*, मेरठ: मीनाक्षी प्रकाशन.

22.11 निबंधात्मक प्रश्न

प्र. 1 शिक्षा का अर्थ लिखिए। शिक्षा समाज को किस प्रकार प्रभावित करती है। विस्तृत वर्णन किजिए।

प्र. 2 समाज का शिक्षा पर गहरा प्रभाव पड़ता है विस्तार से वर्णन किजिए।

प. 3 आधुनिकीकरण की प्रमुख विशेष ताओ को लिखिए।

प्र. 4 आधुनिकीकरण का अर्थ लिखते हुए बतायें कि क्या हम आधुनिकीकरण की बजाये पश्चिमीकरणकी ओर तेजी से बढ़ रहे हैं ? विस्तृत वर्णन करें।

इकाई-23: सामाजिक परिवर्तन के मुख्य प्रभावकारी कारक (Major Factor affecting the Process of Social Change)

23.1 प्रस्तावना Introduction
23.2 उद्देश्य Objectives
भाग एक-
23.3 सामाजिक परिवर्तन के मुख्य प्रभावकारी कारक Major Factor affecting the Process of Social Change
    2 3.3.1 भौतिक या प्राकृतिक कारक Physical and Natural Factor
    23.3.2 सामाजिक परिवर्तन का अर्थ Meaning of Social Change
        अपनी उन्नति जानिए Check Your Progress
भाग दो-
23.4 सामाजिक व्यवस्था के अंग Part of Social System
    23.4.1 सामाजिक परिवर्तन की विशेषताएं Characteristics of Social change
        अपनी उन्नति जानिए Check your Progress
भाग तीन-
23.5 संस्कृति का अर्थ Meaning of Cultural
    23.5.1 संस्कृति की परिभाषा Definition of Culture
    23.5.2 भारतीय संस्कृति की विशेषताएं Characteristics
    23.5.3 शिक्षा और संस्कृति परिवर्तन Education and Culture Change
    23.5.4 शिक्षा पर संस्कृति का प्रभाव Influence of Culture on Education
    23.5.5 शिक्षा का संस्कृति पर प्रभाव Influence of Education on Culture
        अपनी उन्नति जानिए Check your Progress
23.6 सारांश Summary
23.7 शब्दावली Glossary
23.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर Answer of Practice Question

23.9 संदर्भ Reference

23.10 उपयोगी/सहायक पुस्तके Useful Books

23.11 दीर्घ उत्तर वाले प्रश्न Long answer Types Question

23.1 प्रस्तावना (Introduction)

मानव स्वाभाव से ही एक गतिशील प्राणि है। अत: मानव समाज कभी भी स्थिर नहीं रह्ता। उसमे सदा परिवर्तन हुआ करता है। डासन और गेटिस ने ठीक ही लिखा है “ क्रिया और परिवर्तन सदैव उपस्थित सार्वभौम तथ्य है । एक से जीवन से मानव उब जाता है। घनिष्ट से घनिष्ट प्रेममय सम्बन्धो मे भी कुछ न कुछ परिवर्तन की इच्छा मानव स्वभाव में होती हैं। प्रसिद्ध मनोविश्ळेशणवादी फ्राइड के अनुसार मनुष्य मे परस्पर विरोधी भाव मौजूद रह्ते है । जहॉ प्रेम है वहॉ घृणा भी है। किसी भी देश का इतिहास कभी एक सा नही रहा , राज्य बनते विगड़्ते रहते है। नई विचार धाराऍ अपनायी जाती है पुरानी रुढिया और परम्पराए टूटती रहती है। परिवार, विवाह, जाति, सभी सन्सथाओं मे सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धर्म और राज्य, शिक्षा के आर्दशो, स्त्री पुरुष के सम्बन्धों मे जीवन के सभी पक्षो मे यह परिवर्तन देखा जा सकता है। परिवर्तन की यह प्रक्रिया सार्वर्भोम है ।

23.2 उद्देश्य (Objective)

I सामाजिक पारिवर्तन को प्रभावित करने वाले कारको को जान सकेगे ।

II. सामाजिक व्यावस्था के अर्थ तथा संरचना को जान सकेगे ।

III. सामाजिक परिवर्तन का ज्ञान करा सकेगे ।

IV. भारतीय संस्कृति की विशेषताओ का ज्ञान प्रदान करा सकेगे ।

V. शिक्षा व संस्कृति का एक दूसरे पर प्रभाव जान सकेगे ।

VI. आधुनिकीकरण के बारे मे जान सकेगे ।

भाग – एक

23.3 सामाजिक परिवर्तन को प्रभावित करने वाले कारक –

भारतीय समाज को प्रभावित करने बाले दो कारक है ।

I वाहय कारक - वाहय कारक पर मनुष्य का नियणत्रण पूरी तरह से नही हो सका है केवल आंशिक संसोधन इसमे सम्भव हो पाता है। जैसे प्राकृतिक अथवा जैविक कारक।

II आंतरिक कारक - आंतरिक कारक यधपि मानव नियणत्रण मे है फिर भी उनका वाध्यता मूलक प्रभाव सामाजिक सम्बन्धोंपर पड्ता है जैसे औधोगिकीय एवं सांस्कृतिक कारक।

23.3.1 सामाजिक परिवर्तनों के प्रमुख कारको की विशेषतायें –

1 **भौतिक या प्राकृतिक कारक** – जैसे जैसे सभ्यता का विकास होता जा रहा है वैसे-वैसे भौतिक तथा प्राकृतिक कारको पर मानव नियणत्रण की आशा बढ्ती जा रही है। आज मनुष्य ने नदियो पर पुलो का निर्माण, पहाडो के बीच रस्ता बनाना, पथरीली तथा रेगिस्तानी जगहो को कृषि योग्य बनाना, जंगलो को काटकर उसे कृषि योग्य बनाना आदि। फिर भी प्राकृतिक कारको का वाध्यातामूलक प्रभाव मानव जीवन और उसके अन्त:सम्बन्धों पर पडता चला आ रहा है। जैसे जलवायु मौसम परिवर्तन, बाढ, भूकम्प आदि जिसका मानव सम्बंधो पर प्रभाव पडता है , ऋतुओ के बदलने का प्रभाव हमारे सामाजिक सम्बंधो पर पडता है। गर्मियो मे शारीरीक अपराध, हत्या, लूटपाट, बलात्कार आदि की दर बढ जाती है। शरद काल (जाडो) मे आर्थिक अपराध अधिक होते है। उसी प्रकार जिस स्थान का तापक्रम अधिक घटता-बढता नही वहॉ लोगो की कार्यक्षमता अधिक होती है। बाढ तथा भूकम्प आ जाने से सामाजिक समबंध छिन्न भिन्न हो जाती है। जिसके कारण समाज मे परिवर्तन हो जाता है।

२. **जैविक कारण** (जन्सख्या मे परिवर्तन) – भारतीय समाज को प्रभावित करने का श्रेय जनसख्या मे परिवर्तन भी है। सामाजिक सम्बंध मनुष्यो पर आश्रित है अत: उनकी सख्या मे वृद्धि अथवा कमी के कारणो को सामाजिक परिवर्तन से सम्बोधित करते है। यदि किसी समाज की जनसख्यां एका-एक बढ जाती है। तो उसके परिणामस्वरुप विभिन्न सामाजिक समस्यायो जैसे भोजन, रहन-सहन, देवदारु, मकान कपडे की समस्यायों के द्वारा सामाजिक सम्बन्धो पर गहरा प्रभाव पडता है। जन्सख्या की अधिकता के कारण यहॉ लोगो उचित मात्रा मे पोष्टिक आहार नही मिल रहा है। जिसके कारण लोगो की कार्यक्षमता कम हो रही है। प्रति व्यक्ति आय नही बढ रही है अत: समाज पिछडा हुआ राष्ट्र कहलाता है। जिस समाज मे स्त्रियो की संख्या अधिक हो जाती है तब वहौ पर वहुपत्नि विवाह को प्रोत्साहन मिलेगा जिससे सामाजिक परिवर्तन होगा। व पहले एक दम्पत्ति के आठ या दस बच्चे आवश्यक माने जाते थे लेकिन आज एक या दो बच्चे ही उचित माने जाते है।

३. **प्रौधिगिकीय कारक** – भारतीय समाज पर भी प्रौधोगिकीय अविष्कारो का प्रवाभ पडता है आज बडी-बडी मशीनो का प्रयोग समाज मे होने लगा है उसी रुप मे सामाजिक सम्बंध मे भी परिवर्तित हो रहै है आज व्यक्ति अपना सम्बन्ध भी उधोगो मे कार्य करने वाले लोगो को अपना वर्ग मानकर उन्ही से ही अपना सम्बन्ध रखने लगा। आज मशीनी युग है मशीनो के प्रयोग के कारण

आज कृषि के क्षेत्र मे क्रांतीकारी परिवर्तन हुए है बिजली द्वारा सिचाई ने प्रकृति पर निर्भरता को कम किया है। यातायात के साधनो ने जहॉ दूरी को कम किया है वही पर जाति भेद-भाव को कम किया है। मोबाईल के बिना व्यक्ति का जीवन अधूरा सा रहता है। आज प्रौधोगिकी के कारण रीति-रिवाजो, सामाजिक मूल्यो ,आर्थिक, धार्मिक मे परिवर्तन चारो ओर देखा जा रहा है।

4. **सांस्कृतिक कारक**—संस्कृति का सम्बन्ध जीवन की सम्पुर्ण गतिविधि से होता है संस्कृति के अंतरगत हम भाषा, साहित्य, धर्म , सुख सुविधा की वस्तुए, यहॉ तक कि वे सभी चीजे जो मानव समाज से सम्बन्ध रखते है यदि इन तत्वॉ मे परिवर्तन हुआ तो सामाजिक सम्बन्धों मे परिवर्तन अनिवार्य हो जाता है। सामाजिक मूल्य जो व्यक्तियों के व्यवहारो को निर्देशित करते है। यदि ये परिवर्तित है तो उससे भी सामाजिक परिवर्तन होता है। भारतवर्ष मे मूल्यों का सर्घष आधुनिक सामाजिक परिवर्तन का मूल कारण कहा जाता है। फैशन के क्षेत्र मे आये दिन परिवर्तन हम देख रहै है आधुनिक भारतीय स्त्रिया जीन्स पेंट टोपस पहन रही है। जबकि बडी-बूढी स्त्रिया अब भी पुरने ढंग से ही साडी पहन रही है। अब आधुनिक व्राहमण मांस मदिरा, धूम्रपान का प्रयोग वेधडक कर रहा है जबकि उसके पिता और पितामह उसका विरोध करते आये है। पहले सवर्ण स्त्रिया मांस नही खाती थी अब मांस खाने कि बात तो दूर रही वे खुली सडक पर सिगरेट भी पीती है, तथा रेस्टारेंट व क्लबो मे शराव का प्रयोग भी करती है। इस प्रकार संस्कृति के पहलू मे परिवर्तन के कारण ही सामाजिक परिवर्तन हो रहा है।

यौन सम्बन्ध पहले विवाह के बाद ही स्थापित हो पाता था अब तो गर्भपात को वैधानिक संरक्षण प्राप्त हो गया है। पहले विवाह को एक धार्मिक कृत्य माना जाता था स्त्री का दान (कन्यादान) होता है और दान मे दी गयी चीज फिर दुसरे को नही दी जाती है। इस आधार पर समाज मे सामाजिक परिवर्तन देखा जा रहा है।

5. **औद्योगीकरण Industrialization -** औद्योगिकरण से तात्पर्य औद्योगिक क्रांति से है जिसके परिणाम स्वरूप किसी समाज में बड़े उद्योग धंधों का विकास होता है। भारत वर्ष में प्रोद्योगिक कारक सदियों से सामाजिक व्यवस्था को प्रभावित करता रहा है। फिर भी उसे हम औद्योगिकरण नहीं कहेंगे। भारत वर्ष में औद्यौगिकरण का श्रीगणेश 1956 ई. में माना जाता है। बड़े-बड़े उद्योगों के विकास के कारण जहां एक ओर आर्थिक विकास में सहायता मिल रही है वहीं पर दूसरी ओर विभिन्न सामाजिक समस्याएं जैसे- बेकारी, गंदगी, शारीरिक अपराध, चोरी आदि के कारण सामाजिक सम्बंध परिवर्तित हो रहै हैं। लोग अपने गांवों को छोड़कर उन स्थानों को जाने लगे हैं जहां उद्योग स्थापित किये जा रहै हैं। औद्यौगिकरण ने भारतीय समाज को अब स्थिर समाज से गतिशील समाज में परिवर्तन कर दिया है। औद्यौगिकरण ने अब स्त्रियों को भी आर्थिक उत्पादन कार्य के योग्य बनाया है। औद्यौगिकरण ने पेशा वर्ग को जन्म दिया है। किसी एक पेशे या किसी एक मशीन

पर काम करने वाले लोगों में वही भावना आ जाती है जो किसी वर्ग या जाति के सदस्यों के बीच पायी जाती है। इस पेशे वर्ग के लोग भले ही किसी जाति के हैं। बड़े उद्योग लगने के कारण अब मजदूर वर्ग बेकार हो रहै हैं। अतः इन सब कारणों से सामाजिक परिवर्तन हो रहा है।

6. पश्चिमीकरण Westernization - भारतीय समाज के ऊपर पश्चिमी समाजों का व्यापक प्रभाव पड़ा है। जिसके कारण यहां के मूलभूत सामाजिक संस्थाएं प्रभावित हो रही हैं। सन् 1600 में अंग्रेज भारतीय समाज के सम्पर्क में आये तभी से उन्होंने यहां के निवासियों को अपने चाल-ढाल,पोशाक,बोली,रहन-सहन से प्रभावित करना शुरू कर दिया था। इसका सबसे अधिक प्रभाव यहां के उच्च लोगों पर पड़ा। उनका रहन-सहन, पोशाक, बोलचाल भी अंग्रेजों की भांति होने लगा। पश्चिमीकरण ने जातिगत दूरी तथा भेद-भाव को कम करने में मदद दी है। वहीं पश्चिमीकरण ने मानवतावाद,समानता तथा धर्म निरपेक्षता की भावना को बढ़ाने में मदद दी है। प्रेस आवागमन के साधनों के द्वारा सामाजिक दूरी को कम करने का प्रयास मिल गया। पश्चिमीकरण के कारण मूल्यों में परिवर्तन हो रहै हैं। मूल्यों में परिवर्तन भी सामाजिक परिवर्तन का कारण है। पश्चिमीकरण का प्रभाव निम्न जातियों पर भी पड़ा है। जिसके कारण वो अपनी स्थिति में सुधार के लिए जागरूक रहै हैं। आज सभी जाति के लोग अपने अर्जित गुणों के ढंग को परिवर्तित कर रहै हैं। संयुक्त परिवार से एंकांकी परिवार की ओर झुकने की प्रवृति भी पश्चिमीकरण का ही परिणाम है।

7. जनतंत्रीकरण Democratization - भारत मे तीव्र सामाजिक परिवर्तन का एक कारण जनतंत्रीकरण का विकास है। यहां प्रजातांत्रिक सरकार की स्थापना के बाद समाज को बदलने का कार्यक्रम भी इसी माध्यम से पूरा किया जा रहा है। प्रजातांत्रिक नियोजन जिसे हम पंचवर्षीय नियोजन भी कहते हैं के द्वारा भारतीय सामाजिक संगठन में मूलभूत परिर्तन हुआ है। जनतंत्रीकरण अच्छे व्यक्तित्व में विकास के लिए कृत संकल्प है। यही कारण है कि आज धर्म, जाति, धन, लिंग आदि भेदों के आधार पर सामाजिक व्यवहार में कोई अंतर है। समाज में पिछड़े लोगों विशेषकर अस्पृष्यों की समस्या का समाधान बहुत अंशों में इस प्रक्रिया द्वारा सम्भव हो सका है। प्रत्येक व्यक्ति को विचार, अभिव्यक्ति, विवाह, शिक्षा तथा किसी उचित कार्य को करने की स्वतंत्रता है। जिसकी स्पष्ट झलक सामाजिक परिवर्तन है। सरकार के बदलने से राष्ट्रीय नीति बदलती है जो सामाजिक सम्बंधों को भी प्रभावित करती है। शक्ति के विकेन्द्रिकरण का जो कार्य जनतंत्रीकरण के माध्यम से शुरू हुआ है उसके द्वारा ग्राम स्तर की समस्याओं के समाधान के लिए केन्द्र सरकार द्वारा कार्यक्रम बन रहै हैं। अब शैक्षिक संस्थाओं को भी जनतंत्रीकरण का अखाड़ा बनाया जा रहा है।

8. नगरीकरण Urbanization - भारत में सामाजिकरण का एक अन्य कारण ग्रामीण समुदाय पर नगरीकरण का प्रभाव है। यातायात एवं आवागमन की सुविधा के कारण अब गांव का व्यक्ति रोज छोटे-मोटे कार्यो के लिए भी नगर में आता है और वह यहां की चमक-दमक से इतना प्रभावित होता है कि वह अपने ग्रामीण जीवन में भी उन्हीं के अनुरूप व्यवहार शुरू कर देता है और कभी-कभी तो

वह अपना गांव छोड़कर शहर में बस जाता है। नगरों में लोगों के बीच द्वैतीयक सम्बंध व्यक्तिवाद को बढ़ावा दे रहै है। जिसके कारण परम्परागत सामाजिक संस्थाएं जैसे परिवार तथा विवाह परिवर्तित हो रहै है जो सामाजिक परिवर्तन का मूल कारण है।

23.3.2 सामाजिक परिवर्तन का अर्थ Meaning of Social Change

मानव का जीवन एवं उसकी परिस्थितियां सदैव एक सी नहीं रहती है। अपितु इसके विचार, आर्दश मूल्य एवं भावना में किसी प्रकार का परिवर्तन अवश्य होता है। जब मानव अपने को परिवर्तित करता है तो वह समाज की एक ईकाई होने के कारण समाज में भी परिवर्तन कर देता है। यद्यपि किसी समाज में परिवर्तन तीव्रता से होता है तो किसी में मंद गति से होता है।

परिवर्तन प्रकृति का नियम है। आज वैज्ञानिक अवष्किारों , नई-नई मशीनों के उपयोग यातायात और दूर संचार के साधनों के कारण प्राचीन एवं मध्यकालीन समाज की अपेक्षा आधुनिक समाज में प्रतिदिन क्रांतिकारी परिवर्तन हो रहै हैं। इन परिवर्तनों को ही सामाजिक परिवर्तन की संज्ञा दी जा रही है। आजकल सम्पूर्ण विश्व में सामाजिक परिवर्तन तीव्र गति से हो रहा है। ग्रामीण क्षेत्रों की अपेक्षा नगरीय क्षेत्रों में अविकसित समाज की अपेक्षा विकसित समाज में दक्षिणी गोलार्द्ध की अपेक्षा उत्तरी गोलार्द्ध में सामाजिक परिवर्तन अधिक विविधता एवं तीव्रता से हो रहै हैं।

यद्यपि समाज में होने वाला प्रत्येक प्रकार का परिवर्तन सामाजिक परिवर्तन की श्रेणी में नहीं आता है। आधुनिक समाजशास्त्रियों की भाषा में समाज शब्द के स्थान पर सामाजिक व्यवस्था Social System पद का प्रयोग अधिक प्रचलित है। तथा सामाजिक व्यवस्था में तीन भाग या अंग गिनाए गए हैं।

अपनी उन्नति जानिए Check Your Progress

प्र.1 समाज में परिवर्तन के दो प्रमुख कारक बताइये।

प्र.2 सामाजिक परिवर्तन के दो प्रमुख कारण बताइये।

प्र.3 एन.एस.एस. राष्ट्रीय समाज सेवा कार्यक्रम किससे सम्बंधित नहीं है।

(अ) प्रौढ शिक्षा कार्यक्रम (ब) स्वास्थ्य कार्यक्रम (स) बाढ़
(द) खेल

प्र.4 सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयः या वसुधैव कुटुम्बकम की विशेषता विश्व में किस देश की है।

(अ) अमरिका (ब) रूस (स) श्रीलंका
(द) भारत

प्र.5 धर्म निरपेक्ष शब्द किस वर्ष में जोड़ा गया है।

भाग दो-

23.4 सामाजिक व्यवस्था के अंग (Parts of Social System)

1. सामाजिक संरचना Social Structure
2. संस्कृति Culture
3. व्यक्तित्व Personality

सामाजिक संरचना- भारतीय सामाजिक संरचना जाति, धर्म, वर्ग, समुदाय आदि महत्वपूर्ण सामाजिक संस्थाओं से मिलकर बनी है।

2. संस्कृति- संस्कृति वास्तव में मूल्यों की एक व्यवस्था हैं यहां मूल्य का अर्थ पसंद या मान्यता है। यह हमारे जीवन का ढंग है।

3. व्यक्तित्व- समाज के व्यक्तियों के व्यक्तित्व के उनकी मनोवैज्ञानिक विशेषताओं, प्रवृतियों, आकांक्षाओं सुझावों आदि अनेक जटिल,मनोवैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक कारकों से निर्मित है। जब व्यक्तित्व में परिवर्तन आये तो व्यक्तित्व परिवर्तन होता है

23.4.1 सामाजिक परिवर्तन की विशेषताएं-

डब्ल्यू. मूर व समाजशास्त्री के अनुसार सामाजिक परिवर्तन की निम्नलिखित विशेषताएं हैं-

1. प्रत्येक सामाजिक परिवर्तन में गंभीरता, दीर्घकालीनता एवं स्थायित्व की प्रवृति होती है।

2. प्रत्येक सामाजिक परिवर्तन के तीन तत्व होते हैं-

i. वस्तु

ii . भिन्नता

iii . समय

3. सामाजिक परिवर्तन जटिल होते हैं।

4. सामाजिक परिवर्तन अचानक नहीं होते न ही उनकी भविषय वाणी ही की जा सकती है।

5. सामाजिक परिवर्तन से व्यक्ति न केवल व्यक्ति का जीवन ही प्रभावित होता है बल्कि सम्पूर्ण सामाजिक संरचना और व्यवस्था की कार्य पद्धति में भी परिवर्तन आता है।

6. आधुनिक समाजों में परिवर्तन तीव्र गति से तथा समाजों में सामाजिक परिवर्तन धीरे-धीरे होता है।

7. सामाजिक परिवर्तन समाज के भीतर से भी और बाहर से भी संभव है।

8. सामाजिक परिवर्तन व्यक्तिगत अनुभव और समाज के विभिन्न पक्षों को विस्तृत रूप से प्रभावित करते हैं।

9. सामाजिक परिवर्तन प्रायः सांस्कृतिक विलम्बना प्रस्तुत करते हैं।

10. सामाजिक परिवर्तन के प्रारम्भ में लोगों द्वारा विरोध किया गया और बाद में वे समाजोउपयोगी सिद्ध हुए हैं।

अपनी उन्नति जानिए Check Your Progress

प्र.1- सामाजिक व्यवस्था के तीन अंगों के नाम लिखिए।

प्र.2- सामाजिक परिवर्तन की भविषय वाणी की जा सकती है।

(अ) हां (ब) नहीं (स) अनिश्चित

प्र.3- सामाजिक परिवर्तन में निम्नलिखित में किसकी भूमिका महत्वपूर्ण है।

(अ) शिक्षा (ब) धर्म (स) ईश्वर (द) इनमें से कोई नहीं

प्र.4 समाज सामाजिक सम्बंधों का जाल है। यह किसका कथन है।

(अ) मैकाइवर (ब) एम. निवासन (स) दोनों (द) इनमें से कोई नहीं

भाग तीन-

23.5 संस्कृति का अर्थ (Meaning of Culture)

संस्कृति शब्द की उत्पत्ति संस्कृत शब्द से हुई है। संस्कृत का अर्थ है 'परिष्कृत Refined। इस प्रकार संस्कृति का सम्बंध किसी भी ऐसे तत्व से है जो व्यक्ति का परिष्कार कर सके। एक दूसरी व्याख्या के अनुसार- संस्कृति शब्द संस्कार से बना है। संस्कार का अर्थ है शुद्धि की क्रिया। शुद्धि का अभिप्राय पवित्रता से न होकर सामाजिकता से है। इसका तात्पर्य यह है कि व्यक्ति को एक सामाजिक प्राणी बनाने में जितने भी तत्वों का योगदान होता है, उन सभी तत्वों की व्यवस्था को संस्कृति कहते हैं। संस्कृति ही एक जैवकीय प्राणी को सामाजिक प्राणी के रूप में परिवर्तित करती है।

हिन्दू समाज में जन्म से ही व्यक्ति को अनेक प्रकार के संस्कारों के द्वारा समाज में विभिन्न कार्य करने योग्य बनाया जाता है। उदाहरण के लिए विवाह संस्कार से उस पर संतानोत्पत्ति के कार्य का उत्तरदायित्व आ जाता है। संस्कृतिक में वह सब सम्मिलित है जिसके लिए संस्कारों की आवश्यकता पड़ती है।

23.5.1 संस्कृति की परिभाषाएं Definition of Culture

मैकाइवर और पेज के अनुसार- ''संस्कृति हमारे रहने, विचार करने, प्रतिदिन के कार्यों, कला, साहित्य , धर्म, मनोरंजन और आनन्द में संस्कृति हमारी प्रकृति की अभिव्यक्ति है।''

टेलर के अनुसार- ''संस्कृति वह जटिल सम्मपूर्णता है जिसमें ज्ञान, विश्वास, कला, आचार, कानून, प्रथा तथा इसी प्रकार की ऐसी क्षमताओं और आदतों का समावेश रहता है जिन्हें मनुष्य समाज का सदस्य होने के नाते प्राप्त करता है। ''

व्हाइट के अनुसार- ''संस्कृति एक प्रतीकात्मक, निरन्तर संचयी और प्रगतिशील प्रक्रिया है।''

टाइलर के अनुसार- ''संस्कृति एक जटिल सम्पूर्ण है, जिसमें ज्ञान, विश्वास, कलाएं, नीति, विधि, रीति-रिवाज और समाज के सदस्य होकर मनुष्य द्वारा अर्जित अन्य योग्यताएं और आदतें शामिल है।''

लुण्डवर्ग के अनुसार- ''संस्कृति सामाजिक रूप से प्राप्त और आगामी पीढ़ियों को संचारित कर दिये जाने वाले निर्णयों, विश्वासों, आचरणों तथा व्यवहार के परम्परागत प्रतिमानों से उत्पन्न होने वाले प्रतिकात्मक और भौतिक तत्वों को सम्मिलित करते हैं।''

23.5.2 भारतीय संस्कृति की विशेषताएं Characteristics of IndiaCulture

भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृति है। भारतीय मनिषियों ने जिन आधार-स्तम्भों पर हिन्दू समाज की रचना की वे गहन चिन्तन, विस्तृत अनुभव तथा परीक्षित प्रयोग के परिणाम है। भारतीय संस्कृति के इन मूलभूत सांस्कृतिक एवं धार्मिक आधारों का संक्षिप्त वर्णन निम्न प्रकार है।

i धर्म Religion- भारतीय संस्कृति में धर्म का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। मनुष्य के व्यक्तित्व एवं आचरण को व्यवस्थित एवं शुद्ध बनाने वाली संस्था ही धर्म है। धर्म से ही सम्पूर्ण जाति की प्रतिष्ठा है। धर्म ही पूजा के पालन की प्रेरणा देता है। धर्म ही पाप से बचाने वाले सर्वोत्कृष्ठ साधन है। मनुष्य-मनुष्य के बीच, मनुष्य तथा समूह के बीच और विभिन्न समूहों के बीच शांति और सहयोग,प्रेम और साहचार्य का प्रमुख स्रोत धर्म है।

ii पुरूषार्थः- भारतीय संस्कृति में चार पुरूषार्थो का भी अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। मनुष्य के सामने चार प्रमुख लक्ष्य रखे गये हैं। जिनकी प्राप्ती उनके जीवन की सम्पूर्ण क्रियाओं को निर्देशित करती है। इसमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चार पुरूषार्थ बताये गये हैं।

(अ) धर्मः- इन पुरूषार्थों में धर्म सबसे पहले आता है। धर्मानुकूल आचरण करना मानव जीवन को उच्च्च बनाने के लिए प्रथम आवश्यकता के रूप में माना गया है। धर्म वह क्रिया है जो लोक में यश और परलोक में मोक्ष प्रदान करता है।

(ब) अर्थः**-** भौतिक आवश्यकताओं की संतुष्टि के लिए अर्थ की प्राप्ति जरूरी है अतः धर्म के पश्चात दूसरा पुरूषार्थ अर्थ है जिसका तात्पर्य धर्मानुकूल साधनों से धन कमाना तथा संभावित जीवन बिताते हुए धर्म के कार्यो में उस धन का उपयोग करना है।

(स) कामः- शारीरिक तथा मनोवैज्ञानिक जीवन को संतुलित तथा व्यवस्थित करने के लिए यह आवश्यक है कि मनुष्य की मौलिक आवश्यकताएं सहज ही स्वाभाविक रूप से संतुष्ट होती रहै । काम भी मनुष्य की सहज प्रवृति है। काम केवल यौन तृप्ति न होकर संतोनोत्पादन के लिए तथा सामाजिक जीवन के अन्य सभी पक्षों का उत्तरदायित्व निभाने के लिए विवाह करना गृहस्थाश्रम में प्रवेश करना है।

(द) मोक्षः- वास्तव में मोक्ष को मानव जीवन का चरम लक्ष्य माना गया है और उसकी प्राप्ति के प्रमुख साधनों के रूप में प्रथम तीन पुरूषार्थों का विधान किया गया है। पहले तीन पुरूषार्थ धर्म, अर्थ, और काम त्रिवर्ग कहलाते हैं। जिनकी प्राप्ती के पश्चात मोक्ष की ओर सहज और स्वाभाविक रीति से मनुष्य बढ़ जाता है।,

iii ऋणः**-** हिन्दू शास्त्रों के अनुसार सामान्य रूप से तीन ऋण माने जाते हैं| पितृश्रण, देव ऋण, ऋषि ऋण । शतपथ ब्राहमण में एक चौथे ऋण ‘मनुष्य ऋण’ का भी उल्लेख आता है। इन ऋणों को

चुकाने के लिए प्रत्येक हिन्दु विभिन्न प्रकार के धर्मानुकूल प्रयत्न करता है। इन ऋणों को चुकाने के उपरांत ही वह मोक्ष का अधिकारी होता है।

(अ) देव ऋणः- देव ऋण चुकाने के लिए मनुष्य यज्ञादि के द्वारा उन सभी देवी देवताओं के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता है जिनकी कृपा से उसे प्रकृति की ओर से भिन्न-भिन्न जीवन दायक वस्तुएं और शक्तियां प्राप्त होती है। वे विद्वान जो जन-सेवा का व्रत लेकर अपने सदुपदेशों के द्वारा जन-जीवन को जाग्रत और पवित्र करते हैं, पूजा सत्कार के योग्य हैं। उनके प्रति भी मनुष्य कृतज्ञता प्रकट करता है।

(ब) ऋषि ऋणः- ऋषि ऋण उन विचारकों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करना है जिन्होंने प्राचीन काल से ही वेदादि ग्रन्थों के माध्यम से मानव जीवन को सुखमय और पवित्र बनाने के सदुपयोग हमारे सामने रखे हैं। 25 वर्ष तक ब्रह्मचर्य आश्रम में सदविद्या ग्रहण करके ऋषि का भार चुकाया जाता है।

(स) पितृ ऋणः- माता-पिता द्वारा अपनी सन्तान का पालन पोषण उचित प्रकार से किया जाता है। वे कष्टपूर्ण जीवन व्यतीत करते हुए अपनी संतान के सुखमय के लिए प्रयासरत रहते हैं। अतः जीवन में माता-पिता का ऋण चुकाने का एक मात्र तरीका गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करके अपने जैसी संतान को जन्म देना। उसके बाद समाज की निरन्तरता बनाये रखने के लिए कम से कम एक संतान छोड़ जाना और कष्ट सहकर उसे हर प्रकार के योग्य बनाकर छोड़ जाना ही पितृ ऋण का उऋण है।

iv कर्म तथा पुनर्जन्मः- कर्म एक प्रक्रिया के रूप में चलता है अर्थात एक बार किया हुआ कर्म बंद नहीं होता। दूसरे शब्दों में कर्म का फल अवश्य होता है। यदि वर्तमान जन्म में कर्मो के फल पूर्ण नहीं होते तो उन्हें भोगने के लिए पुनः जन्म लेना पड़ता है। कर्म निष्फल नहीं जाता है। मनुष्यों में शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, आध्यात्मिक एवं राजनैतिक आदि विषमताओं का मूल कारण उनके द्वारा किये गये कर्मो की विभिन्नता है। मनुष्य कर्म करने में स्वतंत्र है किन्तु फल भोगने के लिए उसे बार-बार शरीर धारण करना पड़ता है। अर्थात पुनर्जन्म की धारणा कर्म पर अधारित है।

अ. आश्रमः- आश्रम व्यवस्था हिन्दू सामाजिक संगठन का वह महत्वपूर्ण मौलिक तत्व है जो प्रत्येक मनुष्य के जीवन को सामाजिक कार्यो को पूर्ण करने की दृष्टि से चारों भागों में बांटकर व्यक्तित्व के क्रमिक विकास की प्रक्रिया के रूप में संभाला जा सकता है।

ब्रह्मचर्य आश्रम में प्रत्येक मनुष्य को 25 वर्ष तक पूर्ण ब्रह्मचारी रहकर गुरूगृह में जाकर वेदादि, सत्यज्ञान का अर्जन करके शारीरिक तथा मानसिक रूप से स्वस्थ बनाना |

गृहस्थ आश्रम में 25 वर्ष तक धन कमाकर समाज के हित में व्यय करना, संतानोत्पादन करना, पंच महायज्ञों को पूर्ण करते हुए भोग से सयंम और विरक्ति की ओर अग्रसर होना गृहस्थ आश्रम का सफल पालन है।

वानप्रस्थ आश्रम जीवन का विकास करना है सांसारिक कर्तव्यों को पूर्ण करके जन व्यक्ति वृद्धावस्था की ओर जाने लगे, शरीर की त्वचा ढीली पड़ जाये, पुत्र का पुत्र हो जाये, स्त्री को साथ लेकर अथवा पुत्रों के पास छोड़कर स्वयं जन सेवा का व्रत लेकर वन में चला जाये और जितेन्द्रिय होकर रहै।

सन्यास आश्रम में लोकषणा, वितषणा तथा पुत्रेषणा का परित्याग करके अत्यंत पवित्र और तपस्वी जीवन व्यतीत करते हुए ईश्वर प्राप्ति का प्रयत्न करना ही मनुष्य का उद्देश्य है।

v **संस्कार**:- आश्रम व्यवस्था और संस्कार जीवन की श्रृंखला की बड़ी और छोटी कड़ियां हैं। आश्रम जहां जीवन के विशाल मोड़ है , संस्कार उन विशाल मार्गो के बीच-बीच में आने वाले सौपान हैं। संस्कार के अनुष्ठानों द्वारा मानव जीवन को पुष्ट और पवित्र बनाये रखने के लिए समय-समय पर किये जाते हैं। प्रमुख रूप से 16 संस्कार मनुष्य के जीवन में होते हैं। जिनमें नामकरण, कर्णवेध, विद्यारम्भ, उपनयन, विवाह और अंतिम संस्कार सामान्य रूप से प्रचलित हैं।

vii. वर्ण व्यवस्था:- वर्ण व्यवस्था भिन्न-भिन्न समूहों को सम्पूर्ण समाज के विकास में सहायक होती है। जिनमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शुद्ध, वर्ण का आधार जन्म न होकर कर्म है। कर्म के आधार पर व्यक्ति को सम्मान प्राप्त होता है। लेकिन कुछ रूढ़ीवादियों ने अपनी प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिए इसे जन्म के आधार पर थोपा। लेकिन आज योगयता के आधार पर इस भ्रम को तोड़कर कर्म आधारित व्यवस्था को अपनाया जा रहा है।

viii जाति प्रथा:- भारतीय संस्कृति का एक महत्वपूर्ण अंग जाति व्यवस्था है। आज भी अनेक आलोचनाओं और संवैधानिक नियमों के बावजूद जाति सामाजिक जीवन पर आघात किये हुए हैं। जाति में वैवाहिक, खान-पान, ऊंच नीच की भावना आज भी भारतीय समाज में विध्यमान है। जबकि आज शिक्षा के आधार पर जाति व्यवस्था के बंधन को तोड़ा जा रहा है लेकिन जाति का सांप समाज को जकड़े हुए है।

ix संयुक्त परिवार:- संयुक्त परिवार भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग है। बड़े बूढ़ों की सत्ता, संयुक्त जीवन, संयुक्त सम्पत्ति इत्यादि ने संयुक्त परिवार के माध्यम से ग्रामीण समुदाय की एकता को दृढ़ किया है। अनुशासन और संयुक्त मूल्यों का संरक्षण भारतीय संयुक्त परिवार की देन हैं यद्यपि आज आधुनिकीकरण, पश्चिमीकरण, नगरीकरण, औद्योगिकरण तथा प्रजातांत्रिक प्रक्रियाओं के प्रभाव से भौतिकवादी प्रवतियां ने संयुक्त परिवार पर कुठारघात किया है।

23.5.3 शिक्षा और संस्कृति परिवर्तन की भूमिका Introduction of Education and Culture Change

प्राचीन भारत में माता-पिता का कर्तव्य था कि वे अपने बालकों को भारतीय संस्कृति और सभ्यता से परिचित कराएं और उन्हें जीवन उपयोगी शिक्षा प्रदान करें। चाणक्यनीति के तीसरे अध्याय में दूसरे श्लोक के भाव द्वारा संस्कृति से प्राप्त शिक्षा का सामान्य स्वरूप परिलक्षित होता है।

''आचारः कुलमाख्याति देशभाख्याति भाषणम्!

सम्भ्रमः स्नेहभाख्याति वपुराख्याति भोजनम्।।''

अर्थात आचार द्वारा कुल का परिचय मिलता है , बोली से देश का ज्ञान होता है, आदर के द्वारा प्रेम का परिचय मिलता है और शरीर तथा तेज को देखकर भोजन का पता चलता है।

उपरोक्त श्लोक में कुल, देश और भोजन को परखने की नीति स्पष्ट की है, परन्तु इस नीति में छात्र को सांस्कृतिक शिक्षा मिलती है। वह यह सीखता है कि कुल को प्रशासित करने के लिए सदाचरण करना चाहिए क्योंकि आचरण से कुल जाना जाता है। भाषा द्वारा देश जाना जाता है। अतः हमें अपनी राष्ट्रभाषा को अपने व्यवहार का योगदान देकर उसका अंग बनाना चाहिए। यदि हमें किसी को अपने प्रेम का परिचय देना है तो उसके प्रति आदर तथा स्नेह का भाव प्रदर्शित करना चाहिए। उत्तम सात्विक भोजन करके शरीर को पुष्ट और तेजवान बनाना चाहिए। जिससे हमारे भोजन का परिचय मिल सके। उपयुक्त शिक्षा पूर्णतः सांस्कृतिक शिक्षा है। संस्कृति व शिक्षा दोनों का यह कार्य है कि वह मनुष्य का चतुर्मुखी विकास करें।

23.5.4 शिक्षा पर संस्कृति का प्रभाव(Influence of Culture on Education)

संस्कृति और शिक्षा परस्पर घनिष्ठ रूप से सम्बंधित हैं। संस्कृति का प्रभाव शिक्षा के सभी अंगों यथा-उद्देश्य, पाठयक्रम, शिक्षण विधि आदि पर पड़ता है। इसका वर्णन निम्न प्रकार है।

i संस्कृति का शिक्षा के उद्देश्यों पर प्रभाव (Influence of Culture on aims of Education)

शिक्षा के उद्देश्य समाज में प्रचलित आचार-विचार, दार्शनिक धाराओं, धार्मिक तत्वों, विश्वासों, मान्यताओं तथा आवश्यकताओं के आधार पर निर्मित होते हैं। यह स्पष्ट है कि किसी भी समाज में शिक्षा के उद्देश्यों पर वहां की संस्कृति का पूर्ण प्रभाव परिलक्षित होता है।

ii संस्कृति का पाठयक्रम पर प्रभाव (Influence of Culture on Curriculum)

संस्कृति शिक्षा के लिए प्रचलित पाठयक्रम को भी प्रभावित करती है। इसका कारण समाज के उद्देश्यानुकूल ही पाठयक्रम का निर्धारण किया जाना है। पाठयक्रम के आधार तत्व शिक्षा के उद्देश्यों

को ध्यान में रखकर निर्धारित किये जाते हैं। दूसरे शब्दों में पाठयक्रम का निर्माण करते समय समाज में प्रचलित विचारों, विश्वासों, मूल्यों को ध्यान में रखना पड़ता है।

iii संस्कृति का विद्यालय पर प्रभाव (Influence of Culture on School)

विद्यालय को समाज का लघुरूप कहा जाता है। इसलिए विद्यालय पर समाज की संस्कृति का प्रभाव अवश्य पड़ता है। अर्थात विद्यालय समाज की संस्कृति के केन्द्र होते हैं। समाज के रीति-रिवाज, रहन-सहन के ढंग, फैशन, प्रवृतियां आदि यहां पर फलते-फूलते हैं। संस्कृति के अनुरूप ही विद्यालय में वातावरण का सृजन होता है।

iv. संस्कृति का शिक्षण-विधि पर प्रभाव (Influence of culture on Method of Teaching)

शिक्षण प्रक्रिया तथा शिक्षण विधि में समाज की विचारधाराओं के अनुसार परिवर्तन होता रहता है। जैसे पहले शिक्षा के अंर्तगत शिक्षक का स्थान प्रमुख था और बालक का स्थान गौण था। उस समय शिक्षण विधि से दमनात्मक अनुशासन, अनुकरण एवं रहने की क्रिया पर अधिक बल दिया जाता था लेकिन आधुनिक समय में बालक की रूचियों पर अधिक ध्यान दिया जाता है।

v संस्कृति का अध्यापक पर प्रभाव (Influence of Culture on Teacher)

अध्यापक वस्तुतः समाज की संस्कृति का एक जीवन्त प्रतिक होता है। यह शिक्षण की युक्तियों द्वारा अपनी संस्कृति को फैलाता है। बालक उसके विचारों से प्रभावित होकर ही उसकी संस्कृति को अपनाते हैं। अध्यापक का व्यवहार उसके द्वारा दिया जाने वाला ज्ञान स्थान विशेष की संस्कृति के अनुरूप ही निर्धारित होता है।

vi संस्कृति का अनुशासन पर प्रभाव (Influence of Culture on Discipline)

अनुशासन पर समाज की संस्कृति का गहरा प्रभाव पड़ता है। समाज में प्रचलित व्यवस्था मूल्य, रहन -सहन, विचारधारायें, भौतिक सम्पन्नता आदि अनुशासन को प्रभावित करती है। अर्थात समाज में जैसी प्रवृतियां विधमान होती है अनुशासन उनसे पूर्णरूप से प्रभावित होता है।

23.5.5 शिक्षा का संस्कृति पर प्रभाव (Influence of Education on Culture)

संस्कृति पर शिक्षा के प्रभाव की विवेचना निम्न प्रकार हैः-

i संस्कृति की निरन्तरता को बनाये रखना (To Maintain Continuity of Culture)

किसी भी जाति के जीवित रहने के लिए आवश्यक है कि उसकी संस्कृति जीवित रहै। उसकी परम्परायें, प्रथायें, विश्वास और रीति-रिवाज जीवित रहै। क्योंकि यदि किसी जाति की संस्कृति नष्ट हो जाती है तब वह जाति भी समाप्त हो जाती है। शिक्षा जाति की संस्कृति या सांस्कृतिक परम्परा को बनाये रखने में महान योगदान देती है।

ii संस्कृति का विकास करना (To Develop Culture)

शिक्षा द्वारा संस्कृति का विकास निरन्तर होता रहता है। संस्कृति के विभिन्न तत्व होते हैं जैसे -भाषा, साहित्य, कला, संगीत आदि। व्यक्ति शिक्षा के माध्यम से इन तत्वों का विकास करता है।

iii संस्कृति के हस्तांतरण में सहायता करना (To Help in Transmission of Culture)

ओटावे के अनुसारः- ''शिक्षा का एक कार्य समाज के सांस्कृतिक मूल्यों और व्यवहार के प्रतिमानों को उसे तरूण और समर्थ सदस्यों को हस्तांरित करना है।'' शिक्षा ही वह माध्यम है जिसके द्वारा व्यक्ति अपनी संस्कृति, परम्पराओं को अगली पीढ़ी तक पहुंचाने में मदद करती है।

iv. संस्कृति का परिष्कार (Refinement of Culture)

समय के साथ-साथ संस्कृति के तत्व पुराने होते रहते हैं। अतः शिक्षा द्वारा उन अंधविश्वास, कुरीतियों, बुरे विचारों और बुरी प्रवृतियों को दूर किया जाता है। इससे संस्कृति परिष्कृत होती है। समय के साथ परिवर्तन लाने का कार्य विद्यालय बहुत सरलता से कर सकते हैं।

v व्यक्तित्व के विकास में सहायता करना (To Help in the Development of personality)

शिक्षा का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य बालक के व्यक्तित्व का विकास कना है। लेकिन इस उद्देश्य की प्राप्ति वह संस्कृति की सहायता से ही कर सकता है। शिक्षा बालक के व्यक्तित्व के विभिन्न अंगों जैसे- बौद्धिक, चारित्रिक, नैतिक आदि के विकास के लिए सांस्कृतिक उपकरणों में प्रयोग में लाती है। जिससे व्यक्तित्व का विकास होता है।

23.6 सांराश (Summary)

भारतीय समाज विश्व का सबसे प्राचीन समाज है। यहां भारतीय संस्कृति व परम्पराओं से समाज को गहरा लगाव है, जिसके कारण वह अपनी धार्मिक पवित्रता को बनाये हुए है। लेकिन इन सबके बावजूद आज विश्व में पर्यावरण, जनसख्यां, औद्योगिकरण, नगरीकरण आदि ने विश्व समाज को परिवर्तित करने में अपनी अहम भूमिका निभाई है। सामाजिक परिवर्तन में भी इन कारकों का प्रभाव पड़ा है। आज पुराने व कमजोर पड़े रीति रिवाजों को छोड़ हम आधुनिकीकरण व पश्चिमीकरण की संस्कृति को अपना रहै हैं। हम जातिवाद से ऊपर उठकर मानवतावाद की ओर बढ़

रहै हैं। हमारे इस पूण्य कार्य में शिक्षा व संस्कृति दोनों अमूल्य है हैं। शिक्षा ने आज समाज की व्यवस्था को सही दिशा देने में योगदान दिया है। आज शिक्षा के बल पर सामाजिक स्तर में परिवर्तन किया जा सकता है। सामाजिक परिवर्तन में अफ्रीका में डा. नेल्शन मंडेला ने 20 वर्ष तक जेल में रहने के बाद समाज में क्रान्तिकारी परिवर्तन कर समाज में समानता, भाईचारा, अन्तराष्ट्रीयता की भावना का संदेश विश्व को दिया।

अपनी उन्नति जानिए Check your Progress

प्र.1- पुरूषाथों की संख्या कितनी है?

प्र.2- शतपथ ब्राह्मण में किस ऋण का वर्णन किया गया है?

प्र.3- वानप्रस्थ आश्रम से पूर्व कौन सा आश्रम होता है?

प्र.4- वर्ण व्यवस्था को कितने भागों में बांटा गया है?

प्र.5- शिक्षा व संस्कृति एक दूसरे पर प्रभाव डालते हैं-

हॉ/नहीं

23.7 शब्दावलीः-

जैविक कारकः- जैविक कारक से हमारा अभिप्राय किसी समाज की जन्सख्या वृद्धि व कमी का प्रभाव सामाजिक परिवर्तन में सहायक होता है। मनुष्य का रहन सहन का स्तर आप के साधन, शिक्षा व्यवस्था व संस्कृति पर जैविक कारक प्रभाव डालते हैं।

औद्योगीकरणः- भारतवर्ष में औद्योगिकरण का श्री गणेश 1956 में हुआ। ओ़द्योगिकरण ने ग्रामीण पुरूषों को शहरों की ओर पलायन, स्त्रियों की आर्थिक स्थिति में सुधार, रोजगार प्राप्ति से समाज में सामाजिक परिवर्तन तेजी से हुआ है।

सामाजिक परिवर्तनः- सामाजिक परिवर्तन से अभिप्राय समाज की संस्कृति, शिक्षा, रीतिरिवाज, व्यवहार, स्थिति परिवर्तन, समाज के मुखिया की स्थिति में परिवर्तन, परिवार का परिवर्तित रूप आदि है।

23.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

खण्ड एक

उत्तर. 1. वहिर्गामी, अन्तर्गामी, 2. भौगोलिक कारण, वातावरण कारक

3. खेल 4. भारत 5. वर्ष 1972 में 42वें संसोधन

खण्ड दो-

उत्तर- 1. सामाजिक संरचना, संस्कृति, व्यक्तित्व

2. नहीं 3. शिक्षा 4. मैकाइवर

खण्ड तीन-

उत्तर- 1. चार 2. मनुष्य ऋण 3. गृहस्थ आश्रम

4. चार 5. नहीं

23.9 सन्दर्भ (References)

1. पाण्डे, (डॉ) रा. श. *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*. आगरा: अग्रवाल प्रकाशन.

2. सक्सेना, (डॉ) सरोज. *शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार*. आगरा: साहित्य प्रकाशन.

3. मित्तल, एम.एल. (2008). *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*. मेरठ: इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस.

4. शर्मा, रा. ना. व शर्मा, रा. कु. (2006). *शैक्षिक समाजशास्त्र*. नई दिल्ली: एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स.

5. सलैक्स, (डॉ) शी. मै. (2008). *शिक्षक के सामाजिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्षय*. नई दिल्ली: रजत प्रकाशन.

6. गुप्त, रा. बा. (1996). *भारतीय शिक्षा शास्त्र*. आगरा: रतन प्रकाशन मंदिर.

23.10 उपयोगी/ सहायक ग्रन्थ (Useful Books)

- 1. पाण्डे, (डॉ) रा. श. *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*. आगरा: अग्रवाल प्रकाशन.

2. सक्सेना, (डॉ) सरोज. *शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार*. आगरा: साहित्य प्रकाशन.

3. मित्तल, एम.एल. (2008). *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*. मेरठ: इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस.

4. शर्मा, रा. ना. व शर्मा, रा. कु. (2006). *शैक्षिक समाजशास्त्र*. नई दिल्ली: एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स.

5. सलैक्स, (डॉ) शी. मै. (2008). *शिक्षक के सामाजिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्षय*. नई दिल्ली: रजत प्रकाशन.

6. गुप्त, रा. बा. (1996). *भारतीय शिक्षा शास्त्र*. आगरा: रतन प्रकाशन मंदिर.

- शोध पत्रिका, इन्टरनेट।

23.11 दीर्घ उत्तर वाले प्रश्न (Long Answer Types Questions)

प्र.1- भारत में सामाजिक संस्थाओं में समय-समय पर परिवर्तन होता रहा है। इस पर टिप्पणी लिखें।

प्र.2- भारत के सामाजिक परिवर्तन में औद्योगिक बदलाव की भूमिका पर प्रकाश डालें।

प्र.3- भारत के सामाजिक परिवर्तन को प्रभावित करने वाले सांस्कृतिक कारक कौन-कौन से हैं? विस्तृत वर्णन किजिए।

प्र.4- शिक्षा का संस्कृति पर प्रभाव के कारणों को विस्तार से लिखिए।

प्र.5- संस्कृति का शिक्षा पर प्रभाव के कारणों को विस्तार से लिखिए।

प्र.6- शिक्षा सामाजिक परिवर्तन में किस प्रकार सहायक होती है। व्याख्या किजिए।

इकाई-24 शैक्षिक समानता के अवसर व शिक्षा में उत्कृष्टता सम्बन्धी मुद्दे, गुणात्मक, परिमाणात्मक व समता सम्बन्धी शैक्षिक पहलू (Issues of Equality of Educational Opportunity and Excellence in Education, Quality, Quantity and Equity related aspects of Education)

24.1 प्रस्तावना (Introduction)
24.2 उद्देश्य (Objectives)
भाग-एक (Part-I)
24.3 शैक्षिक समानता के अवसर व शिक्षा मे उत्कृष्टता सम्बन्धी मुद्दे, गुणवत्ता व संख्यात्तमकसम्बन्धी शैक्षिक पहलू व समता Issues of Equality of opportunity and Excellence in Education, Quality, Quantity and Equity related aspects of Education
24.3.1 शैक्षिक अवसरों की समानता का अर्थ (Meaning of Equalization of Educational Opportunity)
24.3.2भारत में शैक्षिक अवसरों की समानता (Equality of Educational Opportunities in India)
24.3.3शिक्षा मं समानता व उत्कृष्टता सम्बन्धी मुद्दे (Equality in Education Opportunity and Excellence)
अपनी उन्नति जानिए (Check Your Progress)
भाग-दो (Part-II)
24.4 संवैधानिक प्रावधान (Constitutional Provision)
  24.4.1 भारत में शिक्षा के अवसरों की विषमताएं
  24.4.2 शैक्षिक अवसरों की समानता की आवश्यकता (Need of Equality of Educational Opportunities)

अपनी उन्नति जानिए (Check your Progress)
भाग-तीन (Part-III)
24.5 भारत में गुणवत्ता व संख्यात्तमक सम्बन्धी शैक्षिक पहलू व समता उपाय Quality, Quantity and Equity related aspects of Education in India
24.5.1 विश्व मानवीय अधिकार (World Human Rights)
अपनी उन्नति जानिए (Check Your Progress)
24.6 सारांश (Summary)
24.7 शब्दावली (Vocavolary)
24.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer of Practice Questions)
24.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Reference Books)
24.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री (Useful Books)
24.11 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

24.1 प्रस्तावना (Introduction)

समानता की धारणा जनतंत्रीय धारणा है। जनतंत्र स्वतंत्रता, समानता और शान्ति के तरीकों में विश्वास करता है। युद्ध और राजनैतिक अथवा अन्य प्रकार के तनावों के मध्य समाज की प्रगति नहीं हो सकती। जनतंत्र का यह विश्वास है कि पारस्परिक द्वेष, संघर्ष व तनाव की अवस्थाएं शान्तिपूर्ण ढंग से सुलझाई जा सकती हैं। युद्ध की अपेक्षा शान्ति की विजय अधिक चिरस्थायी है, इसमें जनतंत्र का पूर्ण विश्वास है। जनतंत्र सहयोग, सहिष्णुता, पारस्परिक आदान-प्रदान, न्याय और दृष्टिकोण की विशालता को सामाजिक समस्याओं के हल करने तथा अच्छे मानवीय सम्बंधों को स्थापित करने को महत्त्वपूर्ण मानता है। जनतंत्र विरोधी विचारों व दृष्टिकोणों की भिन्नताओं का अनादर नहीं आदर करता है। जनतंत्र का यह विश्वास है कि विचारों व दृष्टिकोणों के भेदों का आदर होना, यही उनके सामान्य लक्षणों और गुणों का मिलन होता है और विरोध समन्वय की ओर अग्रसर होता है।

स्वतंत्रता और समानता के सम्बंध में भ्रमपूर्ण विचार होने के कारण लोग बहुधा उनका गलत मतलब निकालते हैं और उनका दुरूपयोग करते हैं। इन दोनों का अर्थ लोग अपने स्वार्थवश गलत लगा बैठते हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हम स्वयं अपने देश में ही देख रहै हैं कि स्वतंत्रता का कितना गलत अर्थ लगाया जा रहा है और उसका कितना दुरूपयोग हो रहा है। हम स्वतंत्रता को उच्छृंखलता समझ बैठे हैं। हम यही नहीं अनुभव करते कि 'स्वतंत्र' होना अपने ऊपर स्वयं द्वारा अधिक नियंत्रण चाहता है। परतंत्र होने में तो दूसरे का नियंत्रण हमें स्वीकार करना पड़ता है और यदि हम अपराध करते हैं तो हमें दण्ड भुगतना पड़ता है। स्वतंत्र होने पर हमें अपना नियंत्रण स्वीकार करना पड़ता है

और यदि हम ऐसा नहीं करते तो उसके दुष्परिणाम हम को ही भोगने पड़ते हैं। नियंत्रण के बिना किसी भी प्रकार की व्यवस्था नहीं चल सकती,, चाहै वह नियंत्रण दूसरों का हो तो परतंत्रता की अवस्था में होता है, और चाहै वह अपना हो तो स्वतंत्रता की अवस्था में होता है। यह मानव दृष्टिकोण की संकीर्णता और कठोरता है

वास्तविक स्वतत्रंता दोनों सिरों के मिलन बिन्दु पर है। स्वतंत्रता अनुशासनहीनता नहीं है बल्कि स्वतंत्रता दूसरों की स्वतंत्रता को खतरे में न डाल दें, यह आवश्यक है। जनतंत्रीय स्वतंत्रता इसी बीच के मिलन बिन्दु पर खड़ी है। जनतंत्रीय व्यवस्था के पैर दोनों ओर हैं और व दोनों पर चढ़कर ही चलती है, एक पर चढ़कर वह उसी प्रकार नहीं चल सकती जिस प्रकार एक पहिए पर गाड़ी नहीं चल सकती। इसी प्रकार के भ्रम समानता के सम्बंध में भी हैं और लोग इसका आशय अधिकारों और अवसरों तथा सुविधाओं के बाराबर बांटने से लगाते हैं चाहै कोई उनका लाभ उठा सके अथवा नहीं। सब मनुष्यों में एक सी शक्ति नहीं होती और सब लोग अवसरों व सुविधाओं से बराबर लाभ नहीं उठा सकते। अतः सबको बराबर बांट कर देने का परिणाम यह होगा कि कुछ उनका लाभ उठा सकेंगे और कुछ नहीं, कुछ उनका दुरूपयोग करेगे तो कुछ को अधिक अवसरों व सुविधाओं की आवश्यकता होगी। समता या समानता का आशय यह है कि प्रत्येक व्यक्ति को उतनी सुविधा या अवसर दिए जांए जिनका वह लाभ उठा सकें और यदि वह उनसे लाभ न उठा सके तो उसे वे उतनी मात्रा में न दिए जाएं। समानता का अर्थ सबके लिए समान नीति से है, सबको समान बनाने से नहीं।

भारतीय संविधान की प्रस्तावना इस प्रकार है-

हम भारत के लोग, भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास धर्म और उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त करने के लिए तथा उन सब में व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए दृढ़ संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में ....एतद्द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मसमर्पित करते हैं। बाद में इसमें समाजवाद और धर्मनिरपेक्षता भी जोड़ दिये गये।

यह प्रस्तावना हमारे राष्ट्रीय जीवन, राजनीति और शैक्षिक उद्देश्यों या मूल्यों को परिभाषित करने वाले शब्द-प्रतीक हैं।

24.2 उद्देश्य (Objectives)

(i) शैक्षिक अवसरों की समानता का अर्थ जान सकेंगे।

(ii) शैक्षिक अवसरों की समानता व असमानता का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

(III) शैक्षिक अवसरों की प्राप्ति है तु संवैधानिक प्रावधानों को जान सकेंगे।

(IV) विश्व मानवीय अधिकारों के बारे में समझ सकेंगे।

(V) भारत में शैक्षिक अवसरों की समानता की प्राप्ति के उपायों को समझ सकेंगे।

भाग-एक (Part-I)

24.3 शैक्षिक समानता के अवसर व शिक्षा मे उत्कृष्टता सम्बन्धी मुद्दे, गुणात्मक, परिमाणात्मक व समता सम्बन्धी शैक्षिक पहलू

शैक्षिक अवसरों की समानता का विचार लोकतंत्र की देन है। लोकतंत्र स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व के सिद्धान्तों पर आधारित है। यह सामाजिक न्याय का पक्षधर है। यह व्यक्ति के व्यक्तित्व का आदर करता है और प्रत्येक व्यक्ति को अपने विकास के स्वतंत्र अवसर प्रदान करता है। लोकतंत्रीय इस भावना के आधार पर सर्वप्रथम 1870 में ब्रिटेन में प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य किया गया और उसे सर्वसुलभ बनाया गया। भारत में इस प्रकार का विचार सर्वप्रथम ब्रिटिश शासन काल में उठा। 15 अगस्त, 1947 को हमारा देश स्वतंत्र हुआ और 26 जनवरी, 1950 को हमारे देश में हमारा अपना संविधान लागू हुआ। इस संदर्भ में हमारे संविधान में दो घोषणाऐं की गई हैं। संविधान के अनुच्छेद 45 में यह घोषणा की गई है कि राज्य इस संविधान के लागू होने के समय से 10 वर्ष के अन्दर 14 वर्ष तक की आयु के सभी बच्चों की अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था करेगा और इसके अनुच्छेद 29 में यह घोषणा की गई है कि राज्य द्वारा पोषित अथवा आर्थिक सहायता प्राप्त किसी भी शिक्षा संस्था में किसी भी बच्चे को धर्म, मूल, वंश अथवा जाति के आधार पर प्रवेश से वंचित नहीं किया जाएगा। यह बात दूसरी है कि हम इसे अभी तक अपने सही रूप में अंजाम नहीं दे सके हैं। हमारे देश में इस समस्या पर सर्वप्रथम विचार किया कोठारी आयोग (1964-66) ने। उसने सुझाव दिया कि शैक्षिक अवसरों की समान सुविधा प्रदान करने के लिए सर्वप्रथम 6 से 14 आयुवर्ग के बच्चों की कक्षा 1 से 8 तक की शिक्षा अनिवार्य एवं निःशुल्क की जाए और किसी भी वर्ग के बच्चों की इस शिक्षा प्राप्त करने में आने वाली कठिनाइयों को दूर किया जाए।

24.3.1 शैक्षिक अवसरों की समानता का अर्थ

MEANING OF EQUALIZATION OF EDUCATIONAL OPPORTUNITY)

शैक्षिक अवसरों की समानता का सामान्य अर्थ है देश के सभी बच्चों को बिना किसी भेद-भाव के शिक्षा प्राप्त करने के समान अवसर और समान सुविधाएं प्रदान करना। परन्तु समान अवसर और

समान सुविधाओं के सम्बंध में विद्वानों के भिन्न-भिन्न मत हैं। कुछ विद्वान शिक्षा प्राप्त करने के समान अवसर और समान सुविधाओं के अर्थ देश के सभी बच्चों के लिए एक समान शिक्षा अर्थात् समान पाठ्यक्रम से लेते हैं। आप ही विचार करें कि विविधता के इस देश भारत में ऐसा कैसे हो सकता है। फिर सामान्य शिक्षा तो सबके लिए समान हो सकती है और होती भी है, परन्तु विशिष्ट शिक्षा तो बच्चों की रूचि, रूझान, योग्यता और क्षमता के आधार पर ही दी जा सकती है। इसके विपरीत कुछ विद्वान इसका अर्थ शिक्षा संस्थाओं के समान रूप से लेते हैं। वे सरकारी, गैरसरकारी और पब्लिक स्कूलों के भारी अन्तर को समाप्त करने के पक्ष में हैं। इनका तर्क है कि उसी स्थिति में सभी को शिक्षा के समान अवसर मिल सकते हैं। अन्यथा धनी वर्ग के बच्चे पब्लिक स्कूलों की अच्छी शिक्षा प्राप्त करते रहेंगे और निर्धन वर्ग के बच्चे सरकारी एवं गैर-सरकारी स्कूलों की निम्न स्तर की शिक्षा ही प्राप्त कर सकेंगे। शैक्षिक अवसरों की समानता से अर्थ शिक्षा की किसी भी स्तर पर सभी बच्चों को प्रवेश की सुविधा प्रदान करने से लेते हैं। इनका तर्क है कि शिक्षा मनुष्य का मौलिक अधिकार है। परंतु यह धारणा भी गलत है। अधिकार के साथ कर्तव्य जुड़ा होता है। समान अवसरों के पीछे समान योग्यता एवं समान क्षमता का भाव निहित है। जहां तक अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा की बात है उसके अवसर तो सभी को सुलभ कराना आवश्यक है परन्तु उससे आगे की शिक्षा के अवसर योग्यता एवं क्षमता के आधार पर ही सुलभ कराने चाहिए।

24.3.2 शिक्षा मं समानता व उत्कृष्टता सम्बन्धी मुद्दे
(Equality in Education Opportunity and Excellence)

समानता' शब्द से तात्पर्य उन समान परिस्थितियों से है, जिनमें सभी व्यक्तियों को विकास के समान अवसर प्राप्त हो सकें और सामाजिक भेदभाव का अंत हो सके तथा सामाजिक न्याय (Social Justice) के लक्ष्य की प्राप्ति भी सम्भव हो सके। प्रसिद्ध राजनीतिविद् प्रो. लास्की ने लिखा है- ‘‘समानता का अर्थ यह नहीं है कि प्रत्येक व्यक्ति के साथ एक जैसा व्यवहार किया जाए अथवा सभी को समान वेतन दिया जाए। यदि एक पत्थर ढोने वाले का वेतन एक प्रसिद्ध गणितज्ञ या वैज्ञानिक के समान कर दिया जाए तो इससे समाज का उद्देश्य ही नष्ट हो जायेगा। अतः समानता का अर्थ यह है कि विशेष अधिकार वाला वर्ग न रहे और सबको उन्नति के समान अवसर मिलें।’’शैक्षिक अवसरों की समानता का तात्पर्य सभी के लिए समान शिक्षा नहीं है, बल्कि प्रत्येक बालक की शारीरिक, मानसिक, सांवेगिक, नैतिक परिस्थितियों के अनुरूप शिक्षा प्रदान करना है। इसका तात्पर्य राज्य द्वारा व्यक्तियों की शिक्षा के संदर्भ जाति, रूप, रंग, प्रान्तीयता एवं भाषा, धर्म आदि के मध्य भेदभाव न करने से भी है।

शिक्षा (Education) के क्षेत्र में ‘समानता’ की अवधारणा को स्थापित करने के लिए निम्नलिखित प्रयास किये गये हैं –

(1) एक निश्चित अवधि तक भेदभाव रहित निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था।

(2) माध्यमिक स्तर पर विभिन्नीकृत पाठ्यक्रम व्यवस्था।

(3) उच्च स्तर पर सभी के लिए अपेक्षित शैक्षिक उन्नति की व्यवस्था ताकि वे उचित योगदान देने में सक्षम हो सकें।

24.3.3 शिक्षा में समानता के सूचक

शिक्षा के निम्नलिखित चार बातें समानता के सूचक कहै जा सकते हैं-

1. अधिगम की समानता- इसका सम्बंध प्रवेश के अवसर से सम्बद्ध है। समानता के आधार पर प्रवेश होना चाहिय। जाति, धर्म इसमें बाधक न हों। कुछ समय पहले भारतीय समाज में स्त्रियों एवं शूद्रों को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं था। यह अधिगम की विवशता थी। हिंदुओं की धूर्तता के कारण इस वर्ग के वच्चों को शिक्षा से वंचित रखा जाता था| यह हिंदु समाज के लिय सदियों तक कलंक के रूप में उनके माथे पर लगा रहेगा| इस असमानता को अब दूर करने का प्रयास किया जा रहा है। लेकिन आज भी समान शिक्षा का दिखावा हो रहा है| आज सरकारी व प्राइवेट शिक्षा के बीच गहरी खाई होती जा रही है|

2. उत्तरजीविता की समानता- विद्यालय में प्रवेश में ही समानता न हो वरन् छात्र स्कूल में बना रहै , वह विद्यालय छोड़ न दे, इसके लिए भी समान अवसर प्रदान किया जाना चाहिए। अनुसूचित जाति के बच्चे की आर्थिक स्थिति ठीक न होने के कारण वे बीच में ही पढ़ाई छोड़ देते हैं।

3.स्तर की समानता- एक निश्चित स्तर तक सभी बालक-बालिकाओं को बिना किसी भेदभाव के अनिवार्य शिक्षा मिले। निर्धन बालकों को विशेष सुंविधा दी जाए। अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति वर्ग के अनिवार्य निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था प्राथमिक स्तर से लेकर उच्च स्तर तक हो हो।

4. परिणाम की समानता- स्कूल छोड़ने के बाद प्रत्येक बच्चे को शिक्षा के आधार पर जीवन बिताने के समान अवसर सुलभ हों। यदि किसी वर्ग विशेष को अवसर की विषमता नजर आये तो उसे विशेष सुविधा देकर उसके लिए समान अवसर की सुलभता निश्चित की जाए। इसी सूचक के अन्तर्गत अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति वर्ग के लिए नौकरियो में आरक्षण की निरन्तर व्यवस्था की जानी चाहिय। जब तक की इस समाज के निम्न स्थिति वाले व्यक्ति अपनी स्थिति में सुधार कर ले |

उपर्युक्त चारों सूचकों में किसी-किसी समाज में चारों, किसी में कुछ कम तो किसी में कुछ अधिक की उपस्थिति दृष्टिगोचर होती है। यह आवश्यक नहीं हैं कि चारों सूचक सदा समाज में विद्यमान ही रहें।

अपनी उन्नति जानिए (Cheque your Progress)

प्र. 1. शैक्षिक अवसरों की समानता पर सर्वप्रथम विचार किस आयोग ने किया था ?

(1) सैडलर आयोग (2) राधाकृष्णन आयोग

(3) मुदालियर आयोग (4) कोठारी आयोग

प्र. 2. कश्मीर प्रान्त में किस स्तर तक की शिक्षा निःशुल्क है ?

(1) प्राथमिक (2) माध्यमिक

(3) उच्च (4) सम्पूर्ण

प्र. 3. माध्यमिक स्तर पर गतिनिर्धारक विद्यालयों का प्रस्ताव किस राष्ट्रीय शिक्षा नीति में किया गया था ?

(1) राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1968 (2) राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1979

(3) राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 (4) संशोधित राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1992

प्र. 4. आश्रम स्कूलों की व्यवस्था किन के लिए की जा रही है ?

(1) दूरदराज में रहने वाले लड़कों के लिए

(2) दूरदराज में रहने वाली लड़कियों के लिए

(3) दूरदराज में रहने वाले लड़के-लड़कियों के लिए

(4) दूरदराज में रहने वाले जनजाति के बच्चों के लिए

24.4 संवैधानिक प्रावधान (Constitutional Provision)

भारतीय संविधान के निम्नलिखित अनुच्छेद महत्वपूर्ण हैं –

अनुच्छेद 15- धर्म, मूलवंश, जति, लिंग व जन्म स्थान के आधार पर कोई भेदभाव किसी भी भारतीय नागरिक के साथ नहीं बरता जायेगा।

अनुच्छेद 16- सरकारी नौकरियां सभी के लिए खुली होंगी तथा अनुसूचित जाति व जनजाति के लिए विशेष सुविधाएं सुंरक्षित स्थानों के रूप में होंगी।

अनुच्छेद 19- प्रत्येक भारतीय नागरिक को व्यवसाय या धंधा करने का अधिकार होगा।

अनुच्छेद 28- शिक्षा संस्थाओं में प्रवेश के मामले में कोई भेदभाव किसी के साथ नहीं बरता जायेगा।

हिन्दुओं में अस्पृश्यता निवारण की दृष्टि से संविधान के निम्नलिखित अनुच्छेद द्रष्टव्य हैं-

अनुच्छेद 25- हिन्दुओं की सार्वजनिक, धार्मिक संस्थाओं के द्वारा समस्त हिन्दुओं के लिए खोलना।

अनुच्छेद 29- राज्य द्वारा पोषित अथवा राज्य निधि से सहायता पाने वाली किसी शिक्षा संस्था में प्रवेश कर किसी भी तरह से प्रतिबंध निषेध।

अनुच्छेद 46- इन जातियों के शैक्षिक और आर्थिक हितों की रक्षा और उनका सभी प्रकार के शोषण और सामाजिक अन्याय से बचाव।

अनुच्छेद 146- केन्द्र व राज्यों में अछूतों के कल्याण है तु समाज कल्याण एवं अशासकीय संस्थाओं को खोलने पर बल दिया गया है।

अनुच्छेद 244- अनुसूचित जातियों के लिए प्रशासन सम्बंधी विशेष व्यवस्था की गयी है।

अनुच्छेद 330 व 335- संसद और विधान मण्डलों में अनुसूचित जातियों को विशेष प्रतिनिधित्व मिलेगा।

संविधान के अनुसार अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के कल्याण की देखभाल करने के लिए विशेष कमिश्नर की नियुंक्ति की जाए जो प्रतिवर्ष राष्ट्रपति को उनकी दशा के सम्बंध में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करे। इस महत्वपूर्ण पद पर एम0ए0 श्री कांत व सुप्रसिद्ध गांधीवाद व

सामाजिक, मानव शास्त्री डा. एन. के बोस कार्य कर चुके थे। प्रतिवर्ष प्रस्तुत की जाने वाली कमिश्नर की रिपोर्ट में अनुसूचित जातियों व जनजातियों के जीवन में द्रुतगति से प्रभावपूर्ण परिवर्तन लाने के लिए कई महत्वपूर्ण सुझाव दिये जाते रहै हैं। इन जातियों में परिवर्तन लाने के लिए अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की सुविधाओं को प्रदान करना हमारा पहला कर्तव्य है और स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् देश में व्याप्त निरक्षरता को समाप्त करने के लिए अनिवार्य शिक्षा के प्रसार पर जोर दिया गया। इसके लिए संविधान में भी प्रावधान किया गया कि बालक-बालिकाओं को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा प्रदान की जाये।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 45 में प्रावधान है कि लोकतंत्र को सफल बनाने तथा उसकी सुरक्षा के लिए सभी नागरिक का शिक्षित होना अति आवश्यक है। लोकतंत्र वह शासन पद्धति होती है जिसमें सर्वोच्च सत्ता जनता के हाथ में होती है। अब लोकतंत्र के लिए सार्वजनिक मताधिकार होना आवश्यक समझा जाता है और मताधिकार का समुचित प्रयोग करने के लिए मतदाता को कुंछ सामान्य शिक्षा देना परमावश्यक है।

24.4.1 भारत में शिक्षा के अवसरों की विषमताएं

शिक्षा अवसरों की विषमताओं की जटिलतओं के निन्नलिखित रूप में उल्लेख किया गया है-

1. ग्रामीण और नगरीय विभिन्नता- ‘‘बुद्धि, नैतिक, न्याय और घनिष्ठता की दृष्टि से शिक्षा की व्यवस्था में बहुत अधिक असमानता है। यद्धपि जनसंख्या का तीन-चौथाई भाग ग्रामीण क्षेत्रों में रहता है, फिर भी उन्हें शिक्षा के लिए बहुत कम संसाधन प्राप्त हो रहै हैं। समृद्ध लोग शहरों में निजी रूप से चलायी जाने वाली अच्छी शिक्षण संस्थाओं का लाभ लेते हैं तथा ये ही व्यावसायिक शिक्षा संस्थाओं में अनारक्षित स्थानों के बहुत बड़े हिस्से पर अधिकार कर लेते हैं, जबकि ग्रामीण स्कूलों की अपेक्षाकृत दयनीय दशा के कारण ग्रामीण क्षेत्रों के बच्चों को बहुत बड़ी हानि उठानी पड़ती है।’’

2. लिंग और जाति पर आधारित विषमता - ‘‘लड़कियों, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के बच्चों ने पिछले दशक के दौरान उल्लेखनीय प्रगति की है। इसके उपरान्त भी वे शैक्षिक उपलब्धि के अंतिम सोपान पर हैं। बालिकाएं तो घर-गृहस्थी के कार्या में अपनी दत्तचिन्तता तथा सामाजिक कुरीतियों की शिकार होती हैं इनमें से अधिकांशतः पहली पीढ़ी के शिक्षार्थी होने के कारण बाल्यकाल के कुपोषण, सामाजिक अकेलेपन की भावना, कार्य करने की खराब आदतें तथा बौद्धिक क्षमताओं के प्रति आत्मविश्वास अभाव के कारण समुचित विकास नहीं कर सकते। वे अपने को सामान्य धारा के छात्रों से सामंजस्य स्थापित करने में कठिनाई अनुभव करते हैं। इन मनोवैज्ञानिक दबावों के कुप्रभाव को समाप्त करने के लिए तथा उनकी योग्यताओं में बढोत्तरी करने है तु एवं समाज की प्रमुख धारा में उन्हें समन्वित करने के लिए विशेष कार्यक्रम की आवश्यकता है।’’

इन शैक्षिक विषमताओं का उल्लेख क्रमबद्ध ढंग से निम्नलिखित रूप में किया है -

(i) जिन स्थानों पर प्राथमिक, माध्यमिक या कॉलेज की शिक्षा देने वाली संस्थाएं नहीं हैं, वहां के बच्चों को वैसा अवसर नहीं मिल पाता, जैसा उन बच्चों को मिल पाता है, जिनकी बस्तियों में ये संस्थाएं उपलब्ध हैं।

(ii) इस देश के विभिन्न भागों में शैक्षिक विकासों में भारी असंतुलन देखने को मिलता है-एक राज्य और दूसरे राज्य के शैक्षिक विकासों में बहुत बड़ा अन्तर मौजूद है और एक जिले तथा दूसरे जिले के विकास में और भी बड़ा अन्तर देखने को मिलता है।

(iii) शिक्षा के अवसरों की विषमता का एक और कारण यह है कि जनसंख्या का बहुत बड़ा भाग गरीब है और बहुत थोड़ा भाग धनी। किसी शिक्षा-संस्था के समीप होते हुए भी गरीब परिवारों के बच्चों को वह अवसर नहीं मिलता, जो धनी परिवारों के बच्चों को मिल जाता है।

(iv) शिक्षा के अवसरों की विषमता का एक और बड़ा दुःसाध्य रूप विद्यालयों तथा कॉलेजों के अपने-अपने भिन्न स्तरों के कारण पैदा होता है। जब किसी विश्वविद्यालय या वृत्तिक कॉलेज जैसी संस्था में प्रवेश उन अंकों के आधार पर दिया जाता है, जो माध्यमिक स्तर की समाप्ति पर दी गयी सार्वजनिक परीक्षा में प्राप्त हुए हों और प्रवेश साधारणतया इसी आधार पर होता है, तब देहाती क्षेत्र के साधनहीन ग्रामीण विद्यालय में पढ़े छात्र के लिए यह कसौटी या मापदण्ड एक समान नहीं रहता।

(v) घरेलू पर्यावरणों के भिन्न-भिन्न होने के कारण भी भारी विषमताएं उत्पन्न होती हैं। देहात के घर या शहरी गन्दी बस्तियों में रहने वाले और अनपढ़ माता-पिता की संतान को शिक्षा पाने का वह अवसर नहीं मिलता, जो उच्चतर शिक्षा पाये हुए माता-पिता के साथ रहने वाली उनकी संतान को मिलता है।

(vi) भारतीय परिस्थितियों ने निम्नलिखित दो प्रकार की शैक्षिक विषमताओं को प्रमुख रूप से जन्म दिया है- (I) शिक्षा के सभी स्तरों पर तथा क्षेत्रों में लड़कों तथा लड़कियों की शिक्षा में भारी अंतर। (II) उन्नत वर्गों तथा पिछड़े वर्गों -अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित आदिम जातियों के बीच शैक्षिक विकास का अन्तर।

24.4.2 शैक्षिक अवसरों की समानता की आवश्यकता

(Need of Equality of Educaitonal Opportunities)

आज पूरा संसार मानवाधिकार के प्रति सचेत है। संसार के सभी देशों में शिक्षा को मानव का मूल अधिकार माना है। किसी भी देश में सभी को शिक्षा प्राप्त करने की समान सुविधाएं होनी चाहिए। लोकतंत्रीय देशों में तो यह और भी अधिक आवश्यक है, बिना इसके लोकतंत्र अर्थहीन है। हमारे लोकतंत्रीय देश में तो इसकी और अधिक आावश्यकता है, कारण स्पष्ट है -

1. लोकतंत्र की रक्षा के लिए - लोकतंत्र की सफलता उसके नागरिकों पर निर्भर करती है, उसके नागरिकों की योग्यता और क्षमता पर निर्भर करती है और नागरिकों की योग्यता और क्षमता निर्भर करती है शिक्षा पर। अतः देश के प्रत्येक नागरिक को शिक्षित करना आवश्यक है। इस क्षेत्र में हमारे देश की स्थिति बड़ी चुनौतीपूर्ण है। पहली बात तो यह है कि इसकी जनसंख्या बहुत अधिक है और साधन अपेक्षाकृत बहुत कम हैं। दूसरी बात यह है कि देश की आधे से अधिक जनता निर्धन है, अपने बच्चों की शिक्षा की व्यवस्था करने में असमर्थ है। तीसरी बात यह है कि इसकी बहुसंख्यक जनता गांवों में रहती है, दूर-दराजों में रहती है। रेगिस्तान, पहाड़ी और जंगली क्षेत्रों में रहने वालों की बहुत बड़ी संख्या है। परिणाम यह है कि शिक्षा सर्वसुलभ नहीं है। अतः आवश्यक है कि हम उपेक्षित, निर्धन और दूर-दराज में रहने वालों को शिक्षा सुविधाएं प्रदान करें।

2. व्यक्ति के वैयक्तिक विकास के लिए - लोकतंत्र व्यक्ति के व्यक्तित्व का आदर करता है और प्रत्येक व्यक्ति को अपने विकास के स्वतंत्र अवसर प्रदान करता है। और हमारे देश की स्थिति यह है कि इसकी आधे से अधिक जनसंख्या पिछड़ी है, निर्धन है, अच्छी शिक्षा से वंचित है। यदि हम सचमुच अपने देश के प्रत्येक व्यक्ति को अपने विकास के अवसर प्रदान करना चाहते हैं तो पहली आवश्यकता यह है कि सभी को शिक्षा प्राप्त करने के समान अवसर एवं सुविधाएं प्रदान करें।

3. वर्ग भेद की समाप्ति के लिए - स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले हमारे देश में शिक्षा उच्च वर्ग तक सीमित थी, परिणाम यह हुआ कि इस देश में जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उच्च वर्ग का अधिकार बढ़ता गया और निम्न वर्ग के व्यक्ति और पिछड़ते गये और वर्ग भेद बढ़ता गया। लोकतंत्र इस प्रकार के सामाजिक और आर्थिक वर्ग भेद का विरोधी है। इस वर्ग भेद की समाप्ति के लिए सभी वर्गों के बच्चों एवं युवकों को शिक्षा प्राप्त करने के समान अवसर एवं सुविधाएं प्राप्त कराना आवश्यक है।

4. समाज के उन्नयन के लिए - लोकतंत्र सामाजिक वर्ग भेद का विरोधी है, वह पूरे राष्ट्र को एक समाज मानता है और उसे सभ्य एवं सुसंस्कृत समाज के रूप में विकसित करने में विश्वास करता है और यह तब तक संभव नहीं है जब तक देश के प्रत्येक नागरिक को शिक्षित नहीं किया जाता। इसके लिए हमारे देश में शैक्षिक अवसरों की समानता की बहुत आवश्यकता है।

5. राष्ट्र के आर्थिक विकास के लिए - किसी राष्ट्र का आर्थिक विकास दो तत्वों पर निर्भर करता है- प्राकृतिक संसाधन और मानव संसाधन। जहां तक प्राकृतिक संसाधनों की बात है यह तो प्रकृति की देन है, परन्तु मानव संसाधन का विकास शिक्षा द्वारा होता है। और जिस राष्ट्र में जितनी अधिक और उत्तम प्रकार की शिक्षा की व्यवस्था होती है, वह राष्ट्र उतनी ही तेजी से आर्थिक विकास करता है। अतः आवश्यक है कि हम जिन बच्चों तक शिक्षा नहीं पहुंचा पा रहे हैं, उन तक शिक्षा पहुंचाएं, उनके मार्ग की कठिनाईयों को दूर करें। यही शैक्षिक अवसरों की समानता का अर्थ है।

अपनी उन्नति जानिए(Cheque your Progress)

प्र. 1. सरकारी नौकरियां सभी के लिए खुली होंगी तथा अनुसूचित जाति व जनजाति के लिए विशेष सुविधायें सुरक्षित स्थानों के रूप में होंगी -

(अ) अनुच्छेद 15 (ब) अनुच्छेद 16

(स) अनुच्छेद 28 (द) अनुच्छेद 29

प्र. 2. धर्म, मूल, वंश, जाति, लिंग व जन्म स्थान के आधार पर कोई भेदभाव किसी भी भारतीय नागरिक के साथ नहीं बरता जाएगा -

(अ) अनुच्छेद 15 (ब) अनुच्छेद 16

(स) अनुच्छेद 28 (द) अनुच्छेद 29

प्र. 3. राज्य द्वारा पोषित अथवा राज्य निधि से सहायता पाने वाली किसी संस्था में प्रवेश कर किसी भी तरह से प्रतिबंध निषेध -

(अ) अनुच्छेद 16 (ब) अनुच्छेद 17

(स) अनुच्छेद 29 (द) अनुच्छेद 46

प्र. 4. अनुसूचित जातियों के लिए प्रशासन संबंधी विशेष व्यवस्था की गई है -

(अ) अनुच्छेद 46 (ब) अनुच्छेद 244

(स) अनुच्छेद 15 (द) अनुच्छेद 17

प्र. 5. लोकतंत्र को सफल बनाने तथा उसकी सुरक्षा के लिए सभी नागरिकों का शिक्षित होना आवश्यक है -

(अ) अनुच्छेद 44 (ब) अनुच्छेद 42

(स) अनुच्छेद 43 (द) अनुच्छेद 45

भाग-तीन (Part-III)

24.5 भारत में गुणवत्ता व संख्यात्तमक सम्बन्धी शैक्षिक पहलू व समता के उपाय Quality, Quantity and Equity related aspects of Education in India

शैक्षिक अवसरों की समानता के दो मुख्य पहलू हैं- पहला यह कि देश के सभी वर्गों और युवकों को बिना किसी भेदभाव के, किसी भी स्तर की, किसी भी शिक्षा से सुलभ कराना और दूसरा यह कि

किसी भी वर्ग के बच्चों अथवा युवकों के किसी भी स्तर की, किसी भी प्रकार की शिक्षा प्राप्त करने में आने वाली बाधाओं का निवारण करना। हम यह भी देख रहै है कि जिस तेजी के साथ विधालय व कालेजो की संख्या मे बढोतरी हो रही है उतनी तेजी के साथ शिक्षा मे गुणात्मक वृद्धि नही हो रही। इसका कारण यह है शिक्षको द्वारा शोध कार्य व पठ्न-पाठन पर गम्भिरता पूर्वक ध्यान नही दिया जा रहा है जब तक शिक्षक व छात्र शोध कार्य तथा आज की तकनीकि के प्रति जागरुक नही होगे तब तक शिक्षा मे गुणात्तमकता की बात करना नाइंसाफी होगी।

कोठारी आयोग (1964-66) के सुझाव

(1) कक्षा 1 से कक्षा 8 तक की शिक्षा अनिवार्य एवं निःशुल्क की जाए और इस लक्ष्य को दो पंचवर्षीय योजनाओं में प्राप्त किया जाए।

(2) प्राथमिक स्तर पर छात्रों को पाठ्यपुस्तकें, लेखन सामग्री और माध्यान्ह भोजन निःशुल्क दिया जाए।

(3) पिछड़े वर्ग, अल्पसंख्यक वर्ग, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातियों के बच्चों की शिक्षा के लिए विशेष व्यवस्था की जाए और कबीलों के बच्चों के लिए आवासीय आश्रम स्कूल खोले जाएं।

(4) मंद बुद्धि और विकलांग बालकों के लिए अलग से स्कूल खोले जाएं, इनमें विशेष प्रशिक्षण प्राप्त शिक्षकों की नियुक्ति की जाए।

(5) माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा के निर्धन छात्रों को शुल्क मुक्त किया जाए।?

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968 के प्रस्ताव

केन्द्र सरकार ने कोठारी आयोग के उपर्युक्त सुझावों के आधार पर राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968 में निम्नलिखित घोषणाएं कीं-

(1) ग्रामीण एवं पिछड़े क्षेत्रों में और अधिक स्कूल-कॉलेज खोले जाएंगे और इन क्षेत्रों के बच्चों और युवकों को सभी स्तरों की शिक्षा सुलभ कराई जाएगी।

(2) देश में सामान्य विद्यालय प्रणाली (Common School System) लागू की जाएगी, अर्थात् एक क्षेत्र में रहने वाले सभी वर्गों के बच्चे एक प्रकार के स्कूल में पढ़ेंगे, एक साथ पढ़ेंगे।

(3) पिछड़े वर्ग, अल्पसंख्यक वर्ग, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और कबीलों के बच्चों की शिक्षा की विशेष व्यवस्था की जाएगी और इनको आवश्यक आर्थिक सहायता दी जाएगी।

(4) मन्दबुद्धि और विकलांग बच्चों के लिए अलग से विद्यालय खोले जाऐंगे।

(6) पब्लिक स्कूलों में निम्न एवं निर्धन वर्ग के बच्चों के लिए स्थान आरक्षित किये जायेंगे और उनके लिए निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था की जाएगी।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के प्रस्ताव

(1) एक निश्चित कार्य योजना के अंतर्गत सर्वप्रथम कक्षा 1 से कक्षा 5 तक की शिक्षा अनिवार्य एवं निःशुल्क की जाएगी और उसके बाद कक्षा 6 से 8 तक की शिक्षा अनिवार्य एवं निःशुल्क की जाएगी और यह लक्ष्य 1995 तक प्राप्त कर लिया जाएगा।

(2) पिछड़े वर्ग, अल्पसंख्यक वर्ग, अनुंसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और कबीलों आदि उपेक्षित वर्ग के बच्चों की शिक्षा की विशेष व्यवस्था की जाएगी।

(3) उपेक्षित वर्ग के बच्चों को आर्थिक सहायता दी जाएगी, इनके लिए विशेष छात्रवृत्तियों की व्यवस्था की जाएगी।

(4) मन्द बुद्धि और विकलांग बालकों के लिए अलग से स्कूल खोले जायेंगे।

(5) माध्यमिक स्तर पर गति निर्धारक विद्यालय (Pace Making Schools) खोले जाएंगे, इनमें उपेक्षित क्षेत्रों (ग्रामीण) और उपेक्षित वर्ग (अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति) के मेधावी छात्रों के लिए आवासीय निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था की जाएगी।

24.5.1 विश्व मानवीय अधिकार (World Human Rights)

यू.एन.ओ. (यूनाइटेड नेशन्स ऑर्गनाइजेशन) तथा उसकी प्रमुख सहयोगी शाखा यूनेस्को (UNESCO) यूनाइटेड नेशन्स एजूकेशनल, साइन्टिफिक एण्ड कल्चरल ऑर्गनाइजेशन को इस दिशा में महान कार्य करने का श्रेय अन्तर्राष्ट्रीय विश्व संगठनों को जाता है।

संयुक्त राष्ट्र संघ ने विश्व मानवीय अधिकारों के अंतर्गत निम्नलिखित क्षेत्रों में समान अवसरों की अवधारणा को स्वीकार किया है -

(1) नागरिक अधिकार **(Civil Rights)** - मानवीय अधिकारों की घोषणा में विश्व के प्रत्येक नागरिक को निम्नलिखित अधिकार प्रदान किये गये है -

(1) सभी प्राणी जन्म से स्वतंत्र हैं तथा वे आत्म-सम्मान एवं अधिकारों के संदर्भ में एक समान हैं।

(2) प्रत्येक व्यक्ति को जीवन जीने का अधिकार है। साथ ही स्वतंत्रता एवं सुरक्षा का भी हकदार है।

(3) किसी भी व्यक्ति को नौकर या गुलाम बनाकर नहीं रखा जा सकता तथा गुलामी प्रत्येक दृष्टिकोण से निन्दनीय है। अतः उसे तत्काल प्रभाव से बन्द किया जाये।

(4) किसी भी व्यक्ति को यातनापूर्ण, बर्बर दण्ड प्रदान नहीं किया जा सकता।

राजनीतिक अधिकार - संयुक्त राष्ट्र के मानवीय अधिकारों की धारा 14, 15, 21 के अंतर्गत निम्नलिखित राजनीतिक अधिकारों की मान्यता दी गई है-

(1) प्रत्येक व्यक्ति अपने राष्ट्र की सरकार में सक्रिय सहभागिता कर सकता है। वह प्रत्यक्ष रूप में भी हो सकती है अथवा चुने हुए प्रतिनिधियों के द्वारा अप्रत्यक्ष रूप में भी हो सकती है।

(2) प्रत्येक व्यक्ति द्वारा प्रदत्त जन-सेवाओं का लाभ प्राप्त करने के लिए समान रूप से अधिकार है।

(3) किसी भी राष्ट्र में सरकार की स्थापना वहां के निवासियों की इच्छा शक्ति पर निर्भर करेगी। इसके लए आवर्ती चुनावों तथा गुप्त मतदान का सहारा लिया जा सकता है।

आर्थिक अधिकार - धाराएं 17, 22, 23, 24 तथा 25 आर्थिक रूप से स्वतंत्रता प्रदान करने के लिए मानवीय अधिकारों की घोषणा करती हैं। संक्षेप में, उनका सार निम्नलिखित है -

(1) प्रत्येक व्यक्ति को अपनी संपत्ति रखने का अधिकार प्राप्त है। वह स्वयं या किसी अन्य व्यक्ति की संपत्ति का नियोजन करे। किसी भी व्यक्ति को मनमाने ढंग से उसकी संपत्ति से वंचित करने का अधिकार नहीं है।

(2) प्रत्येक व्यक्ति को सामाजिक सुरक्षा का अधिकार है। इसके अंतर्गत प्रत्येक राष्ट्र को अपने नागरिक को सामाजिक जीवन-निर्वाह है तु आर्थिक भत्ते की व्यवस्था करना अनिवार्य है, जबकि वह अशक्त, रोगी या बेरोजगार है।

(3) प्रत्येक व्यक्ति को कार्य करने का अधिकार है। साथ ही राष्ट्र को उसकी बेरोजगारी से रक्षा करने का अधिकार है।

(4) प्रत्येक व्यक्ति को समान कार्य है तु समान वेतन प्राप्त करने का अधिकार है।

(सामाजिक अधिकार Social Rights) - मानवीय अधिकारों के घोषणा-पत्र में निम्नलिखित सामाजिक अधिकारों का उल्लेख किया गया है-

(1) राष्ट्रों द्वारा निर्धारित निश्चित आयु वर्ग में प्रत्येक युवक-युवती को पारस्परिक पसन्द से विवाह करके परिवार स्थापित करने का अधिकार है।

(2) परिवार किसी राष्ट्र एवं समाज की आधारभूत इकाई है। अतः उस राष्ट्र द्वारा उसकी सुरक्षा एवं परिपोषण की व्यवस्था करना अनिवार्य है।

(3) मातृत्व एवं बाल्यावस्था की देखभाल है तु विशेष प्रयास करना प्रत्येक राष्ट्र का दायित्व है।

(4) प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षा ग्रहण करने का अधिकार प्राप्त है। इसलिए प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य रूप से शुल्क-मुक्त होनी आवश्यक है।

सांस्कृतिक अधिकार - मानवीय अधिकारों की घोषणा में निम्नलिखित सांस्कृतिक अधिकारों का समावेश किया गया है-(1) प्रत्येक व्यक्ति अपने सामुदायिक क्रिया-कलापों में सहभागिता है तु स्वतंत्र है। अन्य शब्दों मे प्रत्येक व्यक्ति अपने कला-कौशलों के माध्यम से आनन्द की अनुभूति कर सकता है तथा वैज्ञानिक उन्नति में सक्षम योगदान दे सकता है।

(2) प्रत्येक राष्ट्र के व्यक्ति को अपनी सांस्कृति धरोहर के संरक्षण, सम्प्रेषण तथा सुरक्षा का अधिकार है, चाहै यह वैज्ञानिक, वस्तुगत या साहित्यिक हो।

अपनी उन्नति जानिए (Check your Progress)

प्र. 1. निम्नलिखित में से किसका संबंध समानता से नहीं है ?

(अ) अल्पसंख्यकों की शिक्षा (ब) विकलांगों की शिक्षा

(स) प्रवेश के नियम (द) अधिगम पठार

प्र. 2. निम्नलिखित में से कौन-सा आदर्श संविधान की भूमिका में बाद में जोड़ा गया ?

(अ) स्वतंत्रता (ब) धर्मनिरपेक्षता

(स) समानता (द) बन्धुत्व

प्र. 3. निम्नलिखित में कौन-सा उपाय असमानता को दूर करने के लिए प्रभावी नहीं है ?

(अ) पूरक शिक्षा (ब) नया विश्वविद्यालय खोलना

(स) माध्यमिक विद्यालयों में वृद्धि (द) शिक्षा शुल्क में वृद्धि

24.6 सारांश (Summary)

1. यह सत्य है कि स्वतंत्रता के पश्चात् शैक्षिक सुविधाओं के प्रसार के पफलस्वरूप समाज के सभी वर्ग लाभान्वित हुए हैं, लेकिन अब भी वर्गीय विषमता विद्यमान है। अतः नयी शिक्षा-नीति ‘लाभ उठाने से अब तक वंचित वर्ग’ को उनकी आवश्यकताओं के अनुरूप शैक्षिक अवसरों की समानता उपलब्ध कराकर विषमताओं के उन्मूलन को कम किया जा सकता है।

2. पुरूषों के समान महिलाओं को भी शिक्षा की आवश्यकता है तथा इसे अर्जित करने का उन्हें अधिकार है। अतः महिलाओं की स्थिति में मूलभूत परिवर्तन लाने के उद्देश्य से शिक्षा के अभिकरण का उपयोग किया जाना चाहिए। चिरकाल से चली आ रही इस विसंगति के समुच्च्य को निष्प्रभावी बनाने है तु महिलाओं के पक्ष में एक सुनियोजित कार्यक्रम विचारणीय है।

3 अनुसूचित जाति का एक विशाल समुदाय सामाजिक, आर्थिक और शैक्षिक पिछड़ेपन से ग्रस्त है। यद्यपि विगत की अपेक्षा उनके शैक्षिक स्तर में सुधार आया है फिर भी 1981 की जनगणना के अनुसार अन्य वर्गों की अपेक्षा उनकी यह उपलब्धि आधी है

4 अनुसूचित जाति के शैक्षिक विकास में प्रमुख विचारणीय बात यह है कि उन्हें सभी आयामों में तथा शिक्षा के सभी क्षेत्रों और स्तरों के समान सुविधाएं उपलब्ध कराई जायें। यह कम से कम समय में केवल केन्द्र और राज्य स्तर पर सतत् संचारेक्षण तथा प्रभावी रणनीति के माध्यम से ही संभव हो सकता है।

(5) विद्यालय भवन तथा प्रौढ़ शिक्षा केन्द्र ऐसे स्थान पर स्थापित हों, जहां ऐसे छात्रों के लिए आ सकने की सुविधा हो।

24.7 कठिन शब्द (Difficult Words)

जनतंत्र- जनतंत्र स्वतंत्रता, समानता और शान्ति के तरीकों में विश्वास करता है। युद्ध और राजनैतिक अथवा अन्य प्रकार के तनावों के मध्य समाज की प्रगति नहीं हो सकती ।

स्तर में अंतर- विभिन्न स्कूलों से आये बच्चों की शैक्षिक उपलब्धि में अंतर होता है सबके मापदण्ड में अंतर होता है।

सामाजिक स्तरीकरण Social Stratifications - समाज के व्यक्ति जब अपने स्तर से उत्तर या निचे की ओर उन्मुख होते है तो इसे हम सामाजिक स्तरीकरण कहते है।

24.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

भाग-1 (PART-I)

उत्तर 1. कोठारी आयोग

उत्तर 2. सम्पूर्ण शिक्षा

उत्तर 3. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986

उत्तर 4 दूर-दराज में रहने वाले लड़के-लड़कियों के लिए

भाग-2 (PART-II)

उत्तर 1 (ख) अनुच्छेद 16

उत्तर 2. (अ) अनुच्छेद 15

उत्तर 3. (स) अनुच्छेद 29

उत्तर 4 (ब) अनुच्छेद 244

उत्तर 5 (द) अनुच्छेद 45

भाग-3 (PART-III)

उत्तर 1 (द) अधिगम पठार

उत्तर 2 (ब) धर्मनिरपेक्षता

उत्तर 3 (द) शिक्षा शुल्क में वृद्धि

24.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (REFERENCE Books)

1. पाण्डे, (डॉ) रा. श. *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*. आगरा: अग्रवाल प्रकाशन.

2. सक्सेना, (डॉ) सरोज. *शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार*. आगरा: साहित्य प्रकाशन.

3. मित्तल, एम.एल. (2008). *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*. मेरठ: इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस.

4. शर्मा, रा. ना. व शर्मा, रा. कु. (2006). *शैक्षिक समाजशास्त्र*. नई दिल्ली: एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स.

5. सलैक्स, (डॉ) शी. मै. (2008). *शिक्षक के सामाजिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्षय*. नई दिल्ली: रजत प्रकाशन.

6. गुप्त, रा. बा. (1996). *भारतीय शिक्षा शास्त्र*. आगरा: रतन प्रकाशन मंदिर.

24.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री (USEFUL Books)

1. पाण्डे, (डॉ) रा. श. *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*. आगरा: अग्रवाल प्रकाशन.

2. सक्सेना, (डॉ) सरोज. *शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार*. आगरा: साहित्य प्रकाशन.

3. मित्तल, एम.एल. (2008). *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*. मेरठ: इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस.

4. शर्मा, रा. ना. व शर्मा, रा. कु. (2006). *शैक्षिक समाजशास्त्र*. नई दिल्ली: एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स.

5. सलैक्स, (डॉ) शी. मै. (2008). *शिक्षक के सामाजिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्षय*. नई दिल्ली: रजत प्रकाशन.

6. गुप्त, रा. बा. (1996). *भारतीय शिक्षा शास्त्र*. आगरा: रतन प्रकाशन मंदिर.

24.11 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

प्र. 1. शैक्षिक अवसरों की समानता से क्या तात्पर्य है ? आपकी सम्मति में अपने देश में शैक्षिक अवसरों की समानता की प्राप्ति के लिए क्या उपाय करने चाहिए ?

प्र. 2. शैक्षिक अवसरों की समानता से आप क्या समझते हैं ? हमारे देश में शिक्षा के क्षेत्र में किस प्रकार की असमानताएं हैं ? इन असमानताओं को कैसे दूर किया जा सकता है ?

प्र. 3. ‘आज हमारे देश में शैक्षिक अवसरों की समानता के नाम पर वोट की राजनीति की जा रही है’ इस कथन की विवेचना कीजिए।

प्र. 4. शैक्षिक अवसरों की समानता की पृष्ठभूमि की विवेचना कीजिए।

प्र. 5. शिक्षा में समानता के सूचक क्या हैं ?

प्र. 6. शैक्षिक अवसरों की समानता पर नई शिक्षा-नीति को स्पष्ट करिए।

प्र. 7. असमानता के कारक क्या हैं ?

इकाई 25: शिक्षा और लोकतंत्र, शिक्षा के संवैधानिक प्रावधान, राष्ट्रीयता और शिक्षा, उदारीकरण, निजीकरण और भूमण्डलीकरण, व सूचना और संचार तकनीक के युग में शिक्षा (Education and Democracy, Constitutional Provisions for Education, Nationalism and Education, Education in the Era of Liberalization, Privatization and Globalization (LPG) & Information and Communication Technology)

25.1 प्रस्तावना (INTRODUCTION
25.2 उद्देश्य (OBJECTIVES)
भाग-एक **(PART- I)**
25.3 लोकतंत्र और शिक्षा (EDUCATION & DEMOCRACY)
  25.3.1शिक्षा के लिए संवैधानिक प्रावधान (CONSTITUTIONAL PROVISION FOR EDUCATION)
  अपनी उन्नति जानिए (Check your Progress)
भाग-दो **(PART- II)**
25.4 राष्ट्रीयता और शिक्षा (NATIONALISM & EDUCATION)
  25.4.1 शिक्षा और उदारीकरण (EDUCATION AND LIBERATIZATION)
  25.4.2 शिक्षा और निजीकरण (EDUCATION AND PRIVATIZATION)
  25.4.3 शिक्षा और भूमण्डलीकरण (EDUCATION AND GLOBLIZATION)
  अपनी उन्नति जानिए (CHECK YOUR PROGRESS)
भाग-तीन **(PART- III)**

25.5 सूचना और संचार तकनीक (COMMUNICATION TECHNOLOGY)
शैक्षिक तकनीकी में अद्यतन विकास (LATEST DEVELOPMENT OF EDUCATIONAL TECHNOLOGY)
अपनी उन्नति जानिए (CHECK YOUR PROGRESS)
25.6 सारांश (SUMMARY)
25.7 शब्दावली (GLOSSARY)
25.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (ANSWERS OF PRACTICE QUESTIONS)
25.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची (REFERENCES)
2510 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री (USEFUL BOOKS)
25.11 निबन्धात्मक प्रश्न (ESSAY TYPE QUESTIONS)

25.1 प्रस्तावना (INTRODUCTION)

भारत के संविधान का निर्माण संविधान सभा द्वारा बनाया गया, जिसमें एक प्रारूप समिति थी। जिनके अध्यक्ष डॉ. भीमराव अम्बेडकर जी थे। जिन्होंने भारत को एक लिखित एवं विस्तृत संविधान प्रदान किया। संविधान सभा की प्रथम बैठक 9 दिसंबर, 1946 को हुई थी। सभा ने 26 नवम्बर, 1949 को संविधान को अंगीकार कर लिया। संविधान में प्रस्तावना के अलावा 1 से 10 अनुसूचियां, 1 से 395 धाराएं और एक परिशिष्ट है। संविधान के द्वारा भारत के सभी बालकों को शिक्षा प्राप्त करने के अधिकार प्रदान किये गये। साथ ही शिक्षा ने वैश्वीकरण, निजिकरण व भूमण्डलीकरण के क्षेत्र में भी तेजी से विकास किया। आज हम शिक्षा को अपने ही देश में प्राप्त न कर अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी प्राप्त कर रहै हैं। शिक्षा ने सभी के लिए चतुर्मुखी द्वार खोल दिये हैं।

25.2 उद्देश्य (OBJECTIVES)

1. शिक्षा के संवैधानिक प्रावधानों का अध्ययन कर सकेंगे
2. शिक्षा और लोकतंत्र की व्यवस्था का अध्ययन कर सकेंगे
3. शिक्षा और उदारीकरण का अध्ययन कर सकेंगे
4. शिक्षा और निजीकरण का अध्ययन कर सकेंगे
5. शिक्षा और भूमण्डलीकरण का अध्ययन कर सकेंगे
6. सूचना और संचार तकनीक का अध्ययन कर सकेंगे

भाग-एक (PART- I)

25.3 शिक्षा व जनतंत्र (EDUCATION AND DEMOCRACY)

डी. वी. के विचारों का शिक्षा पर बड़ा प्रभाव पड़ा। शिक्षा-क्षेत्र में कार्य करने वाले व्यक्ति धीरे-धीरे शिक्षा को जनतांत्रिक सिद्धान्तों पर आधारित करने लगे। शिक्षा में जनतांत्रिक विचारधारा निम्नलिखित रूपों में हमारे सामने आती है:-

1. शिक्षा में जाति, सम्प्रदाय और वर्ग के बंधन टूट रहै हैं।

2. शिक्षा की ज्योति सभी व्यक्तियों तक पहुंच रही है। शिक्षा मानव का जन्मसिद्ध अधिकार है। अतः प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार है।

3. उपर्युक्त सिद्धान्त के आधार पर एक निश्चित अवधि तक निःशुल्क, अनिवार्य एवं सार्वभौमिक शिक्षा की व्यवस्था हो रही है।

4. शैक्षिक अवसरों की समानता का सिद्धान्त बल पकड़ रहा है।

5. जनतंत्रीय शिक्षा में बालक को अधिकाधिक स्वतंत्रता प्रदान की जाती है।

6. पाठ्यक्रम को विस्तृत, लचीला एवं समाज की आवश्यकताओं के अनुकूल बनाने का प्रयत्न हो रहा है। पाठ्यक्रम का निर्माण इस प्रकार हो रहा है कि बालक उद्देश्य सहित क्रिया की ओर मुड़ सके।

7. पाठ्यक्रम के निर्माण में अध्यापक का हाथ होना चाहिए। अध्यापक के व्यक्तित्व का जनतंत्र में महत्व है।

8. प्रधानाध्यापक का अध्यापकों के साथ, अध्यापकों का छात्रों के साथ एवं इन सबका पारस्परिक संबंध समानता के आधार पर हो और विश्वविद्यालय की नीति के निर्माण में सभी का योगदान हो।

9. कक्षा-शिक्षण में भी जनतंत्र के सिद्धान्तों का पालन हो। छात्रों पर कम से कम नियंत्रण हो। अध्यापक छात्रों का इस प्रकार मार्गदर्शन करें कि वे स्वयं ज्ञान की खोज में अग्रसर हो सकें।

10. सीखने में सामाजिक तत्वों का विशेष महत्व है। अतः कक्षा में सामाजिक अनुभव अवश्य प्रदान किये जायें।

25.3.1 शिक्षा के संवैधानिक प्रावधान (CONSTITUTIONAL PROVISIONS FOR EDUCATION)

हमारे संविधान में शिक्षा संबंधी निम्न प्रावधान निहित हैं:-

1. अनिवार्य तथा निःशुल्क शिक्षा- संविधान की 45वीं धारा के अनुसार राज्य 14 वर्ष की आयु पूरी करने तक सभी बच्चों के लिए संविधान लागू होने से दस वर्ष के अंदर स्वतंत्र व अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था करने का प्रयत्न करेगा।

2. धार्मिक शिक्षा- संविद्यान की इक्कीसवीं धारा के अनुसार किसी धर्म विशेष के प्रचार के लिए कर या दान देने के लिए किसी व्यक्ति को बाध्य नहीं किया जा सकता है। धारा-28 (1) में कहा गया है कि पूरी तरह राज्य के धन से चलने वाली किसी शिक्षण संस्था में धार्मिक शिक्षा नहीं दी जाएगी। धारा-22 (2) में कहा गया है कि सहायता प्राप्त या राज्य से मान्यता प्राप्त शिक्षण संस्थाओं के किसी सदस्य को उस संस्था द्वारा चलाए जा रहै किसी धार्मिक अनुष्ठान में भाग लेने के लिए विवश नहीं किया जा सकता है। धारा-28 के अनुसार अन्य धर्मो के अनुयायियों को उनकी सहमति के बिना धार्मिक अनुदेशन नहीं देना चाहिए।

3. दृश्य सामग्री- धारा-49 में कहा गया है कि राज्य प्रत्येक स्मारक या संसद द्वारा राष्ट्रीय महत्व के घोषित स्थान व वस्तुओं का संरक्षण करे।

4. अल्पसंख्यकों की शिक्षा- धारा-30 के अनुसार अल्पसंख्यक समुदाय को मनपसंद शैक्षिक संस्थाएं स्थापित करने व उनका प्रशासन करने का अधिकार प्राप्त है व अनुदान देते समय इन विद्यालयों के साथ इस कारण भेदभाव नहीं किया जा सकता है कि वे धार्मिक समुदाय द्वारा संचालित हैं।

5. पिछड़े वर्ग की शिक्षा-पिछड़ों वर्गो की शिक्षा संबंधी संवैधानिक धाराएं व उनमें कही गई बातें निम्न हैं:

i. धारा-17- अस्पृश्यता निवारण व किसी भी रूप में अस्पृश्यता का प्रयोग वर्जित है।
ii. धारा-24- 14 वर्ष से कम आयु वाले किसी बच्चे को किसी फैक्ट्री,, खान या अन्य खतरनाक रोजगार में कार्य करने के लिए नियुक्त नहीं किया जा सकता है।
iii. धारा-23- मनुष्यों के क्रय-विक्रय व बेगार पर रोक लगी रहै गी।
iv. धारा-15- हिन्दुओं के सभी सार्वजनिक धार्मिक संस्थानों के द्वार पिछड़े वर्गो के लिए खुले रहेंगे।
v. धारा-16 व 335- राज्यों को सार्वजनिक सेवाओं में स्थान आरक्षित करने की छूट रहेगी।

vi. धारा-46- पिछड़ों वर्गो के शैक्षिक व आर्थिक हितों के उन्नयन तथा उन्हें सामाजिक अन्याय व सभी प्रकार के शोषण से सुरक्षा मिलेगी।

6. केन्द्र व राज्य के शैक्षिक दायित्व- भारतीय संविधान में केन्द्र व राज्य सरकार के शैक्षिक दायित्व का वर्णन किया गया है। केन्द्र सरकार शिक्षा सुविधाओं के समन्वय, उच्च वैज्ञानिक व तकनीकी शिक्षा के स्तरों के निर्धारण तथा हिन्दी व अन्य सभी भारतीय भाषाओं में शोध कार्य व उनकी अभिवृद्धि के लिए उत्तरदायी है।

अपनी उन्नति जानिए (CHECK YOUR PROGRESS)

प्र. 1 प्रारूप समिति के अध्यक्ष कौन थे ?

प्र. 2 संविधान में कितनी अनुसूचियां हैं ?

प्र. 3 संविधान की धारा-45 का संबंध किससे है ?

प्र. 4 शिक्षा को संविधान की समवर्ती सूची में कब रखा गया ?

(A) 1949 (B) 1950 (C) 1971 (D) 1976

भाग-दो (PART- II)

25.4 राष्ट्रवाद और शिक्षा (NATIONALISM AND EDUCATION)

माध्यमिक शिक्षा आयोग के अनुसार-‘‘राष्ट्रीय एकता उत्पन्न करने के लिए यह आवश्यक है कि शिक्षा का मुख्य उद्देश्य देश-प्रेम के भाव जागृत करना हो।’’ आयोग ने देश-प्रेम के संबंध में चार बातें बताईं हैं:-

1. राष्ट्रीय हित के लिए व्यक्तिगत हित का त्याग।

2. देश की निर्बलताओं को स्वीकार करने की तत्परता।

3. व्यक्ति की योग्यतानुसार देश की सर्वोत्तम सेवा।

4. देश की सामाजिक और सांस्कृतिक उपलब्धियों का उचित मूल्यांकन।

25.4.1 शिक्षा और उदारीकरण (EDUCATION AND LIBERATIZATION)

शिक्षा को गुणात्मक और संघात्मक विकास के नाम पर समाज दो भागों में विभाजित सा हो गया है। आज शिक्षा, मेडिकल, इंजीनियरिंग, तकनीकि, व्यावसायिक शिक्षा में उदारीकरण तेजी से पनप रहा है। जहां शिक्षा कुछ वर्गो तक ही सीमित थी, वहां संविधान ने शिक्षा के द्वार सभी के लिए खोल दिए हैं। सरकारी व गैर सरकारी संस्थानों में शिक्षा प्राप्त करना आसान हो गया है। यह सरकार की उदारीकरण की नीति का ही परिणाम है। सरकार व जनता यह समझ गयी है कि हमें आज शिक्षा पर धन खर्च करने की अधिक आवश्यकता है, क्योंकि शिक्षा पर खर्च किया गया धन कभी भी व्यर्थ नहीं जाता है। इसलिए अभिभावक अपनी कमाई का अधिकतर हिस्सा शिक्षा पर खर्च करते हैं, जिसको पूंजीपतियों ने इसे भांप लिया है। वे सरकार से लोन लेकर बड़े-बड़े संस्थान बना रहै हैं और छात्रों को उन संस्थानों में प्रवेश देकर उनसे मोटी रकम प्राप्त कर रहै हैं।

उदारीकरण से हमारा अभिप्राय शिक्षा के द्वार सभी लिए खोलना व सभी के लिए शिक्षा की व्यवस्था करना है। अर्थात् सरकार द्वारा शिक्षा की उचित व मान्य व्यवस्था करना तथा इन संस्थानों को खोलने में ज्यादा आनाकानी न करना। भारत में सन् 1960 में इंजीनियरिंग संस्थानों के मामलों में निजी क्षेत्रों को 7 प्रतिशत सीटें प्राप्त होती थीं। आज उनको 86.40 प्रतिशत सीटें प्राप्त हैं। मेडिकल में 6.8 प्रतिशत से बढ़ाकर 40.9 प्रतिशत हो गया है। यही हाल माध्यमिक शिक्षा के लिए तैयार हो रहै बी.एड शिक्षण संस्थानों का है, जहां इनकी बाढ़ सी आ गयी है। सरकार द्वारा इन निजी संस्थानों को 50 प्रतिशत सीटें स्वयं भरने का अधिकार दिया गया है जो कि यह सरकार की उदारीकरण की नीति का ही परिणाम है।

25.4.2 शिक्षा और निजीकरण (EDUCATION AND PRIVATIZATION)

शिक्षा के गुणात्मक और संघात्मक विकास के लिए हम निजीकरण शिक्षा की ओर बढ़ रहै हैं। यदि निजीकरण की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को देखें तो मैकाले मिनिट के माध्यम से ही भारत में शिक्षा में निजीकरण की व्यवस्था थी। यद्यपि उस समय निजीकरण के कारण कुछ अन्य थे। उस समय छनाई सिद्धान्त (Filture Theory) के माध्यम से शिक्षा को समृद्ध परिवारों तक सीमित किया गया तथा समृद्ध परिवारों को शिक्षित वर्ग से छानकर शिक्षा भारत के जन-साधारण तक पहुंचाने की कल्पना की गई जो न तो पूरी होने की संभावना थी न ही पूरी हुई। इसके विपरीत छनाई सिद्धान्त पूरे देश को दो भागों में विभक्त कर गया, एक समृद्ध शिक्षित वर्ग तथा दूसरा आरक्षित कमजोर वर्ग, जिसके परिणाम दूरगामी थे।

आज भारत सहित दुनिया के अधिकतर देश निजीकरण की शिक्षा को प्रोत्साहित कर रहै हैं। देश में आज सरकारी संस्थाओं या कालेजों के बजाय निजी संस्थान तेजी से अपने पांव पसार रहै हैं। चाहै वे प्राथमिक शिक्षण संस्थान हों अथवा उच्च शिक्षण संस्थान। ये संस्थान बिना मापदण्ड पूरा किये गली-मुहल्लों में खुल रहै हैं। जहां अग्रेजी माध्यम का बोर्ड लगाने भर मात्र से अभिभावकों को लूटा जा रहा है। अभिभावक भी लुटना चाहता है। आज अभिभावकों के मन में यह बात घर कर गई है कि

जिस विद्यालय, कॉलेज, संस्थान की जितनी ज्यादा फीस होगी वह उतना ही अच्छा होगा। पूंजीपति आज इस बात को भांप गये हैं और शिक्षा को ऊंचे दामों में बेच रहै हैं। आज लोगों के पास धन की कोई कमी नहीं है। धनी व्यक्ति धन के बदले निजी संस्थानों से डिग्रियां बटोरकर अच्छी खासी नौकरी भी प्राप्त कर रहै हैं। अतः शिक्षा के निजीकरण को रोका जाना अति आवश्यक है।

25.4.3 शिक्षा और भूमण्डलीकरण (EDUCATION AND GLOBALIZATION)

शिक्षा मानव का अमूल्य उपहार है, जिसको प्रत्येक मानव को प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए। शिक्षा आज अपने गांव या शहर की सीमाओं तक सीमित न रहकर वह राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रदान की जा रही है। पहले साधनों के अभाव के कारण लोग अपने आसपास के क्षेत्रों तक शिक्षा प्राप्त करते थे, लेकिन आज साधनों ने इस दूरी को कम कर दिया है। आज हम अपने ही राष्ट्र में न केवल शिक्षा प्राप्त करतें हैं बल्कि उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए अन्य देशों में भी जाते हैं। अनेक विदेशी छात्र भारत में शिक्षा प्राप्त कर रहै हैं। यह भूमण्डलीकरण का ही नतीजा है।

भूमण्डलीकरण से हमारा अभिप्राय इस सम्पूर्ण संसार को एक सीमा में बांधना हैं। जिसके कारण हमारी संस्कृति का प्रभाव अन्य देशों को प्रभावित कर भारत की ओर आकर्षित करता है। भूमण्डलीकरण आज विशाल क्षेत्र न होकर सीमाओं में बंध गया है। आज न केवल धनी लोगों के ही बच्चे विदेशों में शिक्षा ग्रहण करने के लिए जाते हैं, बल्कि आज जागरूक नागरिक का बच्चा भी छात्रवृत्तियाँ व बैंक से कर्ज लेकर विदेशी डिग्री प्राप्त कर रहा है।

इस शिक्षा के विकास में मुक्त विश्वविद्यालयों ने भी अपना अमूल्य योगदान दिया है। आज हम बैठे शिक्षा प्राप्त कर रहै हैं। भारत में इन्दिरा गांधी मुक्त विश्वविद्यालय जो सन् 1985 में स्थापित हुआ था, आज विश्व में इसके अनेकों केन्द्र बन गए हैं, जो भूमण्डलीकरण का एक अच्छा उदाहरण प्रस्तुत कर रहा है।

अपनी उन्नति जानिए (CHECK YOUR PROGRESS)

प्र. 1 ‘‘राज्य प्रत्येक स्मारक या संसद द्वारा राष्ट्रीय महत्व के घोषित स्थान व वस्तुओं का संरक्षण करे।’’ यह किस अनुच्छेद में कहा गया है ?

प्र. 2 किस अनुच्छेद में 14 वर्ष से कम बच्चे को काम पर रखने पर दण्ड का प्रावधान है ?

प्र. 3 राज्यों को सार्वजनिक सेवाओं में स्थान आरक्षित करने की छूट किस अनुच्छेद के अंतर्गत रहै गी ?

प्र. 4 भारत में जनतंत्रीय नागरिकता के विकास का शैक्षिक उद्देश्य किसने कहा-

(A) हन्टर कमीशन (B) सैडलर कमीशन

(C) मुदालियर कमीशन (D) संस्कृत कमीशन

25.5 सूचना और संचार तकनीक (INFORMATION AND COMMUNICATION TECHNIQUES)

शैक्षिक तकनीक में अद्यतन विकास (LATEST DEVELOPEMENT IN EDUCATION TECHNOLOGY)

शैक्षिक तकनीक के घटक निम्नलिखित हैंः-

1. डायल पहुंच (Dial Access)

2. शैक्षिक टेलीविजन (Educational Television)

3. विडियो (Video)

4. अन्तःक्रियात्मक विडियो (Interactive Video)

5. विडियोटेक्स्ट (Videotext)

6. ई-मेल (E-mail)

7. कम्प्यूटर (Computer)

8. कम्प्यूटर सहायतित अनुदेशन (Computer Assisted Instruction)

1. डायल पहुंच (Dial Access) - डायल पहुंच का तात्पर्य शिक्षा में टेलीफोन नेटवर्किंग से है। डॉयल पहुंच के माध्यम से विद्यार्थी ऑडियो डिलीवर व्यवस्था एवं अपनी पसंद का निवेदन करते हैं। टेलीफोन करने वालों को वृहद पुस्तकालय एवं शिक्षा संबंधित ऑडियो कैसेट कार्यक्रमों की सुविधा मिल जाती है।

2. शैक्षिक टेलीविजन (Educational Television)- भारत में शैक्षिक टेलीविजन शिक्षा की लोकप्रिय पद्धति है। आप विभिनन स्तरों पर विशिष्ट शैक्षिक टेलीविजन कार्यक्रमों के संपर्क में आओगे। जैसे-केन्द्रीय शैक्षिक तकनीकी संस्था (CIET) एवं राज्य शैक्षिक तकनीकि संस्थान (SIET) द्वारा विकसित विद्यालय स्तरीय शैक्षिक टेलीविजन, विश्वविद्यालय अनुदान आयोगा (UGC) द्वारा महाविद्यालय स्तरीय देशव्यापक कक्षा-कक्ष कार्यक्रम, इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय (IGNOU) द्वारा विकसित दूरस्थ शिक्षा कार्यक्रम आदि। आपने निश्चित रूप से

दूरदर्शन राष्ट्रीय नेटवर्क द्वारा प्रसारित प्रौढ़ शिक्षा, कृषि विस्तार शिक्षा कार्यक्रम आदि से संबंधित विशिष्ट शैक्षिक टेलीविजन कार्यक्रम देखे होंगे। भारत में सेटलाइटों के सफल प्रक्षेपणों के माध्यम से प्रसारण के वैकल्पिक चैनल खोलने में सुविधा हो गयी है। शैक्षिक टेलीविजन द्वारा इन सुविधाओं का भरपूर उपयोग किया जाता है।

3. वीडियो (Video) - शिक्षा एवं प्रशिक्षण गतिविधियों में विडियो कार्यक्रमों का काफी प्रयोग बढ़ गया है। विशिष्ट विडियो कार्यक्रम अध्यापन कौशल के विकास, गतिविधियों के प्रदर्शन, विचारों के चित्रण में हमारी सहायता करते हैं। विद्यार्थी अपनी आवश्यकता एवं सुविधायुक्त विडियो कैसेटों का प्रयोग कर सकता है। विडियो कैसेट रिकार्डरों पर विडियो कार्यक्रमों को रिकार्ड करना एवं उनको देखना काफी लोकप्रिय है।

4. अन्तःक्रियात्मक विडियो (Interactive Video) - अन्तःक्रियात्मक विडियो के माध्यम द्वारा समीक्षक को प्रस्तुतकर्ता से अन्तःक्रिया करने की सुविधा प्राप्त होती है। टेलीविजन पटल पर विडियो लेखन के दौरान समीक्षक प्रश्न पूछ सकते हैं। उन्नत संचार तकनीक प्रस्तुतकर्ता एवं समीक्षक के मध्य दोनों ओर से अन्तःक्रिया को बढ़ावा देती है। प्रश्नों के उत्तर विडियो शिक्षक के द्वारा प्रस्तुत किये जाते हैं। विद्यार्थी को टेलीविजन पटल, जो कि विडियो डिस्क से जुड़ा होता है, से स्वरूपित अन्तःक्रिया होती है।

5. विडियोटेक्स्ट (Videotext)- विडियोटेक्स्ट के अंतर्गत टेलीफोन लाईनों द्वारा जुड़े टेलीविजन रूटों के माध्यम से पाठ एवं रेखाचित्र ग्राफिक्स प्रस्तुत किये जाते हैं। दर्शक विडियोटेक्स्ट के माध्यम द्वारा प्रश्न पूछ सकता है। इन प्रश्नों का उत्तर पहले से ही कम्प्यूटर के पास संग्रहित होता है। विद्यार्थी के प्रश्नों के अनुसार उत्तर टीवी पटल पर आ जाता है। उदाहरण के लिए-एक दूरस्थ शिक्षा का विद्यार्थी खुले विश्वविद्यालय द्वारा प्रस्तुत पाठ्यक्रमों, काउन्सलिंग समय, परिक्षाएं आदि के बारे में विशिष्ट जानकारी प्राप्त करना चाहता है तो उसे इस तरह की सूचनाएं विडियोटेक्स्ट के माध्यम से प्राप्त हो सकती हैं।

6. ई-मेल (E-mail) - इलेक्ट्रानिक मेल को ईमेल के नाम से जाना जाता है। दूरसंचार संपर्क के प्रयोग द्वारा ई-मेल के माध्यम से आंकड़े, बिम्ब तथा जुबानी सूचनाएं भेजी जा सकती हैं। भेजने वाले के कम्प्यूटर से सूचना प्रारम्भ होकर एक या बहुत से प्राप्तकर्ताओं के कम्प्यूटर पर प्राप्त होती है। वे इन सूचनाओं को भू-मण्डल के किसी भी दूर-दराज के क्षेत्र में अपने कम्प्यूटर पर प्राप्त कर सकते हैं। ई-मेल के माध्यम से शिक्षकों, शोधकर्ताओं, विद्यार्थियों तथा शैक्षणिक प्रशासकों को तीव्र सूचनाएं भेजी जा सकती हैं।

7. कम्प्यूटर (Computer) - यह इस युग की उन्नत तकनीकि की बहुत ही महत्वपूर्ण देन है। आप कम्प्यूटर का प्रयोग आंकड़ों को एकत्र करने, एक जगह से दूसरी जगह संदेश भिजवाने, विभिन्न

स्थितियों में आंकड़ों के परीक्षण आदि में कर सकते हैं। कम्प्यूटर में तीव्र स्मरण शक्ति, गणना क्षमता, बहुत सारे आंकड़ों के संग्रहण तथा समस्या समाधान की क्षमता होती है। शैक्षणिक स्थितियों में पाठ्यक्रम के विभिन्न चरणों में कम्प्यूटर आधारित निर्देशों का प्रयोग काफी लोकप्रिय हो गया है।

8. कम्प्यूटर सहायतित अनुदेशन (Computer Assisted Instruction)- कम्प्यूटर सहायतित निर्देश स्व-निर्देशन का लोकप्रिय तरीका है। स्व-निर्देशित पैकेजों को कम्प्यूटर में संग्रहित किया जाता है। विद्यार्थी कम्प्यूटर सहायतित निर्देशन के माध्यम द्वारा चरणगत रूप से अधिगम गतिविधियों के साथ आगे बढ़ता है। विद्यार्थियों को प्रतिक्रिया है तु फीडबैक दिया जाता है, विद्यार्थी अपनी सुविधानुसार प्रगति कर सकता है। सामग्री प्राप्त कर सकता है तथा उसका चयन कर सकता है। वह स्वतंत्र रूप से निर्देशन स्तर का क्रम तय कर सकता है। प्रत्येक विद्यार्थी की प्रगति का मूल्यांकन किया जा सकता है।

अपनी उन्नति जानिए (CHECK YOUR PROGRESS)

प्र. 1 यूजीसी (UGC) को पूर्ण रूप में लिखिए।

प्र. 2 इग्नू (IGNOU) को पूर्ण रूप में लिखिए।

प्र. 3 ई-मेल (E-Mail) को पूर्ण रूप में लिखिए।

प्र. 4 कम्प्यूटर का एक मुख्य कार्य बताईये।

25.6 सारांश (SUMMARY)

भारत एक लोकतांत्रिक देश है। यहां प्रत्येक व्यक्ति को अपना चतुर्मुखी विकास करने का मौका दिया गया है। संविधान द्वारा भारत के नागरिकों को शिक्षा संबंधी अनेक अधिकार प्रदान किये गये हैं। समय-समय पर अनेक शैक्षिक कार्यक्रम चलाकर समाज को एक नई दिशा देने का प्रयास किया जाता है। आज शिक्षा सरकारी संस्थानों तक ही सीमित न रहकर वैश्वीकरण व निजीकरण की ओर बढ़ रही है और भूमण्डलीकरण के कारण एक देश के व्यक्ति अन्य देशों में शिक्षा प्राप्त करने है तु जा रहे हैं। आज शिक्षा को धनी व सम्पन्न व्यक्ति धन के बल पर खरीद रहे हैं व उसको प्राप्त कर महंगे दामों में भी बेच रहे हैं, जिससे गरीब वर्ग पुनः पिछड़ रहा है। आज आवश्यकता है सरकारी कॉलेजों व संस्थानों पर ध्यान देने की, जिससे उनमें गुणात्मक वृद्धि कर योग्य नागरिकों का निर्माण किया जा सके।

25.7 शब्दावली (Glossary)

डायल पहुंच **(Dial Access)** - डायल पहुंच का तात्पर्य शिक्षा में टेलीफोन नेटवर्किंग से है। डॉयल पहुंच के माध्यम से विद्यार्थी ऑडियो डिलीवर व्यवस्था एवं अपनी पसंद का निवेदन करते हैं। टेलीफोन करने वालों को वृहद पुस्तकालय एवं शिक्षा संबंधित ऑडियो कैसेट कार्यक्रमों की सुविधा मिल जाती है।

ई-मेल **(E-mail)** - इलेक्ट्रानिक मेल को ईमेल के नाम से जाना जाता है। दूरसंचार संपर्क के प्रयोग द्वारा ई-मेल के माध्यम से आंकड़े, बिम्ब तथा जुबानी सूचनाएं भेजी जा सकती हैं।

25.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (ANSWERS OF PRACTICE QUESTIONS)

भाग-एक (PART- I)

उ. 1 डॉ. भीमराव अम्बेडकर जी थे|

उ. 2 संविधान में 1 से 10 अनुसूचियां हैं|

उ. 3 अनिवार्य निःशुल्क सार्वभौम शिक्षा से|

उ. 4 1976

भाग-दो (PART-II)

उ. 1 अनुच्छेद-49

उ. 2 अनुच्छेद-24

उ. 3 अनुच्छेद-16 व 335

उ. 4 (C) मुदालियर कमीशन

भाग-तीन (PART-III)

उ. 1 विश्वविद्यालय अनुदान आयोग |

उ. 2 इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय|

उ. 3 इलेक्ट्रानिक मेल |

उ. 4 तीव्र स्मरण शक्ति, गणना क्षमता, आंकड़ों का संग्रहण, समस्या समाधान की क्षमता आदि कम्प्यूटर के कार्य हैं।

25.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची (References)

1. पाण्डे, (डॉ) रा. श. *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*. आगरा: अग्रवाल प्रकाशन.

2. सक्सेना, (डॉ) सरोज. *शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार*. आगरा: साहित्य प्रकाशन.

3. मित्तल, एम.एल. (2008). *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*. मेरठ: इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस.

4. शर्मा, रा. ना. व शर्मा, रा. कु. (2006). *शैक्षिक समाजशास्त्र*. नई दिल्ली: एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स.

5. सलैक्स, (डॉ) शी. मै. (2008). *शिक्षक के सामाजिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्षय*. नई दिल्ली: रजत प्रकाशन.

6. गुप्त, रा. बा. (1996). *भारतीय शिक्षा शास्त्र*. आगरा: रतन प्रकाशन मंदिर.

25.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री (USEFUL BOOKS)

1. पाण्डे, (डॉ) रा. श. *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*. आगरा: अग्रवाल प्रकाशन.

2. सक्सेना, (डॉ) सरोज. *शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार*. आगरा: साहित्य प्रकाशन.

3. मित्तल, एम.एल. (2008). *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*. मेरठ: इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस.

4. शर्मा, रा. ना. व शर्मा, रा. कु. (2006). *शैक्षिक समाजशास्त्र*. नई दिल्ली: एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स.

5. सलैक्स, (डॉ) शी. मै. (2008). *शिक्षक के सामाजिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्षय*. नई दिल्ली: रजत प्रकाशन.

6. गुप्त, रा. बा. (1996). *भारतीय शिक्षा शास्त्र*. आगरा: रतन प्रकाशन मंदिर.

सिंह (डॉ.), वीरकेश्वर प्रसाद (1999) प्रतिनिधिए राजनीतिक विचारकए दिल्ली नवप्रभात प्रिंटिंग प्रेस।

25.11 निबन्धात्मक प्रश्न (ESSAY TYPE QUESTIONS)

प्र. 1. जनतंत्र से आप क्या समझते हैं ? भारत में इसका उदय कैसे हुआ ?

प्र. 2. जनतंत्रीय समाज में शिक्षा के क्या उद्देश्य होने चाहिए ?

प्र. 3. भारतीय संवैधानिक व्यवस्था का विस्तार से वर्णन कीजिए।

प्र. 4. निजीकरण से आप क्या समझते हैं ? इसके बढ़ते विकास पर एक विस्तृत टिप्पणी लिखिए।

प्र. 5. संविधान में प्राथमिक शिक्षा के लिए क्या प्रावधान किये गये हैं ? वर्णन कीजिए।

प्र. 6. कम्प्यूटर हमारे लिए कैसे उपयोगी सिद्ध हो रहा है ? विस्तृत वर्णन कीजिए।

इकाई 26: राष्ट्रीय ज्ञान आयोग एवं उच्च और मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा है तु सुझाव

26.1 प्रस्तावना (Introduction)
26.2 उद्देश्य (Objectives)
26.3 राष्ट्रीय ज्ञान आयोग (National Knowledge Commission)
26.3.1 एनकेसी परामर्श
26.3.2 विचाराणीय विषय
26.3.3 राष्ट्रीय ज्ञान आयोग के उद्देश्य
26.4 उच्च्च शिक्षा (Higher Education)
26.4.1 उच्च्च शिक्षा के संदर्भ में राष्ट्रीय ज्ञान आयोग की सिफारिशें
26.5 मुक्त और दूरस्थ शिक्षा के संदर्भ में राष्ट्रीय ज्ञान आयोग की सिफारिशें
24.6 सारांश (Summary)
24.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer of Practice Questions)
24.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Reference Books)
24.9 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

26.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में राष्ट्रीय ज्ञान आयोग के स्वरुपए आधारए उद्देश्यए उच्च्च शिक्षा मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा प्रणाली है तु सलाहें दी गयी हेंए इनके बारे में चर्चा की गयी हैद्य राष्ट्रीय ज्ञान आयोग ने उच्च्च शिक्षा और मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा प्रणाली में सुधार किस प्रकार आवश्यक है इन्हें किस प्रकार उत्कृष्ट बनाया जाये इस है तु परामर्श और सिफारिशें की गयी हैंद्य इस इकाई के अध्ययन के बाद आप राष्ट्रीय ज्ञान आयोग के विषय मेंए उसके कार्यए उच्च्च शिक्षा और मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा प्रणाली में सुधार के विषय में बता सकेंगे|

26.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप-

.राष्ट्रीय ज्ञान आयोग के स्वरुप, आधार, व उद्देश्य के बारे में बता पायेंगे|

राष्ट्रीय ज्ञान आयोग द्वारा उच्च शिक्षा और मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा प्रणाली है तु दी गयी सिफारिशों के बारे में जान जायेंगे||

. राष्ट्रीय ज्ञान आयोग के कार्यों और भूमिका से अवगत हो पायेंगे

26.3 राष्ट्रीय ज्ञान आयोग

कोई भी राष्ट्र अपनी ज्ञान की पूंजी कैसे बनाता है और उसका कैसे उपयोग करता है उसके आधार पर यह तय होता है कि वह मानवीय क्षमताओं को बढ़ाने में अपने नागरिकों को सशक्त और समर्थ बनाने में कितना सक्षम है। अगले कुछ दशकों में दुनिया में युवाओं की सबसे बड़ी आबादी भारत में होगी। विकास की ज्ञान आधारित रणनीति अपनाने से इस युवा ऊर्जा का लाभ उठाने में मदद मिलेगी। भारत के प्रधानमंत्री डॉक्टर मनमोहन सिंह के शब्दों में अब समय आ गया है कि संस्थाओं के निर्माण का दूसरा दौर शुरू किया जाए और शिक्षा अनुसंधान और क्षमता निर्माण के क्षेत्र में उत्कृष्टता हासिल की जाए ताकि हम 21वीं शताब्दी के लिए अधिक ढंग से तैयार हो सके।श्

इसी विशाल कार्य को ध्यान में रखते हुए 13 जून 2005 को 2 अक्तूबर 2005 से 2 अक्तूबर 2008 तक तीन वर्ष के कार्यकाल के लिए राष्ट्रीय ज्ञान आयोग का गठन किया गया। भारत के प्रधानमंत्री की उच्चस्तरीय सलाहकार संस्था के रूप में राष्ट्रीय ज्ञान आयोग को नीतिगत मार्गदर्शन तथा सुधारों के निर्देशन का अधिकार सौंपा गया है। उसे शिक्षा विज्ञान और टैक्नॉलॉजीए कृषि उद्योग ई.प्रशासन जैसे प्रमुख क्षेत्रों पर ध्यान केन्द्रित करना है। ज्ञान की सहज सुलभता ज्ञान प्रणालियों की रचना और संरक्षण ज्ञान का प्रसार और बेहतर ज्ञान सेवाओं का विकास आयोग के मुख्य सरोकार है।

26.3.1एनकेसी परामर्श

राष्ट्रीय ज्ञान आयोग जो भी सिफारिशें दे रहा है उनके लिए अधिक से अधिक लोगों की राय शामिल करने के लिए आयोग विविध विद्धानों और हितधारकों से व्यापक विचार.विमर्श करता है। उसके लिए आयोग ने कार्यदल और समितियों का गठन किया है अनेक कार्यशालाएँ और गोष्ठियाँ आयोजित की हैं और सर्वेक्षण कराए हैं। कार्यदल ऐसे क्षेत्रों में गठित किए गए है जिनमें उच्च स्तर पर विशेषज्ञों की लम्बे समय तक भागीदारी अपेक्षित है। गोष्ठियों कार्यशालाओं और चर्चाओं में

व्यापक स्तर पर विचार.विमर्श करने में मदद मिलती है। सर्वेक्षणों के माध्यम से आयोग देश भर में अपना दायरा बढ़ाना चाहता है।

26.3.2 विचाराणीय विषय

13 जून को जारी सरकारी अधिसूचना के अनुसार राष्ट्रीय ज्ञान आयोग के विचारणीय विषय इस प्रकार हैं|

- शिक्षा व्यवस्था में उत्कृष्टता लाना ताकि वह 21वीं शताब्दी में ज्ञान की चुनौतियों का सामना कर सके और ज्ञान के क्षेत्रों में भारत की स्पर्धा लेने की क्षमता बढ़ा सके।
- विज्ञान और टैक्नॉलॉजी प्रयोगशालाओं में ज्ञान की रचना को बढ़ावा देना।
- बौद्धिक संपदा अधिकारों से जुड़े संस्थाओं का प्रबंधन सुधारना।
- खेती और उद्योग में ज्ञान के उपयोग को बढ़ावा देना।
- सरकार को नागरिकों के लिए असरदार पारदर्शी और जवाबदेह सेवा प्रदान करने वाली संस्था का रूप देने में ज्ञान क्षमताओं के उपयोग को बढ़ावा देना और लोगों को अधिक.से.अधिक लाभ पहुँचाने के लिए ज्ञान के व्यापक प्रचार.प्रसार को बढ़ावा देना।

26.3.3 राष्ट्रीय ज्ञान आयोग के उद्देश्य

राष्ट्रीय ज्ञान आयोग का पहला उद्देश्य भारत को एक जोशीला ज्ञान आधारित समाज बनाना है। इसके लिए ज्ञान की मौजूदा प्रणालियों में बड़े पैमाने पर सुधार करने के साथ.साथ नए प्रकार के ज्ञान की रचना के लिए रास्ते तैयार करने होंगे। ज्ञान की रचना में समाज के सभी वर्गों की भागीदारी बढ़ाना और ज्ञान को सबके लिए समान रूप से सुलभ बनाना भी इन लक्ष्यों को हासिल करने के लिए महत्वपूर्ण है।

इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए राष्ट्रीय ज्ञान आयोग उपयुक्त संस्थागत ढाँचा विकसित करना चाहता है जिससे

- शिक्षा व्यवस्था को मज़बूती मिले देश के भीतर अनुसंधान और अभिनव प्रयासों को बढ़ावा मिले तथा स्वास्थ्यए खेती और उद्योग जैसे क्षेत्रों में इस ज्ञान का आसानी से उपयोग किया जा सके।

- प्रशासन और संपर्क यानि कनेक्टिविटी को बढ़ाने के लिए सूचना और संचार तकनीकों का इस्तेमाल किया जाए।
- दुनिया भर में ज्ञान प्रणालियों के बीच सम्पर्क और आदान.प्रदान का तंत्र स्थापित हो सके।

अभ्यास प्रश्न

रिक्त स्थान भरिये.

1. राष्ट्रीय ज्ञान आयोग का गठन .... को किया गया था।
2. सर्वेक्षणों के माध्यम से आयोग देश भर में अपना दायरा .... चाहता है।
3. राष्ट्रीय ज्ञान आयोग का पहला उद्देश्य भारत को एक जोशीला .... समाज बनाना है।

26.4 उच्च शिक्षा

भारत में उच्च शिक्षा का मतलब सेकेंडरी स्कूल से आगे की पढ़ाई है। उच्च शिक्षा के बारे में मध्यकालिक व्यापक उद्देश्य सकल भर्ती अनुपात को 2015 तक कम से कम 15 प्रतिशत तक बढ़ाना होगा। इसका अर्थ यह है कि अगले पाँच वर्ष के भीतर उच्च शिक्षा का दायरा दुगुने से भी अधिक फैलाना होगा। क्वालिटी को कमजोर किए बिना यह दायरा बढ़ाना होगा और शिक्षा का स्तर उठाना होगा तथा उच्च शिक्षा को ज्ञानवान समाज के आवश्यकताओं और अवसरों के लिए अधिक उपयोगी बनाना होगा। इस बात को भी व्यापक मान्यता मिल रही है कि उच्च शिक्षा को समाज के सभी वर्गों के लिए अधिक सुलभ बनाना ज़रूरी है।

राष्ट्रीय ज्ञान आयोग निम्नलिखित विषयों पर विचार कर रहा है|

- उच्च शिक्षा की मात्रा और क्वालिटी से जुड़े व्यवस्था संबंधी मुद्दे
- नियामक ढाँचाय
- उच्चा शिक्षा की सुलभता
- उच्च शिक्षा के लिए धन की व्यवस्था
- विश्वविद्यालयों का संस्थागत ढाँचा
- संचालन और प्रशासन
- पाठयक्रम और परीक्षा आदि का तंत्रय

26.4.1 उच्च शिक्षा के संदर्भ में राष्ट्रीय ज्ञान आयोग की सिफारिशें

उच्च शिक्षा ने स्वतंत्र भारत के आर्थिक विकास, सामाजिक प्रगति और राजनीति लोकतंत्र को आगे बढ़ाने में उल्लेखनीय योगदान किया है। लेकिन इस समय चिंता का एक गंभीर कारण है। उच्च शिक्षा में प्रवेश करने वाले आयु वर्ग का हमारी जनसंख्या में अनुपात लगभग 7 प्रतिशत है। हमारे आबादी के बहुत बड़े हिस्से को उच्च शिक्षा की कोई सुविधा सुलभ नहीं है। इतना ही नहीं हमारे अधिकतर विश्वविद्यालयों में उच्च शिक्षा का स्तर अपेक्षा से बहुत कम है। राष्ट्रीय ज्ञान आयोग ने इस बारे में उच्च शिक्षा से जुड़े विभिन्न व्यक्तियों के साथ औपचारिक और अनौपचारिक विचार-विमर्श किया है। इसके अलावा इसने संसद, सरकार, समाज और उद्योग में संबद्ध व्यक्तियों के साथ भी परामर्श किया है। उच्च शिक्षा व्यवस्था को लेकर सब चिंतित हैं। सबका एक मत से यह स्पष्ट मानना है कि उच्च शिक्षा में आमूलचूल बदलाव की ज़रूरत है ताकि हम शिक्षा का स्तर गिराए बिना कहीं अधिक संख्या में विद्यार्थियों को शिक्षा दे सकें। ऐसा करना विशेष रूप से आवश्यक है, क्योंकि 21वीं शताब्दी में अर्थव्यवस्था और समाज का बदलाव काफी हद तक हमारे लोगों में शिक्षा के क्षेत्र में उसकी क्वालिटी, खासकर उच्च शिक्षा के प्रसार और उसकी क्वालिटी पर निर्भर करता है। सबको समाहित करने वाला समाज ही एक ज्ञानवान समाज की बुनियाद की व्यवस्था कर सकता है।

क. विस्तार-

अधिक विश्वविद्यालयों की स्थापना करनाः- उच्च शिक्षा व्यवस्था में अवसरों को बड़े पैमाने पर बढ़ाना ज़रूरी है। देश भर में करीब 1500 विश्वविद्यालय होने चाहिए, तभी भारत सन् 2015 तक कम-से-कम 15 प्रतिशत का सकल भर्ती अनुपात हासिल कर सकेगा। उच्च शिक्षा के लिए विनियमन का ढाँचा बदलनाः- उच्च शिक्षा के बारे में वर्तमान विनियमन व्यवस्था में कुछ महत्वपूर्ण कमियाँ हैं। राष्ट्रीय ज्ञान आयोग समझता है कि उच्च शिक्षा के लिए एक स्वतंत्र विनियमन प्राधिकरण (आईआरएएचई) की स्थापना बेहद आवश्यक है। यह प्राधिकरण सरकार से एकदम अलग होना चाहिए और सरकार के संबंधित मंत्रालयों सहित सभी हितधारकों के प्रभाव से मुक्त होना चाहिएः

सार्वजनिक खर्च बढ़ाना और वित्त के स्रोतों में विविधता लानाः- उच्च शिक्षा की हमारी व्यवस्था का विस्तार तब तक संभव नहीं है, जब तक उसके लिए धन की व्यवस्था का स्तर न बढ़ाया जाए। धन की व्यवस्था सार्वजनिक और निजी दोनों स्रोतों से होने चाहिए। शिक्षा के अवसर बढ़ाने के साधन के रूप में शिक्षा में निजी निवेश बढ़ाना बहुत आवश्यक है।

50 राष्ट्रीय विश्वविद्यालयों की स्थापना करनाः- राष्ट्रीय ज्ञान आयोग उच्चतम स्तर की शिक्षा दे सकने वाले 50 राष्ट्रीय विश्वविद्यालय स्थापित करने की सिफारिश करता है। इन विश्वविद्यालयों को बाकी देश के लिए मिसाल बनना चाहिए। इनमें विद्यार्थियों को मानविकी, समाज विज्ञान, मूल विज्ञानों, वाणिज्य और पेशेवर विषयों सहित विभिन्न विषयों में स्नातक और स्नातकोत्तर दोनों स्तरों पर प्रशिक्षण देना चाहिए। 50 का यह आँकड़ा दीर्घकालिक लक्ष्य है। अगले तीन वर्ष में कम-से-कम दस ऐसे विश्वविद्यालय स्थापित करना महत्वपूर्ण है। राष्ट्रीय विश्वविद्यालय दो तरीके से स्थापित किए जा सकते हैं। उन्हें या तो सरकार स्थापित करे या फिर कोई निजी प्रायोजक संस्था कोई सोसाइटी, परोपकारी ट्रस्ट या धारा-25 के अंतर्गत कंपनी बनाकर यह काम कर सकती है। राष्ट्रीय ज्ञान आयोग का प्रस्ताव है कि राष्ट्रीय विश्वविद्यालयों में विद्यार्थियों की भर्ती अखिल भारतीय स्तर पर की जाए। वे आवश्यकता से बँधे दाखिले का सिद्धांत अपनाएँगे। इसके लिए ज़रूरतमंद बच्चों की मदद के लिए छात्रवृत्तियों की व्यापक व्यवस्था की ज़रूरत होगी। राष्ट्रीय विश्वविद्यालयों में तीन वर्ष के कार्यक्रम के अंतर्गत अवर स्नातक डिग्री विभिन्न पाठ्यक्रमों में अपेक्षित संख्या में प्राप्त अंकों के बाद दी जानी चाहिए। अतः शिक्षा वर्ष में सेमिस्टर की व्यवस्था होगी और हर कोर्स के अंत में शिक्षक ही अपने विद्यार्थियों का मूल्याँकन करेंगे। एक राष्ट्रीय विश्वविद्यालय से दूसरे राष्ट्रीय विश्वविद्यालय को अंकों का हस्तांतरण करना संभव हो सकेगा। इन राष्ट्रीय विश्वविद्यालयों में शिक्षकों की क्षमता को अधिकतम स्तर पर लाने के लिए नियुक्ति और प्रोत्साहनों की उपयुक्त व्यवस्था की आवश्यकता है। शिक्षण और अनुसंधान, विश्वविद्यालयों और उद्योग तथा विश्वविद्यालयों और अनुसंधान प्रयोगशालाओं के बीच मज़बूत संबंध स्थापित किये जाने चाहिए। राष्ट्रीय विश्वविद्यालयों में अलग-अलग विभाग होंगे, लेकिन वे किसी कॉलेज को मान्यता नहीं देंगे।

ख. उत्कृष्टता

मौजूदा विश्वविद्यालयों में सुधारः- उच्च शिक्षा में बदलाव लाने के प्रयासों के अंतर्गत मौजूदा संस्थानों में सुधार करना ज़रूरी है। कुछ आवश्यक कदम हैं-

-विश्वविद्यालयों को कम-से-कम 3 वर्ष में एक बार अपने पाठ्यक्रम में संशोधन और फेर-बदल करना ज़रूरी होना चाहिए।

-विश्वविद्यालयों में एक बार फिर अनुसंधान को बढ़ावा दिया जाना चाहिए ताकि एक-दूसरे की पूर्ति करने वाले शिक्षण और अनुसंधान प्रयासों के बीच सामंजस्य हो सके। इसके लिए नीतिगत उपायों के साथ-साथ संसाधनों के आवंटन, पुरस्कार प्रणाली और सोच में भी बदलाव आवश्यक है।

- सीखने-सिखाने की प्रक्रिया के लिए आवश्यक सुविधाओं, जैसे, पुस्तकालय, प्रयोगशाला और कनेक्टिविटी की लगातार निगरानी करना और उसमें सुधार करना आवश्यक है।

- विश्वविद्यालयों के प्रबंध के मौजूदा ढाँचे में सुधार की बहुत अधिक आवश्यकता है, क्योंकि यह ढाँचा न तो स्वायत्ता की रक्षा करता है और न ही जवाबदेही को बढ़ावा देता है। बहुत कुछ किया जाना बाकी है, लेकिन दो महत्वपूर्ण बातों का जिक्र करना उचित होगा। सरकार को कुलपतियों की नियुक्तियों में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष दखल देना बंदकर देना चाहिए। यह काम तलाश की प्रक्रियाओं और उच्च कोटि के निर्णय पर आधारित होना चाहिए। यूनिवर्सिटी कोर्ट्स, विद्वत् परिषदों और कार्यकारी परिषदों के आकार और संरचना पर सबसे पहले फिर से ग़ौर किया जाना चाहिए, क्योंकि इनके कारण निर्णय लेने की प्रक्रिया धीमी होती है और कभी-कभी यह बदलाव में रूकावट बन जाते हैं।

क्वालिटी सुधारने को बढ़ावा देनाः- उच्च शिक्षा व्यवस्था को समाज के प्रति और स्वयं अपने प्रति जवाबदेह होना चाहिए। जवाबदेही बढ़ाने में ऐसी उच्च शिक्षा व्यवस्था के विस्तार की मुख्य भूमिका होगी, जो विद्यार्थियों को विकल्प दे और संस्थाओं के बीच स्पर्धा पैदा करे।

- सभी शिक्षा संस्थाओं के लिए यह अनिवार्य किया जाना चाहिए कि वे अपनी वित्तीय स्थिति, भौतिक संपत्तियों, प्रवेश के नियमों, शिक्षकों के पदों, शैक्षिक पाठ्यक्रम की सूचना के अलावा अपने प्रमाणीकरण के स्रोत और स्तर के बारे में पूरी जानकारी दें।

- विद्यार्थियों द्वारा पाठ्यक्रमों और शिक्षकों के मूल्याँकन के साथ-साथ शिक्षकों द्वारा शिक्षकों के मूल्याँकन को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।

- उच्च शिक्षा व्यवस्था में इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि उच्च शिक्षा की किसी भी व्यवस्था में विविधता और बहुलता तो होती ही है, इसलिए सब पर एक समान नीति लागू करने से बचना चाहिए। इस तरह की विविधता और अंतर की उपेक्षा करने या उससे बचने की बजाय बहुलता की भावना को समझना चाहिए।

ग. सबको शामिल करना

सभी योग्य विद्यार्थियों को शिक्षा सुलभ करानाः- अधिक अवसरों की रचना के माध्यम से शिक्षा समाज में सबको शामिल करने के लिए एक बुनियादी तंत्र है। अतः यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि किसी भी विद्यार्थी को वित्तीय कठिनाई के कारण उच्च शिक्षा पाने के अवसरों से वंचित न रहना पड़े। इसके लिए राष्ट्रीय ज्ञान आयोग निम्नलिखित उपायों का प्रस्ताव करता हैः-

- उच्च शिक्षा संस्थानों को आवश्यकता से बँधी प्रवेश नीति अपनाने के लिए बढ़ावा देना चाहिए। ऐसी नीति के अंतर्गत किसी भी विद्यार्थी को प्रवेश देने या न देने का निर्णय लेते समय उसकी वित्तीयस्थिति को ध्यान में रखना शिक्षा संस्थान के लिए गैर-कानूनी होगा। आर्थिक रूप से कम साधन संपन्न विद्यार्थियों और ऐतिहासिक तथा सामाजिक दृष्टि से वंचित समूहों के विद्यार्थियों के

लिए विस्तारित राष्ट्रीय छात्रवृत्ति योजना होनी चाहिए और उसके लिए धन की कमी नहीं रहनी चाहिए।

ठोस कार्रवाईः- उच्च शिक्षा व्यवस्था का एक मुख्य लक्ष्य यह सुनिश्चित करना होना चाहिए कि आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से कम साधन संपन्न विद्यार्थियों के लिए शिक्षा की सुलभता और अधिक कारगर ढंग से बहुत ज़्यादा बढ़ाई जाए।

शिक्षा की उपलब्धियों में विसंगतियाँ जाति और सामाजिक समूहों से तो संबद्ध हैं ही, लेकिन वे आमदनी, लिंग, क्षेत्र और निवास स्थान जैसे अन्य संकेतकों से भी गहराई से जुड़ी हुई हैं। ऐसा सार्थक और व्यापक ढाँचा विकसित करना जरूरी है जो मौजूदा भिन्नताओं के विविध आयामों का समाधान करे। उदाहरण के लिए विद्यार्थियों को अधिक अंक देने के लिए वंचना सूचकांक का इस्तेमाल किया जा सकता है और स्कूल परीक्षा में किसी विद्यार्थी के अंकों के पूरक के रूप में संचित अंकों का उपयोग किया जा सकता है।

राष्ट्रीय ज्ञान आयोग की सिफारिशों पर अमल के लिए तीन विभिन्न स्तरों पर कार्रवाई करनी होगीः मौजूदा व्यवस्थाओं के भीतर सुधार, नीतियों में बदलाव और मौजूदा कानूनों या विधानों में संशोधन या नए कानून बनाना। प्रस्तावित परिवर्तनों को भी तीन अलग-अलग स्तरों पर लागू करना होगाः विश्वविद्यालय, राज्य सरकारे और केन्द्र सरकार।

अभ्यास प्रश्न

रिक्त स्थान भरिये.

1. राष्ट्रीय ज्ञान आयोग का उद्देश्य सकल भर्ती अनुपात को कम से कम .... तक बढ़ाना है।
2. राष्ट्रीय ज्ञान आयोग उच्चतम स्तर की शिक्षा दे सकने वाले .... स्थापित करने की सिफारिश करता है।
3. उच्च शिक्षा व्यवस्था को समाज के प्रति और स्वयं अपने प्रति .... होना चाहिए।

26.5 मुक्त और दूरस्थ शिक्षा के संदर्भ में राष्ट्रीय ज्ञान आयोग की सिफारिशें

दूरस्थ शिक्षा को साधारणतया, शिक्षा की उस प्रणाली के रूप में परिभाषित किया जाता है जिसमें शिक्षार्थी को दूर स्थान से शिक्षा प्रदान की जाती है। इसमें दो मूल तत्व निहित हैं- शिक्षक और शिक्षार्थी की शारीरिक रूप से दूरी और शिक्षक की परिवर्तित भूमिका।

राष्ट्रीय ज्ञान आयोग (एनकेसी) ऐसा मानता है कि उच्चतर शिक्षा में विस्तार, समावेशन और उत्कृष्टता के लक्ष्यों की पूर्ति के लिए मुक्त और दूरस्थ शिक्षा (ओडीई) की प्रणाली में जबरदस्त बदलाव लाए जाने जरूरी हैं। ओडीई केवल उन्हीं लोगों को शैक्षिक अवसर उपलब्ध नहीं कराती, जिन्होंने आर्थिक अथवा सामाजिक दबावों के कारण औपचारिक शिक्षा आधी कर बीच में छोड़ दी थी बल्कि स्कूली शिक्षा छोड़ने वाले ऐसे युवकों को भी शैक्षिक अवसर प्रदान करती है जोकि विश्वविद्यालयों की औपचारिक धारा में दाखिला पाने में असमर्थ हैं। ओडीई के स्तर में सुधार लाने तथा इसे समाज की जरूरतों के लिए और अधिक उपयुक्त बनाए जाने की सुस्पष्ट आवश्यकता मौजूद है। ओडीई में प्रौद्योगिकी के प्रयोग के माध्यम से उच्चतर शिक्षा में अवसरों का विस्तार करना समान रूप से महत्वपूर्ण है। ओडीई के विशाल स्तर पर विस्तार के बिना 2015 तक 15 प्रतिशत का सकल नामांकन अनुपात प्राप्त करना संभव नहीं होगा। इस प्रयास में हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि ओडीई को परंपरागत क्लासरूम अधिगम की तुलना में घटिया माना जाता है। इस तरह की मान्यता और वस्तुस्थिति-दोनों में बदलाव लाए जाने की जरूरत है। हमें यह जरूर महसूस करना होगा कि ओडीई केवल शैक्षिक आपूर्ति का एक माध्यम नहीं है, बल्कि ज्ञान के सृजन में प्रवृत्त एक एकीकृत विषयक्षेत्र है।

उपर्युक्त स्थिति के प्रकाश में आयोग ने इग्नू के पूर्व उप-कुलपति प्रोफेसर राम तकवले की अध्यक्षता में इस क्षेत्र में लब्धप्रतिष्ठ विशेषज्ञों से युक्त एक कार्यदल का गठन किया। इस कार्यदल द्वारा प्रदत्त इन्पुटों और हितधारकों के साथ परामर्श के आधार पर आयोग ने निम्नानुसार सिफारिशें की-

1. ओडीई संस्थानों के नेटवर्क निर्माण के लिए राष्ट्रीय आईसीटी आधारिक-तंत्र का सृजन करे- सभी ओडीई संस्थानों के नेटवर्क निर्माण के लिए सरकारी सहायता के माध्यम से एक राष्ट्रीय सूचना और संचार प्रौद्योगिकी (आईसीटी) आधारिक-तंत्र अवश्य स्थापित किया जाना चाहिए। इस संबंध में हम यह सिफारिश करते हैं कि एनकेसी द्वारा प्रस्तावित डिजिटल ब्राडबैंड ज्ञान नेटवर्क में प्रमुख ओडीई संस्थानों को तथा पहले चरण में ही उनके अध्ययन केन्द्रों को परस्पर जोड़ने के लिए प्रावधान होना चाहिए। अंततः 2 एमबीपीएस की न्यूनतम संयोज्यता का विस्तार सभी ओडीई संस्थानों के अध्ययन केन्द्रों तक किया जाना जरूरी है। एक राष्ट्रीय आईसीटी अवलंब, ओडीई में सुलभता और ई-अभिशासन का संवर्द्धन करेगा और सभी विधियों के बीच अर्थात मुद्रित, श्रृव्य-दृश्य और इंटरनेट-आधारित मल्टीमीडिया में ज्ञान का प्रसार करा सकेगा।

2. वेब-आधारित सामान्य मुक्त संसाधन विकसित करने के लिए एक राष्ट्रीय शिक्षा प्रतिष्ठान की स्थापना करें-उच्च स्तरीय शैक्षिक संसाधनों का एक वेब-आधारित कोष विकसित करने के लिए समुचित निधियों की एकबारगी उपलब्धता सहित एक राष्ट्रीय शैक्षिक प्रतिष्ठान अवश्य स्थापित किया जाना चाहिए। यह जरूरी है कि एक सहयोगात्मक प्रक्रिया, उच्चतर शिक्षा के सभी प्रमुख

संस्थानों के प्रयासों और विशेषज्ञता को संचित करने के माध्यम से मुक्त शैक्षिक संसाधन (आईईआर) का आनलाइन सृजन अवश्य किया जाना चाहिए। ओईआर कोष ओडीई के माध्यम से चलाए जा रहै विभिन्न कार्यक्रमों के लिए शिक्षाशास्त्रीय साटवेयर की आपूर्ति करेगा और वह सभी ओडीई संस्थानों द्वारा प्रयोग के लिए उपलब्ध रहै गा। इस प्रयोजन के लिए एक ऐसा समर्थनकारी विधिक तंत्र, जोकि बौद्धिक कर्तव्य के साथ कोई समझौता किए बिना निर्बाध सुलभता उपलब्ध कराएगा, अवश्य स्थापित किया जाना चाहिए।

3. पाठ्यक्रम क्रेडिट प्रणाली में अंतरण प्रभावित करने के लिए एक क्रेडिट कोष स्थापित करें-

छात्रों को सभी ओडीई संस्थानों और विषय क्षेत्रों में भाग लेने योग्य बनाने के लिए एक पाठ्यक्रम क्रेडिट प्रणाली में अंतरण जरूरी है। इस प्रक्रिया के एक अंग के रूप में प्रत्येक छात्र द्वारा अर्जित क्रेडिटों के भंडारण और पूर्ति के वास्ते एक स्वायत्त क्रेडिट बैंक अवश्य स्थापित किया जाना चाहिए।

4. ओडीई छात्रों का आकलन करने के लिए एक राष्ट्रीय शिक्षा परीक्षण सेवा स्थापित करें-

कानून के माध्यम से एक स्वायत्त राष्ट्रीय शिक्षा परीक्षण सेवा (एनईटीएस) अवश्य स्थापित की जानी चाहिए और उसे ओडीई में सभी संभावित स्नातकों का आकलन करने के लिए कार्यात्मक अधिकार तथा जिम्मेदारी सौंपी जानी चाहिए।यह एकीकृत परीक्षा प्रणाली बौद्धिक और प्रायोगिक कार्य करने में छात्रों की योग्यता जांच सकेगी। ओडीई के माध्यम से चलाए जा रहै सभी पाठ्यक्रम, डिग्रियां और क्रियाकलाप इस प्रणाली के माध्यम से प्रमाणित किए जाने चाहिए।

5. परंपरागत विश्वविद्यालयों के साथ अभिसरण को सुविधापूर्ण बनाएं-

मुक्त विश्वविद्यालयों द्वारा संचालित कार्यक्रमों तथा परंपरागत शैक्षिक संस्थानों के दूरस्थ शिक्षा स्कंधों द्वारा आयोजित पत्राचार पाठ्यक्रमों के बीच अभिसरण की कमी एक बड़ी चिंता का कारण है। मुक्त विश्वविद्यालयों को एक-दूसरे के प्रतिकूल समानांतर प्रणालियों के रूप में काम करने की बजाय एकसमान लक्ष्यों और कार्यनीतियों के प्रति लक्षित परंपरागत विश्वविद्यालयों के साथ संगठनात्मक तालमेल स्थापित करना चाहिए। परंपरागत विश्वविद्यालयों के भीतर कार्यरत दूरस्थ शिक्षा विभागों को आकलन के प्रयोजन के लिए, पत्राचार पाठ्यक्रमों को नेट्स के माध्यम से प्रस्तुत करने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। इसके साथ-साथ विश्वविद्यालयों को भी यह सुनिश्चित करना चाहिए कि उनके दूरस्थ कार्यक्रम अलग-थलग नहीं हैं बल्कि उन्हें संबंधित विषयक्षेत्रों में विश्वविद्यालय विभागों के साथ वैचारिक आदान-प्रदान से लाभान्वित होना चाहिए। इस तरह के अभिसरण का लक्ष्य अंततः यह होना चाहिए कि छात्रों को मुक्त रूप से एक प्रणाली से दूसरी प्रणाली में जाने के योग्य बनाया जा सके।

6. ओडीई में अनुसंधान क्रियाकलापों के समर्थन के लिए एक अनुसंधान प्रतिष्ठान की स्थापना करें-

ओडीई में एक बहु आयामी और बहुविषयक्षेत्रीय अनसुन्धान शुरू करे और उसे सुविधापूर्ण बनाने के लिए एक स्वायत्त तथा सुसमृद्ध अनसुन्धान प्रतिष्ठान स्थापित किया जाना चाहिए। इसके अलावा पुस्तकालय, डिजिटल डाटाबेसों और आनलाइन पत्रिकाओ जैसे आधारिक-तत्रं स्थापित करके, नियमित कार्यशालाएं और संगोष्ठियां आयोजित करके अनसुन्धान के लिए विश्राम छुटटी मजूंर करके, शोधकर्ताओ के लिए प्रकाशन के लिये मंच उपलब्ध कराने के प्रयोजन से एक समकक्ष समीक्षित पत्रिका स्थापित करके तथा अन्य ऐसे उपायो के माध्यम से अनसुन्धान के लिए एक अनुकूल वातावरण का सृजन अवश्य किया जाना चाहिए।

7. प्रशिक्षकों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रमों का कायाकल्प करें-

प्रशिक्षण और दिशा-अनुकूलन कार्यक्रमों की अवधारणा ऐसे बनाई जानी चाहिए कि प्रशिक्षक और प्रशासक, छात्रों की बहुविध रुचियों की पूर्ति करने के लिए प्रौद्योगिकी का प्रभावी प्रयोग करने की स्थिति में हो सकें। प्रशिक्षण माड्यूलों की अंतर्वस्तु को, स्व-अधिगम के सिद्धांतों और परिपाटियों से साथ घनिष्ठता को प्रोत्साहित करना चाहिए। उनकी आपूर्ति वेब-समर्थित, श्रृव्य-दृश्य और विशेषज्ञों, व्यावसायिकों तथा समकक्षों के साथ नियमित आधार पर आमने-सामने के वैचारिक आदान-प्रदान सहित विभिन्न माध्यमों से की जानी चाहिए।

8. विशेष जरूरतों वाले छात्रों के लिए सुलभता बढ़ाएं-

विकलांग छात्रों और वरिष्ठ नागरिकों की जरूरतों की ओर ध्यान देने के लिए सभी ओडीई संस्थानों में विशेष शिक्षा समितियां गठित की जानी चाहिए। इन समितियों को ऐसे तंत्र तैयार करने चाहिए जिनसे उनकी सहभागिता सुनिश्चित हो सके और मानीटरन, नीतियों के मूल्यांकन तथा फीडबैक के संग्रह के लिए प्रभावी तंत्र उपलब्ध कराए जा सकें। दाखिला मानदंड और समय तालिकाएं अनिवार्यतः इतनी नमनशील होनी चाहिए कि विभिन्न प्रकार की विकलांगताओं वाले छात्रों और वरिष्ठ नागरिकों की कार्यक्रम अपेक्षाओं की पूर्ति करने के लिए बहुविध विकल्प उपलब्ध रहें। मुक्त शैक्षिक संसाधनों से प्राप्त शिक्षाशास्त्रीय साधन और घटक विशेष अधिगम जरूरतों के लिए वैकल्पिक फोरमेटों के अनुकूलन योग्य होने जरूरी हैं। उदाहरण के लिए इसमें दृष्टि विकलांग छात्रों के लिए ब्रेल, वर्ण वैषम्य पाठ्य सामग्री और ध्वनि रिकार्डिंग उपलब्ध कराई जानी चाहिए।

9. ओडीई के विनियमन के लिए स्थायी समिति का सृजन करें

संप्रति, इग्नू के अधीन दूरस्थ शिक्षा परिषद (डीईसी) समूचे देश के भीतर ओडीई संस्थानों के लिए मानक निर्धारित करती है और निधियों का संवितरण करती है। एनकेसी का ऐसा मानना है कि यह व्यवस्था उपयुक्त और समुचित विनियमन उपलब्ध नहीं करा सकती। आयोग द्वारा प्रस्तावित उच्चतर शिक्षा के लिए स्वतंत्र विनियामक प्राधिकरण (आईआरएएचई) के तहत मुक्त और दूरस्थ शिक्षा पर एक स्थायी समिति का गठन करके एक नया विनियामक तंत्र अवश्य स्थापित किया जाना

चाहिए। यह सांविधिक निकाय प्रत्यायन के लिए स्थूल मानदंड विकसित करने और साथ ही गुणवत्ता आश्वासन के लिए मानक निर्धारित करने के लिए जिम्मेदार होगा। यह निकाय सभी स्तरों पर पणधारियों और आईआरएएचई के प्रति जवाबदेह होगा और इसमें शिक्षा और विकास क्षेत्रों के साथ जुड़े हुए सरकारी, निजी और सामाजिक संस्थानों के प्रतिनिधि शामिल होंगे। इनमें ये शामिल हैं केन्द्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, राज्य मुक्त विश्वविद्यालय, निजी मुक्त विश्वविद्यालय, परंपरागत शिक्षा संस्थान और साथ ही ओडीई की आधारिक जरूरतों का अध्ययन करने के लिए स्थापित विशेषज्ञतापूर्ण निकायों केअध्यक्ष।

इसके अलावा स्थायी समिति के तत्वावधान के अधीन दो विशेषज्ञतापूर्ण निकाय स्थापित किए जाने चाहिएः-

i. दिशा-निर्देश देने, नमनशीलता सुनिश्चित करने तथा अनुप्रयोग में अद्यतन घटनाक्रम की खोज लेने के लिए आईटी क्षेत्र, दूरसंचार, अंतरिक्ष तथा उद्योग के प्रतिनिधियों से युक्त एक तकनीकी सलाहकार समूह स्थापित किया जाना चाहिए। सबसे अधिक महत्वपूर्ण काम विभिन्न एजेसिंयों द्वारा विकसित अधिगम सामग्री का वर्गीकरण करने के लिए सामान्य मानक तैयार करना होगा जिससे कि सूचक बनाने, भंडारण, खोज तथा बहुविध कोषों के बीच बहुविध साधनों के माध्यम से सामग्री की पुनःप्राप्ति को समर्थन मिल सके।

ii. पाठ्यक्रम सामग्री पर मार्गनिर्देश उपलब्ध कराने और कोषों के विकास, सामग्री के आदान-प्रदान, छात्रों के लिए सुलभता तथा ऐसे ही अन्य मुद्दों के बारे में एक शिक्षाशास्त्रीय अंतर्वस्तु प्रबंध पर एक सलाहकार समूह का गठन किया जाना चाहिए। साथ ही मुक्त और दूरस्थ शिक्षा संबंधी स्थायी समिति मुक्त शैक्षिक संसाधनों पर राष्ट्रीय शैक्षिक प्रतिष्ठान, राष्ट्रीय शिक्षा परीक्षण सेवा (नेट्स) तथा क्रेडिट बैंक के लिए एक नोडल एजेन्सी के रूप में भी काम करेगी।

10. गुणवत्ता आकलन के लिए एक प्रणाली विकसित करें-

बाजारचालित अर्थव्यवस्था की स्थिति में नियोक्ताओं, छात्रों तथा अन्य पणधारियों द्वारा विश्वसनीय बाह्य मूल्यांकन को महत्व दिया जाता है। इस बात को ध्यान में रखते हुए ओडीई प्रदान करने वाले सभी संस्थानों के स्तर का आकलन करने के लिए एक क्रम-निर्धारण प्रणाली अवश्य तैयार की जानी चाहिए और वह सार्वजनिक रूप से उपलब्ध होनी चाहिए। स्थायी समिति क्रम-निर्धारण मानदंड निर्धारित करेगी तथा यह कार्य करने के लिए आईआरएएचई द्वारा स्वतंत्र क्रम-निर्धारण एजेंसियों को लाइसेंस प्रदान किया जाएगा। इसके अलावा यह सिफारिश की जाती है कि प्रत्येक ओडीई संस्थान को यह सुनिश्चित करने के लिए कि सांविधिक गुणवत्ताअनुपालन की नियमित पूर्ति की जा रही है, एक आंतरिक गुणवत्ता आश्वासन सेल रखना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न

रिक्त स्थान भरिये.

1. ओडीई केवल शैक्षिक आपूर्ति का एक माध्यम नहीं है, बल्कि ज्ञान के .... एक एकीकृत विषयक्षेत्र है।
2. एनकेसी द्वारा प्रस्तावित .... में प्रमुख ओडीई संस्थानों को तथा पहले चरण में ही उनके अध्ययन केन्द्रों को परस्पर जोड़ने के लिए प्रावधान होना चाहिए।
3. दूरस्थ शिक्षा परिषद (डीईसी) समूचे देश के भीतर ओडीई संस्थानों के लिए .... निर्धारित करती है।

26.6 सारांश

1. इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप राष्ट्रीय ज्ञान आयोग के स्वरुप आधार उद्देश्य और कार्यों के बारे में जान चुके होंगे उच्च शिक्षा मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा के क्षेत्र में इसकी भूमिकाए अनुशंसाएए परामर्श के बारे में समझ गये होगें शिक्षण संस्थानों में सुधारए गुणवत्तापूर्ण शिक्षण उत्कृष्ट अध्यापन तकनीकियों का अभिनव प्रयोग भवन निर्माण नए विश्विद्यालयों का निर्माण विशेष छात्रों के लिए शिक्षण की उपलब्धता शिक्षकों के लिए प्रशिक्षण इत्यादि आवश्कताओं से परिचित हो गए होगें।

26.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

भाग -1 (1) 13 जून 2005 (2) बढ़ाना (3) ज्ञान आधारित

भाग-2 (1) 2015 तक (2) 50 राष्ट्रीय विश्वविद्यालय (3) जवाबदेह

भाग -3 (1) सृजन में प्रवृत्त (2) डिजिटल ब्राडबैंड ज्ञान नेटवर्क (3) मानक

26.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- राष्ट्रीय ज्ञान आयोग पोर्टल

26.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. राष्ट्रीय ज्ञान आयोग के स्वरुप, उद्देश्य और कार्यों के बारे में आप क्या जानते हैं? समझाइये।
2. उच्च शिक्षा को उत्तम बनाने है तु आयोग ने क्या परामर्श दिए हैं? बताईये।

3. मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा को प्रभावी बनाने के लिए आयोग ने क्या सुझाव दिए हैं? बताईये।